बेनीपुरी-ग्रंथावली

पहला खंड

शब्दचित्र कहानियाँ . उपन्यास

बेनीपुरी-प्रकाशन

पटना

प्रकाशक

बेनीपुरी-प्रकाशन

पटना ६

चित्रकार

श्री इन्द्र दुगड

कलकत्ता

मुद्रक

सजीवन प्रेस

दीघा घाट

पटना

प्रथम संस्करण

दिसम्बर, १९५३

मूल्य

प्रति खंड—१२॥)

पूरी ग्रंथावली का १००) अग्रिम

समर्पण

श्रद्धेय भाई शिवपूजन सहाय जी को
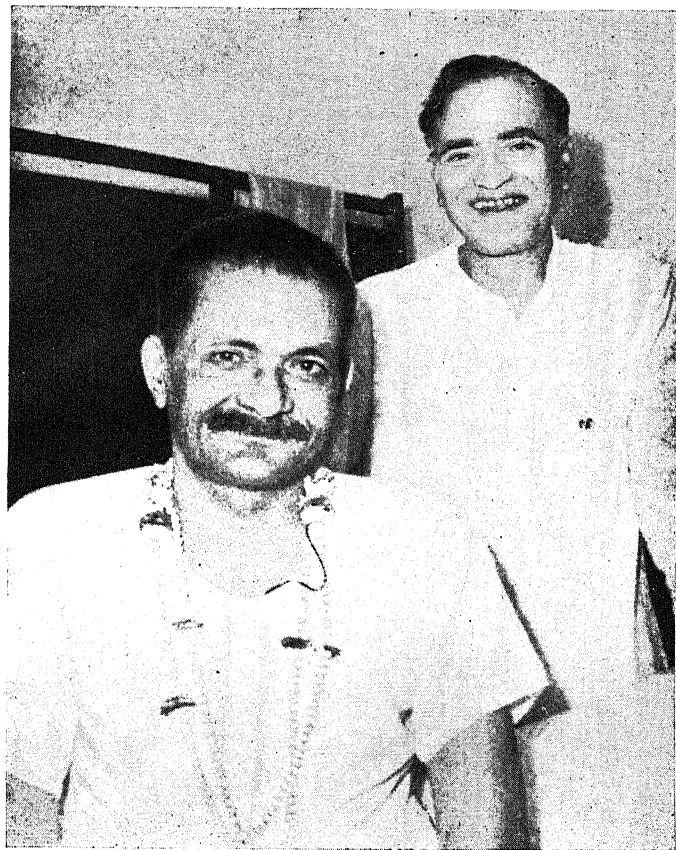
श्रद्धेय भैया,

मेरी ग्रंथावली के प्रकाशन से सर्वाधिक प्रसन्नता आपको ही होगी; अतः उसका यह पहला खंड आपके ही हाथों में—

निवेदन

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—यह नाम हिन्दी-ससार के कोने-कोने मे एक विशेष प्रकार की साहित्य-साधना और भाषा-शैली के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

लगभग एक दर्जन मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओ के जन्मदान, सम्पादन और सचालन के अतिरिक्त, राजनीति के सघष-मय जीवन मे रहते हुए और आठ वर्षो तक जेल की चाहरदीवारियो मे बद रखे जाने पर भी, बेनीपुरीजी ने हिन्दी-साहित्य को जितने अन-मोल रत्न दिये है, उनकी सख्या और विशिष्टता पर ध्यान देने से महान आश्चय होता है!

लगभग सत्तर पुस्तके उनके नाम की छाप लेकर आज भी प्रच-लित है, यद्यपि उन्होने कितनी ही पुस्तके भिन्न-भिन्न उपनामो से भी लिखी है और कुछ रचनाये समय से पीछे भी पड गई है, जिनकी चर्चा भी फिजूल है।

बच्चो के लिए छोटी-छोटी मनोरजक पुस्तको से लेकर साहित्य और राजनीति को उन्होने किनने ही ऐसे ग्रथ दिये है, जो अपनी मौलिकता और प्र माणिकता के लिए सुधी-समाज से शतश प्रशसाये प्राप्त कर चुके है। विषयो की विभिन्नता की दष्टि से देखिए, तो और भी आश्चय होता हे—नाटक, एकाकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, सस्मरण, भ्रमण, निबन्ध, विश्लेषण जिस विषय पर बेनीपुरीजी की लेखनी चली, उसने कमाल दिखलाया। अपने अनूठे शब्दचित्रो के लिए तो बेनीपुरीजी को समूचे हिन्दी-ससार से सवश्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र मिल ही चुका है!

किन्तु बेनीपुरी-साहित्य के प्रेमियो के लिए दु ख की बात यह रही कि उनकी पुस्तके भिन्न-भिन्न प्रकाशको द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानो से प्रका-शित हुई और वे इस तरह बिखरी-बिखरी पडी है कि उनका सकलन तो मुश्किल रहा ही है, उनके परिणाम और गुण का मूल्याकन भी भी सम्यक रूप से नही हो पाया है।

इसी अभाव की पूर्त्ति के लिए आज से चार साल पहले हमने बेनीपुरी-प्रकाशन का जन्म दिया, किन्तु कई कारणवश इस सम्बन्ध मे वैसी प्रगति नही हो सकी, जैसी हम चाहते थे। कुछ फुटकल पुस्तको के प्रकाशन तक हम सीमित रहे, यद्यपि हिन्दी-ससार से हमे प्रोत्साहन यथेच्छ मिला।

किन्तु, अब परिस्थिति ऐसी आ गई है कि हम इस ओर ठोस कदम बढा सके और जिस महान आयोजन का श्री गणेश हम करने जा रहे है, निस्सन्देह, हिन्दी मे यह एक अभिनव प्रयास हे।

हम बेनीपुरीजी की सारी रचनाओ को ग्रथावली के रूप मे प्रकाशित करने जा रहे है। यह ग्रथावली दस खडो मे, अलग-अलग जिल्दो में, इस प्रकार प्रस्तुत की जायगी—

पहला खंड

शब्दचित्र कहानियाँ उपन्यास

१ माटी की मूरते
२ पतितो के देश में
३ लाल तारा
४ चिता के फूल
५ कैदी की पत्नी
६ गेहूँ और गुलाब

दूसरा खंड

नाटक एकाकी रूपक

१ अम्बपाली
२ सीता की माँ
३ सघमित्रा और सिंहलविजय
४ नेत्रदान
५ तथागत
६ विजेता
७ नया समाज
८ अमर ज्योति

तीसरा खंड

सस्मरण निबध भाषण

१ जजीरे और दीवारे
२ मुझे याद है!
३ मेरी डायरी
४ नई नारी
५ सुनिये!
६ मशाल
७ नये-पुराने
८ कुछ मैं, कुछ वे

चौथा खंड

बाल-साहित्य (पहली जिल्द)

१ अमर कथाये मनु से गाँधी तक (दो भाग)
२ अमर कथाये लाओजे से लेनिन तक (दो भाग)
३ हम इनकी सतान हैं (दो भाग)
४ पृथ्वी पर विजय (दो भाग)
५ प्रकृति पर विजय (दो भाग)
६ ससार की मनोरम कहानियाँ (दो भाग)
७ इनके चरण चिह्नो पर

पाँचवा खंड

बाल-साहित्य (दूसरी जिल्द)

१ बगुला भगत
२ सियार पाँडे
३ बिलाई मौसी
४ हिरामन तोता
५ बेटे हो तो ऐसे
६ बेटियाँ हो तो ऐसी
७ शिवाजी
८ गुरु गोविन्द सिंह
९ अमृत की वर्षा
१० बच्चो के बापू
११ जीव-जन्तु
१२ अनोखा ससार
१३ झोपडी से महल
१४ सतरगा धनुष

छठा खंड

राजनीति जीवनियाँ

१ कार्ल मार्क्स
२ रोजा लुक्जेम्बुग
३ रूस की क्राति
४ लाल चीन
५ जयप्रकाश जीवनी
६ जयप्रकाश की विचार-धारा

सातवाँ खंड

साहित्य टीकायें

१ विद्यापति की पदावली
२ रवीन्द्र-भारती
३ इकबाल
४ बिहारी-सतसई
५ टुलिप्स
६ जोश

आठवाँ खड

यात्रा भ्रमण

१ पैरो में पख बाँध कर
२ पेरिस नही भूलती
३ उडते चलो, उडते चलो
४ मेरे तीर्थ

नवाँ खंड

दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओ में लिखे अग्रलेख और टिप्पणियाँ।

दसवाँ खंड

भविष्य की रचनाये

प्रति खड मे डिमाई अठपेजी के ५०० से ७०० पृष्ठ होगे। बढिया कागज पर मोनो की सुन्दर छपाई। हर खड सुप्रसिद्ध कलाकारो

द्वारा सचित्र। रेक्सिन की पक्की जिल्द, मनोहर तिरगा आवरण। ये दसो खड किसी के भी अध्ययन-कक्ष के लिए शृगार सिद्ध होगे।

प्रति खड का मूल्य १२॥) होगा और पूरे सेट का १२५)। किन्तु जो लोग अग्रिम स्थायी ग्राहक बन जायँगे, उन्हे १००) मे ही यह अनमोल प्रकाशन उपलब्ध हो सकेगा।

हिन्दी मे अभी तक इस प्रकार का प्रकाशन नही हो सका है। जिस तरह बेनीपुरीजी की लेखनी ने हिन्दी-साहित्य मे नई लकीर खीची है, हिन्दी-प्रकाशन मे भी एक नया आदश उपस्थित करने का प्रयास हम करने जा रहे है। बहुत बडी सख्या मे इस तरह का प्रकाशन किया नही जा सकता, इसलिए हमने अभी पहला सस्करण, परिमित सख्या मे ही, प्रकाशित करने का निर्णय किया है। अत साहित्य-प्रेमियो को चाहिए कि शीघ्र स्थायी ग्राहको मे नाम लिखा कर अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा ले। इससे हमारा उत्साह भी बढेगा और हम इस महान अयोजन को शीघ्र ही पूरा कर सकेगे।

पहले खड के प्रकाशन के पूव ही हमे हिन्दी-ससार से जैसा सहयोग मिला है, उससे हमारी यह आशा पुष्ट हुई है कि हम इस योजना को शीघ्र ही पूर्ण रूप से कार्यान्वित कर सकेगे। यह सहयोग देनेवाले सज्जनो के हम हार्दिक कृतज्ञ है और उनके नाम अन्यत्र हम सादर प्रकाशित कर रहे है।

विवाह-पचमी, अगहन,
२०१० वि०

—प्रकाशक

बेनीपुरी :: परिचय

जन्म-तिथि	अज्ञात, सम्भवत पौषसवत् १९५८, जनवरी १९०२ ई०
जन्म-स्थान	बेनीपुरी, थाना कटरा, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार।
परिवार	पिता, श्री फूलवन्त सिह। पितामह, श्री यदुनन्द सिंह। साधारण किसान। बचपन मे ही माता-पिता का स्वगवास।
शिक्षा	अक्षरारम्भ, बेनीपुर। प्राथमिक शिक्षा, बशीपचरा, ननिहाल मे। फिर भिन्न-भिन्न स्कूलो मे अध्ययन करते हुए जब मैट्रिक मे ही पहुँचे थे, असहयोग-आन्दोलन के कारण १९२० मे शिक्षा का परित्याग।
साहित्य-प्रेम	तुलसीकृत रामचरित मानस के पठन-पाठन से साहित्य की ओर रुचि। कविता की ओर प्रारम्भिक प्रवृत्ति। प्राचीन काव्यो का स्वत अध्ययन। १५ वर्ष की उम्र मे ही हिन्दी-साहित्य- सम्मेलन के विशारद। इसके पहले से ही पत्र-पत्रिकाओ मे कवितायें।
पत्र-कारिता	१९२१—'तरुण भारत' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।
	१९२२—'किसान मित्र' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।
	१९२४—'गोलमाल' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।
	१९२६—'बालक' (मासिक) के सम्पादक।
	१९२९—'युवक' (मासिक) के सम्पादक और सचालक।
	१९३०—'कैदी' (हस्तलिखित) का सम्पादन, हजारीबाग जेल में।
	१९३४—'लोक सग्रह' (मुजफ्फरपुर) और 'कर्मवीर' (खडवा) के काय-कारी सम्पादक।
	१९३५—'योगी' (साप्ताहिक) के सम्पादक।
	१९३७—'जनता' (साप्ताहिक) के सम्पादक।
	१९४२—'तूफान' (हस्तलिखित), हजारीबाग जेल मे सम्पादन।

१९४६—'हिमालय' (मासिक) के सम्पादक, आचार्य शिवपूजन सहायजी के साथ।

१९४६—'जनता' (साप्ताहिक) के पुन सम्पादक।

१९४८—'जनवाणी' (मासिक), काशी के सम्पादक मडल मे, आचाय नरेंद्रदेवजी के साथ।

१९५०—'नई धारा' और 'चून्नू-मुन्नू' के प्रधान सम्पादक—(दोनो ही मासिक)

१९५१—'जनता' (दैनिक) के प्रधान सम्पादक।

पुस्तक-निर्माण

१९२५—(१) बगुला भगत (२) सियार पाँडे (३) बिहारीसतसई की टीका (४) प्रेम (अनुवाद) (५) कविता-कुसुम (सग्रह)

१९२७-२८—(१) विद्यापतिकी पदावली (सटिप्पण) (२) बिलाईमौसी (३) हिरामन तोता (४) आविष्कार और आविष्कारक (५) शिवाजी (६) गुरुगोविन्द सिह (७) विद्यापति (८) लगटसिह

१९३०-३२—(१) पतितो के देश मे (२) फुटकल कहानियाँ, जो 'चिता के फूल' मे सग्रहीत हुईं।

१९३५-३६—(१) साहस के पुतले (२) झोपडी से महल (३) रगबिरग (४) बहादुरी की बाते (५) क्या और क्यो (ये दो पुस्तके अप्रकाशित) (६) दीदी (उपन्यास चार फाम छपी, मूल प्रति अप्राप्य)

१९३७-३९—(१) लाल तारा (२) लाल चीन (३) जान हथेली पर (४) फलो का गुच्छा (५) पद-चिह्न (६) सतरगा धनुष (७) झोपडी का रुदन (कहानी सग्रह)

१९४०—(१) कैदी की पत्नी (२) लाल रूस (३) सात दिन (उपन्यास अप्रकाशित) (४) जोश (अप्रकाशित)

१९४१-४५—(१) माटी की मूरते (२) अम्बपाली (३) रोजा लूक्जेमबुग (४) रवीन्द्र-भारती (अप्रकाशित) (५) इकबाल (अप्रकाशित) (६) रूस की क्राति (७) टुलिप्स (अप्रकाशित)

१९४७—(१) जयप्रकाश जीवनी (२) जयप्रकाश

की विचार धारा (३) तथागत (४) चिता के फूल
१९४८-५०—(१) गेहूँ और गुलाब (२) नेत्रदान (३) सीता की माँ (४) नई नारी (५) सघमित्रा (६) मशाल (७) हवा पर (८) बेटे हो तो ऐसे (९) बेटियाँ हो तो ऐसी (१०) हमारे पुरखे (११) हमारे पडोसी (पीछे ये दो पुस्तके 'अमर कथाये' नाम से चार भागो मे प्रकाशित) (१२) पृथ्वी पर विजय (१३) प्रकृति पर विजय (१४) ससार की मनोहर कहानियाँ (१५) हम इनकी सतान है (१६) इनके चरण-चिह्नो पर (१७) अनोखा ससार (१८) अपना देश
१९५१—(१) पैरो मे पख बाँध कर (२) काल मार्क्स (३) अमर ज्योति (४) नया समाज (५) सुनिये।
१९५२—(१) पेरिस नही भूलती (२) उडते चलो, उडते चलो (३) अमृत की वर्षा (४) जीव-जन्तु
१९५३—इन पुस्तको पर काम हो रहा है—(१) जजीरे और दीवारे (२) मुझे याद है (३) विजेता (४) धरती की धडकने (५) मेरी डायरी (६) नये-पुराने (७) कुछ मैं, कुछ वे।

जेल-यात्रा

१९३०—छ महीने की सजा, हजारीबाग जेल
१९३२—डेढ वष की सजा, हजारीबाग और पटना कैम्पजेल

१९३७—तीन महीने की सजा, हजारीबाग जेल।
१९३८—दो दिन हाजत मे—सीटी जेल, पटना जेल।
१९३९—दो सप्ताह की सजा—पटना जेल।
१९४०—एक वष की सजा—हजारीबाग जेल।
(इसी दरम्यान एक मुकदमे के सिलसिले मे छपरा जेल, सिवान जेल)

१९४१—छ महीने की सजा, हाजीपुर जेल, मुजफ्फरपुर जेल।
१९४२—डेढ साल की सजा, सीतामढी जेल।
१९४२—छ महीने भी सजा, मधुवनी जेल, दरभगा जेल।

१९४२ से १९४५ — नजरबदी, हजारीबाग जेल, गया जेल।

सस्थाओ से सम्बन्ध बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सस्थापन (१९१९) मे सहयोग उसके सहकारी मत्री, सयुक्त मत्री, प्रधान मत्री (१९४६ से १९५० तक) फिर सभापति (१९५१)। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मत्री (१९२९) जब श्रीगणेशशकर विद्यार्थी उसके सभापति थे।

१९२० से १९४६ तक कॉग्रेस मे। पटना शहर कॉग्रेस कमिटी के सभापति। अखिल भारतीय कॉग्रेस कमिटी के सदस्य । १९२९ मे बिहार राजनीतिक कान्फ्रेन्स (मुगेर) मे पूण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश किया, जो नेताओ के विरोध के बावजूद पास हुआ । फैजपुर काग्रेस मे जमीन्दारी उन्मूलन का प्रस्ताव पेश किया। १९३७ के आम चुनाव के बाद दिल्ली मे सयोजित नेशनल कान्वेन्शन के सदस्य।

बिहार सोशलिस्ट पार्टी (१९३९) के सस्थापको मे। अखिल भारतीय कॉग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पहली काय-समिति के सदस्य। सोशलिस्ट पार्टी (बिहार) के पार्लियामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष। पार्टी के मुख्य पत्र 'जनता' के सम्पादक।

बिहार प्रान्तीय किसान सभा के सभापति। भारतीय किसान सभा के उप-सभापति। जमीन्दारी उन्मूलन का नारा सबसे पहले दिया।

वत्तमान 'नई धारा' (मासिक) के सम्पादक।
'जनता' (साप्ताहिक) के सम्पादक।

पता बेनीपुरी प्रकाशन, पटना ६।

घर का पता— ग्राम बेनीपुर, पो० भरथुआ जिला मुजफ्फरपुर (बिहार)

अनुक्रमणिका

माटी की मूरतें

(शब्दचित्र)

पतितों के देश मे

(उपन्यास)

बाहरी झॉकी

भीतरी झाँकी

लाल तारा

(शब्द चित्र)

चित्रसख्या बत्तीस

चिता के फूल

(कहानियाँ)

कैदी की पत्नी

(उपन्यास)

(शब्दचित्र)

चित्रसख्या पचास

माटी की मूरतें

अपने मामाजी

स्वर्गीय श्रीद्वारिकासिहजी की

पावन स्मृति मे

ये माटी की मूरतें

जब कभी आप गाँव की ओर निकले होंगे, आपने देखा होगा, किसी बड या पीपल के पेड के नीचे, चबूतरे पर, कुछ मूरते रखी है—माटी की मूरते!

ये मूरते—न इनमें कोई खूबसूरती है, न रंगीनी। फलत बौद्ध या ग्रीक-रोमन मूर्त्तियो के हम शैदाई यदि उनमें कोई दिलचस्पी न लें,—उन्हे देखते ही मुँह मोड लें, नाक सिकोड लें, तो अचरज की कौन-सी बात?

किन्तु इन कुरूप, बदशकल मूरतो में भी एक चीज है,—शायद उस ओर हमारा ध्यान नहीं गया। वह है जिन्दगी! ये माटी की बनी हैं, माटी पर घरी ह , इसीलिए, जिन्दगी के नजदीक ह, जिन्दगी से शराबोर है। ये देखती है, सुनती है , खुश होती है, नाराज होती है, शाप देती है, आशीर्वाद देती है।

ये मूरते न तो किसी आसमानी देवता की होती ह, न अवतारी देवता की। गाँव के ही किसी साधारण व्यक्ति—मिट्टी के पुतले—ने किसी असाधारण अलौकिक कर्म के कारण एक दिन देवत्व प्राप्त कर लिया, देवता में गिना जाने लगा और गाँव के व्यक्ति-व्यक्ति के सुख-दुख का द्रष्टा-स्रष्टा बन गया!

मिट्टी के उन पुतलो की ये माटी की मूरते! हाँ, ये देखती है, सुनती है, खुश होती है, नाराज होती है। खुश हुई,—सतान मिली, अच्छी फसल मिली, यात्रा में सुख मिला, मुकदमे में जीत मिली। इनकी नाराजी —बीमार पड गये, महामारी फैली, फसल पर ओले गिरे, घर में आग लग गई!

ये जिन्दगी के नजदीक ही नही है, जिन्दगी में समाई हुई है। इसलिए जिन्दगी के हर पुजारी का सिर इनके नजदीक आप ही आप झुका है। बौद्ध और ग्रीक-रोमन मूर्त्तियाँ दर्शनीय है, वन्दनीय है, तो, माटी की ये मूरते भी उपेक्षणीय नहीं, आपसे हमारा निवेदन सिर्फ इतना है!

× × ×

आपने राजा-रानी की कहानियाँ पढ़ी है, ऋषि-मुनि की कथाएँ बाँची है, नायको और नेताओ की जीवनियो का अध्ययन किया है! वे कहानियाँ, वे कथाएँ, वे जीवनियाँ! कैसी मनोरजक, कैसी प्रोज्ज्वल, कैसी उत्साहवर्द्धक! हमें दिन-दिन उनका अध्ययन, मनन, अनुशीलन करना ही चाहिए।

किन्तु, क्या आपने कभी सोचा है, आपके गाँवो में भी कुछ ऐसे लोग है, जिनकी कहानियाँ, कथाएँ और जीवनियाँ राजा-रानियो, ऋषि-मुनियो , नायको-नेताओ की कहानियो, कथाओ और जीवनियो से कम मनोरजक, प्रोज्ज्वल और उत्साहवर्द्धक नहीं। किन्तु शकुन्तला, वशिष्ट, शिवाजी और नेताजी पर मरनेवाले हम अपने गाँव की बुधिया, बालगोबिन भगत, बलदेवसिंह और देव की ओर देखने की भी फुर्सत कहाँ पाते है?

हजारीबाग सेंट्रल जेल के एकान्त जीवन में अचानक मेरे गाँव और मेरे ननिहाल के कुछ ऐसे लोगोकी सूरते मेरी आँखो के सामने आकर नाचने और मेरी कलम से चित्रण की याचना करने लगीं! उनकी इस याचना में कुछ ऐसा जोर था कि अन्तत यह "माटी की मूरते" तैयार होकर रही। हाँ, जेल में रहने के कारण बैजूमामा भी इनकी पाँत में आ बैठे और अपनी मूरत मुझसे गढ़वा ही ली।

मै साफ कह दूँ, ये कहानियाँ नहीं, जीवनियाँ है! ये चलते-फिरते आदमियो के शब्दचित्र है। मानता हूँ, कला ने उनपर पच्चीकारी की है, किन्तु मने ऐसा नही होने दिया कि रग-रंग में मूल रेखाएँ

ही गायब हो जायँ। मै उसे अच्छा रसोइया नहीं समझता, जो इतना मसाला रख दे कि सब्जी का मूल स्वाद ही नष्ट हो जाय!

कला का काम जीवन को छिपाना नहीं, उसे उभाडना है! कला वह, जिसे पाकर जिन्दगी निखर उठे, चमक उठे!

डरता था, सोने-चाँदी के इस युग में मेरी ये 'माटी की मूरतें' कैसी पूजा पाती है? किन्तु, इधर इनमें से कुछ जो प्रकाश में आई, हिन्दी-ससार ने उन्हें सर-आँखो पर लिया! यह मेरी कलम या कला की करामात नहीं, मानवता के मन में मिट्टी के प्रति जो स्वाभाविक स्नेह है, उसका परिणाम है। उस स्नेह के प्रति मै बार-बार सिर झुकाता हूँ और कामना करता हूँ, कुछ और ऐसी 'माटी की मूरतें' हिन्दी-ससार की सेवा में उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।

दीवाली, १९४६ — श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

नवीन संस्करण

यह "माटी की मूरतें" सोने की मूरतें सिद्ध हुई। छ साल में इसकी साठ हजार प्रतियाँ बिक चुकीं। इस नवीन सस्करण में एक मूरत और जोड दी गई है—रजिया। क्रम मे भी कुछ परिवर्त्तन किया गया है और पाठ में भी। इसे आदि से अन्त तक सचित्र भी कर दिया गया है। क्या मै आशा करूँ, इस नये रूप में यह और भी पसद की जायगी?

गगादसहरा, १९५३ — श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

रज़िया

कानो मे चाँदी की बालियाँ, गले मे चाँदी का हैकल, हाथा मे चाँदी के कगन और पैरो मे चाँदी की गोडाँई—भरबाह की बूटेदार कमीज पहने, काली साडी के छोर को गले मे लपेटे, गोरे चेहरे पर लटकते हुए कुछ बालो को सम्हालने मे परीशान, वह छोटी-सी लडकी, जो उस दिन मेरे सामने आकर खडी हो गई थी—अपने बचपन की उस रजिया की स्मृति ताज़ा हो उठी, जब मै अभी उस दिन अचानक उसके गाँव मे जा पहुँचा!

हाँ, यह मेरे बचपन की बात है। मै कसाईखाने से रस्सी तुडा कर भागे हुए बछडे की तरह उछलता हुआ अभी-अभी स्कूल से आया था और बरामदे की चौकी पर अपना बस्ता-सिलेट पटककर मौसी से छठ मे पके ठेकुए लेकर उसे कुतर-कुतर कर खाता हुआ ढेकी पर झूला झूलने का मजा पूरा करना चाह रहा था कि उधर से आवाज आई—देखना, बबुआ का खाना मत छू देना—और, उसी आवाज के साथ मैने देखा, यह अजीब रूप-रग की लडकी मुझसे दो-तीन गज आगे खडी हो गई।

मेरे लिए यह रूप-रंग सचमुच अजीब था। ठेठ हिन्दुओ की बस्ती है मेरी और मुझे मेले-पेठिए मे भी अधिक नही जाने दिया जाता। क्योकि, सुना है, बचपन मे मै एक मेले मे खो गया था—मुझे कोई औघड लिये जा रहा था कि गॉव की एक लडकी की नज़र पडी और मेरा उद्धार हुआ। मै बाप-मॉ का एकलौता—मॉ, चल बसी थी, इसलिए उनकी इस एकमात्र धरोहर को मौसी ऑखो मे जुगोकर रखती। मेरे गॉव मे भी लडकियो की कमी नही, किन्तु न उनकी यह वेश-भूषा, न यह रूपरग! मेरे गॉव की लडकियॉ कानो मे बालियॉ कहा डालती और भरबाँह की कमीज पहने भी उन्हे कभी नही देखा। और, गोरे चेहरे तो मिले ह, किन्तु इसकी ऑखो मे जो एक अजीब किस्म का नीलापन दीखता, वह कहा? और, समूचे चेहरे की काट भी कुछ निराली जरूर—तभी तो मै उसे एकटक घूरने लगा!

यह बोली थी रज़िया की मॉ, जिसे प्राय ही अपने गाव मे चूडियो की खँचिया लेकर आते देखता आया था। वह मेरे आँगन मे चूडियो का बाज़ार पसारकर बैठी थी और कितनी बहू-बेटियॉ उसे घेरे हुई थी। मुँह से भाव-साव करती और हाथ से खरीदारिनो के हाथ मे चूडियाँ चढाती वह सौदे पटाये जा रही थी। अबतक उसे अकेले ही आते-जाते देखा था, हाँ, कभी-कभी उसके पीछे कोई मद होता, जो चूडियो की खॉची ढोता। यह बच्ची आज पहली बार आई थी और न जाने किस बालसुलभ उत्सुकता ने उसे मेरी ओर खीच लिया था। शायद वह यह भी नही जानती थी कि किसीके हाथ का खाना किसीके निकट पहुँचने से ही छू जाता है! मॉ जब अचानक चीख उठी, वह ठिठकी, सहमी—उसके पैर तो वही बँध गये, किन्तु इस ठिठक ने उसे मेरे बहुत निकट ला दिया, इसमे सदेह नही!

मेरी मौसी झट उठी, घर मे गई और दो ठेकुए और एक कसार लेकर उसके हाथो में रख दिये। वह लेती नही थी, किन्तु अपनी मॉ के आग्रह पर हाथ मे रख तो लिया, किन्तु मुँह से नही लगाया! मैंने कहा—खाओ न? क्या तुम्हारे घरो मे ये सब नही बनते? छठ का व्रत नही होता? कितने प्रश्न—किन्तु सबका जवाब 'न' मे ही और वह भी मुँह से नही, ज़रा-सा गर्दन हिला कर। और, गर्दन हिलाते ही चेहरे पर गिरे बाल की जो लटे हिल-हिल उठती, वह उन्हे परीशानी से सम्हालने लगती!

जब उसकी माँ नई खरीदारिनो की तलाश मे मेरे आँगन से चली,

रज़िया भी उसके पीछे हो ली। मै खाकर, मुँह धोकर, अब उसके निकट था और जब वह चली, जैसे उसकी डोर मे बँधा थोडी दूर तक घिसटता गया। शायद मेरी भावुकता देखकर ही चूडीहारिनो के मुँह पर खेलनेवाली अजस्र हँसी और चुहल मे ही उसकी माँ बोली—बबुआजी, रज़िया से ब्याह कीजिएगा? फिर बेटी की ओर मुख़ातिब होती, मुस्कराहट में कहा—क्यो रे रजिया, यह दुलहा तुम्हे पसन्द है। उसका यह कहना, कि मै मुडकर भागा। ब्याह? एक मुसलमानिन से? अब रजिया की माँ ठठा रही थी और रजिया सिमटकर उसके पैरो मे लिपटी थी, कुछ दूर निकल जाने पर मैंने मुडकर देखा।

× × ×

रज़िया, चूडीहारिन! वह इसी गाँव की रहनेवाली थी। बचपन मे इसी गाँव मे रही और जवानी मे भी। क्योकि मुसलमानो मे गाँव मे भी शादी हो जाती है न? और, यह अच्छा हुआ—क्योकि बहुत दिनो तक प्राय ही उससे अपने गाँव मे ही भेट हो जाया करती थी!

म पढते-पढते बढता गया! बढने पर पढने के लिए शहरो मे जाना पडा। छुट्टियो मे जब-तब आता। इधर रज़िया पढ तो नही सकी, हाँ बढने मे मुझसे पीछे नही रही। कुछ दिनो तक अपनी माँ के पीछे-पीछे घूमती फिरी। अभी उसके सिर पर चूडियो की खँचिया तो नही पडी, किन्तु, ख़रीदारिनो के हाथो मे चूडियाँ पिन्हाने की कला वह जान गई थी। उसके हाथ मुलायम थे, बहुत मुलायम, नई बहुओ की यही राय थी। वे उसीके हाथ से चूडियाँ पहनना पसन्द करती। उसकी माँ इससे प्रसन्न ही हुई—जब तक रज़िया चूडियाँ पिन्हाती, वह नई-नई ख़रीदारिनें फँसाती।

रज़िया बढती गई। जब-जब भेट होती, मै पाता, उसके शरीर मे नये-नये विकास हो रहे है। शरीर मे और स्वभाव मे भी। पहली भेट के बाद पाया था, वह कुछ प्रगल्भ हो गई है—मुझे देखते ही दौडकर निकट आ जाती, प्रश्न-पर-प्रश्न पूछती। अजीब अटपटे प्रश्न! देखिए तो, यह नई बालियाँ, आपको पसद है? क्या शहरो मे ऐसी ही बालियाँ पहनी जाती है? मेरी माँ शहर से चूडियाँ लाती है, मैंने कहा है, वह इसबार मुझे भी ले चले। आप किस तरफ रहते हैं वहाँ? क्या भेट हो सकेगी?—वह बके जाती, मै सुनता जाता! शायद ज़वाब की जरूरत वह भी नही महसूस करती।

फिर कुछ दिनो के बाद पाया, वह अब कुछ सकुचा रही है।

मेरे निकट आने के पहले वह इधर-उधर देखती और जब कुछ बाते करती, तो ऐसी चौकन्नी-सी कि कोई देख न ले, सुन न ले। एक दिन जब वह इसी तरह बाते कर रही थी कि मेरी भौजी ने कहा — देखियो री रजिया, बबुआजी को फुसला नही लीजियो। वह उनकी ओर देखकर हँस तो पडी, किन्तु मैने पाया, उसके दोनो गाल लाल हो गये है और उन नीली आँखो के कोने मुझे सजल-से लगे। मैने तबसे ध्यान दिया, जब हमलोग कही मिलते है, बहुत-सी आँखे हमपर भालो की नोक ताने रहती है।

रजिया बढती गई, बच्ची से किशोरी हुई और अब जवानी के फूल उसके शरीर पर खिलने लगे है। अब भी वह माँ के साथ ही आती है, किन्तु पहले वह मा की एक छायामात्र लगती थी, अब उसका स्वतत्र अस्तित्व है और उसकी छाया बनने के लिए कितनो के दिलो मे कसमसाहट है। जब वह बहनो को चूडियाँ पिन्हाती होती है, कितने भाई तमाशे देखने को वहाँ एकत्र हो जाते है। क्यो? बहनो के प्रति भ्रातृभाव या रजिया के प्रति एक अज्ञात आकषण उन्हें खीच लाता है? जब वह बहुओ के हाथो मे चूडियाँ ठेलती होती है, पतिदेव दूर खडे कनखियो से देखते होते है—क्या? अपनी नवोढा की कोमल कलाइयो को—या इन कलाइयो पर क्रीडा करती हुई रजिया की पतली उगलियो को! और, जैसे रजिया को इसमे रस मिलता है। पतियो से चुहले करने से भी वह बाज नही आती — बाबू, बडी महीन चूडियाँ है! जरा देखियेगा, कही चनक न जायँ! पतिदेव भागते है, बहुएँ खिलखिलाती है, रजिया ठट्ठा लगाती है। अब वह अपने पेशे मे निपुण होती जाती है!

हाँ, रजिया अपने पेशे मे भी निपुण होती जाती थी। चूडीहारिन के पेशे के लिए सिर्फ यही नही चाहिए कि उसके पास रग-बिरग की चूडियाँ हो—सस्ती, टिकाऊ, टटके-से-टटके फैशन की। बल्कि यह पेशा चूडियो के साथ चूडीहारिनो मे बनाव-श्रृगार, रूप-रग, नाजोअदा भी खोजता है। जो चूडी पहननेवालियो को ही नही, उनको भी मोह सके, जिनकी जेब से चूडियो के लिए पैसे निकलते है, सफल चूडीहारिन वह! यह रजिया की माँ भी किसी जमाने मे क्या कुछ कम रही होगी —खँडहर कहता है, इमारत शानदार थी!

ज्यो-ज्यो शहर मे रहना बढता गया, रजिया से भेट भी दुलभ होती गई! और, एक दिन वह भी आया, जब बहुत दिनो पर उसे

अपने गॉव मे देखा, पाया उसके पीछे एक नौजवान चूडियो की खाची सिर पर लिये है। मुझे देखते ही वह सहमी, सिकुडी और मैंने मान लिया, यह उसका पति है। किन्तु तो भी अनजान-सा पूछ ही दिया —इस मजूरे को कहाँ से उठा लाई है रे? इसीसे पूछिए, साथ लग गया, तो क्या करूँ। नौजवान मुस्कुराया, रजिया बिहँसी, बोली— यह मेरा खाबिन्द है मालिक।

खाबिन्द। बचपन की उस पहली मुलाकात मे उसकी मा ने दिल्लगी-दिल्लगी जो कह दिया था, न-जाने, वह बात कहाँ सोई पडी थी? अचानक वह जगी और मेरी पेशानी पर उस दिन शिकन जरूर उठ आये होगे, मेरा विश्वास है। ओर, एक दिन वह भी आया, कि मै भी खाबिन्द बना। मेरी रानी को सुहाग की चूडियाँ पहनाने उस दिन यही रजिया आई और उस दिन मेरे ऑगन मे कितनी धूम मचाई इस नटखट ने। यह लूँगी, वह लूँगी और ये मुँहमाँगी चीजे नही मिली, तो वह लूगी कि दुलहन टापती रह जायँगी। हट-हट, तू बबुआजी को ले जायगी, तो फिर तुम्हारा यह हसन क्या करेगा— भौजी ने कहा। यह भी टापता रहेगा बहुरिया, कहकर रजिया ठठटा मारकर हँसी और दौडकर हसन से लिपट गई—ओहो मेरे राजा, कुछ दूसरा न समझना। हसन भी हँस पडा, रजिया अपनी प्रेम-कथा सुनाने लगी। किस तरह यह हसन उसके पीछे पडा, किस तरह झझटे आई, फिर किस तरह शादी हुई और वह आज भी किस तरह छाया-सा उसके पीछे घूमता है—न जाने कौन-सा डर लगा रहता है इसे? और फिर, मेरी रानी की कलाई पकडकर बोली— मालिक भी तुम्हारे पीछे इसी तरह छाया की तरह डोलते रहे दुलहन। सारा ऑगन हँसी से भर गया था। और, उस हँसी मे रजिया के कानो की बालियो ने अजीब चमक भर दी थी—मुझे ऐसा ही लगा था।

× × ×

जीवन का रथ खुरदुरे पथ पर बढता गया—मेरा भी, रजिया का भी। इसका पता उस दिन चला, जब बहुत दिनो पर उससे अचानक पटना मे भेट हो गई। यह अचानक बात तो थी, किन्तु क्या इसे भेट कहा जाय?

मै अब ज्यादातर घर से दूर-दूर ही रहता। कभी एकाध दिनो के लिए घर गया, तो शाम को गया, सुबह भागा। तरह-तरह की जिम्मेवारियाँ, तरह-तरह के जजाल। इन दिनो पटना मे था, यो

कहिये, पटना सीटी मे। एक छोटे-से अखबार मे था, पीर-बावर्ची-भिस्ती की तरह। यो तो लोग समझते कि मै सपादक ही हूँ। उन दिनो न इतने अखबार थे, न इतने सम्पादक। इसलिए, मेरी बडी कदर है, यह मै तब जानता, जब कभी दफ्तर से निकलता, देखना, लोग मेरी ओर, उँगली उठाके फुसफुसा रहे है। लोगोका मुझपर यह ध्यान—मुझे हमेशा अपनी पद-प्रतिष्ठा का खयाल रखना पडता।

एक दिन मै चौक के एक प्रसिद्ध पानवाले की दुकान पर पान खा रहा था। मेरे साथ मेरे कुछ प्रशसक नवयुवक थे, एक-दो बुजुर्ग भी आकर खडे हो गये। हम पान खा रहे थे और कुछ चुहले चल रही थी कि एक बच्चा आया और बोला, बाबू, वह औरत आपको बुला रही है।

औरत! बुला रही है? चौक पर! मै चौक पडा! युवको में थोडी हलचल, बुजुर्गो के चेहरो पर की रहस्यमयी मुस्कान भी मुझसे छिपी नही रही। औरत! कौन? मेरे चेहरे पर गुस्सा था, वह लडका सिटपिटा कर भाग गया।

पान खाकर जब लोग इधर-उधर चले, अचानक पाता हूँ, मेरे पैर उसी ओर उठ रहे है, जिस ओर उस बच्चे ने उँगली से इशारा किया था। थोडी दूर आगे बढने पर पीछे देखा, परिचितो में से कोई देख तो नही रहा है। किन्तु, इस चौक की शाम की रूमानी फिज़ा में किसीको किसीकी ओर देखने की कहाँ फुर्सत! मै आगे बढता गया और वहाँ पहुँचा, जहाँ उससे पूरब वह पीपल का पेड है। वहाँ पहुँच ही रहा था कि देखा, पेड के नीचे चबूतरे की तरफ से एक स्त्री बढी आ रही है। और निकट पहुँचकर वह कह उठी—सलाम मालिक!

धक्-सा लगा! किन्तु पहचानते देर नही लगी—उसने ज्यो ही सिर उठाया, चाँदी की बालियाँ जो चमक उठी!

रज़िया! यहाँ कैसे?—मेरे मुँह से निकल पडा।

सौदा-सुलफ करने आई हूँ मालिक! अब तो नये किस्म के लोग हो गये न? अब लाह की चूडियाँ कहाँ किसीको भाती हैं। नये लोग, नई चूडियाँ। साज-सिंगार की कुछ और चीज़े भी ले जाती हूँ—पौडर, किलप, क्या-क्या चीज़े न। नया जमाना, दुल्हनो के नये-नये मिज़ाज

फिर ज़रा-सा रुक कर बोली—सुना था, आप यही रहते है। कहाँ रहते हैं मालिक? मैं तो अक्सर आया करती हूँ—

और यह जब तक पूछूँ कि अकेली हो या — कि एक अधबयस आदमी ने आकर सलाम किया। यह हसन था। लम्बी-लम्बी दाढियाँ, पाँच हाथ का लम्बा आदमी, लम्बा और मुस्तडा भी। देखिए मालिक, यह आज भी मेरा पीछा नही छोडता! यह कहकर रज़िया हँस पडी। अब रज़िया वह नही थी, किन्तु उसकी हँसी वही थी। वही हँसी, वही चुहल। इधर-उधर की बहुत-सी बाते करती रही और न जाने कब तक जारी रखती कि मुझे याद आया, मै कहाँ खडा हूँ और अब मै कौन हूँ? कोई देख ले तो?

किन्तु, वह फुसत दे तब न? जब मने जाने की बात की, हसन की ओर देखकर बोली—क्या देखते हो, ज़रा पान भी तो मालिक को खिलाओ, कितनी बार हुमच-हुमचकर भग्पेट ठूस चुके हो बाबू के घर!

जब हसन पान लाने चला गया, रज़िया ने बताया, किस तरह दुनिया बदल गई है। अब तो ऐसे भी गाँव है, जहा के हिन्दू मुसलमानो के हाथ से सौदे भी नही खरीदते। अब हिन्दू चूडीहारिने है, हिन्दू दरजी है। इसलिए रज़िया ऐसे खान्दानी पेशेवालो को बडी दिक्कत हो गई है। किन्तु, रज़िया ने यह खुशखबरी सुनाई, मेरे गाव मे यह पागलपन नही और मेरी रानी तो सिवा रज़िया के किसी दूसरे के हाथ से चूडियाँ लेती ही नही।

हसन का लाया पान खाकर जब मै चलने को तैयार हुआ, वह पूछने लगी, मेरा डेरा कहाँ है। मै बडे पेशोपेश मे पडा। डरिए मत मालिक, अकेले नही आऊँगी, यह भी रहेगा! क्यो मेरे राजा—यह कह कर वह हसन से लिपट पडी। पगली, पगली, यह शहर है, शहर, यो — हसन ने हँसते हुए उससे बाँहे छुडाई और बोला — बाबू बालबच्चोवाली हो गई, किन्तु इसका बचपना नही गया।

और, दूसरे दिन पाता हूँ, रज़िया मेरे डेरे पर हाज़िर है! मालिक, ये चूडियाँ रानी के लिए — कहकर मेरे हाथो मे चूडियाँ रख दी। मैने कहा, तुम तो घर पर जाती ही हो, लेती जाओ, वही दे देना!

नही मालिक, एक बार अपने हाथ से भी पिन्हा देखिए? वह खिलखिला पडी। और, जब मैने कहा—अब इस उम्र मे? तो वह हसन की ओर देखकर बोली, पूछिए इससे, आज तक मुझे यही

चूडियाँ पिन्हाता है या नही ? और, जब हसन कुछ शरमाया, वह बोली — घाघ है मालिक, घाघ, कैसा मुँह बना रहा है इस समय, लेकिन जब हाथ मे हाथ लेता है ठठाकर हँस पडी, इतने जोर से कि मै चौककर चारो तरफ देखने लगा !

× × ×

हाँ, तो अचानक उस दिन उसके गाँव मे पहुँच गया ! चुनाव का चक्कर — जहाँ न ले जाय, जिस औघट-घाट पर न खडा कर दे। नाक मे पेट्रोल के धुएँ की गन्ध, कान मे सायँ-सायँ की आवाज, चेहरे पर गद-गुबार का अम्बार — परीशान, बदहवास, किन्तु उस गाव मे ज्यो ही मेरी जीप घुसी, मै एक खास किस्म की भावना से अभिभूत हो गया !

यह रजिया का गाँव है, यहाँ रजिया रहती थी ! किन्तु क्या आज मै यहा यह भी पूछ सकता हूँ कि यहाँ कोई रजिया नाम की चूडीहारिन रहती थी, या है ? हसन का नाम लेने मे भी शम लगती थी। मै वहाँ नेता बनकर गया था ! मेरा जय-जयकार हो रहा था, कुछ लोग मुझे घेरे खडे थे। जिसके दरवाजे पर जाकर पान खाऊँगा, वह अपने को बडभागी समझेगा! जिससे दो बाते कर लूँगा, वह स्वय चर्चा का एक विषय बन जायगा। इस समय मुझे कुछ ऊँचाई पर ही रहना चाहिए !

जीप से उतरकर लोगोसे बाते कर रहा था, या यो कहिए कि कल्पना के पहाड पर खडे होकर एक आनेवाले स्वर्ण-युग का सदेश लोगोको सुना रहा था, किन्तु दिमाग मे कुछ गुत्थियाँ उलझी थी। जीभ अभ्यासवश एक काम किये जा रही थी, अन्तमन कुछ दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। दोनोमे कोई तारतम्य न था, किन्तु इसमे से किसी एक की गति मे भी क्या बाधा डाली जा सकती थी ?

कि अचानक, लो, यह क्या ? वह रजिया चली आ रही है। रजिया ! वह बच्ची ! अरे, रजिया फिर बच्ची हो गई ? कानो मे वे ही बालियाँ, गोरे चेहरे पर वे ही नीली आँखे, वही भरबाँह की कमीज, वे ही कुछ लटे, जिन्हे सम्हालती बढी आ रही है । बीच मे चालीस-पैतालीस साल का व्यवधान ! अरे, मै सपना तो नही देख रहा ? सपना ? दिन मे सपना ? वह आती है, गब्बर ऐसी

भीड मे घुसकर मेरे निकट पहुँचती है, सलाम करती है और मेरा हाथ पकडकर कहती है—चलिए मालिक, मेरे घर!

मै भौचक्का, कुछ सूझ नही रहा, कुछ समझ मे नही आ रहा! लोग मुस्करा रहे है! नेताजी, आज आपकी कलई खुल कर रही! नही, यह सपना है। कि, कानो मे सुनाई पडा, कोई कह रहा है—कैसी शोख लडकी! और दूसरा बोलता है—ठीक अपनी दादी ऐसी! और तीसरे ने मेरे होश की दवा दी— यह रजिया की पोती है बाबू! बेचारी बीमार पडी है! आपकी चर्चा अक्सर किया करती है! बडी तारीफ करती है! बाबू, फुसत हो तो जरा देख लीजिए, न जाने बेचारी जीती है या

मै रजिया के आँगन मे खडा हूँ। ये छोटे-छोटे साफ-सुथरे घर, यह लिपा-पुता चिक्कन-ढुर-ढुर आँगन। भरी-पूरी गृहस्थी—मेहनत और दयानत की देन! हसन चल बसा है, किन्तु अपने पीछे तीन हसन छोड गया है। बडा बेटा कलकत्ता कमाता है, मँझला पुश्तैनी पेशे मे लगा है, छोटा शहर मे पढ रहा है। यह बच्ची, बडे बेटे की बेटी! दादा का सिर पोते मे, दादी का चेहरा पोती मे। हूबहू रजिया—दूसरी रज़िया! यह दूसरी रज़िया मेरी उँगली पकडे पुकार रही है —दादी, ओ दादी, घर से निकल, मालिक दादा आ गये! किन्तु पहली 'वह' रजिया निकल नही रही! कैसे निकले? बीमारी के मैले-कुचैले कपडे मे मेरे सामने कैसे आवे?

रज़िया ने अपनी पोती को भेज तो दिया, किन्तु, उसे विश्वास न हुआ कि हवागाडी पर आनेवाले नेता अब उसके घर तक आने की तकलीफ कर सकेगे? और, जब सुना, मै आ रहा हूँ, तो बहुओ से कहा, जरा मेरे कपडे तो बदलवा दो—मालिक से कितने दिनो पर भेट हो रही है न?

उसकी दोनो पतोहुएँ उसे सहारा देकर आँगन मे ले आई। रजिया—हाँ, मेरे सामने रजिया खडी थी— दुबली-पतली, रूखी सूखी। किन्तु जब नज़दीक आकर उसने 'मालिक, सलाम' कहा, उसके चेहरे मे एक क्षण के लिए झुर्रियाँ कहाँ चली गई, जिन्होने उसके चेहरे को मकडजाला बना रखा था। मैने देखा, उसका चेहरा अचानक बिजली के बल्ब की तरह चमक उठा और चमक उठी वे नीली

आँखे, जो कोटरो मे धँस गई थी! और, अरे चमक उठी है आज फिर वे चाँदी की बालियाँ और देखो, अपने को पवित्र कर लो, उसके चेहरे पर फिर अचानक लटककर चमक रही है वे लटे, जिन्हे समय ने धो-पोछ कर शुभ्र श्वेत बना दिया है।

बलदेव सिंह

टूटे हुए तारे की तरह एक दिन हमने अचानक अपने बीच आकर उसे धम्म से गिरता हुआ पाया—ज्योतिर्मय, प्रकाशपुज, दीप्तिपूर्ण। और, उसी तारे की तरह एक क्षण प्रकाश दिखला, हमे चकाचौध मे डाल, वह हमेशा के लिए चलता बना। जिस दिन वह आया, हमे आश्चर्य हुआ, जिस दिन वह गया, हम स्तभित रह गये।

पूस की भोर थी। खलिहान मे धान के बोझो का अम्बार लगा था। उनकी रखवाली के लिए जो कुटिया बनी थी, उसके आगे धूनी जल रही थी। खेत मे, खलिहान पर, चारो ओर हल्का कुहासा छाया हुआ था, जिसे छेदकर आने मे सूरज की बाल-किरणो को कष्ट हो रहा था। काफी जाडा था, धीरे-धीरे ठढी हवा सनककर कलेजे को हिला जाती। सब लोग धूनी को घेरे हुए थे, जिसकी लपट खतम हो चुकी थी, हाँ, लाल अगारे चमक रहे थे। ज्यो-ज्यो अगारे पर राख की पत पडती जाती, हम नजदीक-से-नजदीक होते जाते, मानो हम उन्हे कलेजे मे रखना चाहते हो। काफी निस्तब्धता थी। दौनी

के लिए, खलिहान के बीचोबीच, जो बाँस का खम्भा गडा था, उसके धान के सीसो वाले झब्बेदार सिरे पर एक काला भुजगा पछी बैठा, कभी-कभी चीखकर, उस निस्तब्धता को भग करने की तुच्छ चेष्टा कर रहा था।

इसी समय, एक नौजवान आकर, दूर से ही मेरे मामाजी को देखकर, चिल्ला उठा—"पा-लागी, चाचाजी!" हम सबका ध्यान उसकी ओर गया। एक गभरू जवान—अभी मूँछ की मसे भीग रही। रग गोरा, जिसपर बाल-किरणो ने सोना-सा पोत रखा था। दाहिने हाथ मे बाँस की लम्बी लाल लाठी—बडी सजीली, घने पोरवाली, गाव-दुम-सी उतारवाली! बाये हाथ मे लोटा लिये—वह शौचादि से लौट रहा था। बादामी रग का, मोटिये का जो लम्बा खलीता कुर्ता पहन रखा था उसने, उसके भीतर से उसके शरीर का गठीलापन और सौन्दय फूटा पडता था।

"ओ, बलदेव, कब तुम आये? बहुत दिनो पर दिखाई दिये। पूरब कमाते हो, खुश रहो, लेकिन हमलोगो को भी तो मत भूलो, शायद दो बरस पर आये हो"—यो ही मामाजी ने उससे पूछताछ की। बडी आजिजी से उसने क्षमा माँगी, फिर बोला—"चाचाजी, अब सोचा है, यही रहूँगा। बहुत दुनिया देखी, मन कही न लगा। ननिहाल से भी जी ऊब गया, यह पुस्तानी जमीन जैसे डोर लगाकर खीचती रहती है। इसलिए आया हूँ घर बसाने। घर तैयार कर मैया को भी ननिहाल से ले आऊँगा। सोचता हूँ, अब आपलोगो की सेवा मे ही जिन्दगी गुजार दूँ।"

नवयुवको को जब मालूम हुआ, बलदेव सिह यही बसेगे, उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। बलदेव सिह के पिता भरी-जवानी मे मरे, बलदेव तब छोटे-से बच्चे थे। उनकी माँ उन्हे लेकर मायके चली गई और तबमे वह बेचारी वही है। जवान होने पर बलदेव पूरब जाने लगे, वहाँ बगाल मे किसी राजा के दरबार मे पहलवानी करते। काफी पैसे मिले। अब उन्हे अपनी पुस्तानी जमीन की याद आई थी।

वह घर जो खडहर बना था, फिर एक बार आबाद हुआ!

गाँव मे उनके आने से नई जान आ गई—जान आ गई, जवानी आ गई। अखाडा खुद गया, उसमे कुश्तियाँ होने लगी। भोर में कुश्तियाँ, शाम को पट्टेबाजी, गदका, लाठी चलाना आदि। पेठिया

के दिन बलदेव सिंह जब शिष्यमडली के साथ सदल-बल चलते, देखते ही बनता।

आगे-आगे बलदेव सिह जा रहे ह। पैरो मे बूट, जो बगाल से ही लाये थे। कमर मे धोती, जिसे कच्छे की तरह, अजीब ढग से पहनते। वह घुटनो से थोडा ही नीचे जाती, घुटनो के नजदीक उसमे चुन्नन होती, जिससे चलते समय लहराती रहती। लम्बा कुर्त्ता—गर्दन की बगल मे जिसमे एक ही घुडी। कुर्ता काफी घेरदार, बाँह का घेरा इतना बडा कि हाथी का पैर समा जाय उसमे। गले मे सोने की छोटी-छोटी ठोस ताबीजो की पक्ति—जिनमे कुछ चौकोर और कुछ चद्राकार। सिर पर कलँगीदार मुरेठा, जिसका एक लबा छोर उनकी पीठ पर झूलता। हाथ मे सरसो का तेल और कच्चा दूध पिला-पिलाकर पोसी-पाली गई लाल-सुर्ख लम्बी लाठी, या कभी-कभी वह मोटा डडा, जिससे कुर्त्ते के नीचे कमर मे लटकती हुई गँडासे की फली बात-की-बात मे फिट करके वह साक्षात् यम बन जा सकते थे! अपनी ताकत और हिम्मत का उन्हे इतना विश्वास था कि झूमते हुए, सिर ऊँचा किये, छाती ताने, शेर की तरह चलते। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे इसी बन-ठन और रूपरग मे उनकी शिष्य-मडली होती। रास्ते मे, पेठिया मे, उनका सुन्दर-सुडौल शरीर देखकर किसकी आँखे न निहाल हो उठती?

शरीर मे इतनी ताकत, लेकिन स्वभाव कैसा—बच्चो-सा निरीह, निर्विकार! चेहरे पर हमेशा हँसी खेलती रहती, सबके साथ नम्रता से पेश आते, कभी गुस्सा उनमे देखा नही गया, सबकी सेवा करने को सर्वदा प्रस्तुत! बच्चे उन्हे देखते ही लिपट जाते, बूढो की आँखे हमेशा उनपर आशीर्वाद बरसाती, जवानो के तो वह देवता बन चुके थे!

× × ×

उन दिनो हिन्दू-मुसलमानो की तनातनी नही थी। दोनो दूध-चीनी की तरह घुले-मिले थे। हिन्दू की होली मे मुसलमानो की दाढी रँगी होती, मुसलमानो के ताजिये मे हिन्दू के कधे लगे होते।

ताजिये के दिन थे। मेरे गाँव मे भी ताजिया बना था, यद्यपि एक भी मुसलमान वहाँ नही। एक बूढे मौलवी साहब बुलाये गये थे, जो उसके धार्मिक कृत्य कर लेते। हमे सरोकार था सिर्फ ताजिये के निकट हो-हल्ला मचाने से। शाम हुई, जल्द-जल्द खा-पीकर सब लोग

एकत्र हुए। ताशे बज रहे, लकडी खेली जा रही, गदके भाँजे जा रहे, पट्टेबाजी हो रही। लाठियो के खेल, तरह-तरह के शारीरिक करतब। औरते और बच्चे मर्सिया के नाम पर शोर मचा रहे। खेलकूद मे आधी-आधी रात बीत जाती।

ताज़िये के 'पहलाम' का दिन आया। गाँव से दूर राजपूतो की एक बस्ती मे 'रन' सजता। वही जवार-भर के ताज़िये इकट्ठे किये जाते। लोगोकी अपार भीड—तरह-तरह के रगीन कपडो की चकमक, बूढे-जवान, बच्चे-औरते। तरह-तरह के मारू बाजे बज रहे, मर्सिये की मीठी धुन मे 'या अली' का गगन-भेदी स्वर! दिशाएँ काँपती, आसमान थर्राता, कलेजे उछलते। जवार-भर के जवानो का तो यही दिन था, बन-ठन के आये हुए है। कही कुश्तियाँ हो रही है, कही मेढे लडाये जा रहे है। कही लाठी, गदके और लकडी मे हाथ की करामातें दिखाई जाती। देखते-देखते दर्शको का दल दो मतो मे विभाजित हो जाता, कोई एक को शाबाशी देता, कोई दूसरे को। दोनो अपने-अपने 'हीरो' की विजय चाहते। कभी-कभी इस वीर-पूजा के चलते ललकारे लग जाती, आँखे लाल हो उठती, भुजाएँ फडकने लगती, मालूम होता, अब मुठभेड होकर ही रहेगी। किन्तु प्राय इस भावना पर बुद्धि की विजय होती, थोडी देर में समुद्र का ज्वार शान्त हो जाता। फिर आँखो मे रस, होठो पर हँसी।

हमलोग भी अपना ताजिया लिये रन पर पहुँचे थे।

एक जगह मेढे लडाये जा रहे थे, मै उसीको देख रहा था। मेढो की लडाई—वाह, क्या कहना! ये छोटे, झबरीले जानवर—जो अपने मालिको के पीछे सुधुआ बने फिरते—एक दूसरे पर किस तरह टूट पडते! इनके सीग जब टकराते, ज़ोर के शब्द के साथ जैसे धुआँ-सा उठ जाता! टक्कर-पर-टक्कर—जब तक उनमे से एक गिर न पडे, या वे अलग-अलग पकड न लिये जायँ। लडने के पहले लाल मिर्च उनके मुँह में रखकर जैसे उन्हे और भी उत्तेजित कर दिया जाता। मै मस्त-मगन हो यह मेढा-लडान देख रहा था—कि

कि, एकाएक बडे ज़ोरो का हो-हल्ला हुआ। सभी लोग एक ओर दौडे जा रहे है। और, वहाँ लाठियो की खटाखट जारी है। यह खटाखट खेल की नही है, कई सिरो से खून के फव्वारे छूट रहे है!

और यह, बीच मे, कौन है? बलदेव सिह!—पुराने, हँसमुख

रसाल बलदेव सिंह नही। बलदेव सिह—साक्षात् भीम बने हुए। आँखो से अँगारे झड रहे। सिर पर जो एक लाठी लगी थी, उससे खून निकलकर, ललाट होते, भौ के ऊपर, जमकर वह एक लोदा-सा बन गया था। दोनो हाथो से लाठी पकडे वह जोरो से चलाये जा रहे। जिस ओर इस रूप मे निकल जाते, हुडकम्प मच जाता! देखिए—यह आदमी उनकी ओर लाठी सम्हाले बढा, उसे देखते ही खडे हो गये, उसने लाठी चला ही तो दी। झट अपनी लाठी के दोनो छोर दोनो हाथो से पकडकर अपने सिर के ऊपर ले गये। उसकी लाठी की चोट इसीपर ठॉय-सी आकर लगी—दूसरी बार, तीसरी बार। बार-बार वार व्यथ जाता देख, वह भागा। किन्तु, अब बलदेव सिह की बारी है—बलदेव सिह की एक लाठी, और वह जमीन पर चक्कर खाता गिर पडा! अरे, यह क्या होने जा रहा है? चारो ओर हाहाकार मचा था, भगदड फैल गई थी। अब वहाँ महाभारत मचकर रहेगा, सब अनुमान कर रहे थे। कौन, किसको, क्या कह-कर समझाये? कौन किसकी सुनने जा रहा था? फिर बिना बलदेव सिह को शान्त किये, शान्ति क्या आ सकती थी?

झट हमारे बूढे मामाजी आगे बढे। चिल्लाकर कहा—"बल-देव!" बलदेव सिंह को जैसे थरथरी बँध गई। पैर जम रहे, हाथ रुक गये। किन्तु तुरत सम्हलकर वह बोले—"चाचाजी, आप मत रोकिए, इन लोगो को लाठी का घमड हो गया है। मैं ज़रा बता देना चाहता हूँ, लाठी क्या चीज़ है!" उनकी साँस जोर-जोर से चल रही थी, गुस्से मे बाते टूट-टूटकर निकलती। सचमुच, बलदेव सिंह का इसमे कोई हाथ नही था, उन्हे लाचार कूदना पडा था। एक जोडी कुश्ती लडी जा रही थी। दोनो पहलवान बलदेव सिह से अपरिचित थे। उनमे से एक ने 'फाउल-प्ले' करना चाहा। बलदेव ने अलग से ही रोका, मना किया—"ऐसा करना मुनासिब नही।" बस, इनकी बात सुनते ही उसके पक्षवाले इनपर बिगडे, गुर्राये, क्योकि वे लोग लाठी चलाने मे इस जवार मे सरगना समझे जाते थे। उन्हे घमड था कि उनके सौ खून माफ है। किन्तु, बलदेव सिह धौस को कहाँ बर्दाश्त करनेवाले? 'बातहि बात करख बढि आई' और उसका नतीजा यह!

खैर, मामाजी के पडने से बलदेव सिंह शान्त हुए। किन्तु, अब तो उनकी विजय हो भी चुकी थी। मैदान उनका था। उनकी शिष्य-मडली

के साथ हम किस तरह शान से उन्हे घर लाये।—हम आज विजयी थे, हमारा गाँव विजयी था।—मानो, राम लका-विजय कर अयोध्या पहुँचे थे।

× × ×

अगर शेरशाह या शिवाजी के दिन होते, तो बलदेव सिह फौज मे भर्ती हुए होते और सिपाही से होते-होते सूबेदार तक हो गये होते, इसमे तो कोई शक नही। सूरत-शकल, बल-हिम्मत, सब कुछ उनमे थे, जो सामन्तशाही के उस युग मे उन्हे अच्छे-से-अच्छे फौजी पद पर पहुँचा देते। उस समय बलदेव सिह किस शान से हमारे गाँव मे आते? घोडे पर सवार—कलँगीदार पगडी, कडी-कडी मूछे, आगे-पीछे नौकर-चाकर। किन्तु अँगरेजी राज्य मे यह कहाँ सम्भव था? हाँ, जो सम्भव था, वही हम देखते थे। वीरता अपने लिए कोई निकास का रास्ता तो बनानेवाली ही थी।

यह अजीब है हमारी बस्ती। चारो ओर राजपूतो और अहीरो का ठट्ठ। राजपूतो को अगर राम की शान, तो ग्वालो मे कृष्ण की यादवी आनबान। दोनो कौमो मे जैसे खानदानी बैर चला आ रहा हो। छोटी-छोटी बात पर भी तनाव हो जाता, मूछे कडी हो उठती, आँखे लाल हो जाती और लाठियाँ चलकर रहती। दोनो कौमे दो गिरोह की हैसियत से लडती थी, तो गिरोह के अन्दर भी युद्ध जारी ही रहता था, भाई-भाई मे, पडोसी-पडोसी मे। एक बित्ता जमीन के लिए, आम के एक फल के लिए, शीशम की एक डाल के लिए, खून के फव्वारे छूटते। ये युद्ध प्राय आकस्मिक होते। खेत की जुताई हो रही है, पेड के नीचे गपशप हो रही है, रास्ता चलते-चलते भी, लोगोमे गुत्थमगुत्थी हो गई। किन्तु, कभी-कभी जम कर भी लडाइयाँ होती। दोनो पक्ष से लोगोका 'बिटोरा' होता—भाई-बद जुटते, कुटुम-कबीले के लोग आते, कुछ लोग पैसे पर भी बुलाये जाते। ऐसे मौके आने पर, हमारे जवार मे, कही भी कोई जमकर लडाई होती हो, तो बलदेव सिह एक-न-एक पक्ष से जरूर बुलाये जाते और 'यतोधमस्ततोजय' की तरह ही, जिस तरफ बलदेव सिह होते, उसी पक्ष की जय भी निश्चित होती।

एक बार इस तरह का एक धमयुद्ध देखने का मौका मुझे मिला। बिसुनपुर मे दो भाई क्षत्रिय थे। दोनो की दाँत-कटी रोटी थी, किन्तु आखिर दिल टूटा, तो एक दूसरे की जान के दुश्मन बन के

रहे। घर-द्वार खेत-खलिहान, सबका बाँट-बखरा हो चुका था। दोनो एक आँगन मे रहते भी दो दुनिया के जीव थे।

सयोग मे, उस साल, एक आम के पेड के लिए दोनो भाइयो मे तनातनी हो गई। वह लँगडा आम का पेड! —हमने जाकर देखा, फलो के गुच्छो से लदी उसकी डाल-डाल जेसे ज़मीन छूने को ललक रही हो। हरे-हरे पत्ते उन सुफेदी लिये हुए आमो के गुच्छो मे न जाने कहाँ छिप रहे थे? काफी पुराना पेड था। खूब फैल गया था। और साल भी अच्छा फल देता था, किन्तु इस साल तो यह द्रौपदी की चीर बनकर महाभारत मचाने आया था! फिर, यह ललचाने वाला वेश वह क्यो न धारण कर ले?

कहते है, यह पेड बँट चुका था। छोटे भाई की बाँट मे पडा था, जो कई साल से उसके फल का उपभोग कर रहा था। किन्तु बडे भाई के लडके ने हिसाब लगाकर देखा—यह आम तो मेरे हिस्से का है, धोखे से चाचाजी को मिल गया है। पेडो की गिनती, खतियान, सबको वह अपने पक्ष मे पेश करता।

किन्तु यहाँ खतियान से क्या होनेवाला है? "अगर तुम्हारा है, तो मद के बेटे हो, चढके आओ, फल तोड लो, खाओ। नही तो लुगाई के आँचल मे मुँह रखकर सोओ।" सीधा तर्क, सीधी बात! इसके जवाब मे एक दिन तय कर दिया गया—"अगले सोमवार को डका बजा के हम फल तोडेगे।—चुप-चोरी जो काम करे, उसकी ऐसी-तैसी।" दिन तय हुआ, घडी तय हुई। दोनो तरफ से 'बिटोरा' होने लगा।

बलदेव सिंह के पास भी दोनो पक्षो से निमत्रण आने लगे। किन्तु, यहाँ तो कृष्णजी की टेक थी—जो खुद मेरे पास पहले आयगा उसका साथ दूँगा, यह चिट्ठी-पत्री क्या चीज़? बडे भाई का बेटा एक दिन घोडे पर पहुँचा। उससे बातचीत हो ही रही थी कि छोटे भाई भी पहुँचे। किन्तु तबतक बलदेव सिंह वचन दे चुके थे। दूसरे दिन सशिष्य-मडली वह बिसुनपुर जा पहुँचे।

आज ही युद्ध होनेवाला है। लडाइयो से दूर ही रहना चाहिए, क्योकि प्राय निर्दोष भी उसमे फँस जाते, पिट जाते है—बडे-बूढो की इस आज्ञा को अवहेला करके भी, कुतूहल-वश, मै दर्शको की उस भीड मे शामिल हो गया, जो भिन्न-भिन्न दिशाओ से बिसुनपुर जा रहे थे।

बिसुनपुर उस दिन कुरुक्षेत्र बना हुआ था। बीच मे वह आम का पेड निश्चल निद्वन्द्व खडा है। दो ओर दोनो प्रतिद्वदियो की जमात जुडी है। भालो की फलियाँ धूप मे चमचम कर रही है, गँडासे दिन मे भी चाँद-से चमक रहे है, फरसे परशुराम की याद दिलाते है, लाठियाँ उछल रही है—धामिन साँप की तरह। हाँ, तलवार की बहुत ही कमी थी, क्योकि उसपर अँग्रेजी राज की शनिदृष्टि पड चुकी थी। पर, लठैतो का कहना था, जो मार भाले और फरसे की होती है, वह तलवार की कहाँ? मै उनके तर्को पर नही भूला था, मेरी विस्मय-विमुग्ध आँखे तो इन तैयारियो को देख रही थी। आमने-सामने उन लोगो के दल थे, दशको की भीड अगल-बगल मे थी। रह-रह कर जय-ध्वनियाँ होती, ललकारे उठती। जब-तब आल्हा के कुछ कडखे भी सुनाई पडते।

बोलो, महावीर स्वामी की जय—कहकर दोनो पक्ष के योद्धा आम की ओर बढे। दशको के कलेजे धकधक करने लगे। अरे, कुछ देर मे ही इनमे से कुछ मर चुके होगे, कुछ घायल पडे होगे! उफ! —मेरे मुँह से अच्छी तरह निकल भी नही पाई कि देखा, बडे भाई के पक्ष मे सबसे आगे बलदेव सिह है। सबसे आगे बलदेव सिंह, उनके दोनो बाजू मेरे ही गाँव के, उनके दो प्रधान शिष्य। बलदेव सिंह के सिर पर केसरिया रग का मुरेठा है। पैर मे वही बूट। वही लम्बा-चौडा कुर्त्ता देह मे, किन्तु, उसके घेरे को कमर के निकट एक पट्टी से कस रखा है जिसमे फुर्ती से उछलने-कूदने मे दिक्कत न हो। उनकी धोती तो प्राय ही हाफ-पैट का काम करती! चेहरा कैसा लाल-भभूका बन रहा था!

वह आगे बढे, आम के पेड के निकट पहुँचे। दोनो शिष्यो को इशारा किया, वे झट से पेड पर चढ गये और लगे आम की डाल को झकझोरकर निर्दयतापूवक फलो को गिराने। कोई माँ का लाल है, तो आवे—बलदेव सिह गरज उठे, जिनकी ओर विपक्षी दल भौंचक हो देख रहा था, जैसे वह भी दशको का ही दल हो। किन्तु उनकी इस चुनौती से मानो दुश्मन दल को आत्म-ज्ञान हो आया। फिर क्या था, दोनो दलो में गुत्थमगुत्थी शुरू हो चली। लाठियो की खटाखट, गँडासे की चुभ-चुभ और बर्छो की सनसनाहट से वायुमडल व्याप्त था। जयध्वनियो के साथ हाहाकार भी! किसी के सिर पर लाठी लगी—किस तरह खोपडी फूटकर दो टूक हो गई! वह गिर पडा

और खून की धारा बह रही है! किसी के पेट मे भाला चुभा—भाले की फली के साथ ही उसकी अँतडी बाहर आ गई है, अँतडी को दोनो हाथो से पकडे वह औधा पडा है! जो हाथ एक मिनट पहले लाठी भाँज रहा था, गँडासे के एक ही वार ने उसे शरीर से अलग कर दिया है—वह रक्त-सिक्त जमीन पर अब भी रह-रहकर उछल जाता है! चारो ओर खून, चीख! मेरी तो आँखे बद हो गइ।

जब आँखे खुली, तो सारा किस्सा खत्म है। बडे भाई का कब्जा उस पेड पर हो चुका है। उस कब्जे मे बलदेव सिंह का बडा हाथ था। मै अपने इस 'हीरो' को देखना चाहता था, किन्तु मालूम हुआ, पुलिस सुपरडट साहब अब, जब तमाशा खत्म हो चुका है, तशरीफ लाये है और लोगोने बलदेव सिंह को वहाँ से हटा दिया है। "बलदेवसिह! विजय तुम्हारी, अब तो रुपयो का खेल है, तुम हटो, अब काम मेरा है"—बडे भाई के बडे शाहबजादे ने कहा और चलते समय बलदेव सिंह के गले मे एक मुहरमाला डाल दी।

× × ×

और, उसी बलदेव सिह की यह लाश हमारे सामने पडी है!

सिर चूर-चूर—जैसे, भुर्त्ता बना दिया गया हो! खून और धूल से शराबोर! जिस ललाट से तेज बरसता, उसीपर मक्खियाँ भिन्ना रही! एक आँख धँस गई, दूसरी बाहर निकल आई! होठ को छेदकर दाँत बाहर निकल रहे है!! नही, नही, यह हमारा बलदेव सिंह नही हो सकता! बलदेव सिंह की ऐसी गत?

एक गँडासा गहरा, कधे पर लगा है, वह बाँह लटक-सी गई है! दूसरी बाँह का पूरा पजा गायब! छाती वैसी ही तनी है—पहले से कुछ ज्यादा ही फूली हुई! किन्तु पेट की जगह सारी आँत निकल आई है! आँत का यह ढेर—कैसा भयानक, कैसा वीभत्स! नही, यह हमारा बलदेव सिंह हो नही सकता!

पैरो को जैसे किसीने, मकई के डठल-सा, पीट रखा है—आडे-तिरछे बन रहे! कही अजीब फूला हुआ, कही से खून बह रहा! बह रहा कहाँ?—बहाव तो कब न बन्द हो गया, अब तो काले बने खून के धब्बे मात्र, जिनपर, हाँ, जिनपर मक्खिया भिन्ना रही! नही, यह हमारा बलदेव सिंह हो नही सकता!

बलदेव सिह की ऐसी गत?

जिस शरीर को देख-देखकर आँखे नही अघाती थी—माँये जिसे देखकर कहती—"मेरा बेटा ऐसा ही शरीर-धन पावे।" युवतियाँ मन ही मन गुनती—"धन्य है वह नारी, जिसे ऐसा पति मिला, अगले जन्म मे, हे भगवान, मुझे बलदेव सिह की ही दासी बनाना।" बूढे देखते ही कहते—"बेटा शतजीव!" नौजवान जिसपर पागल हो बिना मोल के गुलाम बने पीछे लगे फिरते—वही शरीर यह आज सामने पडा है! खून से लथपथ, धूल से भरा, क्षत-विक्षत, कुरूप-कुडौल बना—और, ये कम्बख्त मक्खियाँ जिनपर भिन्न-भिन्न कर रही!!!

किसने गत की इस शेरमद की ऐसी? किसकी माँ ने दूसरा शेर पैदा किया?

काश, किसी शेर ने यह हालत की होती! दो शेर लडते है, एक गिरता है। ऐसा ही होता है, इसके लिए अफसोस की क्या बात? बल्देव सिह तो ऐसी ही मृत्यु चाहते थे। उन्होने मौत की कब परवा की? मौत की आँखो मे आँखे डालकर मुस्कुराना—यही तो बलदेव सिह थे! क्षत्रिय की तरह युद्ध-क्षेत्र मे काम आऊँ, खेत रहूँ—यही तो उनकी कामना थी। यह कामना पूरी हुई, वह वीरगति पाकर, सूर्यमडल को भेदकर, अमरपुरी गये, इसमे तो कोई शक नही। किन्तु, जिन हाथो ने यह काम किया, क्या वे वीर के हाथ थे? शेर के पजे थे? नही, नही, कुछ सियारो ने—बुजदिलो और कायरो ने—छुपकर, घात लगाकर, बडे बुरे मौके पर, बडे बुरे ढग मे, यह कुकर्म किया। उसकी कल्पना भी खून को खौला देती है, उत्तेजित कर देती है। उफ रे!

एक दिन, जवार के एक गाँव की एक विधवा मेरे गाँव मे बलदेव सिह का नाम पूछती-पूछती आई! उस बेचारी के साथ एक छोटा बच्चा था, उसीका बच्चा। उस विधवा के अबलापन से और उस क्षत्रियकुमार के बचपन मे फायदा उठाकर उसके पट्टीदारो ने उसका धन हडप लिया था। विधवा के कानो मे बलदेव सिह की यशोगाथा पडी थी। वह तो अब हमारे जवार के घर-घर मे, जबान-जबान पर, व्याप्त थे। विधवा पहुँची, बलदेव सिह के दरबार मे अर्ज लगाने। जब पट्टीदारो को मालूम हुआ, वह बलदेव सिह के पास जा रही है, ताने देते हुए कहा था—जा, नया शौहर बुला ला! नया शौहर? क्षत्राणी को नया शौहर! बाबू, मेरी लाज

रखो — सारी कहानी कहती हुई, वह बलदेव सिंह के पैरो पर गिर पडी। बलदेव ने बच्चे को कधे पर बिठाया, और चल पडे उस गॉव को!

जब गॉव से जा रहे थे, उन्हे मने देखा था। प्रणाम भाईजी, —मैने कहा। चेहरे पर गुस्से की छाप स्पष्ट थी, किन्तु स्वाभाविक हँसी हँसते हुए, आशीर्वाद दिया और कहा — एक अबला की रक्षा मे जा रहा हूँ बबुआ, दो-चार दिनो मे लौटता हूँ।

बलदेव सिह नही लौटे, लौटी है उनकी यह लाश!

वहाँ जाते ही उन्होने पट्टीदारो को चुनौती दे दी। दूसरे दिन विधवा के छीने हुए एक खेत पर हल भी चढा दिये। कोई नही बोला। कौन बोलता? एक के बाद दूसरे खेत विधवा के कब्जे मे आने लगे, बहुत दिनो की गई अमराई पर अब उसका कब्जा था। उस बगीचे की एक लीची की डाल मे झूला डालकर उस क्षत्रियकुमार को बलदेव सिह झुलाते रहते। जो लोग विधवा के पट्टीदारो के डर से कल बोलते नही थे, अब वे ही बलदेव सिह को शाबासी देते, उस छोटे-से बच्चे से अपना पुराना नाता जोडते, क्योकि अब वह विधवा अबला नही थी। पिता खोकर उस बच्चे ने एक धर्म का पिता पा लिया था!

बलदेवसिह के साथ उनके कुछ शिष्य भी गये थे। जब मामला पूरी तरह शान्त हो चला, उस गॉव के भी काफी लोग उनके पक्ष मे आ गये, तब उन्होने एक-एक करके अपने शिष्यो को वहा से रवाना कर दिया। बेचारी विधवा पर ज्यादा खर्च का बोझ क्यो पडने दे? अन्तत, एक दिन तय किया, अब कल मै भी जाऊँगा।

और, वह कल वह नही देख सके!

उनकी आदत थी, बहुत सबेरे, बिल्कुल मुँहअँधेरे, शौच को जाते। गाव से काफी दूर निकल जाते। जबतक तनाव था, अपने साथ किसी शिष्य को भी ले लेते, हथियार तो हमेशा पास मे रखते ही — कम से कम हाथ मे लाठी और कमर मे गॅडासे की फली, जिसे बात की बात मे लाठी मे लगा कर प्रलयकर बन जा सकते। किन्तु, उस दिन, निश्चिन्त हो, वह सिर्फ लोटा ही लेकर निकल पडे। सारा गॉव भोर की सुख-निदिया ले रहा था। किन्तु, उनके लिए मौत का फदा डाला जा चुका था।

एक नीची खाई मे वह शौच के लिए बैठे ही थे कि उनके

सिर पर लाठी का एक वज्र-प्रहार हुआ। एक क्षण के लिए वह जैसे बेहोश हो गये, फिर, तुरत खडे हुए और सामने पडे लोटे को हाथ मे उठाकर उसी से ढाल का काम लेने लगे। दूसरी लाठी—लोटे पर टन-सी आवाज! तीसरी लाठी—'फूल' का वह लोटा चूर-चूर हो रहा। फिर क्या था, लाठी, गँडासे, बर्छे—चारो ओर से बरसने लगे। बीच से उछलकर एक बार उस चक्रव्यूह से, अभिमन्यु की तरह, निकलने की कोशिश की, किन्तु फिर घिर गये, घेर लिये गये, और आह! उस सन्नाटे के आलम मे, जब दुनिया भोर की सुख-निदिया ले रही थी, उन कायरो, सियारो ने इस शेरमद की वह दुगति की, जो हम यह, सामने, देख रहे है!

एक भोर थी, जब मने बलदेव सिह का वह रूप देखा था—आभामय, जीवनमय, यौवनमय! और, आज भी एक भोर है, जब हम उन्हे इस रूप मे देख रहे हं!

उफ, आह!

सरजू भैया

सरजू मैया नही, सरजू भैया। यह हमारे गाँवो की विशेषता है कि कभी-कभी मद गगा, यमुना या सरजू हो जाते है। इम बारे मे औरते ही सौभाग्यशालिनी है, प्राय उनके नामो मे ऐसे अनथ नही होते !

हाँ, तो सरजू भैया ! मेरे घर से सटा हुआ जो एक घर है—एक तरफ दो खपडैल मकान, एक तरफ मिट्टी की दीवार पर फूस के छप्पर, एक तरफ टट्टी के दो झोपडे, एक तरफ मकान नही, सिफ टट्टी खडाकर छोटा-सा आँगन निकाला हुआ—उसी घर के सौभाग्य शाली मालिक है हमारे सरजू भैया। सरजू भैया को कोई छोटा भाई नही रहा, और मैने प्रथम सतान के रूप मे ही अपनी माँ की गोद भरी, अत हम दोनो ने परस्पर एक नाता जोड लिया है। वह मेरे बडे भाई है, मै उनका छोटा भाई।

गाँव के सबसे लम्बे और दुबले आदमियो मे सरजू भैया की गिनती हो सकती है। रग साँवला, बगुले-सी बडी-बडी टाँगे, चिपजी

की तरह बडी-बडी बॉहे! कमर मे धोती पहने, कधे पर अँगोछी डाले, जब वह खडे होते है, आप उनकी पसलियो की हड्डियॉ गिन लीजिए। नाक खडी, लम्बी। भवे सघन। बडी-बडी ऑखे कोटरो मे धँसी। गाल पिचके। अग-अग की शिराएँ उभडी—कभी-कभी मालूम होता, मानो ये नसे नही, उनके शरीर को किसीने पतली डोरो से जकड रखा है।

ऊपर की तस्वीर निस्सदेह किसी भुखमरे, मनहूस आदमी की मालूम होती है। किन्तु, क्या बात ऐसी है? सरजू भैया मेरे गॉव के चद जिदादिल लोगोमे से एक ह। बडे मिलनसार, मजाकिया और हँसोड। वह दिल खोलकर जब हँसते ह—शरीर-भर मे जो सबसे छोटी चीजे उन्हे मिली है—वे उनके पक्तिबद्ध छोटे-छोटे दॉत, तब बेतहासा चमक पडते है, अग-अग हिलने-डुलने लगते हैं—जैसे हर अग हँस रहा हो। और, सरजू भैया के पास इतनी सपत्ति है कि वह खुद या अपने परिवार के ही पेट नही भर सकते, आगत-अतिथि की सेवा-पूजा भी मजे मे कर सकते है।

तो फिर यह हड्डियो का ढाचा क्यो? मै जवाब मे एक पुरानी कहावत पेश करूँगा—काजीजी दुबले क्यो?—शहर के अदेशे से!

हॉ, सरजू भैया की यह जो हालत है, वह अपने कारण नही, दूसरो के चलते। पराये उपकार के चलते उन्होने न सिफ अपना शरीर सुखा लिया है, बल्कि अपनी सपत्ति की भी कुछ कम हानि नही की है।

उनके पिता, जो गुमाश्ताजी कहलाते थे, मेरे गॉव के अच्छे किसानो मे से थे। चौपार, साफ-सुदर उनका मकान और अच्छा-खासा बैठक-खाना था, जहॉ आज सरजू भैया की यह राममँडैया है। खेतीबारी तो थी ही, रुपये और गल्ले का अच्छा लेन-देन था। परि-वार भी बडा और खर्चीला नही था। लेकिन, उनके मरते ही सरजू भैया ने लेन-देन चौपट किया, बाढ ने खेती बर्बाद की और भूकम्प ने घर का सत्यानाश किया। उनका लेन-देन इतना अच्छा था कि वह शायद खेती को भी सम्हाल देता, घर भी खडा कर सकता। कितु, सरजू भैया और लेन-देन?

लेन-देन, जिसे नग्न शब्दो मे सूदखोरी कहिए, चाहता है, आदमी आदमीपन को खो दे, वह जोक, खटमल, नही, चीलर बन

जाय। काली जोक और लाल खटमल का स्वतत्र अस्तित्व है। हम उनका खून चूसना महसूस करते है, हम उनमे अपना खून प्रत्यक्ष पाते और देखते है। लेकिन, चीलर? गदे कपडे मे, उन्ही-सा काला कुचैला रग लिये, वह चुपचाप पडा रहता है और हमारे खून को यो धीरे-धीरे चूसता है और तुरत उसे अपने रग मे बदल देता है कि उसका चूसना हम जल्द अनुभव नही कर पाते और अनुभव करते भी है, तो जरा-सी सुगबुगी या ज्यादा-से-ज्यादा चुनचुनी-मात्र। और, अनुभव करके भी उसे पकड पाने के लिए तो कोई खुदबीन ही चाहिए!

सरजू भैया चीलर नही बन सकते थे। उनके इस लम्बे शरीर मे जो हृदय मिला है, वह शरीर के ही परिमाण से। जो भी दुखिया आया, अपनी विपदा बताई, उसे देवता-सा दे दिया और वसूलने के समय जब वह आँखो मे आँसू लाकर गिडगिडाया, तो देवता ही की तरह पसीज गये। सूद कौन कहे, कुछ ही दिनो मे मूलधन भी शून्य मे परिणत हो गया! उलटे अब वह खुद हाथ-हथफेर मे व्यस्त रहते है।

बाढ और भूकम्प ने उनके खेत और घर को बर्बाद किया जरूर, लेकिन, सरजू भैया, मेरा यकीन है, आज की फटेहाली से बहुत-कुछ बचे रहते, यदि लेन-देन के बाद भी वह इन दोनो की तरफ ही पूरा ध्यान दिये होते। यह नही कि वह जी चुरानेवाले या आलसी और बोदा गृहस्थ है। नही, ठीक इसके खिलाफ—चतुर, फुर्तीला और काम-काजू आदमी है। लेकिन करे तो क्या? उन्हे दूसरे के काम से ही कहाँ फुर्सत मिलती है!

गगोभाई के घर मे बच्चा बीमार है, बैद को बुलाने कौन जायगा, सरजू भैया! हिरदे को बाजार से कई सौदा-सुलफ लाना है, वह किसे भेजे, सरजू भैया को! खबर आई है, रामकुमार के मामाजी अपने गाँव मे सख्त बीमार है, उनकी खोज-खबर कौन लाये, सरजू भैया से बढकर कौन दूसरा धावन होगा? परमेसर को एक रजिस्टरी करनी है, शिनाख्त कौन करेगा, सरजू भैया! किसी-के घर मे शादी-ब्याह, यज्ञ-जाप हो, और सरजू भैया अस्तव्यस्त। किसीकी मौत हो जाने पर, यदि वह अधेरी रात मे हो, तो निश्चय ही उसका कफन खरीदने का जिम्मा सरजू भैया पर रहेगा! यो गाँवभर के लोगोका बोझ अपने सिर पर लेकर सरजू भैया ने न अपने खेत और घर को मटियामेट किया है, बल्कि इसी उम्र मे अपनी कमर भी झुका ली है। दिन हो या रात, चिलचिलाती दुपहरिया हो

या अधेरी अधरतिया, सरजू भैया के सेवा-सदन का दरवाज़ा हमेशा खुला रहता है। विक्टर ह्यूगो ने अपनी अमर कृति 'ला मिजरेब्ल' मे कहा है—डाक्टर का दरवाज़ा कभी बद नही रहना चाहिए और पादरी का फाटक हमेशा खुला होना चाहिए—सरजू भैया को निस्सदेह इन दोनो का रुतबा अकेले हासिल है!

मेरे क्षुद्र विचार से सरजू भैया का व्यक्तित्व अनुकरणीय, अनुसरणीय ही नही, वदनीय, पूजनीय है, जब-जब उन्हे देखता हूँ, मेरा 'ज्ञानी' मस्तक आप-से-आप उनके चरणो मे झुक जाता है। लेकिन, मेरे मन मे सबसे बडी चोट लगती है तब, जब देखता हूँ, इस नर-रत्न की कद्र कहाँ तक होगी, बहुत-से लोग इन्हे सुधुआ समझकर ठगने की चेष्टा करते है। यदि यही बात होती, तो भी बर्दाश्त की जा सकती, लेकिन यही नही, इन्हे जब-तब झझटो में डालने की कोशिशे होती है और यदि अकस्मात् झझट मे पड जाते है, तो उससे निकालने की क्या बात, इनके 'तडपने का तमाशा' देखने में लोग मजा अनुभव करते हैं।

अभी थोडे दिनो की बात है। एक दिन सरजू भैया मेरे सामने आकर खडे हुए। मैं कुछ पढ रहा था। सिर नीचा किये ही कहा, बैठिये भैया। किन्तु भैया बैठेंगे क्या, उनकी तो घिग्घी बँधी है और ऑखो से ऑसू जा रहे है। दुबारा कहने पर भी जब नही बैठे, तो उनकी ओर नज़र उठाई। उनका चेहरा देख दग रह गया। मै सन्न। क्या बात है यह? बहुत आश्वासन और 'आग्रह पर उनकी जीभ हिली। मालूम हुआ, उनके घर मे एक छोटी-सी घटना हो गई है, जैसी घटनाएँ अपने ही गॉव मे मैने कई बार होते देखी ह। लेकिन किसीने उस ओर ध्यान नही दिया, यदि ज़रूरत हुई, तो उन्हे सुलझा दिया और यदि किसीने उसे बढाना चाहा, तो लोगोने उसको डाँट दिया। क्यो? क्योकि वे घटनाएँ ऐसे घरो मे हुई थी, जिनके पास न सिर्फ लक्ष्मी, बल्कि दुर्गा भी ह—पैसे भी और लाठी भी। लेकिन, सरजू भैया ने तो लोगोके लिए ही अपनी यह हालत कर रखी है। न वह किसीपर धन का धौस जमा सकते ह न डडे फटकार सकते है! फिर, क्यो न उन्हे तडपाया जाय, रुलाया जाय? मैने उन्हे आश्वासन दिया, उन्हे धैय हुआ, वह चले गये, लेकिन रात-भर लोगोकी इस कृतघ्नता ने मुझे चैन से सोने न दिया!

माटी की मूरतें

सुधुआपन से ठगे जाने की एक कहानी। बहुत दिन हुए, म किसी ज़रूरत मे था और कुछ रुपये के लिए परीशान था। सरजू भैया के पास कुछ रुपये थे। मेरी बेचैनी वह कैसे देखते? वह रुपये ले आये। मैंने खच कर दिया, लेकिन, आज तक दे नही सका। रुपये तो आये, लेकिन एक आया, दो का खर्च लेकर। सरजू भैया माँगने का हाल क्या जाने? मै भी समझता रहा, उनके रुपये कहाँ जाते है, जरूरत होगी, माँगेगे, दे दूँगा। लेकिन, अभी उस दिन जो बात उन्होने सुनाई, मैं हक्काबक्का रह गया।

इस बीच मे उन्हे रुपये की जरूरत हुई, लेकिन सकोचवश मुझसे नही माँगा। एक सूदखोर महाजन के पास गये, जो पहले उन्ही-से कर्ज खाता था, लेकिन, तरह-तरह के कारनामो से अब धन्नासेठ बन चुका है। उसने झट उन्हे रुपये दे दिये, लेकिन, जब चलने लगे, कहा—आपके पास रुपये जायँगे कहाँ—लेकिन कोई सबूत तो चाहिए ही। क्या सबूत? मै तैयार हूँ—सरजू भैया रुपये बाँध चुके थे, न उनसे खोलकर लौटाया जा सकता था और न वह उसकी माँग को नामजूर कर सकते थे। नही, कुछ नही, कागज पर सिर्फ निशान बना दीजिए, आपसे बाजाब्ता हैंडनोट क्या कराया जाय? और, सरजू भैया ने बमभोला की तरह कजरौटे मे अगूठा बोरकर कागज पर चिपका दिया। मानो, किसी आधुनिक अटोनियो ने किसी कलजुगी शाइलौक के हाथ मे अपने को गिरवी कर दिया।

अब वह कहता है—जल्द रुपये दे दो, नही तो मै नालिश कर दूँगा और नालिश कितने की करेगा, कौन ठिकाना—सरजू भैया बेचारगी मे बोल रहे थे और मै उनका मुँह आश्चर्य से देख रहा था। आपने ऐसी गलती क्यो कर दी?—लेकिन, इसके अलावा इसका जवाब वह क्या दे सकते थे कि क्या करूँ, रुपये बाँध चुका था!

सरजू भैया के पाँच सन्ताने हुई, लेकिन बेटियाँ-ही-बेटिया। उनकी धमपत्नी, जो लम्बाई मे ठीक उनके विपरीत, बहुत ही बौनी होने पर भी बहुत गुणो मे उनकी ही तरह थी, हाल ही मे बेटा पाने का अरमान लिये मरी हैं। कह नही सकता, इस अरमान ने सरजू भैया को ज्यादा चिन्तित किया है या नही। वे बेटियो पर बहुत ही स्नेह रखते हैं और मेरे घर मे जो लडके—मेरे बेटे-भतीजे—ह, उनका बचपन तो ज्यादातर उन्हीके कधो पर कटा है। लेकिन, बेटिया तो अपनी-अपनी ससुराल जा बसेगी। क्या सरजू भैया का यह पुश्तानी

घर खँडहर बनेगा ? क्या सरजू भैया की कोई निशानी हमारे पडोस को गुलजार न कर सकेगी ? यह कल्पना करते ही हमारे परिवार-भर मे अजीब उदासी छा जाती है। उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद मैने अपनी मौसी को कहते सुना—सरजू बबुआ की उमिर ही कितनी है ? यही, मेरे बबुआ से चार बरस बडे ह , फिर वह शादी क्यो न करे, क्या वश डुबा देगे ? और, उस दिन देखा, मेरी ढीठ रानी सरजू भैया से झगड रही है—नही, आपको शादी करनी ही पडेगी।

मै शादी करूँ, जिसमे शर्माजी को (मुझे) नई भौजाई मे दिनरात चुहले करने का मज़ा मिले, क्यो न ?

मुझे देखते ही सरजू भया बोले और ठठाकर हँस पडे। रानी थोडी सकुची, फिर हँस पडी। म दोनोको देखता, चुपचाप मुस्कुराता रहा !

मंगर

हट्टा-कट्टा शरीर। कमर मे भगवा। कधे पर हल। हाथ मे पैना। आगे-आगे बैल का जोडा। अपनी आवाज़ के हहास से ही बैलो को भगाता, मेरे खेत की ओर सुबह्-सुबह् जाता—जबसे मुझे होश है, मैने मगर को इसी रूप मे देखा है, मुझे ऐसा लगता है।

हॉ, मुझे याद आता है, हल के बदले कभी-कभी मुझे भी उसके कधे पर चढने का सौभाग्य मिल चुका है। लेकिन, ऐमे मौके बहुत कम आये है। क्योकि, न जाने क्यो, मगर को बच्चो से वह स्वाभाविक स्नेह नही, जो उसके-ऐमे लोगोमे प्राय देखा जाता है। उसे देखकर बच्चे भागते ही रहे है और आज जब मगर अशक्य, जजर हो चुका है, बच्चे, मानो, इसका बदला चुकाने को, अपनी छोटी छडियो से उसे छेउकर भागते है और जब वह झल्लाता, उन्हे मारने के लिए अपनी बुढापे की लकुटिया खोजता या खीझकर गालियाँ बकने लगता है, तो वे खिलखिला पडते और उसका मुह चिढाने लगते है।

बच्चो से उसकी वितृष्णा क्यो हुई ? शायद इसलिए तो नही

कि उसे जो एक ही बच्चा नसीब हुआ, वह कमाऊ पूत बनने के पहले ही, उसे दगा देकर चल बसा और जो उसकी एक बच्ची भी, सो, लूली , और जिसकी शादी मे उसने इतनी दरियादिली दिखलाई, लेकिन, एक बार मुसीबत काटने उसके दरवाज़े वह पहुँचा, तो दामाद ने ऐसी बेरुखी दिखलाई कि मगर का स्वाभिमान उसे वहाँसे ज़बरदस्ती भगा लाया ।

मगर का स्वाभिमान—गरीबो मे भी स्वाभिमान ? लेकिन, मगर की खूबी यह भी रही है। मगर ने किसीकी बात कभी बर्दाश्त नही की, और शायद अपने से बड़ा किसीको, मन से, माना भी नही। मगर मेरे बाबा का अदब करता था, शायद, उनके बुढापे के कारण। सुना है, मेरे बाबूजी को वह बहुत चाहता था—शायद, उनके नेक स्वभाव के कारण। किन्तु, मेरे चाचाओ को तो उसने हमेशा अपनी बराबरी का ही समझा और मुझे तो वह कल तक 'तू' ही कहकर पुकारता रहा है। किसकी मजाल जो मगर को बदजुबान कहे—हलवाहो को मिलनेवाली नितदिन की गालियाँ तो दूर की बात !

ऐसा क्यो ?—उसका खास कारण, मगर का यह हट्टा-कट्टा शरीर और उससे भी अधिक उसका सख्त कमाऊपन—जिसमे ईमानदारी ने चार चाँद लगा दिये थे। जितनी देर मे लोगोका हल दस कट्ठा खेत जोतता, मगर पन्द्रह कट्ठा जोत लेता और वह भी ऐसा महीन जोतता कि पहली चास मे ही सिराऊ मिलना मुश्किल। मगर को यह बताने की जरूरत नही कि कल किस खेत मे हल जायगा—वह शाम को ही सारे खेतो की आर-आर घूम आता और जिसकी ताक होती, वहाँ हल लिये सुबह-सुबह पहुँच जाता। जुताई के वक्त किसीकी देखरेख की भी ज़रूरत नही। आम हलवाहो के पीछे किसान जो लट्ठ लेकर पडे रहते है, और तो भी वे जी चुराते, ढिलाई करते आज का काम कल के लिए छोडते, यह आदत मगर मे थी ही नही । यो ही रखवाली चाहे हरी फसल की हो, या सूखी पसही की, खलिहान मे चाहे बोझो की सील हो या अनाज की रास—मगर पर सब छोडकर निश्चिन्त सोया जा सकता था।

दूसरा ऐसा 'जन' मिलेगा कहाँ ? फिर क्यो न उसकी कद्र की जाय ? मेरे बाबा कहते थे, मगर हलवाहा नही है, सवाँग है। वह अपने सवाँग की तरह ही कभी-कभी रूठ जाता था और

जब-तब लोगोको झिडक भी देता था। उसकी झिडक सबके सर-आँखो पर , उसका रूठना और उसकी मनौती होती !

कभी-कभी बाते कुछ बढ भी जाती। एक दिन काफी कहा-सुनी हो गई। दूसरी सुबह मगर हल लेने नही आया—इधर से बुलाहट भी नही गई। रुपये है, तब हलवाहे न होगे—कोई नया हलवाहा लेकर जोता गया। उधर कोई दूसरा किसान आकर मगर से बोला—मगरू, देख, उन्होने दूसरा हलवाहा कर लिया है। उन्हे रुपये है, हजार हलवाहे मिलेगे , तो तेरे भी शरीर है, हजार गृहस्थ मिलेगे। चल, हमारा हल जोत—तू जो कहेगा, मजदूरी दूँगा। लेकिन मेरा सिर जो दद कर रहा है—मगर ने इसका जवाब दिया और उसका यह सर-दद तब तक बना रहा, जब तक झख मारकर मेरे चाचाजी फिर उसे बुलाने नही गये। क्योकि चार दिनो मे ही मालूम हो गया, मगर क्या है ! बैलो के कधे छिल गये, उनके पैर मे फार लग गये। खेत मे हल तो चला, लेकिन न ढेला हुआ, न मिट्टी मिली। फिर खेत की आर पर बैठे भर-दिन हलवाहे को टुकारी देते रहिए, तब कही दस कट्ठा जमीन जुते ! मगर के बिना काम चल नही सकता !

चाचाजी उसके दरवाजे पर खडे है। मगर भीतर घर मे बैठा है। मगर की अर्द्धांगिनी भकोलिया ने कहा—मालिक खडे है, जाओ, मान जाओ।—कह दे, मेरा सिर दर्द कर रहा है, मगर ने चाचाजी को सुनाकर कहा। मालिक जरा इनके सिर पर मालकिन से तेल दिला दीजियेगा — भकोलिया हँसती हुई बोली। तू मुझसे दिल्लगी करती है—मगर के स्वर मे नाराजी थी। मगर, चलो, आपस मे कभी कुछ हो ही जाता है, माफ करो—चाचाजी के स्वर मे आरजू-मिन्नत थी। जाइए, उसीसे जुतवाइए, जिससे चार दिन जुतवाया है—मुझे ले जाकर क्या होगा—आधी रोटी की बचत भी तो होती होगी। यो ही नोक-झोक, मान-मनौवल। फिर, मगर अपना हलवाही का पैना हाथ मे लिये आगे-आगे, और चाचाजी पीछे-पीछे!

यह आधी रोटी की बचत क्या ?—इसे समझा आपने ? इसे मगर का खास इजारा समझिए। जहाँ गाँव-भर में हलवाहे को एक रोटी मिलती, मगर के लिए डेढ रोटी जाती। वह भी रोटी सुअन्न की हो और अच्छी पकी हो। उसपर कोई तरकारी भी जरूर हो—

क्योकि मगर किसीका कच्चा नमक नही खाता! मगर की सभी शर्ते पूरी होती!

लेकिन यह डेढ रोटी वह खुद खाता, ऐसा आप नही समझे। क्या अपनी अर्द्धांगिनी के लिए लाता?—नही! आधी को दो टुकडे कर दोनो बैलो को खिला देता। यो, यह आधी रोटी फिर मेरे ही घर मे लौट आती, लेकिन, इसमे कोई काट-कपच हो नही सकती थी। महादेव मुह ताके, और मै खाऊँ—यह कैसे होगा? मगर के लिए ये बैल, बैल नही, साक्षात् महादेव थे!

एकाध बार बात बहुत बढ गई, तो मगर मेरा गॉव छोडकर चला गया। लेकिन, गॉव मे रहते उसने दूसरे का परिहथ नही पकडा। दूसरे गाव मे भी वह जम नही सका। तब तीसरा गॉव देखा, और, अत मे मारा-मारा फिर मेरे गॉव लौटा। शायद, मेरे घर-ऐसा कद्रदॉ उसे कही नही मिला!

मगर का स्वभाव रूखा और बेलौस रहा है, किसीसे लल्लो-चप्पो नही, लाई-लपटाई नही। दो-टूक बाते, चौ-टूक व्यवहार। तो भी न जाने क्यो, मगर मुझे शुरू से ही स्नेह की नजर से देखता रहा है। शायद इसीलिए कि मेरे बाबूजी उसे बहुत मानते थे। अब भी कहता है—मालिक थे हमारे मँझले बाबू, वह मरे, मेरी तकदीर फूटी। और, शायद इसलिए भी कि मै बचपन से ही टूअर हूँ। मॉ मर गई, पिताजी चल बसे। तभी तो उसने अपना पवित्र कधा मुझे दिया और जब कुछ बडा हुआ, मै ननिहाल जाने-आने और रहने लगा, तो याद आता है, मगर ही मुझे वहॉ पहुँचाता। मै एक छोटी घोडी पर सवार, मगर सिर पर सौगात की चीजे और मेरी किताबे लिये घोडी की लगाम पकडे आगे-आगे। जहॉ नीच-ऊँच जमीन होती, कही मै घोडी से गिर न जाऊँ, बगल मे आकर एक हाथ से मुझे पकड भी लेता। उसके बलिष्ठ हाथो के उस कोमल स्पर्श का अनुभव आज भी कर रहा हूँ!

ज्यो-ज्यो बडा होता गया, घर से मेरा सबध टूटता गया। बकौल मगर, मै तो अपने ही घर का मेहमान बन गया। लेकिन, जब-जब दो-चार दिनो के लिए घर जाता, मगर को उसी रूप और उसी पेशे मे देखा किया।

कपडो से मगर को वहशत रही है। हमेशा कमर मे भगवा ही लपेटे रहता। उसे धोतियॉ मिली है। गोवर्धन-पूजा के दिन, हर साल,

एक नई धोती लिये बिना वह बैल के सींगो मे लटकन बाँधता क्या ? यो भी बाबा और चाचा साल मे जब-तब पुरानी धोतियाँ दिया करते। घर मे शादी-व्याह होने पर उसे लाल धोतियाँ भी मिली है। मेरी शादी मे मगर के लिए नया कुर्त्ता भी बना था। लेकिन, धोतियाँ हमेशा उसके सिर का ही सिगार रही, जिन्हे वह मुरेठे की तरह लपेटे रहता और कुर्त्ता, जब मेरी किसी कुटमैती मे वह सदेश लेकर जाता, तभी उसकी देह ढँकता। यो, साधारणत वह हमेशा नग-धडग रहता। और, मै कहूँ, मुझे उसका शरीर उस रूप मे, बहुत ही अच्छा लगता। आज एक कलाकार की दृष्टि से कहता हूँ, मगर को खूबसूरत शरीर मिला था।

काला-कलूटा—फिर भी खूबसूरत ? सौदर्य को रगसाजी और नक्कासी का मजमूआ समझनेवालो की रुचि मै समझ नही पाता, यह कहने की गुस्ताखी के लिए आज भी मै माफी माँगने को तैयार नही। मगर का वह काला-कलूटा शरीर, एक सपूण सुविकसित मानव-पुतले का उत्कृष्ट नमूना। लगातार की मेहनत ने उसकी मास-पेशियो को स्वाभाविक ढग पर उभाड रखा था। पहलवानो की तरह उनमे अस्वाभाविक उभाड नही आई थी। जाँघे, छाती, भुजाएँ, सबमे जहाँ जितनी जैसी गढन और उभाड चाहिए, बस उतनी ही। न कही मास का लोदा, न कही सूखी काठ। एक सुडौल शरीर पर स्वाभाविक ढग से रखा एक साधारण सिर। मगर के शरीर का खयाल आते ही मुझे प्राकृतिक व्यायाम के हिमायती मिस्टर मूलर की आकृति का स्मरण हो आता है। सैण्डो के शैदाई उससे कुछ निराश हो तो आश्चय नही।

लेकिन, आज न वह देवी रही; न वह कडाह रहा। मगर वह नही रहा, जो कभी था। गरीबी को वह अपने अक्खडपन से हमेशा धता बताये रहा। लेकिन उम्र के प्रहारो से वह अपने को बचा नही सका। उसकी एक-एक चोट उसे धीरे-धीरे जजर बनाती रही और आज उसपर यह कहावत लागू है—"सूखी हाड ठाठ भई भारी—अब का लदबऽ, हे व्यापारी !"

उसके शरीर के मास और माश-पेशियाँ ही नही गल गई है, उसकी हड्डियाँ तक सूख गई है। आज का उसका यह शरीर उस पुराने शरीर का व्यग्यचित्र-मात्र रह गया है। बुढापे के प्रहारो के लिए जो ढाल का काम करती, उस चीज का सग्रह मगर ने कभी किया ही नही। "आज खाय औ कल को झक्खे, ताको गोरख सग न रक्खे"—

का उपासक यह मगर सग्रह का तो दुश्मन रहा। कोई सतान भी नही रही, जो बुढापे मे उसकी लाठी बनती। उम्र ने इस निरस्त्र कवचहीन योद्धा पर वे सभी तीर छोडे, जो उसके तरकस मे थे! मगर बुढापे के कारण हल चलाने के योग्य नही रह गया, तो कुछ दिनो तक उससे कुछ फुटकर काम लिये गये, लेकिन यह भी ज्यादा दिनो तक नही चल सका। अब एक ही उपाय रह गया था, उसे पेशन मिले। लेकिन, हलवाहो—यथार्थ अन्नदाताओ—के लिए पेशन की हमारे अभागे देश मे कहाँ व्यवस्था है और व्यक्तिगत दया का दायरा तो हमेशा ही तग रहा है! फिर मगर मे जली हुई रस्सी की वह ऐठन और शायद गर्मी भी है, जिससे दया का बादल हमेशा ही उससे दूर-दूर भागता रहा है। दया का बादल चाहता है आशीर्वचनो की शीतल सतह और मगर के शब्दकोश मे उसका सर्वथा अभाव ही समझिए। इसके बदले आज भी वही बेलौस बाते, झडप-झिडकियो की आँच, जो पानी की क्या बात, खून को भी सुखा दे। इसके बावजूद उदारता की स्वाती-बून्दे कभी-कभी टपकती, किन्तु, पपीहे की प्यास उससे भले ही बुझे, मगर के बुढापे की मरुभूमि उससे सीची नही जा सकती। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि आज हम मगर की हड्डियो का यह झॉझर भी नही पाते, अगर उसकी अर्द्धांगिनी नही होती।

उसकी अर्द्धांगिनी—भकोलिया! मगर की आदर्श जोडी। वही जमुनिया रग—काली कहकर मै उसका अपमान क्यो करूँ! दो ही बच्चे हुए, इसलिए स्त्रीत्व के उस महान क्षय से बहुत-कुछ वह बची रही, जो मातृत्व का सुन्दर नाम पाता है। यही कारण है, मगर जजर-झर्झर हो गया, लेकिन भकोलिया अभी चलती-फिरती है, कुछ हाथ-पॉव चलाकर सग्रह कर लेती और दोनो प्राणियो का गुजर चला पाती है। लेकिन, यह भी कब तक? क्योकि वह बेचारी भी दिन-दिन छीजती जाती है।

भकोलिया—मगर की आदश जोडी। शारीरिक ढाँचे मे ही नही, स्वभाव मे भी। वे भी दिन थे, जब वह तमककर बोलती, झपट-कर चलती। न किसीको जल्द मुँह लगाती और न किसीकी हेठी बरदाश्त करती। जिस किसीने छेडा, मानो काली सॉपिन के फन पर पैर रखा। लेकिन भकोलिया में सिर्फ फुकार-मात्र थी—दशन और विष का आरोप उसके साथ महान अन्याय होगा।

पर, मर्दों की अपेक्षा औरते अपनेको परिस्थिति के साँचे

में ज्यादा और जल्द ढाल सकती है, इसका उदाहरण यह भकोलिया है। मगर आज भी वही मगर है—मुँह का बेलौस या फूहड़ कहिए, लेकिन, भकोलिया वही नही रही। किसीका बच्चा गेला दिया, किसीका कुटान-पिसान कर लिया, किसीका गोबर पाथ दिया, किसी-का पानी भर दिया और जो कुछ मिला, उसमें पहले मगर को खिलाकर आप पीछे खाने बैठी। किन्तु इतना करने पर भी, वह हमेशा मगर की फटकार सुना करती है। मगर अपना सारा पित्त और पुरानी झड़प अब ज्यादातर इसीपर झाड़ता है।

"भगवान की मर्जी"—कहकर मगर जिसके नाम पर अपनी मुसीबतो के बिसर जाने का प्रयत्न करता रहा, उस भगवान ने पार-साल उसकी और दुगत कर दी। उसे जोरो से अधकपारी उठी। भकोलिया उसकी चिल्लाहट से पसीज, किसी दया की मूर्त्ति से दार-चीनी माँग लाई और उसे बकरी के दूध मे पीसकर उसका लेप उसके ललाट पर कर दिया। बाईं पुटपुरी पर और आँख पर भी लगा दे —मगर ने लेप की पहली ठढाई अनुभव कर कहा। भकोलिया हुक्म बजा लाई। लेकिन, यह क्या? जहाँ-जहाँ लेप था, वहाँ अजीब जलन शुरू हुई। जलन जख्म मे बदली और जख्म ने उसकी एक आँख ले ली। जब मै घर गया—बबुआजी, मेरी एक आँख चली गई, मै काना हो गया—कहकर मगर रोने लगा। शायद मगर को मैंने यही पहली बार रोते देखा। मै उसे ढाढस दे रहा था, लेकिन, मेरा हृदय

और, विपदा अकेली कब रही?

पिछले माघ में मै घर पहुँचा। सुबह। धूप निकल आई थी। लेकिन, अपने चिर-अभ्यास के अनुसार, मैं आँखे मूँदे, रजाई से लिपटा पड़ा था। थोडी-थोडी देर पर कुछ गिरने की-सी धम-धम आवाज होती। रजाई मुँह से हटाकर आँखे खोली। देखा, सामने पुआल के टाल के नजदीक, एक काला-सा अस्थिपजर बार-बार खड़ा होने की कोशिश करता और गिरता है। यह क्या? चौककर उठा। उस ओर बढा। यह तो मगर है! सुना था, मगर को अर्द्धांग मार गया है। देखा, आँखें सजल हो उठी। निकट गया, उसे सम्हाला, फिर कहा—मगर, पडे क्यो नही रहते—यह कैसी चोट लग रही होगी?

पडे-पडे मन ऊब जाता है, बबुआ! —मगर ने जवाब दिया।

उफ, नसे ढीली पड गइ, खून का सोता सूख गय।। लेकिन, मानो, अब भी उसमें तरगे उठती, और किसी सूखे साग' की तरह बालू के तट पर सिर धुन, पछाड खा, गिर-गिर पडती है। कैसा करुण दृश्य !
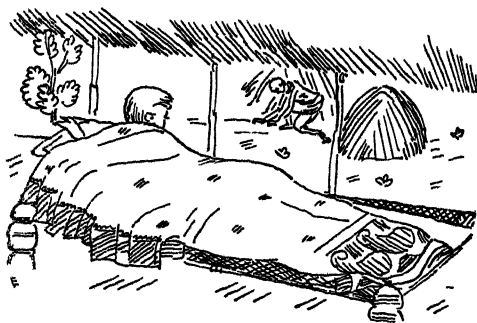
रूपा की आजी

कुछ दिन चढे, मै स्कूल से आकर, आँगन मे पलथी मारे चिउरा-दही का कौर-पर-कौर निगल रहा था कि अकस्मात मामी ने मेरी थाली उठा ली, उसे घर मे ले आई। पीछे-पीछे म अवाक् उनके साथ लगा था, थाली रख मुझसे बोली—"बस, यही खा, बाहर मत निकलना, रूपा की आजी आ रही है, नजर लगा देगी। समझे न?"

मै समझता क्या खाक? हाँ, रूपा की आजी से कौन नही डरता? कौन बच्चा उनकी बडी-बडी आँखे देखकर न सिहर उठता? वह डायन है—गाव-भर मे यह बात प्रसिद्ध है। वह जिसको चाहे, जादू की एक फूँक मे मार सकती है। बच्चो पर उनकी खास नजरे-इनायत रहती है। कितने बच्चो को, हँसते-खेलते शिशुओ को, उनकी ये बडी-बडी आँखे निगल चुकी है।

बडी-बडी आँखे।

रूपा की आजी की यह है सूरत-शक्ल—लम्बी गोरी औरत, भरा-पूरा बदन। हमेशा साफ, सुफेद बगाबग कपडा पहने रहती। उस सुफेद कपडे के घेरे मे उसका चेहरा रोब बरसाता। फिर, उनकी बडी-बडी आँखे, जिनपर लाली की एक हलकी छाया! पूरे बदन का ढाँचा मर्दो के ऐसा, मानो धोखे से औरत हो गई हो। जिस गाँव से यह आई है, वहाँ, लोग कहते है, औरतो का ही राज है। लोगोने मना किया उनके ससुर को, वहाँ बेटे की शादी मत कीजिए। किन्तु, वह भी पूरे अखाडिया थे—जिद कर गये, देखे, कैसी होती है वहाँकी लडकी।

रूपा की आजी ब्याह के आई। आने के थोडे ही दिनो बाद ससुरजी चल बसे। कुछ दिनो के बाद रूपा के दादाजी भी। इन दोनो की मौत अजीब हुई। ससुरजी दोपहर मे खेत से आये, रूपा की आजी ने थाली परोसकर उनके सामने रखी। दो कौर खा पाये थे कि पेट मे खोचा मारा, दद हुआ, खाना छोडकर उठ गये। शाम होते-होते उसी दर्द से चल बसे। रूपा के दादाजी एक बरात से लौटे, थके माँदे, नवोढा पत्नी—रूपा की आजी—ने, हँसकर, एक गिलास पानी पीने को दिया। पानी पीते ही सिर धमका, ज्वर आया, उसी ज्वर से तीन दिनो के अन्दर स्वग सिधारे!

पहली घटना से ही कानाफूसी शुरू हो गई थी, दूसरी घटना ने बिल्कुल सिद्ध कर दिया—रूपा की आजी डायन हैं, दोनो को जादू के ज़ोर से खा गई है।

रूपा के पिताजी का जन्म उसके तीन-चार महीने बाद हुआ। रूपा की आजी की गोद भरी—आखिर इस डायन ने अपना खान्दान बचा लिया, लोगोने कहना शुरू किया। बेटे को इस डायन ने बडे नाज़ से पाला, पोसा, बडा किया, उसकी शादी की—धूमधाम से। किन्तु, कैसी है यह चुडैल! शादी का बरस लगते-लगते बेटे को भी खा गई—मुँछउठान जवान बेटे को! कितना सुन्दर, गठीला जवान था वह! कुश्ती खेलकर आया, इसके हाथ से दूध पीया। खून के दस्त होने लगे! कुछ ही घटो में चल बसा। उसके मरने के बाद इस 'रूपा' का जन्म हुआ और रूपा अभी प्रसूतिगृह मे ही कें-कें कर रही थी कि उसकी माँ चल बसी! बाप रे, रूपा की आजी कैसी बडी डायन है! डायन पहले अपने ही घर को स्वाहा करती है!

जवान बेटे की मृत्यु के बाद, रूपा की आजी मे अजीब परिवर्त्तन हुआ। आँखे हमेशा लाल रहती, छोटी-छोटी बातो से भी आँसू की धारा बह निकलती , होठो-होठ कुछ बुदबुदाती रहती , दोनो जून स्नान कर भगवती का पिंड लीपती, धूप देती, बहुत साफ कपडा पहनती , जिस जवान को देखती, देखती ही रह जाती, जिस बच्चे पर नजर डालती, मानो आँखो मे पी जायँगी ! लोगोने शोर किया — अब इसका डायनपन बिल्कुल प्रगट हो गया। डरो, भागो—रूपा की आजी से बचो !

रूपा की आजी से बचो—लेकिन, बचोगे कैसे ? भर-दिन रूपा को गोद लिये, कधे चढाये, या उसकी छोटी उँगलियाँ पकडे यह इस गली से उस गली, इस घर से उस घर आती-जाती ही रहती हैं ! न एक व्रत छोडती है, न एक तीरथ। और, हर व्रत और तीरथ के बाद गाँव-भर का चक्कर ! उत्सवो मे बिना बुलाये ही हाज़िर ! उफ, यह डायन कब मरेगी ? कब गाँव को इससे नजात मिलेगी।

मन-ही-मन यह मनाया जाता, किन्तु, ज्योही रूपा की आजी सामने आई नही कि उनकी खुशामदे होती। कही वह नाराज़ न हो जायँ। अपने ससुर, पति, बेटे और पतोहू को खाते जिसे देर न लगी, वह दूसरे के बालबच्चो पर क्यो तरस खायगी ? स्त्रियाँ उन्हे देखने काप उठती, किन्तु, ज्योही वह उनके सामने आई कि दादीजी कहकर उनका आदर-सत्कार करना शुरू किया। इस आसन पर बैठिए, जरा हुक्का पी लीजिए, सुपारी खा लीजिए, यह सौगात आई है, जरा चख लीजिए, आदि आदि। रूपा की आजी कुछ सत्कार स्वीकार करती, कुछ अस्वीकार। उनकी अस्वीकृति आग्रह नही मानती थी। अस्वीकृति ! और, लोगोमे थरथरी लग गई। फिर, परिवार ही ठहरा , अगर बरस-छ महीने मे किसीको कुछ हुआ, तो रूपा की आजी के सिर पर दोष गिरा !

कितने ओझे बुलाये गये इस डायन को सर करने के लिए। उनके बडे-बडे दावे थे—डायन मेरे सामने होती ही नगी नाचने लगेगी, डायन के कोचे से आप—ही—आप आग जल उठेगी , डायन खून उगलने लगेगी , डायन पागल होकर आप—ही—आप बकने लगेगी। ओझा आये, तान्त्रिक आये। टोने हुए, टतर हुए। तेली के मसान की लकडी, बेमौसम के ओडहुल के फूल, उलटी सरसो का तेल, मेढक की खाल, बाघ के दाँत—क्या-क्या न इकट्ठे किये गये। ढोल बजे, झाझ

बजो, गीत हुए , देव आये, भूत आये, देवीजी आई! किन्तु रूपा की आजी न पागल हुईं, न नगी नाची, न उनकी देह पर फफोले उठे। ओझा गये, तान्त्रिक गये, कहते हुए—उफ, यह बडी घाघ है। बिना कारू-कमच्छा गये, इसका जादू हटाया नही जा सकता । कई ओझे इसके लिए रुपये भी ऐठते गये , किन्तु, रूपा की आजी जस-की-तस रही।

× × ×

म बडा हुआ, लिखा-पढा, नये ज्ञान ने भूत-प्रेत पर से विश्वास हटाया, जादू-टोने पर से आस्था हटाई। मैंने कहना शुरू किया—यह गलत बात, रूपा की आजी पर झूठी तुहमत लगाई जाती है! बेचारी के घर मे एक के बाद एक आकस्मिक मृत्युएँ हुई, उसका दिमाग ठीक नही। आँखो की लाली या पानी डायनपन की नही, उसकी करुणाजनक स्थिति की निशानी है। बच्चो को देखकर, दुलारकर जवानो को घूर-घूरकर वह अपने जवान बच्चे की याद करती या उसे भूलने की कोशिश करती है। पूजापाठ सब उसीकी प्रतिक्रिया है। दुनिया मे भूत कोई चीज नही, जादू-टोना सब गलत चीज! लेकिन, मेरी बात कौन सुनता है? एक दिन मामी मेरी इस बकझक से व्याकुल होकर बोली—

हा, तुम्हे क्या, तुम्हारे लिए जरूर जादू-टोना गलत है। भगवान तुम्हे चिरजीवी करे। किन्तु, उनसे पूछो, जिनकी कोख इस डायन ने सूनी कर दी , जिनके बच्चो को यह जिन्दा चबा गई , जिनके हँसते-खेलते घर को इसने मसान बना दिया।

कहते-कहते उनकी आँखे भर आई , कुछ गरम-गरम बूदे आँखो से निकलकर जमीन पर ढुलक रही। फिर बोली—

उस पडोसिन की बात है। उसकी बेटी ससुराल से लौटी थी—गोद भरकर! एक दिन उसका छ वर्ष का नाती आँगन मे किलक रहा था। कितना सुन्दर था वह बच्चा! जैसे विधना ने अपने हाथो सँवारा हो। जो देखता, मोह जाता। कई दिन मेरे घर आया था—जबर-दस्ती मेरे कधे पर चढ गया, दही माँगकर खाया । तुतली-तुतली बोली, चिकने-चिकने दुध-मुँहे दाँत। हँसता तो इँजोरिया हो जाती। किलकिलाता, तो हरसिंगार झडने लगते। और, वैसे बच्चे को

हाँ, एकदिन वह बच्चा अपने आँगन मे था, कि यह भुतनी पहुँची। यह भुतनी—हाँ, इसी तरह आँसू बहाती, होठ हिलाती, रूपा का हाथ पकडे हुई। इसे देखते ही उसकी माँ का मुँह सूख गया, नानी डर गई, चाहा, बच्चे को छिपा दे। किन्तु वह बच्चा छिपाने लायक भी तो नही था! ऊधमी, नटखट! झटपट दौडा आया, इस चुडैल के कधे पर चढ गया। चढकर इसके बालो को नोचने, गरदन को हिलाने और अपने छोटे-छोटे पैरो से इसे एँडियाने लगा। बच्चे की इस हरकत से भुतनी हँस पडी—पहली बार लोगो-ने इसे हँसते देखा। फिर खुद घोडा बनी, बच्चे को सवार बनाया और बहुत देर तक घुडदौड करती, बच्चे को हँसाती-खेलाती रही। बार-बार उसे छाती से लगाती, कहती, ऐसा बच्चा दूसरा न देखा। आह मेरा   किन्तु, बात बीच ही मे काटकर फूट-फूटकर रो पडी। उसे रोते देख, बच्चे ने ही गुदगुदी लगाकर, रिझाकर, भुलाकर उसे चुप कराया। चुडैल घर चली, आशीर्वाद देती हुई—जुग-जुग जीए यह बच्चा, तुम्हारी गोद हमेशा भरी रहे बेटी, भरी रहे, इसी तरह सोने की मूरत उगलती रहे। उसकी मा भौचक, नानी के जैसे जी मे जी आया।

किन्तु, जानते हो, इसके बाद क्या हुआ ? मामी कहे जा रही थी। कुछ ही दिनो के बाद लडके को सूखा रोग लग गया। कहाँ गया उसका वह रूप, वह रग, वह चुहल, वह हँसी। सूखकर काँटा हो गया, दिनरात चेंचें किये रहता। जो उसे देखते, आँसू बहाते और एक दिन आँसुओ की बाढ लाकर वह   उफ!

उस दिन उसकी माँ को तुम देखते । पागल हो गई थी बेचारी! बच्चे की लाश को पकडे थी, छोडती नही थी। किसकी हिम्मत जो उससे बच्चा माँगे? आँसू सूखकर ज्वाला बन गये थे—उसकी आँखो से चिनगारी निकल रही थी! बच्चे को छाती से चिपकाये थी, जैसे वह दूध-पीता बच्चा हो। अट-सट बोलती, बच्चे के मुँह मे छाती देने की कोशिश करती! उसे चुप देख, कभी-कभी चिल्ला उठती — जब चिल्लाती, मालूम होता, उसका कलेजा फट रहा है, सुननेवालो के भी कलेजे फटते

मै देख रहा था, मामी का कलेजा आज भी फटा जा रहा है। किस्से का अत शब्द से नही, आँसुओ के ज्वार से हुआ।

और, मामी के बच्चे को भी तो इसीने खाया—वह बोलती नही है, किन्तु उनके करुण चेहरे की एकएक भावभगी—आसू की एक-एक बूँद—यह कह रही है। कम्बख्त को बच्चे खाकर भी सतोष न हुआ, मामी की कोख मे जैसे इसने राख भर दी। तबसे एक भी बेटा न हुआ , बहुत जत्र-मत्र के बाद हुईं तो दो बेटियाँ !

मामी की क्या बात , एक दिन मामाजी भी मेरे उपर्युक्त तर्कों पर नाराज़ हुए और अपनी आँखो-देखी घटना सुनाई—

वह ऊँची जगह देखते हो न ? वहाँ एक दुसाध आ बसा था। बूढा था, दो नौजवान लडके थे उसके, घर मे बीवी, पतोहुएँ। दोनो बेटे बडे ही कमाऊ-पूत। गठीले जवान। बूढा भी काफी हुनर-मद । थोडे ही दिनो मे गाँव मे उनकी पूछ हो गई। बाहु का बल था। कमाते, खाते। नेक स्वभाव के—न किसीसे झगडा, न झमेला। सबको खुश रखने की कोशिश करते , सबके काम आते।

एक दिन वह बुढिया,—तुम्हारी रूपा की आजी,—पहुँची और बोली, जरा आज मेरा काम कर दो। बूढे ने देखते ही सलाम किया, बैठनें को कुश की चटाई रख दी। बुढिया नही बैठी—दुसाध से हड्डी छुला जाती है , फिर, मै बाभनी। बूढा न बोला, सिफ अज किया—आज तो दूसरे बाबू को बचन दे चुका हूँ, कल आपका काम हो जायगा। बुढिया ने जिद की —नही, आज ही मेरा काम होना चाहिए। बीच ही मे बडा लडका बोल उठा—दुसाध से हड्डी छुलाती है, तो क्या घर नही छुलायगा ? बुढिया तमक उठी !—तुम मेरा अपमान करते हो ? इसलिए न कि मै निपूती हूँ, मुझसे तुम्हे क्या डर, मेरा लडका होता । बुढिया पहले गरजी, अब बरस रही थी ! बूढा दुसाध भौचक। हाथ जोडकर आरजू-मिन्नत करता रहा—अभी चलता हूँ, हम अभी चलते है, बाबू का काम कल होगा, आज आप ही का। किन्तु, बुढिया वहाँ जरा भी क्यो ठहरती ? घर लौटी।

इसी रास्ते वह जा रही थी, मामाजी ने कहा, मैने देखा, उसके होठ जल्द-जल्द हिल रहे थे, आँखे लाल थी, आँचल से आँसू पोछती जाती। पीछे-पीछे बूढा दौडा जा रहा था। बूढे को रोककर मैंने दरियाफ्त किया, उसने सारी बाते बताई। वह काँप रहा था—बाबू, बाल-बच्चेवाला हूँ, न जाने क्या हो जाय ?

और, विश्वास करोगे, तुम्हारी रँगरेजी विद्या इसका क्या माने बतायगी, कि उसी रात मे बूढे के बडे बेटे को साँप ने काट लिया।

भोर मे देखा, हाय, वह पट्ठा बेहोश पडा है। समूचा शरीर पीला पड गया है, मुँह मे झाग निकल रहा है। गाँव-गाँव से साँप का विष उतारनेवाले पहुँचे है। कोई जोर-जोर से मत्र पढ रहा है, कोई कोडे फटकार रहा है, कोई जडी पीसकर पिलाने की कोशिश मे है, कोई उसकी नाक मे कुछ सुँघा रहा है। जब-तब वह आँखे खोलता है, रह-रहकर हाथ-पैर फटकारता है, फिर निस्तब्ध हो रहता है। निस्तब्धता निस्पदता मे और निस्पदता निर्जीवता मे बदलती जाती है। बूढा बाप छाती पीट रहा है, छोटा भाई दाढ मारकर रो रहा है। माँ और स्त्री की गत का क्या कहना! विष उतारनेवाले कहते है, हम क्या करे? साँप का विष उतरता है न? यह तो आदमी का विष है! सीधा जादू, ठीक आधी रात को लगाया गया है, उतर जाय, तो भाग। बूढे का वैसा भाग्य नही था। धीरे-धीरे हमलोगो के देखते-देखते, उसके जवान बेटे की अर्थी उठ कर रही! दूसरे ही दिन उसका सारा परिवार गाँव छोडकर चला गया!

अरे, यह बुढिया नही, काल है! आदमी नही, साँपिन है। चलती-फिरती चुडैल! बाभनो है, नही तो, इसे ज़िन्दा गाड देने में कोई पाप नही लगता!

मामा की आँखे अब अँगारे उगल रही थी। मै चुप था! भावना पर दलील का क्या असर हो सकता है भला?

× × ×

शिवरात्रि का यह मेला। लोगोकी अपार भीड। बच्चे, जवान, बूढे, लडकियाँ, युवतियाँ, बूढियाँ। शिवजी पर पानी, अक्षत, बेलपत्र, फूल, फल। फिर, एक ही दिन के लिए लगे इस मेले मे घूम-फिर, खरीद फरोख्त। धक्के-पर-धक्के। चलने की ज़रूरत नही, अपने को भीड मे डाल दीजिए, आप-ही-आप किसी छोर पर लग जाइयेगा। बच्चो और स्त्रियो की अधिकता! उन्हीके लायक ज्यादा सौदे। खँजडी, पिपही, झुनझुने, मिट्टी की मूरते, रबर के खिलौने, कपडे के गुड्डे, रगीन मिठाइयाँ, बिस्कुट, लेमनचूस। टिकुली, सेंदुर, चूडियाँ, रेशम के लच्छे, नकली गोट, चकमक के पत्ते, आईना, कघी, साबुन, सस्ते

एसेस और रगीन पाउडर। भावसाव की छूट, हल्ला–गुल्ला। गहनो के झमझम मे चूडियो की झनझन। साडियो के सरसर मे हँसी की खिलखिल।

कही नाच हो रहा, कही बहुरुपिये स्वॉग दिखा रहे, घिरनी और चरखी पर बच्चे झूले का मजा लूट रहे।

अकस्मात् एक ओर से शोर। "पगली-पगली-पगली।" "छोडो-छोडो-छोडो।" "डायन, डायन, डायन।" "मारो, मारो-मारो।"

एक औरत भागी जा रही है, अधनगी, अधमरी। लोग उसका पीछा कर रहे है। बात क्या है?

मेले मे आई एक युवती अपने बच्चे को एक सखी के सुपुद कर सौदा करने गई थी। सखी जरा चचल स्वभाव की थी। बच्चे चचल होते ही है। सखी 'लाल छडी' की रगीन मिठाई बेचनेवाले की बोली पर भूल गई—मेरी लाल छडी अलबत्ता, मै तो बेचूँगा कलकत्ता! इधर बच्चा उसकी अगुली छुडाकर, धीरे से वहॉसे निकलकर झुनझुनेवाले के पास पहुँच गया। जब सखी का ध्यान लाल छडी से टूटा, तो वह व्याकुल होकर बच्चे को खोजने निकली। देखती क्या है, एक बुढिया उस बच्चे को गोद मे लिये झुनझुने दे रही और मिठाइया खिला रही! कैसी उसकी सूरत—फटाचिटा कपडा, धूल से भरा शरीर, बिखरे बाल, लाल-लाल ऑखे, बडी-बडी टाग, बडी-बडी बॉह! उसे देखते ही, वह चीख पडी—डायन! बुढिया चौकी, गुर्राई–ऐ, क्या बोलती है? किन्तु वह तो चिल्लाए जा रही थी—डायन, डायन, डायन! हल्ला देख बच्चा चीखने लगा। बुढिया ने बच्चे को कधे पर लिया! वह बुढिया के नजदीक पहुँचकर बच्चे को उससे छीनने की कोशिश करने लगी। एक हल्ला, एक शोर, एक गौगा। अब बच्चा सखी की गोद मे, और बुढिया को लोग पीट रहे है। बच्चा बार-बार उसकी ओर देखकर 'बुदिया'—'बुदिया' कह उठता है, मानो उसकी मार पर तरस खाता हो, उसकी गोद को ललक रहा हो। किन्तु कौन उसपर ध्यान देता है?

बुढिया भागी जा रही है, स्त्रियॉ, बच्चे, मर्द उसके पीछे लगे है। थोडी-थोडी देर पर वह रुकती है, दॉत दिखाती है, हाथ जोडती है कभी-कभी गुस्सा होकर ढेले उठाती है। वह सिर्फ ढेले

उठाती है, लोग उसपर ढेले फेकते है। इसी भगाभगी मे वह एक ऐसी जगह पहुँचती है, जहाँ पहले एक कुँआँ था । अब उसकी गच खराब हो गई थी, वह भथ रहा था। भागने मे व्याकुल, उसका ध्यान उस ओर न रहा , धडाम से उस कुँए मे जा रही!

भीड रुकती है! कोई कहता है—मरने दो। कोई कहता है—निकालो। जबतक निदयता पर करुणा की विजय हो, तबतक वह जल-समाधि ले चुकती है!

यह उसकी लाश है! किसकी लाश ? बुढिया की लाश — रूपा की आजी की लाश!

रूपा की आजी की लाश? वह यहा कहाँ?

रूपा की शादी बडी धूम से की उसने। सारी जायदाद बेचकर। जिस भोर मे रूपा की पालकी ससुराल चली, उसी शाम को वह घर छोडकर चल दी। कहाँ? कौन जाने? इतने दिनो तक वह कहाँ-कहाँ की धूल छानती, आज पहुँची थी इस मेले मे! क्यो? क्या रूपा को देखने ? उसके बच्चे को देखने! क्या वह रूपा का बच्चा था? उसने परिचय क्यो न दिया?

छोडिए उस चर्चा को।

बहुत दिन हुए, रविबाबू की एक कहानी पढी थी। एक भद्र परिवार की महिला हैजे मे मर गई। लोग जलाने को श्मशान ले गये। चिता सजाई जा रही थी कि वर्षा होने लगी। चिता छोडकर लोग बगल की अमराई की मँडैया मे छिप रहे। काली रात थी। जब वर्षा खतम हुई, उन्होने पाया, चिता से मुर्दा गायब! क्या सियार खा गये? खोज-ढूँढ फिजूल गई। किन्तु, किस तरह बाबूसाहब से कहा जायगा कि उनकी आसावधानी से मुर्दा गायब हुआ? झूठमूठ चिता मे आग लगाकर चले आये। इधर बेचारी महिला पानी की बूँद से जीवन पा चिता से उठी । दिनभर खेतो मे छिपी रही, भद्रकुल की महिला थी। रात मे जब घर पहुँची, दरवाजा खटखटाया। उसकी बोली सुन, लोग दौडे—अरे, भूत, भूत! —नैहर पहुँची, वहाँ भी भूत-भूत , बहन के घर पहुँची, वहाँ भी भूत-भूत। जहाँ जाय, वही भूत, भूत, भूत! आखिर उसने अपने को गगाजी की गोद मे सिपुर्द कर दिया ।

क्या 'रूपा की आजी' भी कुछ इसी तरह लोकापवाद की शिकार नही हुई ? घटनाओ ने उसके साथ साज़िशे की , लोगोने जल्लाद का काम किया !

देव

तपेसर भाई के बगीचे मे विलायती अमरूद का एक पेड था। मै कह नही सकता, उसकी पहली कलम विलायत से आई थी, या कहाँसे। नई किस्म की चीजो का — खासकर वह छोटी नस्ल की हो—तो विलायती नाम पडते मैंने दिहातो मे प्राय देखा है। छोटे कुत्ते विलायती कुत्ते हो गये है। टमाटर विलायती बैगन बन गया है।

यह वियालती अमरूद का पेड साधारण अमरूद के पेडो से छोटा। इसकी डालियाँ तुनक, लचीली। पत्ते गहरे हरे, ज्यादा चिकने और छोटे-छोटे। फल बडी सुपारी से बडे नही, पकने पर उनपर दुधिया रग चढ जाता। लेकिन, गूदा लाल टेस।

हम बच्चे इसपर किस तरह टूटते और हमसे रखवाली करने मे तपेसर भाई कैसी चौकसी रखते!

"देखा है देव तुमने?—विलायती अमरूद कैसे पक गये है?"

जुट जायगी—वह लापरवाही से बोला और मेरे अँगोछे की आर इशारा करते कहा—जरा इससे समेटकर इसे मेरे गले से बाँध तो दो।

उस टूटी हुई बॉह को अँगोछे मे सँभालकर, झोले की तरह, उसकी गदन से लटकाते हुए, मैने कितनी पीडा का अनुभव किया! लेकिन, उसने जरा उँह भी की? हा, उसकी ऑखे कुछ लाल जरूर हो आईं। मैने कहा—कैसे हो तुम, क्या दद नही मालूम होता?

होता क्यो नही, वाह! लेकिन, चिल्लाने से क्या? क्या उससे दद कम हो जायगा?—उसके ह्योठ हिल रहे थे।

× × ×

चारो ओर हरियाली-ही-हरियाली। खेतो मे मकई, सावाँ, धान, भदई, लहरा रही। राम्तो और सडको पर तरह-तरह की घासे उग आई। पेडो की धुली-पुँछी पत्तियाँ मन को मोह लेती। घरो पर कद्दू-झिगुनी आदि की लताएँ फैल रही।

इसी हरियाली मे जन्माष्टमी पहुँच आई। आम के बगीचो मे मिठुआ, बम्बई, मालदह की फसल खतम हो चली थी जरूर, लेकिन अभी फजली, भदैया, राढी के गुच्छे लटक ही रहे थे। खेतो मे मकई की बालो मे दूध भर आया था। बारियो मे अमरूद की डालियाँ और खीरे की लत्तियाँ फलो से लदी थी। एक तो 'फलाहार' की ऐसी सुविधा, फिर दिनभर का ही तो व्रत—हम बच्चो के लिए जन्माष्टमी मे बढकर कौन व्रत हो सकता था? हममे से अधिकाश व्रती थे।

बगीचे के बीच मे जो ठाकुरबारी है, उसमे व्रत की तैयारियाँ हो रही थी। लोगोकी आवाजाही लगी थी। तरह-तरह के 'प्रसाद' तैयार किये जा रहे थे। धनिया भूनकर 'पजनी' बनाने की जो तैयारियाँ हो रही थी, उसकी सोधी सुगन्ध हम बच्चो को पागल बना रही थी, ठाकुरबारी से कुछ दूर हट, एक पेड पर झूला डाले, पेग-पर-पेग ले रहे थे। कब सूरज डूबे, आधी रात, बीते चाद उगे, कृष्ण भगवान जन्मे और हम फँके-पर-फँके पजनी फॉके—हमारी अधीरता का क्या कहना?

हम सात-आठ बच्चे थे। एक-दो लडकियाँ भी थी। देव भी था। बिना उसके कौन पेड पर चढकर रस्सी लटकाता और उतने जोर से पेग भी कौन देता?

पेग-पर-पेग। कभी गाना। कभी हाहा-हीही।

सॉंप! सॉंप!!—एक लडकी चिल्ला उठी। बगीचे से सटी जो बँसवारी थी, उसमें एक जोडा गेहुँअन रहता है, यह तो प्राय सुन रखा था हमने, लेकिन, इस मध्य दुपहरी मे, जब हम इतने लोग इकट्ठा होकर कोलाहल कर रहे थे, सॉंप निकलेगा, इसकी तो कल्पना ही नही थी। लडकी की आवाज़ के साथ ही हमारी नज़रे उस ओर दौड गईं, जिधर उसकी कॉंपती तर्जनी इशारा कर रही थी। बाप रे—सबके मुँह से निकला, और कई तो बेतहाशा भागे। घबरा तो हम सभी गये थे। शायद भादो की इस बिना बादल की सूर्य-किरणो की असीम गर्मी से व्याकुल हो, सॉंप अपनी बॉबी से निकला था और कही निश्चिन्त ठढी जगह की तलाश मे चला था। जब कुछ बच्चे चीखकर भागे, उनकी चीख सुनकर, वह जहाँ-का-तहाँ अड गया, और सिर उठाकर अच्छी तरह हमे देखना चाहा। उफ, उसकी सूरत! ढाई हाथ से लबाई कम नही। पत्तो से छनकर जो सूर्य-किरणें उसपर पड रही थी, उससे उसका गेहुँआ शरीर दमक रहा था। फन काढे वह खडा था। फन चार इच से कम चौडा क्या होगा? दो खूबसूरत, मादक आँखे चमक रही। जीभें लप-लप करती।

क्या किया जाय, यह सवाल उठने भी न पाया कि देखा, देव एक डडा लिये उस ओर बढ रहा है। मैंने उसे रोकना चाहा। हमने सुन रखा था, दुनिया मे साढे तीन ही वीर हैं। पहला भैंसा, दूसरा सूअर, तीसरा गेहुँअन और आधा राजा रामचन्द्र। भैंसे, सूअर और गेहुँअन सीधा वार करते, कभी पीठ नही दिखाते। रामचन्द्र वीर थे, लेकिन बाली को मारने के लिए उन्होने पेड की ओट ली थी! यो, जो राजा रामचन्द्र से भी ज्यादा वीर—उनमे से एक हमारे सामने खडा है, और उसे छेडने को यह हमारा छोटा साथी देव, एक छोटा-सा डडा लिये, बढ रहा है। छोडो उसे, भागो—हम यह चिल्ला ही रहे थे कि देव साप से एक लग्गी पर पहुँच चुका था। उसे अपनी ओर आते देख एक बार तो सॉंप ने फन समेटकर सिर नीचा कर लिया, हमने समझा अब वह भागेगा। लेकिन, नही, ज्योही देव उससे एक लग्गी पर गया, एकबारगी लगभग एक हाथ सिर उठा, फन को ज्यादा-से-ज्यादा चौडाकर, उसने वह फुफकार छोडी, जिसने कालीनाग की कृष्ण पर की गई फुफकार की याद दिला दी। फुफकारें छोडता, वह सिर को लगातार हिला रहा था,

जैसे वह गुस्से मे काँप रहा हो। देव, भागो—हमने चिल्लाकर कहा। लेकिन, वह उसका फन देखता, अपना डडा सँभाले खडा था। न साँप एक इच आगे बढता, न देव के ही पैर आगे या पीछे उठते। इधर हमारा शरीर पसीने-पसीने हो रहा। देव की आँखे गेहुँअन की आँखो पर गडी थी।

भागो—हम फिर चिल्लाये। उसी समय देखा, देव अपने डडे को सँभाल रहा है और पलक मारते ही उसने छोटे डडे को इस तरह तौलकर फेका कि वह ज़ोरो से साँप के फन के ठीक नीचे, जमीन से लगभग एक बालिश्त ऊपर, उसकी गदन पर कहिए, तड-से लगा। डडा इस जोर से लगा कि साँप फन-सहित एकबारगी उलट गया। किन्तु, दूसरे ही छन वह सँभलकर फिर डटा था। और, इस बार, मालूम होता, सिर्फ उसकी पूँछ का कुछ इच हिस्सा ज़मीन पर है, नही तो वह पूरा-का-पूरा खडा है—फन फुलाये, झूमता, फुफकारता। मालूम होता, साक्षात् यमराज ताडव नृत्य कर रहा है! देव का हाथ खाली है, साँप कही उसपर टूटा, तो आज वही-का-वही रह जायगा—मैंने सोचा! लेकिन, किसकी हिम्मत जो देव की मदद मे यमराज के मुँह की ओर बढे! देव खडा। कही उसे भय से थरथरी तो नही मार गई? भागो, भागो!

लेकिन, यह क्या? फिर तुरत ही साँप आप-ही-आप इस तरह ज़मीन पर गिरा कि हमने उसके गिरने की पट्ट-सी आवाज़ भी सुनी। गिरकर वह लगातार पूछ पटकने और ज़मीन से थोडा ऊपर सिर उठा-उठाकर फुफकार छोडने लगा। उसके गिरते ही हममे से कुछ की हिम्मत हुई। गुल्ली-डडा खेलने के लिए जो डडे थे, उन्हे लेकर हम आगे बढे। मालूम होता, पहला डडा ऐसा लगा था कि उसकी गदन की हड्डी टूट गई थी, लेकिन 'बाई के झोके मे' वह उठ खडा हुआ था। लेकिन, बाई के बल पर टूटी हड्डी कब तक तनी रहती? वह गिरा और अब अपनी बेचारगी पर सिर धुन रहा था। हमे बढते देख, देव ने हमे रोका और हमारे डडे लेकर उसने खुद किस तरह उसे खेला-खेलाकर मारा! पहले दो-तीन डडे अलग से ही फेक कर मारे, फिर नज़दीक जाकर उसके धड पर कई डडे लगाये। तब डडे का एक हिस्सा उसके मुँह के नजदीक ले जाता, साँप किच-किचाकर पकडता, देव खिलखिलाकर हँसता। यो ही बहुत देर तक उस साँप से वह मृत्यु-क्रीडा करता रहा। उसी समय देव के बाबा

एक ओर से आते दीखे । उनकी खाँस सुन देव चौका और झट-पट बार-बार डडे बरसाकर साँप का सिर भुर्त्ता बना, किलकारियाँ मारता भागा। हम भी उसके साथ भागे।

× × ×

देव के बाबा चाहते थे, देव पढे। गाँव की पढाई जस-तस समाप्तकर वह शहर के स्कूल में भी गया। लेकिन, वहाँ ज्यादा दिनो तक टिक न सका।

गाँव लौटकर वह अपनी 'घर-गिरस्थी मे लग गया। अजीब ढग का विकास हुआ उसका। जिसने जरा छेडखानी की, उससे उलझ गया। बात का जवाब हाथ से, ठेंगे का जवाब लाठी से। चाहे चौपाया भैंसा हो या दो-पाया, जिससे भिड गया, बिना नाथे नही छोडा। गाँव के सबसे ऊँचे बाँस की फुनगी के पत्ते वह तोडता, सबसे ऊँची डाल का फल वह चखता। उसकी भैस हमेशा हरियरी पाती, उसके बैल बिना जाब के बिचरते। किसीका खेत उजडता हो, तो उजडे—देव को क्या परवा ? और, कौन उसके मुँह लगने की गुस्ताखी करे ?

उसके चरित्र पर काला धब्बा लगानेवाली कहानियाँ भी थी। लेकिन न जाने क्यो, मैं हमेशा ही उससे अनुरक्त रहा। कई दिन मामाजी ने डाँटा-डपटा—"क्यो उससे बाते करते हो—मिलते हो, वह बदमाश है, बदचलन है , तुम पढ-लिख रहे हो, ऐसे लोगोकी सगत और चाहत अच्छी नही।" जब वह नाराज़ी मे बकते, मैं चुप-चाप सुनता। उनकी बात के औचित्य और सत्यता पर सदेह करने की कोई बात ही नही थी। लेकिन, सब जान-सुनकर भी मै अपने को उससे अलग नही रख सकता था। क्यो ? मै तब इस तरह के तर्क का आदी भी नही था।

एक दिन शाम का वक्त। मै छुट्टी मे घर आया था। प्रकृति-प्रेमी स्वभाव मुझे गाँव से खीच सरेह की ओर ले चला। रास्ते में देव मिल गया। हम दोनो चले। एक खेत मे शकरकद की लत्तियाँ इतनी घनी हो गई थी कि उनपर पैर रखने मे मखमल का मज़ा आता था। लत्तियो मे जहाँ-तहाँ लाल-लाल फूल भी आ गये थे—मानो हरे मखमली फर्श पर गुलाब की कलिया खिली हो। मै उसपर बैठ गया।—देव, कुछ गाओ।

"खूब ! कभी मुझे गाते सुना है ?"

"अच्छा, एक कहानी!"

कैसी? आपबीती!—वह मुस्कुरा पडा। देव मे हमने हमेशा यह गुण पाया कि वह झूठ कभी नही बोलता। वह अपनी प्रेम-कथाएँ कहने लगा—देहात के वे 'रोमास' और उन रोमासो के वे अनोखे 'ऐंडवेचर'। कब सूरज डूबा, किस तरह किरणे सिमटी, मालूम नही। एकाएक अधकार देख, अब चले, कहकर हम चल पडे।

थोडी दूर साथ आये। एकाएक देव चुप हो गया। फिर बोला—"अच्छा, आप मेरा साथ क्यो करते है, आपकी शिकायत होती है न?"

"पगला, शिकायत की तुम्हे क्या परवा, ऐसी बाते न किया करो।" वह फिर चुप हो रहा और बडी सजीदगी से बोला—"अच्छा, कोई एक काम आप मुझसे कहिए, जो म करूँ। कोई अच्छा काम, जो देश के लिए भी फायदे का हो।"

मुझे याद आया, मै कभी-कभी देव से देश-दशा पर कुछ बाते कर लिया करता था। मालूम होता, वे बाते उसके हृदय मे गड-सी गई थी। किन्तु, आज उसके इस सवाल पर मै असमजस मे पड गया। देव और देश! खैर, कुछ कहना चाहिए, कह दिया—ज्यादा क्या करोगे, खादी पहनो।

लेकिन, खादी तो शहर मे ही मिलती है! और, कोई शहर यहाँ से २०-२२ मील से कम दूर नही। पर, देव को मानो अपनी इस कैफियत पर कुछ झेप हुई। वोला—अच्छा, मै किसी तरह मँगा लूगा।

देव ने जिस दिन खादी पहनी, गॉव मे एक अजीब दिल्लगी रही। लोग आपस मे कहते—"सौ-सौ चूहे खाय के बिलाई चली हज को!" किन्तु, देव के मुँह पर कोई क्या बोलता?

× × ×

सन् तीस का तूफान खत्म ही हुआ था कि बत्तीस की आधी जोरो पर चल निकली। साढे चार हजार बद-दिमागो के साथ मै भी पटना कैम्प जेल के मजे ले रहा था।

रोज नये लोगो के झुड आते, पुरानो के जाते। यह आने-जाने की क्रिया इस धडल्ले से जारी थी कि अब उसमे कोई हर्ष-

विषाद नही रह गया था। महासागर मे कितनी नदियाँ गिरती, कितना जल भाप बनकर उडता—वह अपनी ही तरगो मे मस्त, घट-बढ का वहाँ सवाल कहाँ ?

लेकिन, एक दिन जब फाटक से एक परिचित सूरत को भीतर आते देखा और जब पता चला, वह देव है, तब आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। इधर कुछ दिनो से देव से कम सम्बन्ध रह गया था। मै लेखक था, सम्पादक था, देशभक्त था, नेता था। अब फुर्सत कहाँ थी कि देव की कोई खोज-खबर भी रखता ?

और, देव जेल मे ? यह तो कल्पना भी नही हो सकती थी।

किन्तु, आनन्द के उद्रेक मे कुछ पूछने की फुर्सत भी कहाँ थी ? उसे अपने ही वाड मे ले आया। शाम का ही वक्त था। खाने-पीने के बाद तुरत ही वाड-बन्दी हुई। भीतर गाँव-घर का हाल-चाल पूछते, बतियाते हम दोनोको नीद आ गई। हम पास-पास सोये थे। सोये ही थे कि बीच मे मेरी नीद टूटी और पाया देव कुछ कराह रहा है—जैसे मर्मान्तिक पीडा होने पर धीरे-धीरे, लेकिन बडे दद से, लोग कराहते है। देव कोई सपना तो नही देखता, बुरा सपना — मैंने झकझोरकर उसे उठा दिया। वह जगा। लेकिन, पूछने पर कुछ बोला नही। फिर उसे नीद आई, तो वही बात। एक बार और उठाया। लेकिन, कितनी बार उठाता उसे ?

कल कुनकुन ने, जो उसके साथ आया था, इसका रहस्य बताया ।

अब यह देव वह पुराना देव नही है।

देव अपने थाने का एकछत्र नेता होकर इस बार यहाँ आया है। नेता ? हाँ। हाँ। हाँ।

लेकिन इस नेतृत्व की कैसी कीमत अदा करनी पडी है उसे ?

देव का थाना, जिला-भर मे क्या, अपने काम से सारे प्रात मे, प्रसिद्धि प्राप्त कर गया। काग्रेस-बुलेटिनो मे उसकी चर्चा। सत्याग्रहियो की टोलियाँ लगातार सरकार को परीशान और सब-डिवीजन की छोटी-सी सब-जेल को आबाद किये रहती। जिले के अधिकारी बडे घपले मे। पुलिस के धावे, जब्तियाँ, जेल, जुर्माने, कुछ भी कारगर साबित न हुए। जबतक खुराफात की जड देव नही पकड जाता,

तबतक सब धर-पकड फिजूल थी, और देव को पकडने की उनकी सारी चेष्टाएँ बार-बार बेकार जा चुकी थी।

किन्तु, पुलिस जो काम हज़ार सरगर्मी दिखाकर और लाख सिर पटककर न कर सकी, एक दिन देव ने ख़ुद कर लिया। अब थोडा जेल का मज़ा लिया जाय, उसने तय किया। ख़बर कर दी गई, अमुक दिन थाने पर जुलूस जायगा और नेतृत्व करेगा देव। दारोगाजी को अपनी ताकत पर विश्वास न हुआ। कुछ सशस्त्र पुलिस लेकर इन्सपेक्टर साहब आये—पॉच हाथ का वह भीमकाय इन्सपेक्टर! जुलूस के नेता की हैसियत से देव पकडा गया, कुनकुन वगैरह कई और। थाने की छोटी-सी हवालात मे सब ठूँस दिये गये! शाम बीती, रात आई, आधी रात। सारा आलम सन्नाटे मे। उसी समय हवालात खुली। देव उठाया गया। वह बगल के कमरे मे ले जाया गया। उसके बाद ?

उसके बाद कुनकुन के चेहरे पर गुस्सा था, आखे सुख़ हो गई। वह बोला—पूछिए नही, उसके बाद क्या हुआ ? उफ इन्सपेक्टर ने उफ

हम उसका गजन-तजन सुन रहे थे। लगातार तडाक-फडाक सुन रहे थे। किसीके गिरने और उठने की आवाज सुन रहे थे। क्या देवजी पर मार पड रही है?—लेकिन वह चिल्लाते तो नही है ?

और, यही न चिल्लाना तो उनके लिए आफत हो गई। इन्सपेक्टर अपने चमडे-मढे डडे से, थप्पड से, घूसे से, गिर पडने पर भारी बूटो से, लगातार प्रहार-पर-प्रहार करता रहा, लेकिन, देवजी चिल्लाते कहाँ तक, उनकी ऑखो मे ऑसू तक न आये। आज तुम्हे रुलाऊँगा या जान से मार डालूँगा—यह थी उसकी आन, और देवजी अपनी शान पर जान दे रहे थे।

हाँ, जान दे रहे थे! मार खाते-खाते वह बेहोश हो गये। पानी पिला कर होश मे लाये गये। रोते हो या मरते हो—उस इन्सपेक्टर के बच्चे ने पूछा। देवजी मुस्करा पडे। हॉ, दारोगाजी ने ख़ुद हमसे कहा था, देवजी मुस्कुरा पडे। फिर क्या था, उसने फिर डडे, लात-घूसे और बूट के प्रहार शुरू किये। देव फिर बेहोश। बेहोश होकर जब देवजी गिरे, उनकी छाती पर वह बूट-सहित चढ गया और हुमचने लगा। दो-तीन हुमच—देवजी के मुँह से ख़ून निकल आया—

खून, हजूर खून—दारोगा चिल्ला पडा।

मरने दो साले को—क्रोध से आग-बबूला वह इन्सपेक्टर बोला—इसने हमे तग-तग कर रखा था।

लेकिन, कहना जितना आसान था, खून करना अगर उतना ही आसान होता! उसने भी परिस्थिति की गम्भीरता का अनुभव किया। इधर खटपट सुन हमने भी हवालात से होहल्ला किया। सुना, वह हमारी खबर लेने को भी हुमका। लेकिन, दारोगा ने हस्तक्षेप किया—हजूर, अगर यह बात लोगोको मालूम हुई, हममे से एक भी इस रात को जिन्दा न बचेगा—आप इस जवार को नही जानते, हजूर!

इन्सपेक्टर उसी समय वहाँ से चल पडा। थोडी देर के बाद दारोगाजी देवजी को लिये हमारे पास आये।

उफ—उनकी हालत! सारा शरीर क्षत-विक्षत!

लेकिन देवजी ने जरा उफ भी न की—न ये बाते कही! उस रात को ही मोटर से हमलोग सब-डिविजनल जेल मे भेज दिये गये। कल होते-होते देवजी का समूचा शरीर फूल उठा। दवादारू हुई। ऊपर से अच्छे भी हुए। लेकिन, पीडा को ऊपर न आने देने की उन्होने जो मर्मान्तक चेष्टा की, उसने, मालूम होता है, पीडा को उनके मम तक पहुँचा दिया है। तबसे ही रात मे, जब वह सोते है, यो ही कँहरते रहते है—कुनकुन ने कहा और एक लम्बी साँस ली।

दिन की रोशनी मे मैने देव को अच्छी तरह देखा। देह पर अब भी काले निशानो का दौरदौरा था। किन्तु, उस काले निशानो-वाली देह के अदर जो आत्मा थी?—उज्ज्वल, ज्वलन्त, दिव्य, ऊजस्वल!

बालगोबिन भगत

न जाने वह कौन-सी प्रेरणा थी, जिसने मेरे ब्राह्मण का गर्वोन्नत सिर उस तेली के निकट झुका दिया था। जब-जब वह सामने आता, मै झुककर उससे राम-राम किये बिना नही रहता। माना, वे मेरे बचपन के दिन थे, किन्तु ब्राह्मणता उस समय सोलहो कला से मुझपर सवार थी। दोनो शाम सध्या की जाती, गायत्री का जप होता, धूप-हवन जलाये जाते, चदन-तिलक किया जाता और इन सारी चेष्टाओ से 'ब्रह्म' को जानकर पक्का 'ब्राह्मण' बनने की कोशिशे होती—ब्रह्म जानाति ब्राह्मण ! इस ब्राह्मणत्व के जोश मे मैंने ऐसे कई ब्राह्मणेतर लोगोका पालागन करना छोड दिया था, जिन्हे गॉव के नाते से बचपन से ही करता आया था। कहा म, और, कहॉ हमारे समाज के सबसे नीचे स्तर का यह तेली—यह क्यो बरबस मेरे सिर को झुका डालता ? तेली—जिसका मुँह देखने के बाद यात्रा सुफल नही होती—ऐसी व्यवस्था दे रखी थी हमारे समाज ने। तेलिया-मसान, यह घृणास्पद आस्पद जुडा था, जिस जाति के

साथ! और, तब तक मुझमे वह ज्ञान भी नही था कि समझूँ कि ये सारी बाते हमारे सडे समाज की घृणिततम मनोवृत्ति की सूचक है!

हाँ, बालगोबिन भगत तेली थे। किंतु तेलियो मे साधारणत पाये जानेवाला काला रग नही था उनका। मँझोले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे। साठ से ऊपर के ही होगे। बाल पक गये थे। लबी दाढी या जटाजूट तो नही रखते थे, किन्तु, हमेशा उनका चेहरा सफेद बालो से ही जगमग किये रहता। कपडे बिल्कुल कम पहनते। कमर मे एक लगोटी-मात्र और सिर मे कबीरपथियो की-सी कनफटी टोपी। जब जाडा आता, एक काली कमली ऊपर से ओढे रहते। मस्तक पर हमेशा चमकता हुआ रामानदी चदन, जो नाक के एक छोर से ही, औरतो के टीका की तरह, शुरू होता। गले मे तुलसी की जडो की एक बेडौल माला बाधे रहते।

ऊपर की तस्वीर से यह नही माना जाय कि बालगोबिन भगत साधु थे। नही, बिल्कुल गृहस्थ। उनकी गृहिणी की तो मुझे याद नही, उनके बेटे और पतोहू को तो मैने देखा था। थोडी खेतीबारी भी थी, एक अच्छा साफ-सुथरा मकान भी था।

किंतु, खेतीबारी करते, परिवार रखते भी, बालगोबिन भगत साधु थे—साधु की सब परिभाषाओ मे खरे उतरनेवाले। कबीर को 'साहब' मानते थे, उन्हीके गीतो को गाते, उन्हीके आदेशो पर चलते। कभी झूठ नही बोलते, खरा व्यवहार रखते। किसीसे भी दो-टूक बात करने मे सकोच नही करते, न किसीसे खामखाह झगडा मोल लेते। किसीकी चीज़ नही छूते, न बिना पूछे व्यवहार मे लाते। इस नियम को कभी-कभी इतनी बारीकी तक ले जाते कि लोगोको कुतूहल होता!—कभी वह दूसरे के खेत में शौच के लिए भी नही बैठते! वह गृहस्थ थे, लेकिन, उनकी सब चीज़ 'साहब' की थी। जो कुछ खेत मे पैदा होता, सिर पर लादकर पहले उसे साहब के दरबार मे ले जाते—जो उनके घर से चार कोस दूर पर था—एक कबीरपथी मठ से मतलब! वह दरबार मे 'भेंट' रूप रख लिया जाकर 'प्रसाद' रूप मे जो उन्हे मिलता, उसे घर लाते और उसीसे गुज़र चलाते!

इन सबके ऊपर, मै तो मुग्ध था उनके मधुर गान पर—जो

सदा-सवदा ही सुनने को मिलते। कबीर के वे सीधे-सादे पद, जो उनके कठ से निकलकर सजीव हो उठते।

आसाढ की रिमझिम है। समूचा गॉव खेतो मे उतर पडा है। कही हल चल रहे ह, कही रोपनी हो रही है। धान के पानी-भरे खेतो मे बच्चे उछल रहे है। औरते कलेवा लेकर मेंड पर बैठी है। आसमान बादल से घिरा, धूप का नाम नही। ठढी पुरवाई चल रही। ऐसे ही समय आपके कानो मे एक स्वर-तरग झकार-सी कर उठी। यह क्या है—यह कौन है! यह पूछना न पडेगा। बालगोबिन भगत समूचा शरीर कीचड मे लिथडे, अपने खेत मे रोपनी कर रहे है। उनकी अगुली एक-एक धान के पौदे को, पक्तिवद्ध, खेत मे बिठा रही है। उनका कठ एक-एक शब्द को सगीत के जीने पर चढाकर कुछ को ऊपर, स्वग की ओर भेज रहा है और कुछको इस पृथ्वी की मिट्टी पर खडे लोगोके कानो की ओर! बच्चे खेलते हुए झूम उठते है, मेड पर खडी औरतो के होठ कॉप उठते है, वे गुनगुनाने लगती है, हलवाहो के पैर ताल से उठने लगते है, रोपनी करनेवालो की अगुलियॉ एक अजीब क्रम से चलने लगती है! बालगोबिन भगत का यह सगीत है या जादू!

भादो की वह अधेरी अधरतिया। अभी, थोडी ही देर पहले मूसलधार वर्षा खत्म हुई है। बादलो की गरज, बिजली की तडप मे आपने कुछ नही सुना हो, कितु अब झिल्ली की झकार या दादुरो की टर्र-टर बालगोबिन भगत के सगीत को अपने कोलाहल मे डुबो नही सकती। उनकी खँजडी डिमक-डिमक बज रही है और वे गा रहे है—"गोदी में पियवा, चमक उठे सखिया, चिहुँक उठे ना!" हा, पिया तो गोद मे ही है, किन्तु वह समझती है, वह अकेली है, चमक उठती है, चिहुँक उठती है। उस भरे–बादलोवाले भादो की आधीरात मे उनका यह गाना अँधेरे मे अकस्मात् कौध उठनेवाली बिजली की तरह किसे न चौका देता? अरे, जब सारा ससार निस्तब्धता मे सोया है, बालगोबिन भगत का सगीत जाग रहा है, जगा रहा है! —तेरी गठरी मे लागा चोर, मुसाफिर जाग जरा!

कातिक आया नही कि बालगोबिन भगत की प्रभातियॉ शुरू हुई, जो फागुन तक चला करती। इन दिनो वह सबेरे ही उठते। न जाने किस वक्त जगकर वह नदी-स्नान को जाते—गॉव से दो मील दूर! वहॉसे नहा-धोकर लौटते और गॉव के बाहर ही, पोखरे के

ऊँचे भिडे पर, अपनी खँजडी लेकर जा बैठते और अपने गाने टेरने लगते। मै शुरू से ही देर तक सोनेवाला हूँ, किन्तु, एक दिन, माघ की उस दाँता-किट-किटवाली भोर मे भी, उनका सगीत मुझे पोखरे पर ले गया था। अभी आसमान के तारो के दीपक बुझे नही थे। हाँ, पूरब मे लोही लग गई थी, जिसकी लालिमा को शुक्र तारा और बढा रहा था। खेत, बगीचा, घर—सबपर कुहासा छा रहा था। सारा वातावरण अजीब रहस्य से आवृत मालूम पडता था। उस रहस्यमय वातावरण मे एक कुश की चटाई पर पूरब मुँह, काली कमली ओढे, बालगोबिन भगत अपनी खँजडी लिये बैठे थे। उनके मुँह से शब्दो का ताँता लगा था, उनकी अगुलियाँ खँजडी पर लगा-तार चल रही थी। गाते-गाते इतने मस्त हो जाते, इतने सुरूर मे आ जाते, उत्तेजित हो उठते कि मालूम होता, अब खडे हो जायँगे। कमली तो बार-बार सिर से नीचे सरक जाती। मै जाडे से कँपकँपा रहा था, किन्तु, तारे की छाव मे भी उनके मस्तक के श्रमबिदु, जब-तब, चमक ही पडते।

गर्मियो मे उनकी 'सझा' कितनो ही ऊमसभरी शाम का न शीतल करती! अपने घर के आगन मे आसन जमा बैठते। गाँव के उनके कुछ प्रेमी भी जुट जाते। खँजडियो और करतालो की भरमार हो जाती। एक पद बालगोबिन भगत कह जाते, उनकी प्रेमी-मडली उसे दुहराती, तिहराती। धीरे-धीरे स्वर ऊँचा होने लगता—एक निश्चित ताल, एक निश्चित गति से। उस ताल—स्वर के चढाव के साथ श्रोताओ के मन भी ऊपर उठने लगते। धीरे-धीरे मन तन पर हावी हो जाता। होते-होते, एक क्षण ऐसा आता कि बीच मे खँजडी लिये बालगोबिन भगत नाच रहे है और उनके साथ ही सबके तन और मन नृत्यशील हो उठे है। सारा आँगन नृत्य और सगीत से ओत-प्रोत है!

बालगोबिन भगत की सगीत-साधना का चरम उत्कष उस दिन देखा गया, जिस दिन उनका बेटा मरा। एकलौता बेटा था वह! कुछ सुस्त और बोदा-सा था, किंतु इसी कारण बालगोबिन भगत उसे और भी मानते। उनकी समझ मे ऐसे आदमियो पर ही ज्यादा नजर रखनी चाहिए या प्यार करना चाहिए, क्योकि ये निगरानी और मुहब्बत के ज्यादा हकदार होते है। बडी साध से उसकी शादी कराई थी, पतोहू बडी ही सुभग और सुशील मिली थी। घर की पूरी

प्रबधिका बनकर भगत को बहुत–कुछ दुनियादारी से निवृत कर दिया था उसने। उनका बेटा बीमार है, इसकी खबर रखने की लोगोको कहाँ फुर्सत! किन्तु मौत तो अपनी ओर सबका ध्यान खीच कर ही रहती है। हमने सुना, बालगोबिन भगत का बेटा मर गया। कुतूहलवश उनके घर गया। देखकर दग रह गया। बेटे को आँगन मे एक चटाई पर लिटाकर एक सुफेद कपडे से ढाँक रखा है। वह कुछ फूल तो हमेशा ही रोपे रहते, उन फूलो मे से कुछ तोडकर उसपर बिखरा दिये है, फूल और तुलसीदल भी। सिरहाने एक चिराग जला रखा है। और, उसके सामने ज़मीन पर ही आसन जमाये गीत गाये चले जा रहे है! वही पुराना स्वर, वही पुरानी तल्लीनता। घर मे पतोहू रो रही है, जिसे गाँव की स्त्रियाँ चुप कराने की कोशिश कर रही है। किन्तु, बालगोबिन भगत गाये जा रहे है! हाँ, गाते-गाते कभी कभी पतोहू के नजदीक भी जाते और उसे रोने के बदले उत्सव मनाने को कहते। आत्मा परमात्मा के पास चली गई, बिरहिनी अपने प्रेमी से जा मिली, भला इससे बढकर आनद की कौन बात? मै कभी-कभी सोचता, यह पागल तो नही हो गये। किंतु, नही, वह जो–कुछ कह रहे थे, उसमे उनका विश्वास बोल रहा था—वह चरम विश्वास, जो हमेशा ही मृत्यु पर विजयी होता आया है।

बेटे के क्रिया-कम मे तूल नही किया, पतोहू से ही आग दिलाई उसकी। किंतु ज्योही श्राद्ध की अवधि पूरी हो गई, पतोहू के भाई को बुलाकर उसके साथ कर दिया, यह आदेश देते हुए कि इसकी दूसरी शादी कर देना। उनकी जाति मे पुनर्विवाह कोई नई बात नही, किंतु, पतोहू का आग्रह था कि वह यही रहकर भगतजी की सेवा-बदगी मे अपने वैधव्य के दिन गुजार देगी। लेकिन, भगतजी का कहना था—नही, यह अभी जवान है, वासनाओ पर बरबस काबू रखने की उम्र नही है इसकी। मन मतग है, कही इसने गलती से नीच-ऊँच मे पैर रख दिये तो। नही-नही, तू जा। इधर पतोहू रो-रोकर कहती—मै चली जाऊँगी तो बुढापे मे कौन आपके लिए भोजन बनायगा बीमार पडे, तो कौन एक चुल्लू पानी भी देगा? मै पैर पडती हूँ, मुझे अपने चरणो से अलग नही कीजिए! लेकिन भगत का निणय अटल था। तू जा, नही तो, मै ही इस घर को छोडकर चल दूँगा—यह थी उनकी आखिरी दलील और इस दलील के आगे बेचारी की क्या चलती?

बालगोबिन भगत की मौत उन्हीके अनुरूप हुई। वह हर वष गगा-स्नान करने जाते। स्नान पर उतनी आस्था नही रखते, जितना सत-समागम और लोक-दशन पर। पैदल ही जाते। करीब तीस कोस पर गगा थी। साधु को सम्बल लेने का क्या हक ? और, ग्रृहस्थ किसीसे भिक्षा क्यो मागे ? अत, घर से खाकर चलते, तो फिर घर पर ही लौट कर खाते। रास्ते भर खँजडी बजाते, गाते जाते, जहाँ प्यास लगती, पानी पी लेते। चार-पाच दिन आने-जाने मे लगते, किन्तु, इस लम्बे उपवास मे भी वही मस्ती ! अब बुढापा आ गया था, किन्तु टेक वही जवानीवाली । इस बार लौटे, तो तबीयत कुछ सुस्त थी। खाने-पीने के बाद भी तबीयत नही सुधरी, थोडा बुखार आने लगा । किंतु नेम-व्रत तो छोडनेवाले नही थे। वही दोनो जून गीत, स्नान-ध्यान, खेतीबारी देखना। दिन-दिन छीजने लगे। लोगोने नहाने-धोने से मना किया, आराम करने को कहा। किंतु, हँसकर टाल देते रहे। उस दिन भी सध्या मे गीत गाये, किन्तु, मालूम होता, जैसे तागा टूट गया हो, माला का एक-एक दाना बिखरा हुआ। भोर मे लोगोने गीत नही सुना, जाकर देखा, तो बालगोबिन भगत नही रहे, सिफ उनका पजर पडा है !
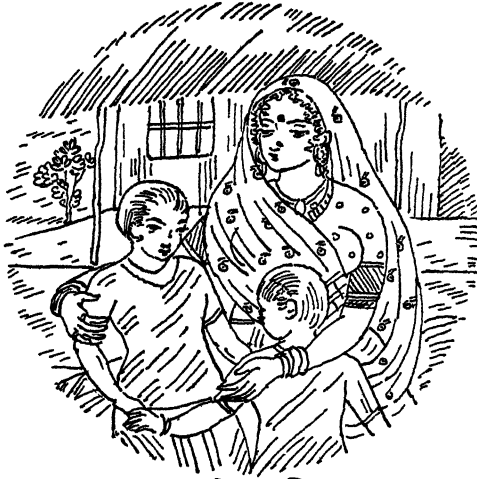
भौजी

मैं ज़िदगी मे पहले-पहल उस दिन पालकी पर बैठा था। भैया की शादी होने जा रही थी। म शहबाला था। पालकी पर भैया थे, मै था। चार मुस्तडे कहार हमे ढोये जाते। पालकी के भीतर चमकीले गुच्छे लटक रहे, ऊपर कारचोबी का काम चमचम कर रहा। आगे-पीछे बाजे बज रहे—ढोल, शहनाई, बाँसुरी, ताशे, सिघे। सबको मिलाकर एक अजीब ढग का शब्द हो रहा। बगल मे बलम लिये और पताके फहराते पायक चल रहे। हमारे बोदल ठाकुर हजाम हमपर चँवर डुला रहे। घोडे तो सवारो को लेकर सर-से आगे निकल गये थे, हाथी के घटे हम सुन रहे थे।

भैया सजे-सजाये थे। रगीन, चकमक कपडे पहने, सर पर जरी की टोपी दिये। उनके मस्तक पर चदन की अजीब छाप थी, आखो मे काजल था, एक रूमाल से वह, मसे भीगी हुई है जिनपर, अपने उन अधरो को ढाँपे हुए थे। न जाने भैया के मन मे क्या-क्या भाव उठ रहे थे? किन्तु म तो मस्त था अपनी इस पहली बरात-यात्रा पर, बाजे-गाजो पर। हाँ, कभी-कभी सोचता, भौजी को भैया से पहले तो मै ही देखूगा न!

शाम को बरात दरवाजे लगी। अच्छी बरात थी, अच्छा परिछावन हुआ। चूने से पुता हुआ भैया की ससुराल का वह खपरैल मकान कोलाहल से फटा जा रहा था। दरवाजे के भीतरी हिस्सो मे स्त्रियो का एक अच्छा-खासा झुड भैया का चुमावन कर रहा था। भैया के हाथो मे पान-सुपारी रखे गये, रुपये रखे गये, दही की छोटी मटकी रखी गई। भैया की इस आवभगत पर मेरे मन मे कुछ ईर्ष्या जगी ही थी कि एक युवती मेरे गाल पर दही लगाकर ठठा पडी—हँसी की एक तरग-सी उठ गई! सभी स्त्रियाँ—नही युवतियाँ—ठहाके मारकर जोर-जोर से हँस रही थी।

इस हँसी के साथ ही हमारे कानो मे अट्टहासो का एक हजूम आकर टकराया। दरवाजे के बाहरी हिस्से मे सरातियो और बरातियो मे दिल्लगियाँ चल रही थी। दोनो पक्ष जबानदराजी से नही, अट्टहासो के जोर से एक दूसरे को पराजित करने की कोशिशे कर रहे थे। बहुत देर तक हँसी होती रही, किन्तु अन्त मे हँसी-हँसी मे तनातनी हो गई—मक्खन मे मानो रेत मिल गई। बरात मे मेरे फूफाजी भी आये हुए थे। मेरे फूफाजी गोरे खूबसूरत नौजवान थे। चम्पारण मे उनका घर था। उस जमाने मे, उनके यहाँ सिर पर जुल्फ रखाने का रिवाज था। शौकीन नौजवान सिर पर लम्बे घुँघराले बाल रखते, जिन्हे कघी से दो हिस्सो मे बडी सुघराई से बाटे रहते। भैया की ससुराल का गाँव, सस्कृति के लिहाज से, बहुत पिछडा था, इसमें तो शक ही नही। फूफाजी के इस बाल पर किसीने भद्दा मजाक कर दिया। फूफाजी शरीफ थे, चुप रहे। किन्तु, हमारे पक्षवालो ने इसे बुरा मान लिया—उनके अपमान को अपने सर्वश्रेष्ठ आदरणीय अतिथि का अपमान समझा! बात-बात मे बात बढ गई—किसीने गुस्से मे कह दिया, बरात लौटा ले चलो। फिर क्या था, एक अजीब हुरदग मच रहा!

'चलो चलो' और 'घेरो घेरो' का दौरदौरा हुआ। घोडेवाले तो घोडे दौडाकर निकल गये, हाथी को लोगोने लट्ठ से घेर लिया। बराती-सराती इस तरह से मिल गये कि समझ मे नही आता था, कौन क्या है। हमारी पालकी एक अजीब ढग मे चक्कर काट रही थी। कभी एक पक्ष उसे दस गज आगे घसीट ले जाता, तो कभी दूसरा पक्ष दस गज पीछे। बिचारे कहार हक्के-बक्के बने हुए थे। कभी-कभी मै पालकी मे से ही लाठियो की खटखट सुनता। यह अजीब

बरात! पहली ही बरात का यह अजीब अनुभव! खैर, थोडी देर मे फिर शाति हुई। मेरे बाबा बडे ही शातचित्त व्यक्ति थे। उन्हीके प्रयत्न से शाति हुई। बरात जनवासे मे आई। जब सबलोग निश्चित हुए, बाबा को कहते सुना—"बुरी जगह पोते की शादी की! भगवान इनकी छाप से इनके बालबच्चो को बचाये।"

× × ×

भारतीय परिवार मे भौजी का वही स्थान है, जो मरुभूमि मे 'ओयसिस' का। धधकती हुई बालू की लू-लपट मे दिन-दिन, रात-रात चलते-चलते जब मुसाफिर दूर से खजूरो की हरी-हरी फनगी देखता है, उसकी आँखे ही नही तृप्त हो जाती, उसके शरीर का रोम-रोम पुलकित और उसकी शिराओ का एक-एक रक्त-बिन्दु नृत्यशील हो उठता है। कुछ क्षणो के लिए उसका सारा जीवन हरीतिमामय हो जाता है, खजूरो की उस झुरमुट मे वह मीठे फल और मीठा पानी पाता है। एकाध दिन वही रहकर वह आनन्द मनाता है, रक्त सचय करता है, फिर ताजगी और नई उमग लेकर आगे बढता है, आगे—जहा, फिर वही अनन्त बालुका-राशि है।

भारतीय जीवन मे यह जो रूखा-सूखापन सवत्र दीख पडता है, उसका कारण ढूढने मे अपना वक्त बर्बाद नही करूँगा। लेकिन, आप जिधर जाइए, इधर-उधर जिधर नजर दौडाइए, उसका राज्य-साम्राज्य पायेंगे। खिचा-खिचा चेहरा, रसहीन नयन, दुबला-पतला शरीर, मुर्झाया मुर्दा-सा मन—यही है भारतीय मानवता का साधारण ढाँचा। जो कम बोले, हँसे नही, मुश्किल से मुस्कुराये, हमेशा अपने इद-गिर्द मुहरम का वातावरण बनाये रहे, उसकी सज्जनता और शिष्टता की प्रशसा होती है। जिसका खेलकूद मे मन लगा, गाने-बजाने का शौक हुआ या नाट्य-प्रहसन की ओर जिसकी प्रवृत्ति हुई, बस, वह लोगोकी नजरो से गिरा। मानता हूँ, हम होली खेलते है, विजया मनाते हैं और दीवाली सजाते है, किंतु वे हमारी जिन्दगी के 'पासिंग फेज' है। हमारी ज़िन्दगी के साथ नत्थी है बारहमासा मुहरम—मनहूसियत, मुर्दनी!

'परिवार को ही लीजिए। पति अपनी पत्नी से बचे-बचे फिरने की कोशिश करता है—पत्नी की शर्म या सकोच का क्या कहना? चुपचोरी से मिलो, होठ-होठ से बाते करो और देखो, हँसी घूघट या

रूमाल से बाहर न निकले। बेटी-बेटे अपने पिता-माता के सामने हँसना-इठलाना बुरा समझते है। किसीके घर मे अगर कोई वृद्ध पितामह बचे है, तब तो मानो सबके मुँह पर ताला लग गया। जवान बहने भाई के सामने आने-जाने मे सकोच करती है, तो भाई भी उनसे अलग-अलग ही रहने की कोशिश करता है। छोटे भाई की पत्नी की छाया भी बडे भाई पर नही पडनी चाहिए। बहुएँ सास को देखते ही सहम उठती ह—जेठानी सास न० २ का काम करती ह। जो लडकी हँसती-खेलती, चुहले करती या तेजी से चलती है, उसकी जिन्दगी मुहाल—"तिरिया चचल अति बुरी।" क्या कवि गिरधरदास नही कह गये है?

इस तरह के निरानन्द और निस्पन्द जीवन मे भौजी की स्थिति—सचमुच अरब मे हरा-भरा नखलिस्तान। घर-भर मे और कही जो कुछ हो, जहाँ भोजी, वहा विनोद ओर व्यग्य हमेशा मँडराया करते है, रग जहाँ तरग पैदा करता है। किशोरी ननदे और नौजवान देवरो का जमघट—हाहा-हाहा, हीही-हीही—लपट-झपट, उठा-पटक। छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियाँ भी जहाँ अपनेको रस मे शराबोर करने से बाज नही आती।

भौजी आईं, मेरा घर भी आनन्दकुज बन गया। भौजी अभी बिलकुल किशोरी थी। उनके अधरो पर पूरा रस नही आया था उनके अग अभी पूरे भरे नही थे। लम्बी पतली छडी-सी। लेकिन सोने की छडी नही—इसे कहन मे मै सकोच नही करूँगा। उनका वण द्रविड-आय-रक्त के सुन्दर सम्मिश्रण का नमूना था। वण ही नही, गठन भी। उन्नत ललाट, भवे उठी हुई पतली-पतली। काले बालो मे घुँघरालापन—जब उन्हे खोलती, तब अजीब लहरदार मालूम होते वे—गिर्दाबो से भरी यमुना की धारा। नाक ललाट के नजदीक जाकर जरा चिपक-सी गई, किन्तु उसका अग्रभाग काफी सुन्दर, मोहक। होठ कुछ मोटे, किन्तु चिबुक का रसीलापन उनके इस किचित् ऐब को ढँक देता। और, उन होठो के भीतर जो पक्तिबद्ध सुन्दर, चम-कीले दाँत थे।—जब भौजी हँसती, सचमुच मोती झडने लगते। मुझे अपने बचपन मे तो ऐसा ही मालूम होता था।

थोडे ही दिनो मे भौजी ने सबको अपने स्नेह-सूत्र मे बाँध लिया, घर की बडी-बूढियो की भी वह प्रशमापात्र बन गईं। भौजी उनका सेवा-सत्कार करती, उनके आदेशो को सिर-आँखो पर लेती।

भौजी मे हुनर भी अच्छे थे। वह बढिया सिलाई करती, कसीदा काढती। जब खाना बनाने लगी, उनकी तारीफ और बढ गई। अच्छा खाना ही नही बनाती, बहुत ही बढिया ढग से परोसती। परोसने की भी एक कला होती है, यह भोजी ने सिद्ध कर दिया। भौजी की तारीफे होती, भैया की माँ, मेरी चाची, फूली नही समाती। ऐसी सुन्दर सुघड पतोहू पाकर भला कौन सास अपने को कृतकृत्य नही समझेगी?

भौजी का घर हम देवरो का केलि-भवन था। ज्योही गॉव की पाठशाला से छुट्टी मिली, हम दौडे-दौडे भौजी के घर मे घुसे। भौजी हँसकर हमारा स्वागत करती, जलपान कराती, सुपारी-लौग देती, जिनमे मुनक्के भी मिले होते। भौजी से गप्पे लडती, खेल होते। दिल्लगियाँ होती, गालियाँ होती, हाथापाई और धमाचौकडी भी। भौजी अभी किशोरी ही थी, हम कई देवर मिलकर उन्हे पराजित भी कर देते। कभी-कभी हम मौज मे आते, तो उस छोटे से घर मे ही आँख-मिचौनी भी खेल लेते। गृहस्थ का घर था, लम्बा-चौडा—अगल-बगल, जगह-जगह, अन्न रखने की मिट्टी की कोठियाँ पडी थी। एक कोने मे एक बडा-सा काठ का सदूक था। हम उन्ही की आड मे छिपते-छिपाते। एक दिन मुझे एक नई बात सूझी। मै एक कोठी पर चढकर घर की मोटी धरन पर जा छिपा। भौजी घर के कोने-कोने मे खोजकर हार गई। कोठियो की ओट मे, सन्दूक के पीछे और नीचे मै नही मिला, तो उन्होने कोठियो के पेट मे भी झाँकना शुरू किया। इसी समय मै धरन पर से अट्टहास कर उठा। वह चौकी, चकित हुई। तबतक मै कोठी पर होते उनकी गदन पर था, वह मुझे लिये-दिये खाट पर आ रही। हँसते-हँसते हम दोनो के पेट मे गुदगुदी लग रही थी!

उस साल जो पहली होली आई, उसकी बात मत पूछिए! वसन्तपचमी से होलिका-दहन तक, एक महीना दस दिनो तक, हम रग मे शराबोर थे। कहीसे खेलते-कूदते आये, या तो भोजी ने ही हमारे गालो मे हुदक्का दे दिया या हमने ही उनके गालो पर अबीर मल दी। खास होली के दिन, पहले तो हमने उन्हे खूब मिट्टी-पानी से चहबोच दिया और दोपहर के बाद तो बिल्कुल रग मे ही जैसे डुबो दिया हो। गॉव भर की ननदे और देवर आये थे, सबने अपने मन के अरमान निकाले। सबकी खातिर-बात भोजी ने उसी प्रेमभाव से की। सबकी ज़बान पर भौजी की तारीफ थी। लोग यह भूल ही

गये कि भौजी उस गाव से आई है, जिसकी निन्दा करते ही सभी बराती लौटे थे।

× × ×

इसके दस बरस बाद की बात है !

मै अब शहर मे पढता हूँ। कभी-कभी ही घर पर जाना होता है। घर भी वह पुराना घर नही रह गया। समूचा शीराजा बिखर चुका है। एक ही घर मे कई चूल्हे जल रहे है, आपस मे बॉट-बखरा हो चुका है। चाचा और भैया भी जुदा हो चुके है, भौजी भी हमसे अलग है। उनकी सास, मेरी चाची मर चुकी है, अब भौजी ही अपने घर की मालकिन है। उनकी गोद मे एक बच्चा है—मेरा प्यारा भतीजा।

लोगोके चूल्हे हो नही अलग हुए है, दिल भी जुदा हो चुके है। न वह प्रेमभाव है, न वह शील-स्वभाव। सारा घर कलह मे फँसा हुआ है। मद तो भर-दिन काम-धधे मे फँसे रहते है, अलग-अलग खेत-खलिहानो मे लगे रहते, किन्तु औरते तो एक ही आगन मे, रूटीन के दो-चार काम—खाना बनाना आदि—करती और बाकी समय मे हुक्का पी-पीकर झगडती। खाना बनाते समय भी उनके मुह बद रखने की तो जरूरत नही होती ! कलह-कलह-कलह ! सारा घर जैसे नरक बन गया। घर के कुछ बुजुग—जैसे बाबा या बडे चाचा —खाने आते, तो कुछ देर के लिए जैसे विरामसधि हो जाती, नही तो कलह का चर्खा दिन-रात चला करता, हॉ, निद्रा-माई भले ही उसमे कुछ घटो का व्यवधान कर दे !

और, इस कलह मे भौजी का स्थान—कुछ पूछिए मत ? खानदान और प्रारम्भिक वातावरण का क्या असर होता है, स्पष्ट देखिए। दस वर्षो तक जो बारूद राख के नीचे ढँपी थी, वह अचानक विस्फोट कर उठी है ! जिस मुँह से कभी फूल झडते, अब उससे बिष-बुझे तीर निकलते। भौजी की गालियॉ—अरे, कलेजे को भी जैसे आरपार कर जायँ। स्त्रियो का सम्मान होना चाहिए, भाभी का दर्जा माता का है—नई रोशनी की पुस्तको मे मैने पढ रखा था। वह मै, एक दिन धीरज खो बैठा। मै घर के इस कलह से दूर रहने की कोशिश करता, फिर मै भौजी के बच्चे को दिन-भर कधे पर लिये चलता। मैने कल्पना भी नही की थी कि भौजी के वाणो का निशाना मुझे भी होना पडेगा। किन्तु, यह क्या ? उस दिन मै खाने गया। देखा, आगन मे कुहराम मचा है। मैने धीमे से भौजी से

कहा—थोडी देर मेहरबानी कीजिए, फिर इस घर को नरक तो रहना ही है। बस क्या था, भौजी बरस पडी और एक-पर-एक ऐसे तीर ताक-ताककर कलेजे मे मारे कि मै आपे मे नही रहा। क्रोध मे पागल हो, बेहोशी मे क्या करने जा रहा था, यह तब पता चला, जब देखा, भैया मुझे पकडे हुए है और भौजी घर मे किवाड बद कर चीत्कार कर रही ह।

यह नही कि भैया मुझसे झगड रहे थे या भौजी पर मैंने हाथ छोडा था। मुझे अपनी ओर बढते देखकर पहले तो उन्होंने ताने-पर ताने दिये, जैसे मै उनसे रुक जाऊँगा, फिर भागकर घर मे बद हो गई और ज़ोर मे चिल्ला पडी, जैसे मैंने उन्हे पीटा ही हो। हल्ला सुनकर भैया दौडे हुए आये थे और अब मुझे आगन से बाहर ले जाने की कोशिश मे थे। निस्सदेह, मै अपने इस गुस्से पर शर्मिन्दा था। यदि भौजी ने अपना बचाव नही किया होता, वक्त पर भया नही आ गये होते, मुझसे कुछ अक्षम्य अपराध हो गया होता और इसका प्रभाव घर पर क्या पडता, कह नही सकता!

किन्तु, इस घटना से मैंने एक सबक लिया। ज्योही घर का सूत्र मेरे हाथो मे आया, मैंने अपने परिवार को उस घर से अलग करने का निश्चय कर लिया। अलग मकान बनाया और उसीमे चला आया। लेकिन, थोडे ही दिनो मे मैंने देखा, भौजी साधारण स्त्री नही ह। जब-तब वह वहाँ आकर भी अपने दिल का बुखार उतार जाती है। क्या गाँव ही छोड देना पडेगा, कभी-कभी मैं सोचता। और, शायद वही करता, अगर एक और बात नही होती! और, खास उसी बात के लिए आज ये पक्तियाँ लिख रहा हूँ। नही तो, अपनी स्वर्गीया भौजी की जगहँसाई के लिए अपनी कलम उठाने के पहले उसे तोड देना मै पसद करता!

वह कलम टूट जाय, जो निन्दा के लिए ही उठती है!

हमारे एक दोस्त है—एक सम्पादक दोस्त। कट्टर राष्ट्रीयतावादी और हम है समाजवादी। अत ऐसे मौके आते ही रहते ह कि हमसे नाराज होकर अपने पत्र के कालमो को हमे खरी-खोटी सुनाने मे सफ करते है। उनकी निर्मम आलोचनाएँ—उफ, हम तिलमिला उठते है!

किन्तु, यह देखा है, ज्योही सरकार ने हमपर प्रहार किया, या किसी दकियानूसी अखबार ने हमारी निन्दा की, बस,

उनकी आलोचनाओ की बैटरी उस ओर मुडी। मानो, उनकी दलील हो—ये हमारे है, हम इन्हे गाली दे या पुचकारे, भला तुम कौन होते हो इनकी ओर आँख उठानेवाले? आँख उठाओगे, तो उसे फोड दूगा। हाँ, कुछ इसी जोश-खरोश से वह टूटते है उनकी ओर! और, यह कहना तो फिजूल ही है कि व्यक्तिगत सुख-दुख मे वे इस तरह हमारे शरीक होते है कि यह कल्पना भी नही की जा सकती कि वह हमारे तीव्र आलोचक भी रह चुके ह!

मेरी भौजी की भी यही हालत थी।

वह हमे गालियाँ देती, हमसे झगडे करती, हमारी ज़िन्दगी हराम किये रहती। किन्तु, मान लीजिए, वह बक-झक कर रही हो कि उन्हे वुश करने या उत्साहित करने को कोई स्त्री बीच मे टपक पडी और हमे खरी-खोटी सुनाने लगी। फिर क्या, भौजी झट उसपर उलट पडी—"किसने तुम्हे कहा, मेरे बीच मे पडने को? वे बुरे है और तुम—हट मेरे सामने से। सूप हँसे छलनी को, जिसमे सहस्सर छेद! म तुम्हे नही जानती, डायन कही की। कितु, मुझपर तुम्हारा डायन-पन नही चलेगा, मै निकाल लूँगी आख, खीच लूगी जीभ! ओझा बुला के नगी नचवा दूगी—मेरे नैहर मे है एक ओझा कि देखते ही डायने कपडे खोल देती है। हा!—वे बुरे है, तो तुम्हारा क्या बिगाडा? मै समझ लूँगी उनसे। मै दबैल हूँ, जो किसीकी मदद खोजू? निकल, यहाँसे " योही क्या-क्या न बकने लगी। वह बेचारी भौचक, चुप, रफूचक्कर हुई, नही तो, हमसे झगडा छूट-कर उसीसे जा जुटा। और, इन जबान के झगडो मे कौन उनसे पार पाये?

फिर, ज्योही कोई व्रत-त्योहार आया कि पूरी विरामसधि हो गई। यो तो भौजी का बदन इस तरह का कसा हुआ था कि वह हमेशा ही अपनी उम्र से छोटी दीख पडती, चालीसवे वष मे भी चेहरे पर आब, दाँतो मे चमक, छाती पर उभाड, चाल मे मस्तानापन। किन्तु, व्रत-त्योहारो मे अपने को सजधज कर रखने मे कभी न चूकती। होली मे तो जैसे पागल हो उठती। अपने अधबयस—चिन्ता से जर्जर देवरो को खोज-खोज के बुलाती, हाथापाई करती, कीचड मे उन्हे नहलाती और स्नानादि के बाद उनपर अबीर और अबरख डालती। ऐसी एक भी होली की मुझे याद नही, जब भौजी के हाथ से मिट्टी-पानी अबीर-अबरख पाने और मालपुए-गुलगुले खाने का मौका

नही मिला हो। भौजी का बेटा सयाना हो चला था, लडकी भी काफी बडी हो चली थी। मैंने एक बार कहा—भौजी, अब इन बच्चो को होली खेलने दीजिए, हम-आप देखा करे। भौजी बोली—वाह बबुआ, जवानी ढल गई, तो क्या मन भी ढल गया? बच्चे अपनी होली खेले, हम अपनी खेलते है—उनके अपने दिल, हमारे अपने दिल! भौजी का रोआँ-रोआ हँस रहा था!

और, बच्चो से उनका कितना स्नेह रहता था?

उन झगडे-झमेलो के बीच भी, मेरे घर आती और मेरे बच्चो को उबटन और तेल लगा जाती, काजल लगा जाती, उन्हे गोद मे लेकर खेलाती-हँसाती। एक बार देखा, मेरे बच्चे को गोद मे लिये उसकी माँ मे झगड रही है, और ज्योही बच्चा रो उठता है, झट अपना स्तन उसके मुँह मे रख देती है!

एक दिन इसी तरह का उनका कलह मेरी रानी से चल रहा था कि मेरे बडे बच्चे के रोने की आवाज़ आई। झगडा छोड, यह कहती हुई दौडी—किसने मेरे बच्चे को मारा? बाज़-सी झपटती उस ओर गई और मैंने देखा! बच्चे को लिये दौडी आ रही है। बच्चा ज़ोर-जोर से रो रहा था, उसे बिढनी ने डक मारा था। बच्चे को मेरी रानी की गोद मे रख, दौडो-दौडी गई, किरासन तेल ले आई, गेंदे की पत्तियाँ ले आईं और जहाँ डक था, वहाँ लगा दिया—यही देहाती दवा थी। बच्चा थर-थर काँप रहा था। डक ज्यादा जहरीला था। उसे बुखार हो आया।

जब तक बुखार रहा, भौजी अपना और मेरा घर-आँगन एक किये रही। एक जून तो उनके घर मे चूल्हा तक नही जल सका। भैया हँसते हुए आये और मेरी रानी की ओर लक्ष्य कर कहा—"झगडा हो तो ऐसा, मेरा खाना बद हो गया।" भैया का भोजन मेरे ही घर पर हुआ।

तब तो, आज जब भौजी नही है, मेरी रानी अपने को उनके दोनो बच्चो की 'धम की माँ' समझती है और उन दोनो की शादियो में उसने क्या-क्या न किया? भौजी थी, तो कलह था, उनकी स्मृति ने उस कलह को स्नेह मे बदल दिया है।

मै जब-जब उस सपादक दोस्त के निकट जाता हूँ, इच्छा होती है, उनके चरण छू लूँ, उम्र मे मूझसे बुजुग भी ह । और, जब-जब भौजी की याद आती है, दोनो हाथ मिलकर मेरे सिर से जा लगते है––प्रणाम भौजी !

परमेसर

उस दिन अपने दफ्तर मे कागज के ढेर और काम की भीड मे बैठा था कि श्रीराम गॉव से आया और कुशलक्षेम पूछने पर बोला—परमेसर बहुत बीमार है, लबेजान, जाने, बेचारा बचता है कि नही !

परमेसर मेरी पट्टीदारी का ही एक व्यक्ति है, लेकिन न तो इतनी निकटता उससे है, दूसरे उसमे ऐब भी ऐसे ह, जिनको देखते हुए, उसके लिए कामधाम छोडकर दोडा-दौडा बेनीपुर जाने की कल्पना भी नही की जा सकती थी। परमेसर फिजूल-खच है, आवारा है। सारे घर को उसने बरबाद कर दिया। कज पर कर्ज किया, पुश्तानी ज़मीन बेच ली और अत मे, उस साल, उसने अपनी बीवी के गहने तक बेचकर गॉजा मे फूँक दिये। उसने मेरे परिवार की इज्ज़त मे बट्टा लगाया है, अपने घरवालो को सकट और कष्ट मे डाला है, खुद भी अब फटेहाली मे मारा-मारा फिरता है। कम्बख्त मरे, ऐसे आदमी का मरना ही ठीक—मैंने इस तरह के तक से अपने मन को सन्तोष दिया और फिर काम मे लग गया। किन्तु, ज्योही शाम हुई, काम की भीड छँटी, थोडा निश्चिन्त हुआ, परमेसर का ध्यान फिर

आया और रात की ही स्टीमर से घर के लिए रवाना हो गया।

यही है परमेसर का घर। पुराने चौपार मकान के बदले यह राममँडैया। एक ही राममँडैया—वही चौकाघर, भडारघर, शयनघर। उसीमे उसकी माँ रहती और उसकी पत्नी भी, भाई भी, बालबच्चे भी, बूढे पिताजी उसीके ओसारे के एक कोने मे, और, दूसरे कोने मे यह परमेसर, पुआल पर पडा है। एक पुराने फटे-चिटे दोहर से हवा के लिए आड कर दी गई है। उसे भीषण रोग ने पकडा है—अतिसार! १०४ डिग्री का बुखार और दस्त-पर-दस्त हुए चले जा रहे है। सारा वातावरण गदगी और बदबू से ओत प्रोत। तोभी बेचारी माँ सेवा मे लगी, बूढा बाप हाय-तोबा मचाये हुए और बेचारी पत्नी एक कोने मे सिमटी, सिकुडी, सहमी, सिसकती!

अतिसार क्यो हुआ?—इधर खाने-पीने मे दिक्कत थी। कई जून का भूखा था। एक सज्जन शकरकद खोद रहे थे। उनके पास हँसते हुए गया और हँसी-हँसी मे कच्चे शकरकद पेटभर ठूस लिया! शकरकद पचे नही, दस्त खुल गये, बुखार दौड आया। वह अर्द्धचेतन पडा है, कभी-कभी मुश्किल से आँखे खुलती है। आँखे—जो बिल्कुल धँसकर कोटर नही, गह्वर मे चली गई है।

तम्बीह का वक्त नही था। निकट के आयुर्वेदीय अस्पताल के वैद्यजी को बुलवाया, उन्होने देखा, दवा दी, किन्तु धीरे से मुझे कहते गये, लक्षण अच्छे नही है, रात निभ जाय, तो कोई आशा की जाय। वह रात नही निभी—परमेसर चलता बना—घरवालो को रुलाकर, गाववालो को अफसोस मे डालकर!

× × ×

गाँववालो को सिर्फ उसी दिन अफसोस नही हुआ। जब-जब होली, दशहरा, दिवाली, छठ या कार्तिक पूर्णिमा आती है, परमेसर के लिए उसाँसे ली जाती है।

निस्सदेह परमेसर आवारा था, किन्तु, उसकी आवारागर्दी एक ऐसी आग थी, जो खुद को ही जलाती है—खुद को जलाती है, लेकिन, दूसरे को रोशनी और गर्मी ही देती है। बचपन मे हम सबके साथ पढने बैठा, तेज था, किंतु, पढा नही। बडा हुआ, गोरा, छरहरा नौजवान। एक अच्छे घर मे शादी हुई उसकी। कालक्रम से बच्चे भी हए। उसके पिता बिल्कुल सुधुआ थे, अत सयाना

होते ही घर का मालिक बन बैठा। घर की बागडोर हाथ मे आते ही मन की बागडोर ढीली कर दी—मन की, हाथ की। रोज पेठिया जाता, जब-तब शहर जाता, हर मेले मे जरूर ही जाता, मौका मिले तो तीरथ की दौड भी लगा आता। उसके ही लायक कुछ दोस्त भी मिले उसे। गॉजे के दम लगने लगे। पैतृक सपत्ति स्वाहा होती गई। एक दिन ऐसा भी आया कि परमेसर बिल्कुल अकिंचन हो बैठा।

किन्तु, यह अकिंचनता उसके स्वभाव मे परिवर्त्तन नही ला सकी। गॉजा छूटा, भाँग की चिलम जलने लगी। मेरी ओर भॉग को कोई पूछता नही, इधर-उधर सब जगह उसका जगल-सा लगा रहता है। परमेसर जगल से खूब दलदार पत्तियाँ चुनकर लाता, सुखाता, सँजो-कर रखता, खुद पीता, यारो को पिलाता। उसके दरवाज़े पर हमेशा एक ढोलक और कई जोडे झाल बने रहते। शाम हुई नही कि परमेसर की राममँडैया गुलजार हुई। बारह मास, चौबीस पख, उसके दरवाज़े पर मगल मचता। भले ही कई-कई दिन तक भरपेट भोजन नही नसीब हुआ हो, किन्तु, इससे गाने-बजाने मे कोई अतर नही आता। रसिक स्वभाव! दरवाज़े पर कुछ फूल के पेड जरूर लगे होते और एक बडा, गॉव भर से ऊँचा, महावीरी झडा हमेशा लहराता रहता वहॉ। गाव के बडे-बूढे उसकी निन्दा करते, भत्सना करते, गालिया तक देते, किन्तु, बच्चो और नौजवानो का झुड हमेशा उसके आगे-पीछे दौडा फिरता।

खेत मे 'तोरी' फूली कि परमेसर की 'होरी' पहुॅच गई! सरसो का पीला फूल देखते ही परमेसर ने होली गाना शुरू कर दिया। और, जिस दिन बसतपचमी हुई, उस दिन से तो मानो उसे बद-मस्तियो की लाइसेस मिल गई। पेट काट-काटकर पैसे बचाकर रखता इन दिनो के लिए! डफ पर नया चमडा चढवाया गया, झाल मे नई डोरियॉ लगाई गई, ढोलक पर नया गद दिलाया गया। शाम से ही जो होली शुरू होती, आधी रात के बाद भी हाहा-हूहू से गॉव मे कोलाहल मचा रहता।

और, ऐन होली के दिन?

भोर से ही परमेसर के दरवाज़े पर तैयारियॉ देखिए। भैस का दूध कहीसे किसी तरह ऊपर करता, चीनी न हो, तो गुड ही सही! बडी सिल पर भॉग की पत्तियॉ लोने-के-लोने पीसता, पिसवाता।

उन्हे पानी, दूध और गुड मे मिलाता, खुद छक-छककर पीता, यारो को पिलाता ! फिर उन्हे लेकर गाव मे निकलता — चाहे गुरुजन हो या छोटे बच्चे—जो उसके सामने आये, उनपर कीचड पडी। कोई नाराज हो या गालिया दे, परमेसर को क्या परवा ? होली के दिन की गालियाँ तो आशीर्वाद होती है न ? गाँव-भर को भथभूथकर वह सरेह मे निकलता। जो पथिक उस दिन मेरे गाँव की सीमा से निकले, उनकी तो दुगत ही समझिए। कीचड, गोबर, पानी—बस, सिर से पैर तक उन्हे नहलाया गया। इस कीचड-उछाल मे अजब धमाचौकडी मचती। कोई इधर भागा जा रहा, कोई उधर दौड रहा—ललकारे दी जा रही, हँसी के फव्वारे छूट रहे। इस तरह दुपहरिया आई। तब सब पोखरे मे पहुँचे। वहाँ खूब उभक-चुभक हुई। तब घर !

भोजन करके परमेसर की होली-मडली तैयार हो गई। परमेसर अपने हाथ मे डफ लेता। नशे के मारे आखे लाल बनी हुई और अबीर से उसके चेहरे और शरीर ही की क्या बात, सिर के बाल तक लाल बन रहे। बीच मे परमेसर का डफ—चारो ओर झाल, करताल, झाझ लिये गाने-बजानेवाले, जिन्हे अपार दशक घेरे रहते। परमेसर क्या सिफ डफ ही बजाता ? निस्सन्देह उसके हाथ ताल पर डफ पीटे जाते, किन्तु, उसके तो अग-अग मानो गा-बजा रहे ! उछलता कूदता, नाचता, हाहा करता—परमेसर केद्र मे ही नही था, वह इस साजसज्जा का पूरा केद्र-बिदु था। गाँव के धनी, गरीब एक-एक के दरवाज़े पर गाता, बजाता, स्वाँग भरता, अन्त मे वह शिवमन्दिर जाता और वहाँसे बडी रात बीते चैत गाते लौटता !

परमेसर के बाद भी मेरे गाँव मे होली होती है, किन्तु वैसा रग कहाँ जम पाता ?

योही दसहरे की दसो रात मे वह गाँव मे कोलाहल मचाये रहता। मेरे गाँव मे इन दसो रात मे ओझा लोगो द्वारा भूत खेलाने का रेवाज था। अब करीब-करीब खतम हो रहा है। किन्तु, इस मृत-प्राय चलन मे परमेसर ने मानो जान डाल दी थी। अपने दरवाजे पर गाँव-भर के ओझो को नेवता देकर बुला लेता। बीच मे धूप जल रही है। धूप के सामने सातो बहन दुर्गा के नाम पर सात जगह चावल, सेदूर और ओडहुल के फूल एक पक्ति मे रख दिये है। उस पक्ति के आगे एक बेत की लाल छडी है। ओझा लोग गीत गा रहे है,

झाँझ बजा रहे ह्। गीत का स्वर उठान की आखिरी चोटी पर पहुँचा नही कि उनमे से किसी-न-किसी के शरीर पर कोई भूत—ब्रह्म, चुड़ैल, देवी आदि कई कोटि है उनके—आया। भूत आते ही ओझा शरीर हिलाने लगे, पहले धीरे-धीरे, फिर जोर-जोर से। शरीर हिलाते-हिलाते बेत उठाई और उस बेत से अपने शरीर पर तड-तड लगे मारने । ओझा बेत से शरीर को पीटे जा रहे है और लोग कह रहे है—देखो महाराज, घोडा कमजोर है, ज्यादा पिटाई मत करो। बडी आरजू-मिन्नत के बाद भूत महाराज को दया आई, तो छडी फेक ओझा केहुनी जमीन पर पटकने लगे—यहाँ तक कि जमीन खोद दी। बत्ती जलाके मुँह मे चबा जाना, हाथ पर धधकती आगवाली ढकनी रख लेना आदि करतब भी दिखाये जाते, और अत म 'भेटी' ठीकी जाती—मन की बात कहकर, उसकी पूर्त्ति के उपाय बताकर भूत चला जाता। भूत आते ही दशक-मडली मे खलबली मच जाती—अजब-अजब प्रश्न किये जाते, चीजे माँगी जाती। परमेसर के हाथ मे मानो भूतो का सूत्र हो—जिस ओझा पर जिस भूत को चाहे वह मँगा सकता था।

कभी-कभी वह खुद अपने पर भी भूत बुलाता। उसके भूत अजब किस्म के होते, नये हावभाव करते, नई बोलियाँ बोलते और उनके आशीर्वाद ऐसे होते कि सुनते ही लोग लोटपोट हो जाते। प्राय परमेसर के भूत से ही मजलिस खत्म होती—क्योकि वह खॉव-खॉवकर लोगोपर—खासकर बच्चो पर टूटता। भगदड मच जाती—हँसते-हँसते, परमेसर की यशोगाथा गाते, लोग घर आते।

दीवाली कोई सजावे, लुकाठी भाँजने का इन्तजाम वह करता। बाँस के कोपलो के सूखे बोकले इकट्ठे कर बाँस की ही कमाचियो मे उन्हे गूथ लेता और शाम होते ही उनमे आग लगाकर अपनी मडली के साथ समूचे सरेह को जगमग कर डालता। योही होली के होलिका-दहन का प्रबध भी वही करता। गाव-भर के पुआल, डठल आदि इकट्ठा कर एक महान टीला बना देता। जो लोग सीधे नही देते, उनकी चीजे चोरी भी करा लेता और उसी-पर डाल देना। प्राय वह खुद ही उसमे आग लगाता और तरह-तरह के कुतूहल से उसे जलाता, बुझाता।

कार्तिक-पूर्णिमा—बस, परमेसर अपनी मडली के साथ गगा-स्नान को चला। स्टेशन पर आया, टिकट कौन कटाता है! जब

पैसे रहे, तो भी टिकट कटाना उसकी शान के खिलाफ था, अब तो पैसे प्राय रहते ही नही। रास्ते भर टिकट चेक करनेवालो से आँखमिचौनी हुई जा रही। स्टेशन पर पहुँचने के पहले ज्योही गाडी धीमी हुई कि रफूचक्कर। कदाचित स्टेशन पर पहुँच गया, तो तार के घेरे फाँद-फूँदकर निकल चला। कभी धक्कमधुक्की भी हो गई, तो कभी मारपीट भी कर ली। परमेसर के खयाल से म्लेच्छ को पैसे दे देने के बाद गगास्नान का कोई महत्त्व नही रहता!

पलेजाघाट से लेकर सोनपुर के मेले तक परमेसर क्या-क्या न तमाशे करता? कभी सिर पर त्रिपुड चन्दन किये, गगा किनारे, यह स्नानार्थियो को सुफल पढा रहा है। कभी मडली के बीच मे परमहस साधु बना बैठा, लोगोकी मनोकामना सिद्धि के लिए, भभूत बॉट रहा है! कभी वह ओझा बना कितनी ही कुल-कामिनियो की गोद भर रहा है! इन तमाशो से जो पैसे मिल गये, मडली-भर मे मिठाइयॉ बँटी, गाजे उडे। इन तमाशो मे प्रवचना का भाव कभी नही था, था तो सिफ मनोरजन का, आमोद-प्रमोद का। प्रवचना तो उसमे थी ही नही—अगर यह होती, तो बेचारे की यह दुगत क्यो होती? वह उनलोगों मे था, जो दुनिया मे हँसने-हँसाने के लिए ही आते है और हँसते-हँसाते ही चल देते है।

× × ×

इधर, आखिर मे, जब उसकी हालत बडी खराब हो गई थी, एक दिन– मैंने उसे बुलाकर बहुत समझाया था—क्यो जी, यह क्या कर रहे हो? अरे, अपनी ओर नही देखो, अपने माता-पिता की ओर तो ध्यान दो, यह भी नही तो, अपने बाल-बच्चों की ही जिम्मेवारी समझो। तुम कोई कुदजहन आदमी नही, तुममे काफी अक्ल है, बुद्धि है—उससे काम लो। खेती-बारी मे मन नही लगता, तो कोई दूसरा रोजगार देखो, शहर मे कोई छोटा भोजनालय ही खोल दो, खा-पी के कुछ पैसे बच ही जायँगे। मैंने कई ऐसे आदमियो के उदाहरण भी दिये, जो ऐसे छोटे-छोटे रोजगारो से अपनी और अपने परिवार की परवरिश चला रहे थे। उस समय तो कुछ नही बोला—कुछ दिनो के बाद सुना, परमेसर ने अखाडाघाट पर एक भोजनालय खोला है और इस भोजनालय के लिए, उसके पास—नही-नही, उसकी पत्नी के पास—जो आखिरी धन—सोने का कठा था, उसे बेच लिया है!

कठा बेचने की बात सुनकर मैं चौका, किन्तु, फिर सोचा, शायद यही प्रेरणा-रूप मे उसे उन्नति की ओर ले जाय। ऐसे उदाहरण भी मिलते है। किन्तु, मेरी यह धारणा गलत निकली। थोडे दिनो तक तो उसका कारबार अच्छा चला, किन्तु, हाथ मे पैसे आते ही फिर भाग की जगह गाँजे ने ले ली और एक कारण तो उसने अजीब ही बतलाया —

"चाचा साहब, खिलाना तो बडा अच्छा लगता है, किन्तु, खिलाने-पिलाने के बाद, कटाह की तरह, पैसे के लिए पीछे पड जाना, यह तो बडा कठिन काम है। इसमे शक नही कि कुछ पैसे मैंने गाँजे मे फूँके, किन्तु मेरे ज्यादा पैसे तो खानेवालो के जिम्मे रह गये! अच्छा, क्या हुआ—उस जन्म मे वे ताड के पेड होगे और म पीपल बनकर उनकी छाती पर पैदा होऊँगा! खूब वसूल करूँगा, उनसे। कैसा—चाचाजी?" वह हँस रहा था, खिलखिल, खलखल।

चाचाजी गुस्से मे! बोले—"और, उस बेचारी का कठा भी तुमने बरबाद कर दिया!"

"कठा—कठा क्या होगा? अब तो आप ही कहते है, सबलोग बराबर होगे न? सबके कठे होगे, तो क्या आपलोग उसके लिए नही बनवा देगे? और, आपलोगो का राज न भी हो, तो यह करिया मुसहर की जोरू कौन कठा पहनती है? चाचाजी, सुख मिलता है या तो तकदीर से, या मेहनत से। मेहनत मुझमे बनती नही, तकदीर अच्छी नही है—फिर, भाग पीकर हाहा-हीही करना और इसी हँसी-खुशी मे जिन्दगी गुजार देना—बस, यही मुझसे होगा, मेरे लिए चिन्ता मत कीजिए "

मैं गुस्से मे चूर उसे कुछ कहने ही जा रहा था कि वह धीरे से उठा और हँसता हुआ—मालिक ह सियाराम, सोच मन काहे करे—गाता चलता बना! मानो मेरी बुद्धिमानी पर व्यग्य कसता!
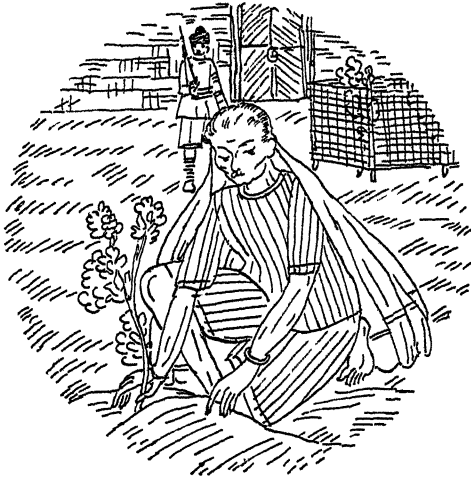
बैजू मामा

आज भी, मेरा खयाल है, अगर आप पटना जेल मे जाइए और किसी पुराने कैदी, वाडर या जमादार से बैजूमामा के बारे मे पूछिए तो वह एक अजीब ढग की हँसी हँसकर आपको उनकी एक-दो कहानी जरूर सुनायेगा। बैजूमामा पटना जेल की एक खास चीज है। लगभग तीस वर्षो से वह जेल को आबाद किये हुए ह। १९३०, ३२, ३७, ३८, ४०, जब-जब मै पटना जेल पहुँचा हूँ, तब तब उनके शुभ दशन हुए है, उनसे बाते की है, खूब हँसा हूँ और हर बार की हँसी के बाद एक अजीब करुणा का अनुभव मैने किया है।

जब मैने कहा कि वह तीस साल से इस जेल को आबाद किये हुए है, तब आपने यही सोचा होगा, या तो वह कोई 'दामुली' कैदी है—खून करके आये है या डाका डालके आये है। या कोई शोहदा जनाकार है! या कम-से-कम आदतन अपराधी तो जरूर है! लेकिन मै दावे के साथ इन सभी आरोपो का खडन कर सकता हूँ। उनके चेहरे या चाल-ढाल से, कहीसे भी उनमे आप खूँखार या मुजरिम होने का कोई चिह्न पा नही सकते। तो भी वह जेल मे है और तीस वर्षों से है। कैसा आश्चय?

वह हर बार एक ही अपराध मे आते है, जिसमे आज तक एक बार मे दो साल की कैद से ज्यादा की सजा उन्हे नही मिली है। ज्योही छूटकर जाते है, उसी अपराध को दुहराते है और फिर

एक दो साल की सजा लेकर पहुँच जाते है। वह अपराध क्या है ? —चोरी ! आप सोचते होगे, जरूर वह पक्के चोर हो गये होगे, उन्होने गैंग बना लिया होगा, बडे-बडे हाथ साफ करते होगे, जैसाकि जेल मे एक–दो बार आकर साधारण चोर भी उस्ताद बन जाता है। लेकिन, अगर वह इस कोटि के चोर होते, तो मुझे उनपर लिखने की जरूरत नही होती ! मुझे अपराध-शास्त्र से कोई दिलचस्पी नही कि उनपर अनुसधान करता !

बैजूमामा एक अजीब चोर है। चोरी मे तीस साल की सजा वह भुगत चुके, लेकिन अभी तक तीस रुपये वह एक बार कभी नही पा सके, नही, तो, उनके ही कथनानुसार, आप उन्हे जेल मे नही पाते । और 'कबीर' के इस दोहे के अनुसार —

सिहन के लेहडे नही, हँसन की नहि पाँत,
लालन की नहि बोरियाँ, साधु न चले जमात—

उन्होने आज तक कोई जमात भी नही बनाई ! तो वह क्या सचमुच साधु है ? छी –छी , मै एक पुराने चोर को साधु कहूँगा ? ऐसी, इतनी बडी, गुस्ताखी करके मै साधु-समाज मे कौन-सा मुँह दिखला सकूगा !

× × ×

मै ऊँची श्रेणी का कैदी था, इस जेल मे ऐसे लोगोकी सुख-सुविधा की कोई खास जगह नही होने के कारण, मुझे अस्पताल मे ही रखा गया था। एक दिन मै अस्पताल की ही छोटी-सी बगीची के बीच, छोटे-से आम के पेड की छाया मे बैठा कलम घिस–घिस कर रहा था, कि देखा एक बूढा मरीज़ कम्बल ओढे उस ओर आ रहा है। वह धीरे-धीरे आया, कमजोरी के कारण डगमगाता हुआ ! फूल की क्यारी मे बैठ गया—फिर एक बार हसरत की निगाह से चारो ओर उसने देखा और कम्बल के नीचे से एक खुरपी निकाल वह धीरे-धीरे इधर-उधर उग आई घासो की निकौनी करने लगा ! थोडी देर ही वह निकौनी कर पाया होगा कि अस्पताल का मेट हाथ मे दवा की प्याली लिये उसे ढूढता हुआ वहाँ पहुँचा और उसे निकौनी करते देख बौखला उठा—मामू, तुम इस बार मरके रहोगे !

बूढा कैदी सिटपिटा गया। खुरपी छोड दी, कम्बल सम्हाला, दवा के लिए हाथ बढाया। हाथ काँप रहा था, लडखडाई जबान से उसने मिन्नत के शब्दो मे मेट से कहा—माफ करना भैया, दवा दो !

"दवा दू, खाक ? दवा खाकर क्या होगा ? तुम्हे क्या पडी है भला, जो खुरपी लेकर आ बैठे यहाँ ? जाय भाड मे यह बगीचा।"

"हे, हे, यह क्या कहते हो ? देखते नही, चार दिन मै बीमार रहा की इतनी घासफूस उग आई।"

"मामू, तू कैदी है, या सरकार का बैल ? पुराने कैदी की शान तूने धूल मे मिला दी ? क्या हम जेल मे काम करने आते है ?"

"मेट भैया, तुम ठीक कहते हो। बिल्कुल ठीक। जेल का सत्यनाश हो, हाकिमो का सत्यानाश हो। लेकिन प्यार, मै क्या करूँ ? न मुझसे बैठा जाता है, न इन फूलो की दुगत देखी जाती है। माफ करो, दवा दो—उफ, जाडा लग रहा है।"

बीमार कैदी की आँखो मे अब आँसू थे—ऐसे आँसू, जो जबदस्ती आँसू वसूल करते ह! मेट की आँखे भी डबडबा आई। तुम इस बार मरोगे, मामू!—कहकर उसने दवा की प्याली उसके हाथ मे दी। हाथ के कम्पन से कुछ दवा उसकी ठुड्ढी पर गिर गई, कुछ गले के नोचे गई। दवा पीकर उसने एक बार थूक फेकी और फिर बैठा नही रह सका, कम्बल ओढे, वही लुढक गया। थोडी देर के बाद वह फिर उठ बैठा। एक बार फिर उसने सभी पेड-पौधो पर हसरतभरी निगाह डाली और खुरपी हाथ मे ले अस्पताल की ओर चलता बना। इस बार जाते समय मैने गौर से उसकी ओर देखा—साठ साल की उम्र, ताँबे का रग, चेहरे पर झुर्रियाँ, बाल एक-एक सफेद, लेकिन इस बीमारी मे भी, जब पैर डगमगा रहे थे, वह तनकर जा रहा था, जैसे वह एक नौजवान हो!

× × ×

स्वभावत मै उस कैदी की ओर आकृष्ट हुआ। वह बैजूमामा थे। इस जेल के कैदियो के मामा, वार्डरो के मामा, जमादारो मामा—यो कहिए, तमाम पटना जेल के मामा!

अब मै बैजूमामा के साथ घुलमिल गया। उनकी बीमारी अच्छी हो गई। वह अपनी खुरपी-कुदाल से दिन-भर झगडते रहते और मै उन्हीकी बसाई बगीची मे एक आम के पेड के नीचे बैठ-कर उनकी मेहनत-मशक्कत देखता रहता। जब वह थक जाते, मेरे पास आ जाते। न वह बीडी पीते, न खैनी खाते। मै उनका क्या स्वागत करता भला ? जेल का सबसे बडा स्वागत-सत्कार इन्ही दो नायाब

चीजो से है। खैर, वह मेरे नजदीक पहुँचकर मुझसे 'सुराज' और 'गान्हीबाबा' के हाल पूछते और मै धीरे-धीरे उनकी रामकहानी जानने की कोशिश करता। धीरे-धीरे—क्योकि देखा, बैजूमामा अपनी जिन्दगी को बन्द किताब बनाकर ही रखना चाहते। साधारण मुजरिमो की तरह अपनी कहानो बढा-चढाकर कहने की बात तो दूर रहे, जब बडी खोद-खाद के बाद कुछ कहते भी तो कहते-कहते शर्मीली लडकी की तरह बीच मे ही रुक जाते और उनके झुर्रीदार गालो के रग मे भी कुछ तब्दीली आ जाती! कभी-कभी झुँझलाकर कहते—बाबू, यह पाप की कहानी क्या सुनते है आप? चोर-बदमास की बाते कही सुनी जाती है?

लेकिन, उनकी जिन्दगी की एक-एक कडी आखिर मैंने जोडी ही।

बैजूमामा इसी पटना जिले के बाढ सब-डिवीजन के ह। एक साधारण किसान थे। एक बार हालत ऐसी हो गई कि बैल के अभाव मे उनकी खेती रुक गई। कहीसे तीस रुपये कज लिया और गगा के उस पार बैल खरीदने चले—सुन रखा था, उस तरफ अच्छे बैल मिलते ह और सस्ते। गगा पार कर बैल की कई पेठियो मे गये, क्योकि कम-से-कम पैसो मे अच्छी-से-अच्छी चीज चाहते थे। इसी दौडधूप मे उनके दिमाग पर शैतान का कब्जा हुआ। उन्होने पाया कि उस तरफ लोग गर्मियो मे बैलो को घर के बाहर ही बाँध देते है और उनकी कोई खास रखवाली नही करते। पटना जिले मे ऐसा नही होता है। शैतान ने उनके कानो मे धीरे से कहा—बैजू, क्यो न इनमे से एक बैल रात मे खोल लो और गगा पार कर जाओ? यह बात उन्हे भा गई—बैल भी हो जायगा, पैसे भी बच जायँगे। खेती भी निभ जायगी, कज भी नही रहेगा। लोग पूछेगे, तो कह दिया जायगा, बैल मोल लिया है! बस, हल्दी लगी न फिटकिरी, रग चोखा—बैजूमामा तैयार हो गये!

एक रात एक गाँव से एक अच्छा-सा बैल खोलकर वह चल पडे—गगाजी की ओर। जिस समय बैल खोलने गये थे, उस समय तो हाथ ही काँपे थे। अब, जब दिन उठ आया, उनका समूचा शरीर काँप रहा था—जैसे कँपकँपी लग गई हो। ठीक से पैर नही उठते। जितने लोगोको देखते, मालूम होता, सब उन्हीकी तलाश मे है। हर आँख मानो उन्हीको घूर रही, हर उँगली मानो उन्हीकी ओर

उठ रही, हर कानाफूसी मे उन्हीकी बात हो रही। दिन ढलने पर वह एक दिहाती सराय के निकट पहुँचे। उनकी नस-नस ढीली पड गई थी। भूख और थकावट से परीशान थे। बैल को एक पेड से बाँध, दुकानदार से लोटा-डोरी ले, कूएँ पर गये। हाथ-मुह धोया। हाथ-मुँह धो ही रहे थे कि देखा, एक दफादार उसी दुकान पर आकर बैठ गया है! —ऐ, क्या मेरी ही तलाश मे है? क्यो न बैल को छोडकर भाग चलू? तब तो और भी पकड जाऊँगा! क्या मुझसे भागा जायगा? फिर, ऐसा बैल इस जिन्दगी मे क्या फिर नसीब हो सकता है? नही–नही, वह मेरी तलाश मे नही है।

इस तरह सोच-विचारकर वह दुकान पर आये। दुकानदार से दो पैसे के चने लिये—मुँह मे रखते थे चना और पेट मे फूट रहा था लावा। चने माँगने के समय इनकी मगही बोली सुनी थी, इसलिए जब चने खा रहे थे, दुकानदार ने इनके घर वगैरह के बारे मे स्वभावत ही पूछना शुरू किया ओर घर के बाद बैल की चर्चा आई। बीच मे ही दफादार पूछ बैठा—यह बैल तुम्हारा है? अच्छा बैल है! कितने मे खरीदा? यह सवाल, और बैजूमामा कह रहे थे, सुनते ही उनके होश गायब हो गये। दो-तीन सवाल और, और वह दफादार कूदकर इन्हे पकड चुका था—चोट्टा कही का! यह बैल चालीस रुपये का है और बाजितपुर की पेठिया कही बुध को लगती है?

बैल भी गया, उनके पैसे भी छिन गये और पिटाई भी कम नही लगी। समस्तीपुर के मैजिस्ट्रेट ने एक साल की सजा दी। सजा काटकर निकले, तो फिर कौन-सा मुँह दिखाने घर जाते!—"बस मे कलक लगाया—"

बस मे कलक लगाया?—बैजूमामा आप कौन जात है, मैंने अचरज मे आकर उनसे पूछा। क्योकि उनका चेहरा बताता था, किसी अच्छे घर के वह है। इस सवाल से वह घबरा गये। फिर कहा—जेल-टिकट मे देखिए न? दुसाध लिखा है!

"जेल-टिकट मे जो–कुछ लिखा हो, आखिर आप है कौन जात? दुसाध तो आप हो नही सकते?"

मेरे बार-बार पूछने पर बैजूमामा कुछ उद्विग्न-से हो उठे। उनके चेहरे की झुर्रिया और सघन हो गई। "चोर का क्या नाम–धाम या जात-पाँत? चोर, बस चोर है बाबू! लेकिन हाकिम के सामने तो

कुछ बताना ही पडता है, बस कुछ लिखा दिया!" —उनकी आवाज मे एक हार्दिक पीडा थी।

"तो क्या आपका यह नाम भी नही है?"

अचरज से उनकी आँखे जैसे चमक गई हो, झट बोले—यह आपने कैसे जाना कि मेरा नाम बैजू नही है? बाबू, आप जरूर कोई मतर जानते है।

आखिर बैजूमामा ने अपना नाम भी बताया और गाव भी, जात भी बताई, घर का पूरा हाल भी बतलाया। मैंने तब पूछा— खैर, यह जो कुछ हुआ, लेकिन आप जनेऊ क्यो नही पहनते? बाभन-क्षत्री का यह चिह्न तो नही छोडना चाहिए। मेरे इस प्रश्न से जैसे उन्हे दूसरी ठेस लगी हो, कातर स्वर मे बोले—"अब तो मैं भ्रष्ट हो ही गया, जनेऊ को क्यो भ्रष्ट करूँ बाबू? एक यही अपराध क्या कम है, जो एक दूसरा भी करूँ?" उनके इस जवाब पर मैंने बताना चाहा कि जेल मे जो छुआछूत होती है, उससे जात नही जाती, जनेऊ आपको जरूर पहने रहना चाहिए। इसपर उन्होने कहा—म जेल की बात नही करता। बाहर जो नसापानी करना पडता है।

"तो क्या आप बाहर ताडी-दारू पीते ह?

अब तो जैसे उनका धीरज टूट गया हो। भर्राई आवाज मे बोले—"हाय, बाबू, आप कितने भोले है! क्या बिना नसा खाये चोरी हो सकती है? निसाचरी काम के लिए पहले निसाचर बन जाना पडता है, बाबू!" उद्विग्नता मे ही वह चुपचाप वहा से चल दिये।

× × ×

मुझे पता चला था कि उनके घर पर अब भी गिरस्ती होती है—अच्छी गिरस्ती होती है! भाई मर चुके, दो भतीजे है, उनके बाल-बच्चे है! मैंने बैजूमामा को समझाया कि पुरानी बाते भूल जाइए। इस बार छूटिए, तो गगा-स्नान करके अपने घर पर चले जाइए। भतीजो से सारी बाते कहिए, उनके साथ रहिए। अब बुढापे का शरीर है, कब जाने क्या हो जाय? जेल मे मरियेगा, मिट्टी की दुगत होगी। इस आखिरी बात ने उनपर काफी असर किया! एक दिन हृदय खोलकर कहने लगे—

"क्या कहूँ, बाबू, कई बार यही सोचा। जेल से छूटने पर कई बार घर की ओर चला। लेकिन बख्तियारपुर जाते-जाते पैर बँध जाते

अपराधी हो सकता है? अगर यह अपराधी है, तो निस्सन्देह अपराध शब्द का अर्थ हमें बदल देना होगा!

"और बैजूमामा, अपनी होलीवाली कहानी भी बाबू को जरूर सुनाना"—जब एक दिन मेट ने यह कहा, तो देखा, बैजूमामा के चेहरे पर हँसी की एक हल्की झलक दौड गई और उनके दांत—जो तीस वर्षों से जेल की रोटियाँ चबाते-चबाते आधे-आधे घिस गये थे, लेकिन जिनमें टूटे एक भी नहीं थे—चमक पडे! "अरे, मेट भाई, बाबू के सामने बेइज्जत मत करो।" उससे कहकर उन्होंने इधर-उधर की बातों में मुझे बहला देना चाहा। लेकिन, फिर भी मैंने उनसे वह कहानी निकाल ही ली!

एक बार संयोग ऐसा हुआ कि बैजूमामा की रिहाई की तारीख ठीक होली के ही दिन पड गई। ठीक होली के ही दिन—जिस दिन, साल-भर में सिर्फ एक ही दिन, जेल में पकवान बनते हैं! जेल में पकवान! लेकिन आप ताज्जुब न करें, जहाँ भात में भुस्सी मिली होती है और रोटी में कंकड, दाल में छिलके-ही-छिलके रहते हैं और तरकारी के नाम पर घास के डंठलों को उसन दिया जाता है, वहाँ के पकवान भी कैसे होंगे—समझ जाइए! लेकिन, पकवान फिर भी पकवान है! सरसों के तेल में, गुड देकर घुने गेहूँ के आटे के पके पूए और थोडे दूध में पूरा पानी डालकर उबाली गई खीर—ये पकवान भी कैदियों की जीभ पर कम पानी नहीं ला देते! महीनों से इसकी प्रतीक्षा की जाती है! बैजूमामा की जीभ भी इसकी कल्पना से कम लार नहीं टपका चुकी थी कि खबर मिली, उसी होली के दिन उनकी रिहाई होनेवाली है! आह रे, यह क्या गजब हुआ?

बैजूमामा ने जमादार साहब से बहुत ही गिडगिडाकर आरजू मिन्नत की कि किसी तरह जेलर बाबू से कह-सुनकर उनकी रिहाई की तारीख एक दिन और बढा दें, लेकिन जमादार साहब ने पहले समझाकर, फिर डाँटकर कह दिया कि ऐसा हो नहीं सकता। खैर, रिहाई का दिन पहुँचा। वह गेट पर लाये गये, तो उन्होंने देखा, पूए बनाने के लिये तेल और कडाह भीतर भेजे जा रहे हैं। पकवान के इन सामानों को देखकर उनकी आँखें छलछला आईं। जेलर साहब का ध्यान बैजूमामा की ओर आकृष्ट हुआ—भला, उनको कौन नहीं पहचानता? जेलर साहब ने समझा, शायद ये आँसू आनन्द के या पश्चात्ताप के हैं। कह बैठे—"क्यों बैजू, अब तो फिर नहीं आओगे न? हाँ—हाँ,

मत आना, अब तुम बूढे भी हुए"। उनका यह कहना था कि बैजूमामू की आँखो मे सावन-भादो उमड आये और रुँधे हुए गले से बोले—

"बाबू, मेरी तकदीर फूट गई, बाबू?"

जेलर साहब, शरीफ मुसलमान जेलर साहब, यह सुनकर घबडा गये। यह क्या बात हुई? पूछा—"क्या हुआ है, बताओ बैजू!" कोई गमी की खबर आई है क्या—वह मन-ही-मन सोचने लगे। बैजूमामा बोले—हजूर, आपका इसमे क्या हाथ, मेरी ही तकदीर फूट गई, बाबू!

अरे, क्या हुआ बैजू?—जेलर साहब की उत्सुकता मे अब करुणा की मदाकिनी मिल रही थी। इधर, बैजूमामा की आँखो के बादल मे झडी लग गई और हिचकियाँ लेते हुए बोले—

"हाय सरकार, जब तेल और कडाह भीतर जा रहे है, तो मै बाहर भेजा जा रहा हूँ। भरे बरत के दिन मै निकाला जा रहा " वह आगे बोल न सके। इधर जेलर साहब ठठाकर हँस पडे और अपनी जेब से एक रुपया निकाल कर, बैजूमामा को देते हुए बोले कि जाओ, बाजार मे इसीके पूए खरीद कर खा लेना। लेकिन, इन चाँदी के चमचम टुकडे का जरा भी मोह उनके मन मे क्यो होने लगा? रुपया जेलर बाबू के पैर पर रख दिया और एक दिन के लिए और भी जेल मे रखे जाने की विनती की। जेलरसाहब ने इस बारे मे अपनी असमथता दिखाई। रुपया बार-बार के आग्रह पर भी नही ले कर, धोती की खूँट से आँसू पोछते, बैजूमामा बाहर चले आये।

बाहर चारो ओर होली का हुरदग मचा था। रग-अबीर उड रही थी, गाने-बजाने हो रहे थे। जेल से जो तीन आने पैसे मिले थे, उनका सत्तू खरीद कर बैजूमामा ने खाया और दिन-भर इधर-उधर, अन्यमनस्क, तमाशे देखते रहे। शाम को स्टेशन के माल-गुदाम के सामने जाकर लेट रहे और कुछ अधेरा होने पर एक बैलगाडी के निकट बँधे जोडे बैल को खोलकर ले चले। गाडीवान दिन-भर के धूमधडक्के से कुछ ऐसा मस्त होकर सोया था कि उसे कुछ सुध नही रह गई थी! अब बैजूमामा क्या करे? वह खुद चिल्ला-कर कहने लगे—"ओ गाडीवान, ओ गाडीवान, कैसा बेवकूफ-सा सोया है, और चोर तेरे बैल लिये जा रहे है।" 'बैल' यह शब्द कान मे

पडते ही गाडीवान चौक उठा और जिस ओर से आवाज़ आई थी, दौडा। उसे दौडते देख बैजूमामा ने भागने का बहाना किया। वह पकड लिये गये, कुछ घुस्से खाये, रातभर हाजत मे रहे और भोर मे फिर जेल में हाज़िर!

जेलभर मे हल्ला हो गया—बैजूमामा आ गये, आ गये! किंतु बैजूमामा तो जल्द-जल्द आकर मेट से मिले और कहा—"कहाँ पूए रखे है, लाना तो मेट भाई!' मेट हँस रहा था। बैजूमामा उससे कह गये थे कि दो-एक पूए मेरे लिए जरूर चुराकर रख देना—कल मै जरूर आ जाऊँगा! बैजूमामा अपने 'जरूर" को जरूर-ही सार्थक करेगे, इसकी उम्मीद मेट ने नही की थी। ज्योही मेट ने कहा—"पूए कहाँ रखे है?" बैजूमामा की आँखो से झरझर आँसू झडने लगे! —"उफ, इसी पूए के चलते रात उस गाडीवान के कितने घुस्से मने बर्दास्त कर लिये! रातभर हाजत मे पूए का ही सपना देखता रहा हूँ, मेट भाई! मुदा, हाय री तकदीर!" अब मेट की आँखे भी छलछला आई थी। उसने जो पूए अपने लिए बचाकर, चुराकर रखे थे, उन्हे लाकर बैजू मामा के सामने रख दिया—बैजूमामा उस बासी, काठ-से कडे बन गये तेल के पूए को कुतुर-कुतुर कर खा रहे थे, जो उनकी आँखो के पानी से नरम और नमकीन होते जाते थे।

× × ×

इस बार वह किस तरह जेल आये है, वह भी कम दिलचस्प और दयनीय नही है।

इस बार बैजूमामा यह निश्चय कर जेल से निकले थे कि तीस रुपये किसी-न-किसी तरह जरूर जमा करेगे और उन्ही रुपयो से एक गाय खरीदकर अपने भतीजे के पास जायँगे। गाय की डोर पकडे जब वह, लगभग तीस वर्षो के बाद, अपने गाँव मे घुसेगे, तो गाँव कैसा दीख पडेगा, लोग उन्हे पहचानेगे या नही, वह किस तरह अपना परिचय देगे—आदि की कल्पना मे विभोर होते हुए ही उन्होने जेल से बाहर कदम रखा था।

शुरू मे मालूम हुआ, इस बार तकदीर पक्ष मे है। बडी चोरी मे बडा खतरा है! और, खतरा लेने का इस बार मौका नही था। इसलिए छोटी-छोटी चोरियाँ तीस रुपये के लिये शुरू की। एक होटल से दो लोटे उडाये, दो रुपये मे बेच लिये। एक मदिर के अहाते से

दो कम्बल मार लिये, तीन रुपये उनसे आये। एक वकील साहब के बरामदे से एक शाल उचक लाये, चार रुपये आये। सबसे बडा शिकार एक गोदाम से एक बोरे लाल मिर्चे का किया, जिससे उन्हे नकद बारह रुपये मिले। अब बैजूमामा के पास इक्कीस रुपये थे, सिर्फ नौ रुपये की कमी थी। मिर्चे की चोरी सबसे अच्छी। एक दिन जब वह शहर के बाहर शौच को जा रहे थे, उन्होने खेतो मे लाल मिर्चे लगे देखे। कौन जाने, शहर की चोरी मे किसी दिन पकडा जाऊँ। क्यो न रात मे मिर्चे के खेत मे पहुँचूँ और थोडा-थोडा मिर्चा तोडकर बेचता जाऊँ? यही दस-पन्द्रह दिन लगेगे, लेकिन ख़तरे से तो महफूज रहूँगा न?—ऐसा सोचकर वह अब प्रति रात मिर्चे के खेत मे जाते और एक झोला मिर्चा ले आते और बाज़ार मे किसान की तरह बेच लेते! धीरे-धीरे उनके पास छब्बीस रुपये हो गये—सिर्फ चार रुपये की कमी! हाँ, सिर्फ चार रुपये की।

मज़िल के अत मे पथिक के पैर तेज मे उठने लगते है—उसकी रफ्तार मे तेज़ी आ जाती है! एक दिन बैजूमामा इतने मिर्चे तोड लाये कि सवा रुपये मिल गये। अब पौने तीन रुपये की कमी रह गई थी।

तीन—हाय! तीन कितनी बुरी सख्या है! उस रात मामा जब खेत मे पहुँचे, इन्हे घेर लिया गया! बेचारे किसान कुछ दिनो से परीशान थे कि यह क्या हो रहा है? उनकी खेती उजड रही थी। कई दिनो से वह धुक्की लगाये हुए थे कि आज चोर को उन्होने देख लिया और दौड पडे। मामा भागे भी तो किस ओर? उन्हे एक अक्ल सूझ गई। जितने मिर्चे तोडे थे, सब झटपट अलग-बगल मे फेक दिये और इस तरह बैठ गये कि जैसे वह शौच से निवृत हो रहे है। चारो ओर से लोग घेरे हुए है, यह बोलते नही। एक ने कहा—उठते हो या लाठी लगाऊँ?

मामा खडे हो गये—धोती इस तरह किये कि जैसे शौच से उठे है! वह मन-ही-मन सोच रहे थे कि शायद मै बच गया कि उसी समय खेत की बगल से जानेवाली सडक से एक मोटर गुजरी और उसकी दपादप रोशनी मे उनकी बगल मे बिखरे मिर्चे दिखाई पडे। और बाबू, डर के मारे पेशाब भी तो नही हो पाया था, न?—मुझसे मामा ने हँसते हुए कहा! अब क्या, चोरी साफ-साफ पकड ली

गई। मामा फिर थाने मे हाजिर किये गये। फिर वही हवालात—फिर वही बाढ का छोटा जेल, फिर वही मेजिस्ट्रेट की अदालत—

लेकिन इस बार विशेषता यह हुई कि किसी तरह पुलिस ने पता लगा लिया कि मामा पुराने मुज़रिम है—फलत उसने उनपर सेशन चलाने की तैयारियाँ की। नौजवान मैजिस्ट्रेट ने पुलिस की बात मान ली! दारोगा ने गालियाँ देते हुए कहा—"बूढे, इस बार तुम्हे पाँच साल के लिए चक्की पीसनी होगी।"

सेशन-जज एक बूढा आदमी था। जब उसने मामा से कसूर के बारे मे पूछा, तो मामा नाही नही कर सके। झूठ कैसे बोलते भला? हाँ, एक अर्ज़ की—

हुजूर, सुनते है, सरकार पच्चीस साल काम करने पर अपने नौकरो को पिनसिन देती है? हुजूर भी बूढे हुए, अब पिनसिन पायँगे। मैंने तीस साल तक जेल मे रहकर सरकार का काम कर दिया है! दुहाई सरकार, धरम साछी है, काम करने मे कभी कोताही नही की। जेलरसाहब को बुलाकर पूछिए, जमादार साहब को बुलाकर पूछिए। बैजू बिना काम किये रोटी नही खा सकता, सरकार! अब तीस साल की इस गाढी मिहनत के बाद हुजूर, क्या, इस बूढे को भी पिनसिन का हक नही है? दुहाई हुजूर की, दुहाई माँ-बाप की, आप निसाफ कीजिए। हुजूर से निसाफ न मिला, तो यह बूढा और कहाँ जायगा!

यह अजीब दलील थी! किन्तु दिल पर इसका असर भले ही हो, दिमाग पर यह क्या असर ला सकता था भला? और, जज तो बँधा है कानून की किताब से। उस कानून की किताब के अनुसार सजा के लिए जो जरूरी बाते चाहिए, सब हाजिर! चश्मदीद गवाहियाँ—अपराध की स्वीकृति! वह किताब जज को यह हक कहाँ देती कि वह देखे कि अपराध क्यो किया गया, उसमे समाज कहाँ तक अपराधी है और आदमी कहाँ तक, आदमी के कृत्य मे परिस्थितियो का कहाँ तक हाथ है, आदि–आदि! फिर आदमी के भीतर जो इन्सानियत है, उसे उभडने देने और अपराधी को सही रास्ते पर चलने में मदद करने की ओर ध्यान देना तो उस किताब मे जैसे हराम हो। जज बेचारे बूढे थे, सहृदय थे, लेकिन जो किताब उन्हे रोटी दे रही थी, इस बुढापे को आराम से बिताने मे मदद पहुँचा रही थी, उसकी उपेक्षा वह कैसे करते बेचारे? हाँ, उन्होने

शायद कभी शेक्सपीयर की "मर्चेंट ऑफ वेनिस" पढ ली थी, इसलिए अपने 'इन्साफ' पर इस बार 'रहम' का मुलम्मा चढाने से वह नही रुक सके। इस बार बैजूमामा को सिफ एक साल की ही सज़ा हुई।
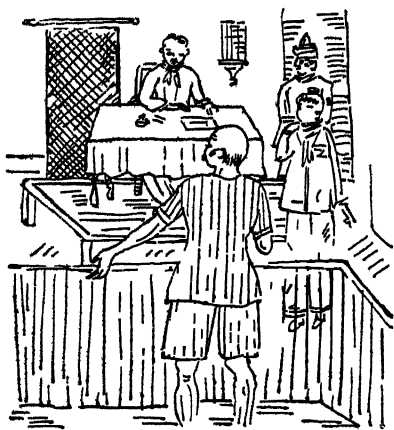
सुभान खाँ

"क्या आपका अल्लाह पच्छिम मे रहता है? वह पूरब क्यो नही रहता?"

सुभानदादा की लबी, सुफेद, चमकती, रोब बरसाती दाढी मे अपनी नन्ही उँगलियो को घुसाते हुए मैने पूछा। उनकी चौडी, उभडी पेशानी पर एक उल्लास की झलक और दाढी-मूँछ की सघनता मे दबे पतले अधरो पर एक मुस्कान की रेखा दौड गई। अपनी लम्बी बाँहो की दाहिनी हथेली मेरे सिर पर सुहलाते हुए उन्होने कहा—

"नही बबुआ, अल्लाह तो पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन सब ओर है।"

"तो फिर आप पच्छिम मुँह खडे होकर ही नमाज़ क्यो पढते है?

"पच्छिम ओर के मुल्क मे अल्लाह के रसूल आये थे। जहाँ रसूल आये थे, वहाँ हमारे तीरथ है। हम उन्ही तीरथो की ओर मुँह करके अल्लाह को याद करते है।"

"वे तीरथ यहाँसे कितनी दूर होगे?"

"बहुत दूर!"

"जहाँ सूरज-देवता डूबते ह?"

"नही, उससे कुछ इधर ही!"

"आप उन तीरथो मे गये है सुभानदादा?"

देखा, सुभानदादा की बडी-बडी आँखो मे आँसू डबडबा आये, उनका समूचा चेहरा लाल हो उठा। भाव-विभोर हो गद्गद कठ से बोले —

"वहाँ जाने मे बहुत खच पडते ह बबुआ! मै गरीब आदमी ठहरा न! इस बुढापे मे भी इतनी मेहनत-मसक्कत कर रहा हूँ कि कही कुछ पैसे बचा पाऊँ और उस पाक जगह की जियारत कर आऊँ!"

उनकी आखो को देखकर मेरा बचपन का दिल भी भावना से ओतप्रोत हो गया। मने उनसे कहा—

"मेरे मामाजी से कुछ कज क्यो नही ले लेते दादा?"

"कज के पैसे से तीरथ करने मे सबाब नही मिलता बबुआ। अल्लाह ने चाहा, तो एक-दो साल मे इतने जमा हो जायँगे कि किसी तरह वहाँ जा सकूँ।

"वहाँसे मेरे लिए भी कुछ सौगात लाइएगा न? क्या लाइएगा?"

"वहाँसे लोग खजूर और छुहारे लाते है।"

"हाँ–, हाँ, मेरे लिए छुहारे ही लाइएगा—लेकिन एक दर्जन से कम नही लूँगा, हूँ।"

सुभानदादा की सुफेद दाढी-मूछ के बीच उनके सुफेद दाँत चमक रहे थे। कुछ देर तक मुझे दुलारते रहे। फिर कुछ रुककर बोले—अच्छा जाइए, खेलिए, मैं जरा काम पूरा कर लूँ। मज़दूरी-भर पूरा काम नही करने से अल्लाह नाराज़ हो जायँगे।

क्या आपके अल्लाह बहुत गुस्सवर है?—मै तुनककर बोला।

आज सुभानदादा बडे जोरो से हँस पडे, फिर एक बार मेरे सिर पर हथेली फेरी और—"बच्चो से वह बहुत खुश रहते है, बबुआ! वह तुम्हारी उम्र–दराज करे।"—कहकर मुझे अपने कधे

पर ले लिया। मुझे लेते हुए दीवार के नजदीक आये, वहाँ उतार दिया और झट अपनी कढनी और बसुली से दीवार पर काम करने लगे।

× × ×

सुभान खाँ एक अच्छे राज समझे जाते है। जब-जब घर की दीवारो पर कुछ मरम्मत की ज़रूरत होती है, उन्हे बुला लिया जाता है। आते है, पाँच-सात रोज यही रहते है, काम खत्म कर चले जाते है।

लबा, चौडा, तगडा है बदन इनका। पेशानी चौडी, भवे बडी सघन और उभडी। आँखो के कोनो मे कुछ लाली और पुतलियो मे कुछ नीलेपन की झलक। नाक असाधारण ढग से नुकीली। दाढी सघन, इतनी लबी कि छाती तक पहुँच जाय——वह छाती, जो बुढापे मे भी फैली, फूली हुई। सिर पर हमेशा ही एक दुपलिया टोपी पहने होते और बदन मे नीमस्तीन। कमर मे कच्छेवाली धोती, पैर मे चमरौधा जूता। चेहरे से नूर टपकता, मुँह से शहद झरता। भले-मानसो के बोलने-चालने, बैठने-उठने के कायदे की पूरी पाबदी करते वह।

किन्तु, बचपन मे मुझे सबसे अधिक भाती उनकी वह सुफेद चमकती हुई दाढी। नमाज़ के वक्त कमर मे धारीदार लुँगी और शरीर मे सादा कुरता पहन, घुटने टेक, दोनो हाथ छाती से ज़रा ऊपर उठा, आधी आँखे मूँद कर जब वह कुछ मत्र-सा पढने लगते, म विस्मय-विमुग्ध होकर उन्हे देखता रह जाता! मुझे ऐसा मालूम होता, सचमुच उनके अल्लाह वहाँ आ गये है, दादा की झपकती आँखे उन्हे देख रही है, और ये होठो-होठो की बाते उन्हीसे हो रही है।

एक दिन बचपन के आवेश मे मैने उनसे पूछ भी दिया—सुभानदादा, आपने कभी अल्लाह को देखा है?

"यह क्या कह रहे हो, बबुआ? इन्सान इन आँखो से अल्लाह को देख नही सकता!"

"मुझे धोखा मत दीजिए, दादा! मै सब देखता हूँ। आप रोज़ आधी आँखो से उन्हे देखते है, उनसे बुदबुदाकर बाते करते है। हाँ,—हाँ, मुझे चकमा दे रहे है आप!"

"मै उनसे बाते करूँगा! मेरी ऐसी तकदीर कहाँ? सिर्फ रसूल की उनसे बाते होती थी, बबुआ! ये बाते कुरान मे लिखी है।"

"अच्छा दादा, क्या आपके रसूल साहब को भी दाढी थी?"

"हाँ,-हाँ, थी। बडी खूबसूरत, लबी, सुनहली—अब भी उनकी दाढी के कुछ बाल मक्का मे रखे है। हम अपने तीरथ में उन बालो के भी दशन करते है।"

"बडा होने पर जब मुझे दाढी होगी, मै भी दाढी रखाऊँगा दादा! खूब लबी दाढी।"

सुभानदादा ने मुझे उठाकर गोद मे ले लिया, फिर कधे पर चढाकर इधर-उधर घुमाया। तरह-तरह की बाते सुनाई, कहानियाँ कही। मेरा मन बहलाकर वह फिर अपने काम मे लग गये। मुझे मालूम होता था, काम और अल्लाह—ये ही दो चीज़े ससार मे उनके लिए सबसे प्यारी है। काम करते हुए अल्लाह को नही भूलते थे और अल्लाह से फुर्सत पाकर फिर झट काम मे जुट या जुत जाना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझते थे। और, काम और अल्लाह का यह सामजस्य उनके दिल मे प्रेम की वह मदाकिनी बहाता रहता था, जिसमे मेरे ऐसे बच्चे भी बडे मज़े मे डुबकियाँ लगा सकते थे, चुभकियाँ ले सकते थे।

× × ×

नानी ने कहा—सबेरे नहा-खा लो, आज तुम्हे हुसैन साहब के पैक मे जाना होगा! सुभान खाँ आते ही होगे!

जिन कितने देवताओ की मनौती के बाद माँ ने मुझे प्राप्त किया था, उनमें एक हुसैन साहब भी थे। नौ साल की उम्र तक, जबतक जनेऊ नही हो गई थी, मुहरम के दिन मुसलमान बच्चो की तरह मुझे भी ताज़िये के आगे ओर रगीन छडी लेकर कूदना पडा है और गले मे गडे पहनने पडे है। मुहरम उन दिनो मेरे लिए कितनी खुशी का दिन था। नये कपडे पहनता, उछलता-कूदता, नये-नये चेहरे और तरह-तरह के खेल देखता—धूम-धक्कड मे किस तरह चार पहर गुज़र जाते! इस मुहरम के पीछे जो रोमाचकारी, हृदय को पिघलानेवाली, करुण रस से भरी दर्द-अगेज़ घटना छिपी है, उन दिनो उसकी खबर भी कहाँ थी!

खैर, मै नहा-धोकर, पहन-ओढकर इतजार ही कर रहा था कि सुभानदादा पहुँच गये, मुझे कधे पर ले लिया और अपने गाँव मे ले गये।

उनका घर क्या था—बच्चो का अखाडा बना हुआ था। पोते-पोतियो, नाती-नतिनो की भरमार थी उनके घर में। मेरी ही उम्र के बहुत बच्चे! रगीन कपडो से सजे-धजे—सब मानो मेरे ही इतजार मे! जब पहुँचा, सुभानदादा की बूढी बीवी ने मेरे गले मे एक बद्धी डाल दी, कमर मे घटी बाँध दी, हाथ मे दो लाल छडियाँ दे दी और उन बच्चो के साथ मुझे लिये-दिये करबला की ओर चली। दिन भर, उछला, कूदा, तमाशे देखे, मिठाइयाँ उडाईं और शाम को फिर सुभानदादा के कधे पर घर पहुँच गया।

ईद-बकरीद को न सुभानदादा हमे भूल सकते थे, न होली-दीवाली को हम उन्हे! होली के दिन नानी अपने हाथो से पूए, खीर और गोश्त परोस कर सुभानदादा को खिलाती। और, तब मैं ही अपने हाथो से अबीर लेकर उनकी दाढी मे मलता। एक बार जब उनकी दाढी रगीन बन गई थी, मुझे पुरानी बात याद आ गई। मैंने कहा—

"सुभानदादा, रसूल की दाढी भी तो ऐसी ही रगीन रही होगी?"

"उसपर अल्लाह ने ही रग दे रखा था बबुआ, अल्लाह की उनपर खास मेहरबानी थी। उनके-सा नसीबा हम मामूली इसानो को कहाँ?"

ऐसा कहकर, झट आँखें मूँद कर कुछ बुदबुदाने लगे—जैसे वह ध्यान मे उन्हे देख रहे हो।

मै भी कुछ बडा हुआ, उधर दादा भी आखिर हज कर ही आये। अब मै बडा हो गया था, लेकिन उन्हे छुहारे की बात भूली नही थी। जब मै छुट्टी मे शहर के स्कूल से लौटा, दादा यह अनुपम सौगात लेकर पहुँचे। इधर उनके घर की हालत भी अच्छी हो चली थी। दादा के पुण्य और लायक बेटो की मेहनत ने काफी पैसे इकट्ठे कर लिये थे। लेकिन उनमे वही विनम्रता और सज्जनता थी। आये, पहले की ही तरह शिष्टाचार निबाहा। फिर छुहारे निकाल मेरे हाथ मे रख दिये—"बबुआ, यह आपके लिए खास अरब से

लाया हूँ। याद है न, आपने इसकी फरमायश की थी।" उनके नथने आनदातिरेक से हिल रहे थे।

छुहारे लिये, सिर चढाया—ख्वाहिश हुई, आज फिर मै बच्चा हो पाता और उनके कधे से लिपटकर उनकी सुफेद दाढी मे, जो अब सचमुच नूरानी हो चली थी, उँगलियाँ घुसाकर उन्हे 'दादा, दादा' कहकर पुकार उठता! लेकिन, न मै अब बच्चा हो सकता था, न ज़बान मे वह मासूमियत और पवित्रता रह गई थी! अँगरेजी स्कूल के वातावरण ने अजीब अस्वाभाविकता हर बात मे ला दी थी। पर, हाँ, शायद एक चीज अब भी पवित्र रह गई थी। आँखो ने आँसू की छलकन से अपने को पवित्र कर चुपचाप ही उनके चरणो मे श्रद्धाजलि चढा दी!

× × ×

हज से लौटने के बाद सुभानदादा का ज्यादा वक्त नमाज़-बदगी मे ही बीतता। दिन भर उनके हाथो में तसबीह के दाने घूमते और उनकी ज़बान अल्लाह की रट लगाये रहती। अपने जवार-भर मे उनकी बुजुर्गी की धाक थी। बडे-बडे झगडो की पचायतो में दूर-दूर के हिंदू-मुसलमान उन्हे पच मुकर्रर करते। उनकी ईमानदारी और दयानतदारी की कुछ ऐसी ही धूम थी।

सुभानदादा का एक अरमान था, मस्जिद बनाने का। मेरे मामा का मदिर उन्होने ही बनाया था। उन दिनो वह साधारण राज थे। लेकिन, तो भी कहा करते—अल्लाह ने चाहा, तो मै भी एक मस्जिद ज़रूर बनवाऊँगा।

अल्लाह ने चाहा और वैसा दिन आया। उनकी मस्जिद भी तैयार हुई। गाँव के ही लायक एक छोटी-सी मस्जिद—लेकिन बडी ही खूबसूरत। दादा ने अपनी ज़िदगी–भर की अर्जित कला इसमे खर्च कर दी थी। हाथ मे इतनी ताकत नही रह गई थी कि अब खुद कढनी या बसुली पकडे, लेकिन दिनभर बैठे-बैठे एक-एक ईट की जुडाई पर ध्यान रखते और उसके भीतर-भीतर जो बेल-बूटे काढे गये थे, उनके सारे नक्शे उन्होने ही खीचे थे और उनमें से एक-एक का काढा जाना उनकी ही बारीक निगरानी मे हुआ था!

मेरे मामाजी के बगीचे में शीशम, सखुए, कटहल आदि इमारतो मे काम आनेवाले पेडो की भरमार थी। मस्जिद की सारी

लकडी हमारे ही बगीचे से गई थी।

जिस दिन मस्जिद तैयार हुई थी, सुभानदादा ने जवारभर के प्रतिष्ठित लोगो को न्योता दिया था। जुमा का दिन था। जितने मुसलमान थे, सबने उसमे नमाज पढी थी। जितने हिदू आये थे, उनके सत्कार के लिए दादा ने हिदू हलवाई रखकर तरह-तरह की मिठाइयाँ बनवाई थी, पान-लायची का प्रबध किया था। अब तक भी लोग उस मस्जिद के उद्घाटन के दिन की दादा की मेहमानदारी भूले नही है।

× × ×

जमाना बदला। मै अब शहरा मे ही ज्यादातर रहता। और, शहर आये–दिन हिदू-मुस्लिम दगो के अखाडे बन जाते थे। हॉ, आये–दिन! देखियेगा, एक ही सडक पर हिदू-मुसलमान चल रहे है, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे ह, एक ही सवारियो पर जानू-ब-जानू आ-जा रहे है, एक ही स्कूल मे पढ रहे है, एक ही दफ्तर मे काम कर रहे है, कि अचानक सबके सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड, मारपीट, खूनखराबी, आग-लगी—सारी खुराफातो की छूट! न घर महफूज़, न शरीर, न इज्जत! प्रेम, भाई–चारे और सहृदयता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशश हत्या का उल्लग नृत्य!

शहरो की यह बीमारी धीरे-धीरे देहात मे घुसने लगी। गाय और बाजे के नाम पर तकरारे होने लगी। जो जिंदगी–भर कसाई-खानो के लिए अपनी गाये बेचते रहे, वे ही एक दिन किसी एक गाय के कटने का नाम सुनकर ही कितने इन्सानो के गले काटने को तैयार होने लगे! जिनके शादी-व्याह परब-त्योहार बिना बाजे के नही होते, जो मुहरम की गमी के दिन भी बाजे-गाजो की धूम किये रहते, अब वे ही अपनी मस्जिद के सामने से गुजरते हुए एक मिनट के बाजे पर खून की नदियाँ बहाने को उतारू हो जाते!

कुछ पडितो की बन आई, कुछ मुल्लाओ की चलती बनी। सगठन और तज़ीम के नाम पर, फूट और कलह के बीज बोये जाने लगे। लाठियाँ उछली, छुरे निकले। खोपडियाँ फूटी, अँतडियाँ बाहर आईं। कितने नौजवान मरे—घर फुंके। बाकी बच गये खेत–खलिहान, सो अँगरेजी अदालत के खर्चे मे पीछे कुक हुए!

खबर फैली, इस साल सुभानदादा के गाँव के मुसलमान भी कुर्बानी करेगे। जवार मे मुसलमान कम थे, लेकिन उनके जोश का क्या कहना? इधर हिंदुओ की जितनी गाय पर ममता न थी, उससे ज्यादा अपनी तायदाद पर घमड था। तनातनी का बाजार गर्म! खबर यह भी फैली कि सुभान खाँ की मस्जिद मे ही कुर्बानी होगी।

"ऐ, सुभान खाँ की मस्जिद मे कुर्बानी? नही, ऐसा नही हो सकता!"

"अगर हुई, तो क्या होगा? हमारी नाक कट जायगी! लोग क्या कहेगे—इतने हिंदू के रहते गो-माता के गले पर छुरी चली!"

"छुरी से गो-माता को बचाना है, तो गौरागौरी के कसाईखाने पर हम धावा करे? और, अगर, सचमुच जोश है, तो चलिए मुजफ्फरपुर, अँगरेजी फौज की छावनी पर ही धावा बोले। कसाईखाने मे तो बूढी गाएँ कटती है, छावनी मे तो मोटी-ताजी बाछियाँ ही काटी जाती है।"

"लेकिन वे तो हमारी आखो से दूर हैं। देखते हुए मक्खी कैसे निगली जायगी?"

"माफ कीजिए, दूर-नजदीक की बात नही है। बात है हिम्मत की, ताकत की। छावनी में आप नही जाते है, इसलिए कि वहाँ सीधे तोप के मुँह में पडना होगा। यहाँ मुसलमान एक मुट्ठी है, इसलिए आप टूटने को उतावले है।"

"आप सुभान खाँ का पक्ष ले रहे है, दोस्ती निभाते है! धर्म से बढकर दोस्ती नही!"

कुछ नौजवानो को मेरे मामाजी की बाते ऐसी बुरी लगी कि सख्त-सुस्त कहते वहाँसे उठकर चल दिये। लेकिन कितना भी गुस्सा किया जाय, चीखा-चिल्लाया जाय—यह साफ बात थी कि मामा की बिना रजामदी के किसी बडी घटना के लिए किसीको पैर उठाने की हिम्मत नही हो सकती थी। उधर सुभानदादा के दरवाजे पर भी मुसलमानो की भीड है। न जाने दादा में कहाँ का जोश आ गया है, वह कडककर कह रहे हैं—

"गाय की कुर्बानी नही होगी! ये फालतू बाते सुनने को मैं तैयार नही हूँ। तुमलोग हमारी आँखो के सामने से हट जाओ।"

"क्यो नही होगी ? क्या हम अपना मजहब डर के मारे छोड देगे ?"

"मै कहता हूँ, यह मजहब नही है। मै हज से हो आया हूँ, कुरान मैने पढी है। गाय की कुर्बानी लाजिमी नही है। अरब मे लोग दुम्मे और ऊँट की कुर्बानी अमूमन करते है।"

"लेकिन हम गाय की ही कुर्बानी करे, तो वे रोकनेवाले कौन होते है ? हमारे मजहब मे वे दस्तदाजी क्यो करेगे ?"

"उनकी बात उनसे पूछो—मै मुसलमान हूँ, कभी अल्लाह को नही भूला हूँ। मै मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मै गाय की कुर्बानी न होने दूगा, न होने दूँगा।"

दादा की समूची दाढी हिल रही थी, गुस्से से चेहरा लाल था, होठ फडक रहे थे, शरीर तक हिल रहा था। उनकी यह हालत देख, सभी चुप रहे। लेकिन एक नौजवान बोल उठा—

"आप बूढे है, आप अब अलग बैठिए, हम काफिरो से समझ लेगे।"

दादा चीख उठे—

"कल्लू का बेटा, ज़बान सम्भालकर बोल। तू किन्हे काफिर कह रहा है ? और, मेरे बुढापे पर मत जा—मै मस्जिद में चल रहा हूँ। पहले मेरी कुर्बानी हो लेगी, तब गाय की कुर्बानी हो सकेगी।"

सुभानदादा वहाँसे उसी तनतने की हालत में मस्जिद मे आये। नमाज़ पढी। फिर तसबीह लेकर मस्जिद के दरवाजे की चौखट पर "मेरी लाश पर ही कोई भीतर घुस सकता है"—कहकर बैठ गये। उनकी आँखें मुँदी है, किंतु आँसुओ की झडी उनके गाल से होती, उनकी दाढी को भिगोती, अजस्र रूप मे गिरती जा रही है। हाथ में तसबीह के दाने हिल रहे है, और होठो पर जरा-ज़रा जुबिस है—नही तो उनका समूचा शरीर सगमरमर की मूर्त्ति-सा लग रहा है—निश्चल, निस्पद। धीरे-धीरे मस्जिद के नज़दीक लोग इकट्ठे होने लगे। पहले मुसलमान, फिर हिंदू भी। अब गाय की कुर्बानी का सवाल दादा की आँसुओ की धारा मे भँसकर न जाने कहाँ चला गया था! वह साक्षात् देवदूत-से दीख पडते थे! देवदूत—जिसके रोम-रोम से प्रेम और भाई-चारे का सदेश निकलकर वायुमडल को व्याप्त कर रहा था।

× × ×

अभी, उस दिन, मेरी रानी, मेरे दो वर्ष जेल में रह जाने के बाद, इतने लंबे अर्से तक राह देखती-देखती, आखिर मुझसे मिलने गया सेण्ट्रल जेल मे आई थी।

इतने दिनो की बिछुडन के बाद, मिलने पर, जो सबसे पहली चीज उसने मेरे हाथो पर रखी, वे थे रेशम और कुछ सूत के अजीबोगरीब ढग से लिपटे-लिपटाये डोरे, बद्धियाँ, गडे आदि। यह सूरज देवता के है, यह अनत देवता के, यह ग्राम-देवता के, यो ही गिनती-गिनती, आखिर मे बोली—"ये हुसैन साहब के गडे है—आपको मेरी ही कसम, इन्हे ज़रूर ही पहन लीजिएगा।"

ये सब मेरी मा की मन्नतो के अवशेष चिह्न है। माँ चली गई, पिताजी चले गये, रानी चार बच्चो की मा बन चुकी है, म पिता बन चुका हूँ, लेकिन, तो भी ये मन्नते अब भी निभाई जा रही है। रानी जानती है, मै नास्तिक हूँ। इसलिए जब-जब इनके मौके आते है, खुद इन्हे मेरे गले मे डाल देती हे। आज इस जेल मे जेल-कमचारियो और खुफिया-पुलिस के सामने उसने ऐसा नही किया—लेकिन, कसम देने से नही चूकी। मैंने भी हँसकर, मानो, उसकी दिलजमई कर दी।

रानी चली गई, लेकिन वे गडे अब भी मेरे सूटकेस मे सँजो-कर रखे ह।

जब-जब सूटकेस खोलता हूँ और हुसैन साहब के उन गडो पर नज़र पडती है, तब-तब दो अपूव तस्वीरे आँखो के सामने नाच जाती हैं—

पहली करबला की—

एक ओर सिफ बहत्तर आदमी ह, जिनमे बच्चे और औरते भी है। इस छोटी-सी जमात के सरदार है हजरत हुसैन साहब। इन्हे बार-बार आग्रह करके बुलाया गया था, कूफा की गद्दी पर बिठलाने के लिए। लेकिन गद्दी पर बिठाने के बदले, आज उनके लिए एक चुल्लू पानी का मिलना भी मुहाल कर दिया गया है। सामने फुरात नदी बह रही है, लेकिन उसके घाट-घाट पर पहरे है, उन्हे पानी लेने नही दिया जा रहा है। कहा जाता है—दुराचारी, दुराग्रही यज़ीद की सत्ता कबूल करो, नही तो प्यासे तडप कर मरो।

बच्चे प्यास के मारे बिलला रहे है, उनकी माँ और बहने तडप रही है। हायरे, एक चुल्लू पानी!—मेरे लल्ला के कठ सूखे जा रहे है, उसकी साँस रुकी जा रही है! पानी, पानी—एक चुल्लू पानी!

पानी की तो नदी बह रही है और तुम्हे इज्जत और दौलत भी कम नही बख्शी जायगी—क्योकि तुम खुद रसूल के नाती जो हो। लेकिन, शर्त्त एक है—यजीद के हाथ पर बैत करो।

यजीद के हाथ पर बैत? दुराचारी, दुराग्रही यजीद की सत्ता कबूल कर ले और रसूल का नवाशा? हो नही सकता। हम एक चूल्लू पानी मे डूब मरना पसद करेगे, लेकिन यह नीच काम रसूल के नाती से नही होगा!

लेकिन, बच्चो के लिए तो पानी लाना ही है! उन्हे यो जीते-जी तडपकर मरने नही दिया जा सकता!

एक ओर बहत्तर आदमी, जिनमे बच्चे और स्त्रियाँ भी। दूसरी ओर दुराचारी यजीद की अपार सजी-सजाई फौज! लडाई होती है, हजरत हुसैन और उनका पूरा काफिला उस करबला के मैदान मे शहादत पाता है! शहीदो के रक्त से उस सहरा के रजकण लाल हो उठते ह, बच्चो की तडप और अबलाओ की चीख से वातावरण थर्रा उठता है। इतनी बडी दर्दनाक घटना ससार के इतिहास मे मिलना मुश्किल है। मुहर्रम उसी दिन का करुण स्मारक है। ससार के कोने-कोने मे यह स्मारक हर मुसलमान मनाता है। भाईचारा बढने पर हिन्दुओ ने भी इसे अपना त्योहार बना लिया था, जो सब तरह ही योग्य था।

और, दूसरी तस्वीर सुभानदादा की—

जिनके कधे पर चढकर मै मुहर्रम देखने जाया करता था।

वह चौडी पेशानी, वह सुफेद दाढी, वे ममताभरी आँखे, वे शहद टपकानेवाले होठ, उनका वह नूरानी चेहरा! जिनकी जवानी अल्लाह और काम के बीच बराबर हिस्से मे बँटी थी, जिनका बुढापा अल्लाह से ओत-प्रोत था। जिनके दिमाग मे आला खयाल थे और जिनके हृदय में प्रेम की धारा लहराती थी, वह प्रेम की धारा—जो अपने-पराये सबको समान रूप से शीतल करती और सीचती है!

मेरा सिर सिज्दे में झुका है—करबला के शहीद के सामने। मैं सप्रेम नमस्कार करता हूँ—अपने प्यारे सुभानदादा को।

बुधिया

एक छोटी-सी पठिया फुदकती हुई आकर चमेली की ताजा, नरम-नरम पत्तियो को ताबडतोड नोचनें और चबाने लगी। उस दिन तक मुझमें वह कलात्मक प्रवृत्ति नही जगी थी कि उस नन्हे खूबसूरत जानवर का वह फुदकना, अपने लबे कानो को फट-फटाते हुए पत्तियो का वह नोचना, फिर चौकन्नी आँखो से इधर-उधर देखते हुए लगातार मुँह चलाना और जब-तब, शायद माँ की याद मे, मे-मे चिल्ला उठना—मै विस्मय-विमुग्ध होकर देखता-सुनता रहता। उस दिन तो सबसे बडी ममता थी उस चमेली पर, जिसकी कलम मै दूर के गाव से लाया था, जिसे मैंने अपने हाथो रोपा और सीचा था और जिसकी एक-एक पत्ती निकलते देखकर मै फूला नही समाता था। इस छोटी-सी दुष्ट पठिया ने सब सत्यानाश मे मिला दिया—मै गुस्से मे चूर उसे मारने दौडा। वह हिरन के बच्चे-सी छलाँग लेती भागी! मै पीछे लगा—

मत मारिए बाबू!—यह बुधिया थी। बुधिया, एक छोटी-सी

बच्ची। सात-आठ साल से ज्यादा की क्या होगी! कमर मे एकरगे की खँड की लपेटे, जिसमे कितने पैबद लगे थे और जो मुश्किल से उसके घुटने के नीचे पहुँचती थी। समूचा शरीर नग-धडग, गर्द-गुबार से भरा। साँवले चेहरे पर काले बालो की लटे बिखरी, जिनमे धूल तो साफ थी और जूएँ भी जरूर रही होगी। एक नाक से पीला नेटा निकल रहा, जिसे वह बार-बार सुडकने की कोशिश करती। उसकी बोली सुन, और शायद यह सूरत देखकर भी, इच्छा हुई, एक थप्पड अभी उसके गाल पर जड दू, कि उसके पैर के नीचे जो नजर पडी, तो ध्यान उस ओर बँट गया और मेरा लडकपन का मन वही जा उलझा।

अरे, तूने यह क्या बना रखा है?—मै नजदीक बढकर देखने लगा। देखा, निकट के पोखरे से गीली-चिकनी मिट्टी लाकर वह तरह-तरह के खिलौने बनाये हुई है। खेत से सरसो, चना-मटर वगैरह के फूल ले आकर उन खिलौनो को खूब सजा रखा है उसने। खिलौनो की खास शक्ले तो थी नही, हाँ, आदमी के-से आकार, जो रग-बिरगे फूलो से सजे होने के कारण जरूर ही भले दीखते थे। मैंने पूछा—यह क्या है? वह कुछ शर्माई।

आप मारिएगा नही न, तो बताऊँ!

आज पीटता जरूर, लेकिन माफ कर दिया। वह मुस्कुरा पडी। बैठ गई। बैठिए न! उस गदगी मे मै क्यो बैठने लगा, झुक-कर देखने लगा, उसने कहना शुरू किया—

यह है दुलहा—सिर पर मौर। सरसो के फूल की ओर इशारा करती—बसती मौर। यह हे दुलहन—कैसी भली चुँदरी, मटर-चने के फूलो की। इनकी होगी शादी। खूब बजेगे बाजे। दो-तीन बार उसने पेट पीटा, फिर मुँह से सीटी दी—ढोल भी, शहनाई भी! यह है कोहबर-घर —धूल से चौकोर घेरकर बनाया। यह है फूलसेज —आम के हरे पत्तो पर कुछ फूल बिखरे। इसपर सोयँगे दोनो। और मै गाऊँगी गीत—

वह कुछ गुनगुनाने लगी। गाती, झूमती। कुछ देर तल्लीन मै देखा-सुना किया। फिर मेरा ध्यान अपनी चमेली की ओर गया। दौडा। एक-एक पत्ती गिनता। अफसोस करता। पठिया को जिन्दा

चबाने की कसमें खाता। बुधिया को गालियाँ देता

× × ×

मालिक, जरा घास मे हाथ लगा दीजिए न !

सिर नीचा किए, किसी बात पर मन-ही-मन तक-वितक करता, मै गॉव से उत्तर की उस सडक पर शाम को हवाखोरी कर रहा था कि यह आवाज़ सुन, सिर उठाकर देखा।

झुटपुटा हो चला था। सडक के नीचे, खेत मे, एक युवती-सी खडी मालूम हुई। घास का गट्ठर उसके पैर के नीचे, बगल मे, पडा था।

मै झल्ला उठा। उसकी शोखी पर क्रोध आया। मै अब शहरी आदमी हूँ। साफ कपडे पहनता। गॅवई के लोगोकी गदगी से दूर रहने की कोशिश करता। फिर, मै घसवाहा, चरवाहा थोडे हूँ, जो घास के गट्ठर उठाता फिरूँ? गॉव मे ऐसा कोन है, जो मुझसे ऐसा कहने की जुरत करे? लेकिन, देखिए इसे, जिसने

उठा दीजिए न?

मैने घूरकर उसके चेहरे को देखा। आकृति और आवाज मे तारतम्य बिठलाया। अरे, यह तो बुधिया है! जवान हो गई? इतनी जवान, इतना जल्द?

इधर-उधर देखा, कोई नही। शाम हो रही है, बेचारी को कौन उठा देगा? द्रवीभूत हो मैने घास के गट्ठर मे हाथ लगा दिये। वह गट्ठर लिये झूमती चली गई।

उसी समय एक ठहाका सुनाई पडा और थोडी देर मे जगदीश मेरे नज़दीक पहुँच चुका था। आखिर आपको भी इसने फँसाया! —जगदीश की ऑखो मे शरारत थी, आवाज़ मे व्यग्य। फिर उसने मानो, बुधिया-पुराण कहना शुरू किया—

अब बुधिया पैवदवाली बुधिया नही है। अब उसकी चूनर का रग कभी मलिन नही होता। उसकी चोली सिवाईपट्टी का दरजी सीता है। माना, वह रोज घास को आती-जाती है, लेकिन उसके हाथ मे ठेले की क्या बात, आप घिस्से भी नही पायँगे। रग वही सॉवला है, लेकिन उसमे गडहे के सडे पानी की मुर्दनी नही है, कालिदी का कलकल-छलछल है, जिसके कूल पर कितने ही गोपाल वशी टेरते, कितने ही नदलाल रासलीला का स्वप्न देखते। बुधिया जिस सरेह मे निकल

जाती, जिदगी तरगे लेती। उसके बालो मे चमेली का तेल चपचप करता है, उसकी माँग मे टकही टिकुली चमचम करती है। किसी वृन्दावन में एक थे गोपाल, हजार थी गोपियाँ। यहाँ एक है गोपी और हजार गोपाल। इन गोपालो को एक ही नाथ मे नाथकर नचाने मे बुधिया को जो मजा आता, वह उस गोपाल को सहस्रफण काली के नाथने और उसके फण पर नाचने मे भी कहाँ मिला होगा? मालूम होता, द्वापर का बदला राधारानी इस कलियुग मे बुधिया की मारफत पुरुष-जाति से चुका रही—वह तडपती रही और यह तडपाती है।

उफ, अनर्थ!—मेरा सदाचार-प्रवण हृदय चिल्ला रहा था और मैं सिर नीचा किये उस अँधेरे मे घर की ओर लौट रहा था, जगदीश ने दूसरी राह पकडी थी। थोडी दूर जाने पर, गाँव के नजदीक पहुँचते-पहुँचते, मुझे ऐसा लगा कि मेरी बगल से जैसे शरीर छूता हुआ, कोई सन्न-से निकल गया। मेरी गर्दन आप-से-आप पीछे मुडी।

माफ कीजिए, यह दूसरा कसूर हुआ—वह ठिठककर खडी हुई, बोली। वह बुधिया थी। मै जल उठा—बदमाश, बदचलन! सुनकर, सहमने-सकुचाने के बदले, वह ठठाकर हँस पडी और निधडक, नजदीक आकर, कहने लगी—

बाबू, याद है, मेरी पठिया आपकी चमेली चर गई थी?

अँधेरे मे भी बत्तीसी चमक उठी।

बदमाश, भाग चल!

निस्सदेह उस समय मेरा चेहरा लाल अगार बन रहा होगा।

और, वह दुलहा, वह दुलहन, वह कोहबर, वह फूल-सेज, और, वह गीत! गीत सुनिएगा बाबू—

सजनी चललिहु पिउ-घर ना,

जाइतहि लागु परम डर ना,

वह गाते-गाते भागी—हँसती इठलाती। उफ, कैसी बेशर्म, बेहाया मै क्या-क्या न बडबडाया किया, और दूर-दूर से उसके ठहाके की आवाज आ रही थी!

× × ×

गेहूँ की कटनी हो रही थी। मेरे भाई ने कहा--भैया, आज मजदूर ज्यादा होगे, लूट लेगे। ज़रा खेत चलिएगा? बस, आपको सिफ खडाभर रहना है, काम तो आप-आप होगा।

खून मे जो कही बची-बचाई किसानी वृत्ति है, उसने नये काम के नये अनुभव के कौतूहल से मिलकर, मुझे खेत मे ला खडा किया।

एक पहर रात से ही, जिसमे गेहूँ की पकी बालियाँ डठल से ही झड न जायँ, चाँदनी-चाँदनी मे जो कटनी हो रही थी, वह ख़तम हो चली थी। बोझे बाँधे जा रहे थे। मजदूर बोझे बाँधते, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे गिरी हुई बालियो को अपने लिए चुनते। गिरी हुई बालियो के बहाने कही पसही को ही न चुन ले, इसीलिए मेरी यह तैनाती हुई थी।

मै एक जगह खडा, चौकसी से, अपनी ड्यूटी दे रहा था, लेकिन खेत के एक कोने पर, मुझसे काफी दूर एक मजदूर के पीछे एक अधेड स्त्री और उसके कई बच्चे ताबड-तोड बाल चुन रहे ओर, मै कहूँ, कुछ फाउल-प्ले कर रहे थे।

ऐ, कौन औरत है?--तू क्या कर रही है?

मेरी ऊँची आवाज को औरत ने, जैसे सुनकर भी, नही सुना। हाँ, उसका मद शायद उसे डाट रहा था, ऐसा लगा।

एक बार--दो बार--तीन बार! अपनी अवज्ञा देख, गुस्से मे चूर, मै उस ओर बढा। मुझे उस ओर बढते देख उसके चारो बच्चे, जो छ वर्ष की उम्र मे अन्दर के ही होगे, उस स्त्री के समीप आ गये। छोटे ने, जो डेढ वर्ष का होगा, गुडुककर उसके पैर पकड लिये। कुछ अलग ही से मैने डाँटा--

तू क्या कर रही है, रे?

हाथ से चुनने का काम जारी रखते हुए ही, झुके-झुके, उसने मुँह फेरकर मेरी ओर देखा, और बोली--सलाम बाबू!

ऐ, यह कौन? अरे बुधिया? यह वही बुधिया है, जो कभी खँडुकी पहने थी? कभी जिसकी चूनर नही मलिन होती थी? उफ, यह क्या हुआ? उसका वह बचपन, उसकी वह जवानी! और यह हाँ, बुढापा ही तो। फटा कपडा। चोली का नाम नही। बाल बिखरे, चेहरा सूखा। गालो के गड्ढे, आँखो के कोटर। और-तो-और

—जो कभी अपनी गोलाई, गठन और उठान से नौजवानो को पागल बनाते, उसके वे दोनो जवानी के फूल, जब वह झुकी बाल चुन रही है, बकरी के थन-से लटक रहे—निर्जीव, निस्पद !

बुधिया !

हाँ बाबू !

मुँह फेरकर उसने मेरी ओर सूखी मुस्कुराहट से देखा और अपने काम मे लगी रही।

तबतक उसका 'आदमी' बोझे बाध चुका था। उसने पुकारा—जरा इधर आ, हाथ लगा दे।

बुधिया बाल चुनना छोड तनकर खडी हुई और मेरी ओर देख, फिर एक हल्की मुस्कुराहट ले, उस ओर बढी।

मैने उसके तन कर खडा होते ही, देखा, उसका पेट बाहर निकला हे, पैर उठ नही रहे है। ओह—यह गर्भवती है ! तू ठहर, मै बोझा उठाए देता हूँ !—मैने कहा ?

ना बाबू, आपसे बोझ उठाने को नही कहूँगी ! आप नाराज हो जाते है !

उसके आगे के दो दॉत, अजीब करुणा बरसाते, चमक पडे।

मुझे धक-सा लगा। पुरानी वात याद आ गई। वह सध्या, वह घास का गट्ठर, बुधिया का निवेदन, जगदीश का व्यग्य, मेरी बौखलाहट, उसका पागलपन ! उसी समय उसका छोटा बच्चा रो उठा। वह उसकी ओर लपकी और मै सीधे उसके 'आदमी' के पास पहुँचा। बोझा उठा दिया। वह हट्टा-कट्टा जवान, बोझा लेता, झूमता चलता बना। इधर बच्चे के मुँह मे सूखा स्तन देती, पुचकारती, दुलराती, हलराती, बुधिया बोली —

बाबू, आपके कै बच्चे है ? ये बडे दुष्ट होते है बाबू ! देह बरबाद करके भी इन्हे चैन नही, ये तग कर मारते है।

बाकी तीन बच्चे भी उससे सटे खडे थे। एक की देह पर हाथ फेरती, एक की पीठ ठोकती, एक पर आँखो से ही प्यार उँडेलती, गोद के बच्चे को थपथपाती, इस स्थिति मे ही मस्त, वह क्या-क्या न मुझसे बकती रही। मै एकटक उसकी ओर देखता रहा।

आँखे उसकी ओर देखती, दिमाग अपना काम किये जाता--

हाँ, बरसात बीत गई। बाढ खतम हो गई। अब नदी अपनी धारा मे है, शात गति से बहती। न बाढ है, न हाहाकार। कीचड और खर-पात का नाम-निशान नही। शात, स्निग्ध, गगा!

मेरे सामने महान् मातृत्व है--वदनीय, अचनीय!

पतितों के देश में

हज़ारीबाग जेल के साथी

'प्रेमा'

को

जिसकी यह कहानी है!

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

पुनश्च

'पतितो के देश में'—यह मेरी पुरानी रचना है। अधूरे रूप में यह प्रकाशित हुई थी और तो भी पसद की गई थी।

किन्तु दूसरी बार के प्रकाशन के समय इसे पूरा कर देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। इसका लगभग आधा हिस्सा नया लिखा गया है।

मेरी यह पुस्तक एक नये विषय पर, नई पृष्ठभूमि में, नये ढग से लिखी गई है और मेरी शैली की नवीनता तो स्वीकृति पा ही चुकी है।

पहली बार मैंने इसमें एक लम्बी भूमिका रखी थी और अन्त मे एक लम्बा परिशिष्ट दिया था। शायद उस जमाने मे उसकी जरूरत रही हो — किन्तु अब 'सियनि सुहाय न टाट पटोरे' की हिमायत में उसे हटा देना ही उचित समझा।

शॉ का उपासक हूँ, किन्तु कलाकार कला के बाहर उपदेशक न बने, यह मान्यता है मेरी। टाट में पटोर की, या पटोर में टाट की — सियनि (पेबन्द) हमेशा बुरी है।

सक्षेप में, यह एक कैदी की कहानी उसीकी जबानी है। इसका आधार एक सत्य घटना है और इसका मुख्य भाग मने जेल में ही लिखा था, १९३० में, हजारीबाग जेल में।

अपनी भूलो के लिए क्षमा और अपनी कला के लिए आशीर्वाद का आकाक्षी —

फागुन, १९४८ ई०

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

बाहरी झाँकी

१—जवानी के दिन

जवानी के दिन थे, बाबू !

वही जवानी—जब आदमी अकडकर चलता, ऐठकर बोलता, अफरकर खाता और पसरकर सोता है।

वही जवानी—जब नाक सुगध, कान सगीत और नेत्र सौदर्य खोजते है।

जब पैर कहते है, बढे चलो, हाथ कहते है, बिना पकडे छोडो मत।

जब नसो मे सनसनी दौडती है, छाती मे गुदगुदी लगती रहती है।

बाबू, जवानी के वे ही दिन थे।

मै कितना हँसता था, बाबू ! क्यो हँसता था, कौन हँसाता था ? आज कोशिश करके भी मै हँस नही सकता—वह हँसी तो दूर रही। क्यो ? कुछ वजह बताइयेगा ?

लेकिन, हाँ, आप तो मेरी व्यभिचार-कहानी सुनना चाहते है। वजह बताने की फुसत कहाँ ?

तो, मै व्यभिचारी हूँ। जरूर हूँ। 'रेप-केस' मे ७ वष की सज़ा पाकर आज कितने वर्षो से लगातार चक्की चला रहा हूँ। फिर, मै न व्यभिचारी होऊँगा तो होगा कौन ? मुद्दई का ऐसा ही बयान था, गवाहो ने उसे तसदीक किया था, न्याय के स्वण-सिंहासन पर बैठकर न्यायपति का फैसला भी ऐसा ही था। मै व्यभिचारी हूँ—जरूर हूँ !

लेकिन, बाबू, आपलोग तो देश-भक्त ठहरे, समाज-सुधारक कहलाते है। आपमे से कुछ लोग अपने को क्रान्तिवादी भी कहते है। क्या आप व्यभिचार की परिभाषा बताइयेगा ? सदाचार ही क्या चीज़ है, समझाइयेगा ? दुहाई बाबू की, यदि परिभाषा हो जाती, तो बहुत-से

कसूरबन्दो की कडियाँ क्ट जाती, बहुत-मे लोग जो दूध के धुले बने राज-पथ पर विचर रहे ह, उनके हाथो मे जजीरे झूलती। ऐसा मेरा विश्वास है बाबू!

खैर, छोडिये इस मीमासा को! आप तो कहानी सुनना चाहते है! 'पतितो' की कहानी जरा मजेदार भी तो होती है। रेप और तलाक के मुकद्दमो के दिन कितनी खासी भीड रहती है कचहरी मे। हा-हा-हा! वाह रे समाज! तुम्हारी यह प्रवृत्ति ही सूचित करती है कि तुम्हारे चदन-चर्चित शुभ्र कलेवर के भीतर किस पनाले की काली धारा बह रही है! बाबू, हम-आप उसी समाज का एक छोटा-सा अश है न! लाख बाध बाँधने पर भी मन-सरिता अपने लिए राह बना ही लेती है!

आप स्वय भी अनुमान कर सकते है, मेरा जन्म एक गरीब के घर हुआ था। उस पर भी अभागा ऐसा कि बचपन मे ही पिता को खो बैठा। एक छोटे-से आँगन का पूरा राजा म ही था। मा थी, किन्तु हिन्दू-कानून के अनुसार उस आँगन पर उनका क्या अधिकार हो सकता था! निस्सदेह, म ही उसका एकछत्र अधिराजा था!

यह छोटा-सा आँगन तीन घरो से घिरा था। एक मे गाय-बछवा बाधे जाते। एक मे जलावन और पशुधन के लिए चारा रखे जाते। ये दोनो छोटे-छोटे घर थे। तीसरा घर कुछ बडा था—माँ उसे काफी स्वच्छ-सुन्दर बनाये रखती। यही हमलोगो का भडार-घर, पाकशाला और विश्रामागार था। कभी-कभी माँ की अनुपस्थिति मे, अपने बाल-सहचरो को जुटाकर, मै उसे नाटचशाला मे भी परिणत कर देता था।

इस घर के एक कोने मे रसोई पकती, एक कोने मे अनाज की तीन-चार छोटी-छोटी डेहरियाँ थी, बाकी जगह मे हम भोजन करते और फिर लीपपोत कर, चटाई डाल, सो जाते। जाडे मे इस घर मे, गर्मी मे आँगन मे, तुलसी-चौरे के निकट। मै धीरे-धीरे अट्ठारह वष का हो चला था, तो भी माँ मुझे गोद मे ही लेकर सोती। आप आश्चर्य करेगे। किन्तु मै उस रात को भी उस गोद मे ही सोया था, जिसकी भोर मे मुझे गिरफ्तार किया गया था।

हाय री वह गोद!—आह री वह रात!

× × ×

मेरे घर की, चल या अचल, जो-कुछ सपत्ति थी, वह एक गाय थी—ब्याई हुई। मा गॉव के बाबू के यहा दासी का काम करती, मै गाय-बछवे को देखता।

शादी मेरी हो गई थी, किन्तु बहू नही आई थी। अत माँ के पूरे प्रेम का अधिकारी मै ही था। खूब खिलाती, खूब दुलारती।

मै तडके उठता। शौचादि से निबट कर बागमती मे दो गोते लगा आता। फिर लँगोट कसकर अखाडे मे जा जुटता—आठ-दस पक्कड साथियो से और दो-चार उस्तादजी से लडकर, अपने धूल-धूसरित शरीर को गव से देखता, झूमता, घर पहुँचता। घर पर बछवा आव-ऑव से छप्पर उठाये रहता। उसे पुचकार कर खोलता। गैया के पुट्ठे पर मीठी-मीठी दो थपकिया देकर दूध दुहने बैठ जाता। लोटा भर लेता और बछवा को पीते ही छोडकर ऑगन मे चला आता।

मॉ पॉच-सात गोल मिच और तीन-चार छुहारे लिये खडी होती। उनके हाथो से झपट कर उन्हे मुँह मे रखता, दो-चार बार कसके चबाता, फिर गट-गटकर लोटा साफ करने लगता। जब आधा सेर करीब दूध रह जाता, लोटा रख देता। मॉ कहती रहती, यह भी पी जा, किन्तु कौन सुनता है! कुल्ली कर, मुँह पोछ, खुरपी को छीटी मे रख, उसे बगल मे दबा, बाये हाथ मे सुर्ती रख, दाहने के अँगूठे से उसे मलता, गुनगुनाता, मै सरेह की ओर चल देता।

मेरी मॉ! मैया, मैया! बाबूजी, कभी भी उन्हे निरूठा भोजन करते नही देखा—मेरा ही जूठा उनका आहार था। कई बार कहा—जूठा मत खा, इससे धम नष्ट होता है। बोलती—आग लगे तेरे ऐसे धरम मे। कई बार कहा—जूठा खाने से बीमारी होती है। कहती—भगवान् करे, तेरी बीमारी मै खाती रहूँ। बडी विचित्र थी मेरी मॉ। यदि मै जूठा नही छोडता, तो क्या उनके कठ मे एक बूद दूध भी जाता!

मेरी मैया, कहॉ चली गई मैया मेरी? मैया मेरी!

× × ×

तो, हॉ, गुनगुनाते हुए घर से निकलता और गाते हुए सरेह मे पहुँचता। साथियो का जमघट जुटता। इस मेड से उस मेड, इस खेत से उस खेत। घास कटती, गाने होते, दिल्लगियॉ उडती, हँसी के फव्वारे छूटते। छीना-छपटी और उठा-पटक का मजा भी हो जाता।

इसी धमाचौकडी मे छीटियाँ भी घास से भर जाती। फिर सभी हँसते-गाते लौटते।

दोपहर का भोजन कर साथियो की मडली पोखरे के निकट उस सघन अमराई मे इकट्ठी होती। गुल्लो-डडा, कबड्डी, ओछ-ओछ, आदि खेल होते। बेला ढलने पर फिर वही खुरपी-छीटी, वही इस खेत से उस खेत, वही हाहा-हीही, वही घास, वही घर लोटना।

शाम को मेरे ही आगन मे जमावडा जुटता। क्योकि मेरे घर मे न कोई कान पकडनेवाला बूढा था, न नाक सिकोडनेवाली पर्दानशीन। सो, सबको खुलकर हँसने-बोलने की यहाँ स्वाधीनता रहती। खँजडी और करताल पर दो-चार सझा गाई जाती, फिर लोरकाइन, दयाल-सिघी, सोठी, बिहुला वगैरह गीतो मे से किसीका सिर कुचला जाता। चादनी रात मे गिद्धागुडकान का खेल भी कभी-कभी हो जाता।

ऐसी ही मेरी दिनचर्या थी। बारह महीने, तीन सौ साठ दिन मे शायद ही कभी, किसी विशेष कायवश, इस दिनचर्या मे कोई व्यतिक्रम होता। हाँ, यदि प्रकृति का प्रकोप जगा, तो बात अलग!

बाबू, मेरा जीवन कितना सुखमय, कितना आनन्दपूण, कितना हँसी से भरा, कितना उल्लास से ओतप्रोत था। वाह रे 'वह' जीवन! आह रे 'यह' जीवन!

× × ×

मेरा अट्ठारहवाँ वष था, लेकिन मुझे देखकर कौन कहता कि यह अट्ठारह वष का है। मै हट्टा-कट्टा एक भरा-पूरा जवान दीख पडता। अग-अग गठे हुए—कुश्ती ने उनपर एक अजीब मस्ती लाद दी थी।

किन्तु, आपको सुनकर शायद आश्चय होगा कि तब तक मै यह नही जानता था कि प्रेम किसे कहते ह, मुहब्बत क्या बला होती है, आँखे कैसे लडती है, दिल कैसे उलझता है! शुरू से ही मै अपने को लडकियो से दूर रखने की कोशिश करता। जबसे अखाडे मे उतरा, कुश्ती शुरू की, तबसे तो उनकी परिछाईं से भी अपने को बचाता। किन्तु कौन जानता था कि मेरे इन सारे सयम, मेरी इन सारी चेष्टाओ का यही फल होगा—मै 'रेप-केस' का कैदी होकर इस जेल से उस जेल मे चक्कियाँ पीसता फिरूँगा।

यह कैसे हुआ?

२—फागुन का महीना

फागुन का महीना शुरू हो गया था।

वही फागुन जो हरे खेतो को लालपीली, बूटेदार, चादर ओढाता है, घने पेडो को सोरभमयी स्वणकणिकाओ के गुच्छो से लाद देता है।

जो तितलियो को पख देता है, भौरो को कठ देता है।
जो कोयल से गवाता है, बुलबुल को रुलाता है।
जो जवानो को मस्ती देता है, बूढो को चुस्ती देता है।
जो बच्चो को नचाता है, मुर्दों को हँसाता है।
वही फागुन का महीना था, बाबू!

कुश्ती लड, दूध पी, खुरपी-छीटी लिये मै सरेह की ओर जा रहा था। दो घटे दिन आया होगा—कितु सूय की किरणो मे अभी सोना बचा था। दूब पर की ओस की बूदे सूखी नही थी। वे सूय की ओर देख-देख कर हँस रही थी, खिलखिला रही थी। उनकी हँसी मे अगनित इन्द्रधनुषो की सृष्टि हो रही थी। किन्तु इस हँसी मे कितनी करुणा छिपी थी! जिसकी ओर देख-देखकर, जिसपर मुग्ध होकर वे हँस रही थी, जिसकी रश्मियो को छाती मे छिपाकर वे कृतकृत्य हो रही थी, वही—वही उनका अन्तक है। ओस की नन्ही बून्दो, हँस लो, हँस लो! बस, एक-आध घटे की देर है, जिनको लेकर तुम अपार आनन्द मना रही हो, वह चुपचाप तुम्हारी गदन मरोडने की ताक मे है। एक-आध घटा! फिर तुम्हारा निशान भी मिलना मुश्किल हो जायगा! समझी?

गॉव से एक पतली सडक पश्चिम रुख होकर, पोखरे के पूरब किनारे से उत्तर की ओर, बागमती तक जाती है। मै उसी सडक से जा रहा था। पोखरे को पार कर चुका था। अब सडक के पश्चिम खेत-ही-खेत है। खेतो मे सरसो, मटर, चना, खेसारी, तीसी आदि अनाज के पौधे फूल रहे थे—पीले, बैगनी, लाल, नीले आदि अनेक रगो का मेला लगा था। तितलियॉ अपने रग-बिरगे पखो को पसारे, मानो रग-बिरगी साडियो से सजधज कर, इस मेले की सैर-सी कर रही थी। जब धीरे से हवा का एक झोका बह जाता, मालूम होता, रगो के इस समुद्र मे तूफान आ गया। इन फूलो पर के ओस-बिन्दु भी

जाकर छोड दिया। फिर सिर के कपडे को सम्भाला। आँचल ठीक किया। साडी के निचले हिस्से मे तेज़ी से आने के कारण, ओस की तरी पाकर, कुछ तिनके आ टिके थे, उन्हे झाड दिया। फिर सुस्थता की लम्बी साँस ले, खुरपी-छीटी उठाकर हॅसती हुई बोली—'अच्छा, चलो'—और तीन-चार कदम चलकर जब मेरे शरीर से सटने पर हुई कि मै भी मुडकर चल पडा। मै उसकी इन क्रियाओ को देखकर हक्का-बक्का हो गया था। यत्र की तरह, मानो, उसके इशारे से, चला। मै आगे-आगे, वह पीछे-पीछे।

यह मेरे पडोस की लडकी थी। यह दूसरी जाति की थी, मै दूसरी जाति का। कोई नाता-वाता नही। किन्तु देहात मे सबका सबसे नाता रहता है न! वहाँ तो बाबू के साले से चमार भी दिल्लगी करता है। इसी नियम से वह मुझे भैया कहती। अभी मुश्किल से १३–१४ वष की होगी। साँवली—छरहरा बदन। आखे एक खास किस्म की—बरोनियाँ सघन, लम्बी-लम्बी, लम्बे, नुकीले, दूध-से उजले कोयो मे काली-काली पुतलियाँ जैसे नाचती होती, चितवन मे एक अजीब बाँकपन! उनपर पतली लकीर-सी भवे, जो अनायास ही कभी कटार, तो कभी कमान बन जाती! मुस्कराती चलती, हँसकर बतियाती। कई बार इसी सदाबहार हँसी के कारण वह अपनी माँ से डाँट-फटकार सुन चुकी थी, किन्तु जब वह डाँटती, यह और भी ठठाकर हँस देती। माँ भी बक-झककर चुप हो जाती, कभी-कभी इसके भोलेपन पर वह भी हँस पडती। क्या करती!

नाम था इसका पिअरिया। जिसको आपलोग सभ्य भाषा मे 'प्यारी' कहेगे, हमारी देहाती भाषा मे, मूखता के कारण वही 'पियारी' और प्यार पाकर, 'पिअरिया' हो जाती है। कोई भी उसकी सूरत, खासकर उसकी आँखे और हँसी देखकर कह सकता था, इस नाम मे पूरी साथक्ता है। एक बार देखने पर ही उसको प्यार करने की इच्छा जाग उठती।

कितु मुझे प्यार से क्या वास्ता? मै तो अपने को सयम का अवतार माने हुए था। इसके पहले भी कई बार इसी प्रकार पुकार चुकी है—मै खडा हुआ हूँ, बाते की ह, फिर यह अपने रस्ते, म अपने रस्ते।

पर, आज की पुकार मे न जाने क्या था कि मेरा सारा शरीर झनझना उठा। जिस समय इसने मुझे पुकारा था, ठीक उसी समय

आम की डाली से 'कुहू' की सुमधुर काकली सुनाई पडी थी। किन्तु उसकी पुकार और इस काकली मे मुझे कौन अधिक आकर्षक मालूम हुई थी, कैसे बताऊँ?

फिर पुकार के बाद की उसकी वे हरकते। उसकी वह उतावली, वह मुस्कराहट, वह चपलता! जब चलकर वह मेरे निकट आ पहुँची थी, उसकी तेज साँस मेरे दाहिने कन्धे से आ टकराई थी। इस साँस मे कितनी गरमी थी कि मेरे मस्तक पर पसीने की बूदे निकल आई थी।

× × ×

मै आगे-आगे जा रहा था, वह पीछे-पीछे चल रही थी।

बाई ओर खेतो मे फूलो का समुद्र उमड रहा था, जिसमे तितलियाँ तैर रही थी। दाहिनी ओर अमराई मे मजरियाँ बौराई थी, जिनसे भौरे ठिठोली कर रहे थे। दूर से आनेवाली कोयल की दुहरी आवाज इस दृश्य मे प्राण-सचार कर रही थी। आकाश साफ था—शात, सुन्दर। फागुन की मतवाली हवा दिगत को सुरभित और व्याकुल कर रही थी। और, मै आगे-आगे जा रहा था, वह पीछे-पीछे।

फूल हँस रहे थे। मजरियाँ खिलखिला रही थी। तितलियाँ त्यौरियाँ बदल रही थी। भौरे अनमने-से दीखते थे। और, मै आगे-आगे था, वह पीछे-पीछे थी।

ओस-कण ठठा रहे थे, किरणे हक्का-बक्का थी, और, मै आगे-आगे, वह पीछे-पीछे।

मै आगे, वह पीछे।

न वह बोलती, न मै बोलता।

कितनी दूर यो ही चलता गया।

'अच्छा, अब मै इधर जाता हूँ, उस खेत मे अच्छी घास है, तुरत पुर जायगी।'—मैने कहा।

'मै भी चलती हूँ, जो कमी रहेगी, तुम पूरी कर दोगे—अकेली कहाँ जाऊँ?'—वह बोली और मुस्करा पडी।

'नही, मैं तुम्हारे साथ न जाऊँगा।'

'क्यो?'

'यो ही।'

'यो क्यो ?'

'यो ही।'

'वाह रे यो ही! मै चलूगी। देखती हूँ, कैसे मुझे नही जाने देते हो? जबदस्ती है!" इस जबदस्ती के साथ वह खिलखिलाकर हँस पडी!

उसकी वह हँसी जैसे मेरे दिल मे खुभ गई। तो भी मै रूखा-सा होकर बोला—'जिद न कर। समझी ?'

'जिद न करो, समझे ?'

फिर वही हँसी—

'तो मै भाग जाऊँगा।'

'तो मै दोड पडूँगी—तुम आगे-आगे, मै पीछे-पीछे। कैसा अच्छा लगेगा मनोहर भैया ?'

अबकी बार वह ठठा कर हँसी। उसकी शोखी पर मुझे भी हँसी आ गई। कितु तुरत ही सजीदा-सा रूप बनाकर मैंने कहा—

'यदि कोई यो दौडते देख ले तो ?'

'तो क्या होगा ?'

'पगली!'

मेरे मुँह से पगली शब्द पूरे-का-पूरा निकला भी नही होगा कि वह फिर ठठा पडी—इतने जोर से कि मुझे भय हुआ और मै इधर-उधर देखने लगा कि कोई आसपास मे है तो नही।

बाबू, आपने भी बहुत शोख लडकिया देखी होगी। किन्तु वैसी नही देखी होगी, मै कसम खाकर कह सकता हूँ। इतनी लापरवाह, इतनी बेफिक्र। इसके निकट दुनिया कोई चीज ही नही, समाज की कोई गिनती ही नही। ओफ! मै बुरे फँसा।

ऐसा सोचते मैंने इसीमे खैर देखी कि इसको साथ चलने दूँ। और, आपसे ईमान की बात कहूँ, दिल उससे दूर भी नही होना चाहता था! मै मुडकर उस घासवाले खेत की ओर पतली पगडडी से चला। मै आगे-आगे, वह पीछे-पीछे।

मेरे पैर आगे की ओर बढ रहे थे, किन्तु मेरे ज्ञान और भावना मे, मस्तिष्क और हृदय मे, द्वद्व चल रहा था।

एक पक्ष ने कहा—'तू यह क्या करने जा रहा है, बेवकूफ! अरे, इस पथ पर पर न दे। इमका फल बुरा होगा। आग से खेल न कर, हाथ जल जायगा और यदि कहीं इच्छित इधन पाकर यह लहक उठी, तब इसीमे तुझे भस्मीभूत होना पडेगा। भस्मीभूत—कही राख का ढेर भी देखने को न मिलेगा। अरे, तू अपने सयम के लिए गॉव मे प्रसिद्ध है। तुझे लोग सदाचार की मूर्त्ति, सच्चरित्रता का अवतार समझते ह। जब वे तुझे इसके साथ यो एकान्त मे देखेगे तो क्या समझेगे? क्या कहेगे? छोड इस प्रपच को, अब भी चेत, इसे डॉटकर कह दे—'चल, जा मेरे पीछे से।'

इतना सोचते ही दिल को कडाकर मैने पीछे देखा, इसलिए कि उसको डाटूँ। किन्तु उसे देखते ही यह सब ज्ञान-गुदडी मानो कुहासे-सी फट गई। हमारे दोनो तरफ सरसा सघन रूप से फूली हुई थी। उसके कुछ फूलदार डठलो को तोडतोड कर वह हाथ मे लिये हुए थी। उसके हाथ मे वे फूलो के गुच्छे कितना खिल रहे थे! सरसा के फूलो की कुछ कोमल पखडियाँ, उसकी हरकतो के कारण, उसके कपडे पर जा गिरी थी और ओस के गीलेपन के कारण उसमे चिपक गई थी—मालूम होता था, उसकी साडी मे सोने के बूटे टँके हो। इस फूलो के बन मे, फूलो के गुच्छे लिये, फूलो की पखुडियो से लदी, वह साक्षात बन-देवी मालूम पडती थी। मै ठिठक गया। वह नीचे देखती, तल्लीन-सी आ रही थी। इस ठिठकने की आहट से उसने सिर उठाया, मेरी आखो मे ऑखे गडाकर देखा और हँस पडी। बोली—'काहे ठहर गये, क्या देखते हो?' मै कुछ बोल न सका। मुडकर फिर चल पडा।

अब दूसरे पक्ष की बारी आई। वह बोला—'हिस्, इसमे क्या धरा है, जो उधेड-बुन कर रहे हो। इसमे सयम-कुसयम का सवाल कहाँ से आता है? पाप-पुण्य की कल्पना तो तुम्हारी अपनी है। यहाँ तो स्पष्ट बात इतनी है—इस सुन्दर समय मे एक सुन्दरी तुमसे एक तुच्छ बात की याचना कर रही है। कुछ नही, थोडी देर की सगत। क्या उसे अस्वीकार कर दोगे? और, इस सगत मे पाप-पुण्य की कल्पना करके तुम तो अपने मन के दोष को प्रकट कर रहे हो। कोई देखेगा? —तुम्हारे पीछे कोई क्यो पडा है, जो पलपल तुम्हारी देखभाल करता

रहे! ऐसी आशका बेबुनियाद है। यदि मान लो कि कोई देख ले, तो क्या हुआ? क्या एक लडकी के साथ घास गढना पाप है? नही, छोडो इन बेवकूफी की बातो को। यह बेचारी सरल हृदय से एक सीधी इच्छा रखती है। दिन कुछ चढ गया है, अकेले इससे घास भी नही पुरेगी। उँह—इसको तकलीफ मे मत रखो। यदि ऐसा ही चाहते हो, तो आज चलते समय कह देना कि अबसे तुम्हारे साथ वह न आवे-जावे। बस।'

बाबूजी, उस समय इस तर्क से अपने मन को उसी तरह शात किया, जिस तरह कोई बेवकूफ बारूद के ढेर को गरम राख से ढाँपे। हाँ, वह थोडी देर के लिए ढँकेगा जरूर, किन्तु जोर से विस्फोट करने के लिए। मने उसके साथ घास गढी, बाते की, चुहल और विनोद, मुस्कुराहट और हँसी की बहार लूटी और घर चला। गॉव के निकट पहुँचकर जब उसने कहा—'अबसे तुम्हारे ही साथ घास गढूगी मनोहर भैया'—तब मुझसे यह कहते पार न लगा कि मत आना। मेरे सारे तर्क और ज्ञान का यही परिणाम था!

घर आया, खाया। दोपहर को कही बाहर न गया। मन मे विचित्र द्वद्व था, शरीर मे अजीब अवसाद। मोथी की चटाई बिछाकर घर में ही सो गया। सो क्या गया—आखे मूदे पडा था। कभी-कभी झपकी आती थी, तो वही फूलो मे भरे खेत, वही मजरियो से लदे पेड, वही पिअरिया और वही मैं। म आगे-आगे, वह पीछे-पीछे। उसकी वह जिद, सरसो के बन मे उसका वह प्रस्फुटित सौदय, वह साथ-साथ घास गढना, बतियाना। वह चुहल, वह विनोद, वह मुस्कुराहट, वह हँसी। पिअरिया! प्यारी—पियारी—पिअरिया। पिअरिया—पियारी प्यारी। मैं व्याकुल हो उठा। यह एक पैर आगे बढाने ही मै किस अगाध सागर मे जा पडा! पख फैलाते ही म किस व्योम-मडल मे फेक दिया गया!! उफ—!

× × ×

भोर से ही साथियो से भेट न हुई थी। वे लोग आखिर ढूढते-ढूढते घर मे आ पहुँचे। क्यो पडे हो, कहाँ रहे, उठो, चलो, आदि का शोर था। मै क्या जवाब देता? केवल इतना ही कहा—तबीयत सुस्त है, जरा सोने दो भैया! उनमे से एक ने, जो हम सबमे सबसे बडा काइया और ज़बाँ-दराज़ था, बोल उठा—'मनोहर भैया को आज दूनी घास—डचोढी तो जरूर—गढनी पडी है, थके है, सोने दो,

तग न करो।' इतना कहकर वह मेरी ओर देखकर यो मुस्कुराया जैसे छिपे-छिपे उसने हमलागा की सारी कारवाइया देखी हो। फिर अन्य साथियो को ढकेलकर उसने घर से बाहर कर दिया, खुद भी चला गया और बाहर से दरवाजे की कुडी लगा दी। हमी-हँमी मे ही उसने मुझे यो साथियो के ऊधम से बचा लिया—म उसकी इस कारवाई पर जरूर फिदा हो गया होता, किन्तु मुझे तो दूसरी ही चिन्ता ने आ घेरा—तो, क्या इसे आज की घटना मालूम हो गई? कुछ सान्त्वना इसी बात की थी कि मेरे अन्य साथियो को इन सबका कुछ पता नही, नही तो उसके कँहने पर कुछ फब्तियाँ ज़रूर कसी जाती।

मुझे खिलापिलाकर मा बाबू के घर चली गई थी। थोडा दिन था, तो आइ। कुडी लगी देखकर समझी कि मै बाहर चला गया हूँ, किन्तु ज्यो ही वह घर के भीतर आइ, मुझे सोते देख अचरज मे पड गइ। म दिन मे कहाँ सोता था! उन्होने मुझे उठाया। सचमुच म मो गया था—इन नक-वितर्कों के कारण दिमाग थककर शायद विश्राम लेने लगा था!

उठकर झटपट घर से बाहर आया। पानी लेकर मुँह धोया। फिर, खुरपी-छीटी ले सरेह की ओर चला।

शाम होने मे देर थी—लेकिन सूरज की रोशनी की रजतिमा धीरे-धीरे स्वर्णिमा मे परिणत हो रही थी। सारी प्रकृति फिर एक बार मुग्धकर रूप धारण कर रही थी।

वही तालाब, वही रास्ता, वही रास्ते की एक ओर के खेत, वही दूसरी ओर की अमराई!

वही रगो का मेला—वही सुगध का भडार!

और, इसी समय, पिअरिया की वह मादक स्मृति! पगली-सी उसका आना, मनोहर भैया कहकर पुकारना, साथ लगना, जिद करना, घास गढना, हँसना, मुस्कुराना, चुहल करना!

मालूम हुआ, जैसे, पीछे से वह फिर पुकार रही है—मनोहर भैया! और, मैने झट गदन मोडी! कोई नही!

अब चारो ओर से मालूम पडता, जैसे वह कभी पुकारती है, कभी ठठाकर हँसती है। मैं भौंचक बना, कभी इधर देखता, कभी उधर! एक बार तो मालूम हुआ, जैसे वह मेरे पीछे खडी है और उसकी गरम साँस मेरे कधे को स्पश कर रही है!

यह क्या है ?

अपने पर बडी खीझ हुई। उफ, मै इतना डूब गया। पिअरिया मेरी कौन होती है ? मै क्यो उसकी सगत खोजू ? मै क्यो उसके लिए व्याकुल बनू ? यह तो शैतानियत है, बदमाशी है—सीधी-सादी बदमाशी। तभी तो मन को बेलगाम घोडा कहा है। तो, मै भी एक मनुष्य हूँ। लगाम कसना जानता हूँ। चाबुक भी लगाना जानता हूँ। और, तडातड। हाँ। कोई ठिकाना है। हो गया—आई, घास छीली, चली गई, मामला खतम। फिर यह उधेड-बुन, यह ताना-बाना कैसा ? यह दुनिया है। रग-बिरगी चीजे यहाँ भरी पडी है। यदि नज़र मे आनेवाली हर सुन्दर चीज को लेकर दुनिया बसाने की कोशिश की जाय तो दुनिया मे अपने रहने को जगह भी नही बचे। इन बेवकूफियो को छोडो। बस। शान्त।

मन को दूसरी ओर लगाने की चेष्टा की। सामने एक साड जाँघ तक उपजे हुए गभराये गेहूँ को निदयतापूवक चर रहा था। सडक पर से ही दो-तीन बार उसे ललकारा। किन्तु कौन सुनता है ? हा, सुना क्यो नही, सिर उठाकर इस दृष्टि से मेरी ओर ताका कि मानो कह रहा हो—'ताकत हो तो आओ, दूर से चिल्ला क्या रहे हो ?' और, फिर चरने लगा। मुझसे नही रहा गया। इधर-उधर देखा, बाँस का एक छोटा-सा टुकडा पडा था। उठा लिया और जाते ही उसके मासल चूतड पर दो-चार दे जमाये। वह भागा। भागते को कौन खदेडे ? म फिर सडक पर आ रहा ओर रास्ता पकडा। अकस्मात् एक नया विषय आ गया, सोचने लगा—

सॉड दागना कितनी बडी बेवकूफी है, और, यह बेवकूफी बाप-दादे के नाम पर की जाती है। परलोक मे उन्हे बैल की सवारी मिलेगी कि नही और वह उनकी सुविधा की होगी कि नही, यह विवादास्पद है , किन्तु इस लोक मे उनके नाम पर जो हज़ार गालियाँ होती है, वह तो प्रत्यक्ष है। इस प्रथा ने गाय-बैल की नस्ल भी खराब कर दी है। सस्ते-से-सस्ते बछडे को खरीद कर दागा और छोड दिया। यह काश्तकारो की फसल को ही खराब नही करता, उनके गोधन को भी। आज देहात मे जो अच्छी गाय का मिलना मुश्किल हो रहा है, उसका कारण मुख्यत यह सॉड प्रथा भी है। किन्तु कोन सोचे, कौन समझे ! हमलोग तो छाया के लिए वस्तु को छोडते है, कल्पना पर तथ्य को कुर्बान करते है। काल्पनिक परलोक के नाम पर इस लोक की वास्तविकता को क्षण-क्षण बलिदान करना ही तो हमारे देश की आध्यात्मिकता है।

३–वाह मनोहर भैया !

'वाह मनोहर भैया, खूब कतरियाये चलते हो!'

देखा, वही लौडा, जो घर से सबको निकालकर कुर्डी लगा चलता बना था, हँसता हुआ मेरी ओर बढता आ रहा है। निकट आते ही पूछ बैठा—'क्यो, तबीयत अच्छी हुई ?'

'हाँ, यही जरा मन भारी मालूम पडता है!'

'दो मन जो हो गये हो!'

मने धीरे से एक चपत उसके गाल पर जड दी। वह 'ओह रे' 'मरे रे' कहता, हँसता हुआ भागा। किन्तु कुछ दूर जाकर वह फिर लौटा और बडी सजीदगी के साथ मेरे निकट आकर बोला—'मनोहर भैया, जरा इस गाल पर भी एक चपत जमा दो, तुम्हारी चपत मे बडी मिठास आगई है भया, तुम्हे मेरी कसम, बेचारे इस गाल को निराश न करो, यह रोयेगा।'

अब की बार एक पूरा धौल जमाया। किन्तु वह शोख, कब माननेवाला! यो ही अटसट बकता रहा। खैर, किसी तरह मै चिन्ता के उत्थान-पतन से बचा। वह कई तरह की दिल्लगियो मे लगाये रहा। खूब हँसता, खूब ही हँसाता। हँसने से तबीयत कुछ हलकी हुई। उसके साथ ही थोडी-बहुत घास गढकर लौटा। घर के निकट पहुँचकर मैने कहा—'बहुत अच्छे मिले आज, मोहन, जी मे थोडी चुस्ती आई। ओह, आज तो मै बीमार ही पडा था!'

'अगर यह एहसान सदा याद रख सको, मनोहर भैया'—इतना कह मम के साथ उसने जरा आँखे नचाई और खिलखिलाता हुआ अपने घर की ओर दौड गया।

रात मे मित्रो की मडली जमी। मुझे सान्त्वना मिली कि किसीने इसकी चर्चा तक नही की। हाँ, वह लौडा जब-तब नमक-मिर्च की एक-आध पुडिया छोड देता! उसमे कडवापन नही, चटपटापन होता, नमक का अश मिर्च से शायद ज्यादा था। मजा मिलता! उसकी शब्दावली ऐसी होती कि कोई दूसरा भाँप भी न सके। इसकी गभीरता शायद वह भी समझता था।

हँसी-खुशी के बाद यह मस्तो की मजलिस खतम हुई। म सोने चला। किन्तु नीद आवे कहा से ? करवटे बदलता रहा। मा बगल मे ही सोई थी ! इस बेकली को वह क्या समझे ? पूछा—'बेटा, नीद नही आती है क्या ?' मने कहा—'दिन मे थोडा सो जो लिया था, मैया !' 'ऑख मूदकर सो जा बेटा'—कहकर वह सो गइ। मने भी दम साध कर मा को यह जतलाने की कोशिश की कि मै सो गया। इसी प्रयत्न मे थोडी तद्रा आगई। न सोया था, न जगा ! मस्तिष्क की आखो से नाना तरह के दृश्य देख रहा था—भले और बुरे भी। रहरहकर चिहुँक पडता। फिर ऑखे झिप जाती। न जाने यो ही कितना समय बीता। इतने मे शरीर पर किसीके हाथ का स्पश मालूम हुआ। चौक पडा। देखा, चिराग हाथ मे लिये मा ह। एक हाथ मे चिराग है, दूसरे हाथ से मेरा शरीर छू रही है। मने पूछा—"चिराग क्यो मैया ?' उन्होने पहले मेरे मस्तक पर हाथ रखा, फिर छाती पर, तब तलवे पर हाथ फेरती हुई चिन्तित होकर बोली—'मुन्नू, तुम्हे ज्वर मालूम पडता है ! दिन मे काहे सो गये बेटा ?'

कल होकर मै बीमार था।

× × ×

बाबूजी, इस बीमारी पर मुझे कितनी खुशी हुई थी, क्या बताऊँ ! सोचा, चलो, फुसत हुई। यह नाव न-जाने कहाँ जाकर लगती, अच्छा हुआ, शुरू मे ही भद्रा आ पडी। किन्तु मनुष्य सोचता कुछ और है, होता कुछ और है। जिस वक्ष के जड से उखडने की कल्पना मै करता था, वही इस बीमारी के चलते इतने गहरे जड पकड लेगा, इसका स्वप्न भी कैसे देखा जा सकता था ?

उसी दुपहरिया को न जाने कहाँ से बवडर-सी घूमती, ज़ोर से काकी-काकी पुकारती, पिअरिया मेरे ऑगन मे आ पहुँची और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, मेरे घर मे घुस पडी। माँ तुरत ही घर से निकलकर कही गई थी। इधर-उधर झाँककर माँ को देखने लगी। मुझे पडा देख, जैसे चौककर, 'क्या हुआ' कहती मेरे सिरहाने आई, फिर सिर पर हाथ रख चिन्तित-सी होकर बोली—'ओह, बडा ज्वर है' और, अपना हाथ धीरे-धीरे मेरे बदन पर सहलाने लगी। मेरे मुह से एक शब्द नही निकला। मै उसकी चपलता और शोखी पर दग था। तुरत ही माँ आ पहुँची, तो उसने जरा तीखे स्वर मे कहा—'काकी, कही बीमार को छोडकर कोई यो बाहर जाता है !' 'कौन ?

पियारी ?' कहकर मा मेरे पताने आकर बैठ गई और बोली—'क्या कहती है बेटी, अकेली ठहरी, काम-धधा छोड दू, तो भी बाहर-भीतर तो लगा ही रहता है ' माँ शायद कुछ और कहना चाहती थी कि बीच मे ही बात काटकर पिअरिया ने कहा—'अच्छा, चिन्ता न करो काकी, जब तक मनोहर भैया अच्छे नही होते, म यही रहा करूँगी। सचमुच अकेली '

'तू कैसे रहेगी बेटी, क्या तेरे घरवाले रहने देगे ?'

'क्यो न रहने देगे। मै उनसे हुकुम ले लूगी।' फिर कुछ ठहरकर बोली—'अच्छा काकी, तुम जरा मेरी ईआ से क्यो नही कह देती ? तुम कहो, तो वह 'ना' कह सकेगी ?'

'हाँ, उनका स्वभाव तो जानती हूँ। किन्तु जवान बे टी '

'चुप, तुम भी पगली हो गई, काकी ! तो क्या जवान बेटी छीटी से तोपकर रखी जाती है ? क्या मै बकरी का बच्चा हूँ कि सियार न उठा ले जाय ?'

इतना कहकर वह खिलखिला पडी। इस दुख मे भी माँ के होठो पर मुस्कराहट की रेखा खेल गई। मै भी हँस पडा। फिर वह जैसे उस बात को जारी रखती हुई बोली—'और काकी, यदि सियार आवे भी, तो मनोहर भैया की लाठी उसका सिर भुरता नही बना देगी।' इस बार वह ठठा पडी। हमलोग भी खिलखिला पडे। मै सोचने लगा—'कितनी बेफिक्र लडकी है।' फिर उसके आखिरी कथन के रहस्य पर ज्यो-ज्यो गौर करता, त्यो-त्यो उलझन मे फँसता जाता। यह पिअरिया मुझे कहा ले जायगी, कौन कहे !

× × ×

मेरा ज्वर बढता गया, और, लगातार कई दिनो तक। जब-जब आँखे खुलती, पिअरिया को अपने निकट पाता। उसकी वह चपलता कहाँ चली गई थी ? एकदम बूढी-सी गभीर बनी रहती और मेरी हरएक हलचल को गौर से देखने और समझने की चेष्टा करती। मैं थोडी गर्मी महसूस करता और उसके हाथ मे मोर के पखो का पखा, मुझे प्यास का आभास मालूम पडता कि उसके हाथ मे गिलास। जरा पैर सुगबुगाये कि उसके हाथ मेरे तलवे पर, जरा सिर हिलाया कि मेरे बालो मे उसकी कोमल अँगुलियाँ। मै उसके इस सेवा-भाव पर चकित रहता। रात-रात भर जगती, किन्तु कभी झिपते नही

देखा—मानो नीद को जीत लिया हो। देखता, बैठे-बैठे मा की आँखे झिपने लगती और वह लुढक जाती। वह उनके कपडे को ठीकठाक कर उन्हे चुपचाप सोने को छोड देती और आप बैठी मेरी शुश्रूषा मे लीन रहती। खाने-पीने की तो परवाह ही नही, कई बार माँ को इसके लिए उससे उलझते देखा—'जा बेटी, जरा करवट बदल ले। एक दिन की बात नही, न जाने कब भगवान इसे अच्छा करे। यदि तुम्हे भी कुछ हो गया, तो मेरे मुन्नू को कौन देखेगा? जा—जा।' पिअरिया इधर बोलती बहुत कम थी, किन्तु बार-बार माँ के कहने पर वह अनखा कर बोल उठती—'तुम हरदम क्या बडबडाती रहती हो, काकी! भैया को देखो। अपनी सेहत का खयाल मुझे खुद है, मेरी चिन्ता न करो—लडकियो को काल भी नही छूता!' मुझे देखने के लिए मेरे साथी आते ही जाते रहते। गाँव के दो-चार बडे-बूढे भी देख जाया करते। बूढियो की जमात भी जुटती। मेरे साथी पिअरिया की इस सेवा को कुतूहल की दृष्टि से देखते। बडे-बूढा को इधर-उधर देखने की फुर्सत कहाँ, हाँ, बूढियो ने तो पिअरिया को आसमान पर चढा दिया—'आह! पियारी—कैसी लडकी है, देवी ह, कोई अपने भाई की सेवा भी ऐसा कर सकेगा'—आदि-आदि।

एक दिन जब म धीरे-धीरे अच्छा हो रहा था, औरतो की एक बडी मडली आ इकट्ठी हुई। मै अच्छा हो रहा था, अत सभी मे थोडा उत्साह था। खुलकर बाते हो रही थी। बीच-बीच मे थोडी हँसी भी बिखर ही पडती थी। पिअरिया भी आज उत्साह मे थी। बात का सिलसिला बढते-बढते पिअरिया की चर्चा आ निकली। एक बूढी दादी ने, पिअरिया की भूरि-भूरि प्रशसा करती हुइ, उसकी माँ से कहा—'पियारी की माँ, सच कहती हूँ, ऐसी लडकी इस गाँव मे नही ह। यह छोटी-सी उम्र, और यह अगाध सेवा-भाव। तू देवी जनी ह, पियारी की माँ!' मेरी माँ को अपनी कृतज्ञता पिअरिया की मा के सामने प्रकट करने का मानो मौका-सा मिल गया। वह बोली—'ठीक कहती ह दैया, पिअरिया देवी है। बहिनी, मेरा मुन्नू जियेगा, तो पियारी की ही सेवा से। अगर यह नही होती, तो ' बीच ही मे पिअरिया तिनुक उठी—'देख काकी, सातवे आसमान से नीचे मुझे नही रखना—हा, ऊपर ही उठाया, तो कसर क्यो रखी जाय? लेकिन काकी', मुँह बनाती हुई बोली, 'कही मै वहाँ से लुढकी, मेरे पैर उखड, तो देखना, अपना सिर बचाने की कोशिश न करना। याद रखो, गिरूँगी तो तुम्हारे ही सिर पर—ऐसी कि तुम्हे भुरता बना डालूँगी

—हा ।' हॉ कहकर वह, विचित्र ढग मे आखो को नचाकर, हाथो को चमकाकर, मुस्करा पडी। उसकी माँ हँस पडी, मेरी माँ भी हँसी, सारी मडली खिलखिला उठी। बूढीदादी ने कहा—'बात गढना कोई इससे सीखे, जैसे पडिताइन हो।' पिअरिया की माँ बोली—'क्या कहूँ दैया, इससे मै तग रहती हूँ। दिनरात यो ही बकती और ठठाती रहती है, जवान हुई, न मालूम अकिल कब होगी।'

इसी प्रकार की पिअरिया की शतश प्रशसाओ के बीच म अच्छा हुआ। कितु इसमे कम देर न लगी। जब से होश हुआ, सिर-दद भी नही हुआ था। सो, मानो, पूरी कसर निकाल ली गई। दो महीने बिछावन से सटा रहा, एक महीना घर-ऑगन हुआ, चौथे महीने जब बाहर निकला, तो देखा, न वह खेतो की बहार है, न अमराई का गुजार। हा, आम खूब फला है, अब पक रहा है और वहाँ बच्चो का जमघट लगा रहता है। खेतो मे मकई, साँवाँ, कौनी, आदि बोये गये है—उनके पीले-हरे अकुर निकल रहे ह। कितना परिवत्तन !

माँ ने मेरे इस आरोग्य को अपना सौभाग्य माना। किन्तु मै इसको क्या मानू ?

अहा ! यदि उस बीमारी मे हो मै गुजर जाता। कितने सुन्दर स्वप्नो को लेकर म जाता। सुनते है, मरने के समय जिस चीज पर ध्यान रहता है, उसी योनि में जन्म मिलता है। कह नही सकता कि यह सब गप्प-ही-गप्प है कि इसमे कुछ तथ्य भी है। तो मै या तो तितली होता या भौरा या कोयल या म होता उस पुनजन्म के लोक मे पिअरिया का और पिअरिया होती मनोहर की । सुख मे दोनो एक स्वर मे हँसते, दुख मे दोनो एक आसू रोते। उस रोने मे भी आनन्द होता, आज नही रोते हुए भी दिन-रात रोया करता हूँ। यह लाछन—यह वृश्चिकदशन ! उफ ! आह !

४ बरसात आई !

बरसात शुरू हो गई थी।

बसत और वर्षा—ये दोनो ऋतुये कितनी मादक होती है, बाबू ! किन्तु इन दोनो की मादकता मे कितना अतर है ! जिन्होने प्रकृति मे अपने को तन्मय कर लिया है, जिनकी आँखो मे कृत्रिमता का

चश्मा नही चढा है, वे ही इस अन्तर को देख सकते है। नही तो बेवकूफो के लिए तो सब धान बाइस पसेरी है ही।

बसत की मादकता मे कोमलता होती है, स्निग्धता होती है। वह हमे तितली-सी उडते चलने के लिए, भौरे-सा गुनगुनाते फिरने के लिए प्रेरित करती है। वह हृदय मे सनसनी पैदा करती है, सुगबुगाहट पैदा करती है। वह हमे गुदगुदाती है, हँसाती है। वह हमारे मन मे नाना प्रकार के रगो को पैदा करती है, ठीक उन खेतो के फूलो की तरह—चकमक, झलमल, झकझक!

किन्तु वर्षा की मादकता! आह, बाबू, आप शहर के रहनेवाले इन बारीकियो को क्या समझेगे? हर ऋतु के अलग रूप है, हमारे लिए उनके अलग-अलग सदेश है। किन्तु हम अपने जीवन को इतना अप्राकृतिक, इतना अस्वाभाविक बना लेते है कि उन्हे देख नही सकते, अगर उनके बाह्य रूप को देख भी ले, तो उनका सदेश सुन नही सकते, समझ नही सकते।

वर्षा की मादकता मे कोमलता नही, प्रबलता होती है, स्निग्धता नही, तरलता होती है, तरलता होती है, प्रवाह होता है। वह हमे बाधो को तोडने के लिए, सीमाओ का उल्लघन करने के लिए प्रेरित करती है। उसमे झझा की झकझोर, झर की झरझराहट, ठनके की ठनक और बिजली की तडप रहती है। उसमे इन्द्रधनुष की रगीनियाँ भी है, किन्तु क्षणिक, अस्थायी। स्थायी है उन्मादमय अधकार, दृष्टिविक्षेपकारी अजन। कभी पुरवा, कभी पछवा, कभी शात, कभी तूफान, कभी ऊमस, कभी कँपकँपी। वह हृदय मे सनसनी नही, उच्छृखलता पैदा करती है, सुगबुगाहट नही, खलबलाहट पैदा करती है। वर्षा की बडी बेटी है बाढ—सूखी नदियो को भर दो, किनारे के विशाल वृक्षो को उखाड दो, गिरा दो, बाँधो को मटियामेट कर दो, सीमाओ का नाम-निशान भी न रहे—समूचे ससार को एक सतह मे कर दो—जलमय, रसमय!

बाबूजी, बसत की दूती है कोयल, और उसका सदेश है, कु-हू। वर्षा की दूती है पपीहा, और उसका सदेश है, पी-कहाँ। कु-हू और पी-कहाँ मे जो अतर है, वही अन्तर है, बसत और वर्षा मे।

कु-हू और पी-कहाँ—दोनो मे प्रियतम की प्राप्ति की लालसा है। किन्तु कु-हू में लोकमर्यादा है, आत्मगोपन की चेष्टा है—कुहरती है, रोती है, किन्तु अपना अभिप्राय जबान पर ला नही सकती। कितना

सयम, कितना आत्म-दमन। और, पी-कहाँ—उफ, कितनी व्याकुलता भरी है, इस पुकार म! यह पुकार है या हाहाकार! व्याकुलता निलज्जता मे परिणत हो गई है। पी-कहाँ—पी कहाँ—कहाँ है पिया, पिया, पिया

× × ×

हा, तो यही—ऐसी ही—वर्षा ऋतु थी।

मकई बढकर हमलोगो से भी ऊँची हो गई थी। उसके सिर पर चमर डुलने लगे थे और गोद मे कोमल 'बाल' सुनहले लटो को लटकाये झाकने-से लगे थे। किसी की गोद मे एक, किसी की गोद मे दो। कौनी, साँवाँ का यौवन भी फूट चला था। यौवन-भार से उनके सिर झुक-से गये थे। जब झीसी-फूही पडने लगती और हवा मे झोके उठते तब इन खेतो का दृश्य देखने लायक होता। मालूम होता, मानो प्रकृति इस सावन के सुघर महीने मे हरी-हरी साडी पहने झूला झूल रही है। लाल-लाल चोच वाले हरे-हरे सुग्गो के झुड-के-झुड सिर पर उडते और कभी इस खेत, कभी उस खेत मे बैठते दीखते। मानो लाल तागे मे गूँथे प्रकृति के गले के ये हरे-हरे हार थे, जो झूले की पेग पर ऊपर-नीचे होते रहते थे।

इधर, कहना फिजूल है, कि मै और पिअरिया दोनो दो शरीर एक प्राण हो चले थे। पिअरिया के पिता की कुछ खेतीबारी भी होती है। इस साल उनके खेत मे मकई बोई गई थी। पिअरिया उसकी रखवाली करती। गरीबो के घर मे ऐसा ही होता है बाबू! बडे-बूढे तो बाबू के खेत पर जुते है, बाल-बच्चे उनके अपने खेत की देख-रेख करते है। पिअरिया अपने खेत के मचान पर बैठी दिन-भर सुग्गो को उडाती रहती। यदि ऐसा न किया जाय, तो ये सुन्दर पछी अपनी सुन्दर चोचो से बालो को कतर-कुतरकर तार-तार न उडा दे! उस हरीतिमा के सागर मे उस मचान-द्वीप पर खडी होकर जिस समय वह हा-हाहा-हा करके सुग्गो को उडाती, तो ऐसा मालूम होता जैसे बनदेवी अपने राज्य पर इन हरे डाकुओ को चढाई करते देख, उन्हे भाग जाने को, स्वय ललकार रही हो। किन्तु, वे ढीठ डाकू उसकी शक्ति-सीमा अच्छी तरह पहचानते थे! इधर से उडते, उधर बैठते। परीशान होकर वह अपना कमठा उठाती और उसपर मिट्टी की गोलियाँ रख दनादन चलाती। धनुष लिये कामदेव की तो सबने कल्पना की है, यहाँ रतिरानी प्रत्यक्ष धनुष तान रही थी! कमठे के साथ उसकी भवे

तनती, गालो पर लाली दौड जाती, ऑखो मे सुर्खी छा जाती, किन्तु इन सबका कोई प्रभाव उन सुग्गो पर क्यो होने लगा ? गोलियाँ भी इधर-उधर निशाने से दूर जा पडती। हारकर वह नीचे उतरती और इस कोने से उस कोने 'हा-हा' करती दौडती-फिरती। अन्त मे, शायद उसकी परेशानी का मजा उठाकर, वे सुग्गे उड जाते।

वह मचान पर आ बैठती। कभी गीली मिट्टी लेकर कमठे के लिए गोलियाँ बनाती, कभी मकई के सूखे पत्तो से गदरा बुनने की कोशिश करती। कभी मस्ती मे गीत टेरती। मेरा खेत उसके खेत के निकट ही था। उसमे कौनी थी। कौनी की देखभाल और घास छीलना—दोनो काम साथ ही करने के खयाल से मै वहा प्राय होता। शायद पिअरिया का आकषण भी आस-पास ही रहने को वाध्य करता। अत इन तमाशो को हजार ऑखो से देखता, इन गीतो को लाख कानो से सुनता। बदनामी के डर से इधर मैं उससे कुछ दूर ही रहने की कोशिश करता, उसे भी यह बात अच्छी तरह समझा दी थी, किन्तु जब कभी झीसी-फुही होने लगती या धूप कडी हो जाती, मै उसके मचान पर पहुँच जाता। मुस्कुराहटो का आदान-प्रदान होना, व्यग-विनोदो की लेनदेन होती। फिर जिस प्रकार मुह ऊपर किये, हँसते हुए, उसके मचान पर चढता, ठीक उसके विपरीत सिर नीचा किये, हृदय पर बोझ लिये, नीचे उतरता।

किन्तु अब कुछ दिनो से मन मे एक दूसरी ही तरह के विचारो का उत्थान-पतन होने लगा था। जो चीज हमारे हृदय के इतना निकट थी, उसको शरीर से इतनी दूरी पर रखने के औचित्य पर शका होने लगी। हम एक-दूसरे को चाहते है, एक-दूसरे को प्यार करते है। स्पष्ट तो यह है कि हमने एक-दूसरे को अपना हृदय दे रखा है। फिर मै उससे दूर क्यो रहूँ, उससे अलग-अलग रहने की कोशिश मे तबाह क्यो बनू ? समझ मे नही आता। प्रेम आध्यात्मिक चीज है, उसे वासना से कलुषित न करो, इत्यादि कल्पना मुझे अमानुषिक जँचने लगी—दैवी हो या दानवी, मानवी हो नही सकती।

और, बाबू, अपने इस विचार मे परिवर्त्तन करने का कारण मुझे नही दीख पडता। माना, मैने कष्ट सहे है, लाछनाये उठाई है, किन्तु केवल इसीलिए जो सत्य है, उसे असत्य नही समझा जा सकता ? मै जितना सोचता हूँ—और, इधर जेल के इस एकान्त जीवन मे सोचने का मौका-ही मौका है—मुझे अपने विचार प्रमाद-हीन मालूम हुए है।

माने लेता हूँ कि शरीर और आत्मा दो चीज़े ह, दोनो के अलग अस्तित्व ह, अलग काय हैं—यद्यपि यह मानने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही ह—किन्तु आप-हम ऐसे साधारण जीव उन्हे विलग नही कर सकते। आत्मा को मिलने दो, किन्तु शरीर को अलग रखो, यह कथन आप अपना खडन करता है। 'प्राणेर परश चाहे गायेर परश'—प्राण का स्पश शरीर का स्पश चाहता है—उस बगाली कैदी ने उस दिन यह पद गाया था। मानव स्वभाव का यही स्वाभाविक चित्रण है। आत्मा को मिल्ने दो, लेकिन शरीर को अल्ग रखो—इस भूलभुलैया-भरे कथन की सृष्टि किसी ऐसे विचारक के द्वारा हुई है, जिसमे या तो तह तक देखने की शक्ति नही थी या जो दुनिया की लाछनाओ से ऊब गया था, या जिसको प्रेम के बदले पत्थर मिला हो। यह कथन अनुभव से परे का है। यह विलकुल अप्राकृतिक है। प्रकृति को आँख खोलकर देखिये, तो इस कथन की सारहीनता और छिछलापन जान पडे। सुन्दर फूलो को तितलियाँ चाहती हैं। वे चाहती हैं, तो उसके आस-पास मँडराती है। किन्तु वे मँडराती ही नही रह जाती। हृदय का प्रेम शरीर को बरबस खीचकर फूलो से एक कर देता है। आपने कभी फूलो के साथ की तितल्यिो की क्रीडा देखी है ? पहले उसके आसपास खूब चक्कर लगाती है, दो-चार बार बैठती और उडती है, जैसे मान-लीला हो रही हो। फिर पखडियो पर दोनो पखो को पसारकर, किंजल्क पर अपने मुँह को सटाकर, यो निस्तब्धता से बैठ जाती है कि मालूम होता है, तन-मन की सुध भूल, मिलन का स्वर्गिक आनन्द लूट रही हो! इस छोटे से—एक इच से भी कम चौडे और एक तिनके से भी कम बोझ के—जीव मे कहाँ से यह अपार तल्लीनता आ जाती है! यही प्रेम है, बाबू, यही प्रेम का स्वाभाविक परिणाम हे। हष की बात है कि तितलियो के देश मे तत्त्वदर्शी नामक कोई जीव नही हे, जो उससे कहे कि जिससे प्रेम करो, उससे दूर ही रहो, उस स्वर्गिक वस्तु को अपनी वासना से अपवित्र न करो! यो ही मजरी और भौरे को देखिए, चिराग और पतिगे को देखिए। कहाँ तक गिनाया जाय ? प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण आपको पग-पग पर बतायगा कि प्रेम का अर्थ ही है, दो का मिलकर एक हो जाना,—आत्म-समर्पण, एकीकरण। इस आत्म-समपण, इस एकीकरण की क्रिया को आत्मा और शरीर के भेदभाव के चक्कर मे डालकर असफल करने की चेष्टा, मेरी समझ मे, अगर अपराध नही, तो अपराध नाम की कोई चीज़ ही नही है।

मेरा तो खयाल है बाबू, कि आदमी जो आज इतना दुखी है, वह इसीलिए कि वह अपनी बुद्धि के घमड मे प्राकृतिक खिचावो पर—स्वाभाविक प्रवृत्तियो पर—ध्यान ही नही देता। वह इन खिचावो को नियम का बाँध बाध कर रोकना चाहता है। फल क्या होता है ? यह बाँध तो टूटना ही है, प्रवाह मे ऐसी बहुत सुन्दर वस्तुएँ भी बह जाती है, जिनसे न जाने ससार के कितने उपकार सधते। आज मनुष्य ने अपने को हजारो व्यवस्थाओ और नियमो के बधन मे बाध रखा है, जन्म से लेकर मृत्यु तक वह पग-पग पर बँधा हुआ है ! फलत आज की यह अव्यवस्था, यह अत्याचार, यह उत्पीडन !

५—स्वप्न-लोक !

और, मैने देखा, यह मिलन की स्वाभाविक इच्छा मुझी मे नही ह, पिअरिया भी व्याकुल है। उसके प्राण भी तडप रहे ह। उसकी उन दिनो की हरकते ऐसी थी, जिनका सूक्ष्म निरीक्षण इस बात की घोषणा जोरो मे करता था। जब म उससे दूर होता, किसी-न-किसी बहाने वह निकट आने की कोशिश करती, जब मै उसके निकट होता, ऐसी सहूलियते खोजती, जिनके कारण मेरे शरीर का वह किसी-न-किसी प्रकार स्पश करे। और, एक आकस्मिक घटना ने इसके लिए राह भी खोल दी।

एक दिन की बात है। दोपहर का समय था। पिअरिया खाने के लिए घर गई थी। मै खाकर आ चुका था—गेहूँ की चपातियाँ और आम के कतरे। ठूस-ठूस के खाया था। अनरस (अन्न-रस) के साथ-साथ अम-रस (आम-रस) का तकाजा यही था कि कही लेटूँ। पिअरिया के मचान पर चला गया। मकई की सूखी पत्तियो से एक मोटा गद्दा-सा गदरा पिअरिया न अपन हाथो तैयार किया था। उसी-को बिछा, उसपर अपना अँगोछा डाल, लेट गया। लेटते ही आँखे झिप गईं !

आँखे झिपते ही एक विचित्र स्पप्न-लोक झलमला उठा !

मै सबुज-पर्ग के देश मे हूँ। जिधर देखिए, हरा-ही-हरा। पशु-पक्षी भी हरे-हरे ह—गाये हरी, बैल हरे, सरगट हरे, मैना हरी। सूय की किरण भी हरी है, हाँ, उसमे सुनहलापन की एक विचित्र

पुट-सी पडी है। आकाश हरा है, जमीन हरी है। एक और विचित्र बात। जितने प्राणी ह, सबके पख है—हरे-हरे। गाय-बैल के अगले पुट्ठो के निकट इन पखो का जोड है। वे हरी-हरी घासो को चरते-चरते, पखो को फडफडाते हुए, उडकर इस खेत से उस खेत मे पहुँच जाते ह ।

इन दृश्यो को विस्मय-विमुग्ध नेत्रो से देखता मै खडा था कि एक मोटा-ताजा बछेडा हिनहिनाता हुआ मेरे नजदीक आकर खडा हो गया। वह मेरे हाथो को सूघने लगा और अगले पैर से जमीन को खूदता जाता था। मालूम होता था, वह मुझसे कह रहा था कि मुझ पर सवार होओ। ऐसा बछेडा!—मै भी सवार होने के लोभ को न रोक सका।

किन्तु उसकी पीठ पर जाते ही वह पखो को फडफडाकर आकाश मे उड गया। साय-साय—वह बढता जाता था। मै तो हक्का-बक्का था। उसके अयाल को जोरो मे पकडे था, डर था, कही गिर न पडू ।

वह लगातार उडता गया। उडते-उडते अब एक ऐसा लोक दीख पडने लगा, जहाँ सब कुछ सुनहला था। बात की बात मे मेरे बछेडे ने उस लोक मे भी प्रवेश किया। अब आकाश सुनहला था, नीचे की जमीन सुनहली थी। सुनहली चिडिये उड रही थी, सुनहले पशु चर रहे थे। वृक्षो की सुनहली पत्तियाँ चमचमा रही थी। सुनहले फूलो पर सुनहले भौरे सुनहले गान गा रहे थे। सबुज-लोक से यहाँ एक विशेषता यह थी कि यहाँ का वायुमडल सगीत से भरा था। एक अनहद गान प्राणो को विभोर बना रहा था।

मेरा बछेडा खडा हो गया। शायद वह थक गया था। मै भी उसपर से उतर गया!

उतरते ही कानो मे रोने की आवाज आई। अरे, इस सगीत-पुरी मे यह रुदन कैसा? मने उस ओर ताका। ऐ, यह कौन? यह—यह तो पिअरिया है! पिअरिया—पियारी—प्यारी! एक राक्षस—भयानक राक्षस—उसे पकडकर अपने घोडे पर चढाना चाहता है और वह उसके पजे से निकलना चाहती है। इतने मे ही उसकी नजर मेरी ओर पडी—'मनोहर भैया, मनोहर भैया' कहकर वह चीख पडी! मै उस ओर दौडा। मुझे दौडते देख, वह राक्षस मेरी ओर घूरकर ठठा पडा—उसकी हँसी आकाश से टकरा-टकराकर बार-बार गुजित होने लगी। मेरी गति सहसा रुक गई, मालूम हुआ, जैसे मेरे पैरो मे सौ

मन का पत्थर बँधा हो। मै पर-वश होकर छटपटाने लगा। मुझे छटपटाते देख वह मुस्कराने लगा और पिअरिया को जबदस्ती अपनी ओर खीचकर उस—उस—उस दुष्ट राक्षस ने चू चू चूम लिया! आवेश से मेरी आँखे लाल हो गई। जोर से मैने पैरो मे झटका दिया—जैसे बधन खुल गये। मै दौडा। मुझे दौडते देख पिअरिया को पकड-कर उसने घोडे पर बिठा लिया और जोर से घोडे को चाबुक लगाये। घोडा उडा—सॉय-सॉय। पिअरिया हाहाकार करने लगी—मेरी ओर देख-देखकर, मेरा नाम पुकार-पुकार कर हाहाकार करने लगी! म तो सन्न रह गया। अपने बछेडे की ओर दौडा। किन्तु वहाँ बछेडा था कहाँ—न जाने कहाँ चल दिया था! पागल-सा राक्षस के घोडे की परिछाही के साथ मै दौडने लगा। दौडता जाता था और चिल्लाता जाता था—पिअरिया, पिअरिया , पियारी प्यारी

'मनोहर भैया, मनोहर भैया,'—कहती पिअरिया मुझे झझकोर कर जगा रही है, जागकर मैने देखा। 'क्या सपना रहे थे, भैया?' उसने हँसते हुए पूछा। 'क्या बरबरा रहे थे, बताओ न!'—फिर मुस्कराती हुई उसने सवाल किया! मै क्या जवाब देता? हक्का-बक्का उसकी ओर देख रहा था! मै कहाँ हूँ, वह राक्षस क्या हुआ, पिअरिया यहाँ कहाँ—आदि प्रश्न मेरे सिर मे चक्कर काट रहे थे। इतने ही मे भावावेश मे आकर, पिअरिया, पिअरिया चिल्लाते मैने उसे खीचकर छाती से लगा लिया! उसकी छाती मेरी छाती मे सटी थी, उसकी धडकन मेरी धडकन से मिल रही थी। उसके अधर मेरे अधरो मे सटे थे—उसकी सास मेरी सॉस मे समा रही थी। कहाँ है वह राक्षस, आवे, अब उसको देखू

इस स्वप्न को लेकर पीछे हम-दोनो मे खूब दिल्लगियाँ होती। पिअरिया ने बतलाया कि किस प्रकार भोजन के बाद जब आई, तो उसने मुझे अपने मचान पर सोया देखा। वह चुपचाप मेरे पैताने बैठ गई। सोते-सोते मै दो-एक बार चौका और उसके बाद बरबराने लगा। मेरा समूचा शरीर पसीने-पसीने हो गया था, सॉस अस्वाभाविक रूप से चलने लगी थी। इस बरबराहट मे भी स्पष्ट मालूम होता था कि मै पिअरिया का ही नाम ले रहा हू। पहले तो वह इस बरबराहट का आनन्द लेती रही, किन्तु पीछे जब मै जोरो से कॉपने लगा, उसने झझकोर कर उठा दिया।

खैर, जो कुछ हो, इस स्वप्न के चलते हमलोगो का शरीर भी एक हो चला। भावावेश के उस मिलन ने स्थायी मिलन का द्वार खोल दिया। अब उसके निकट बैठने मे मुझे झिझक नही होती, औचक आकर मेरी आँखे मूँदने मे उसे सकोच नही होता। उधर खेतो मे रिमझिम बूदे गिरती, इधर हमारे हृदय मे प्रेम के निझर झरते। आकाश मे इन्द्रधनुष उगते एक क्षण के लिए—हमारा हृदयाकाश इन्द्रधनुष का स्थायी आवास हो गया था। बादल और बिजली की लुकाछिपी कभी-कभी दीख पडती, यहाँ दिन-रात इसीकी पुनरावृत्तियाँ होती।

किन्तु

किन्तु अपने आनन्दातिरेक मे हम ससार को भले ही भूल जायँ, ससार हमे क्यो भूलने लगा? उसे न हमारा दुख पसद है, न सुख। दुख मे कोसेगा, सुख मे झुझलायगा। दुख मे सान्त्वना देने के बदले कहेगा—बदमाश कही का, अब किये का फल भोग, बहुत इठलाये फिरता था। सुख मे ईर्ष्या से जलकर चिल्ला उठेगा—साले, मौज कर लो, जब समय पडेगा, तो रोओगे—वह दिन नजदीक ही है। और, केवल कहकर ही सतुष्ट नही होगा, उस दिन को नजदीक लाने मे कुछ उठा भी नही रखेगा। यही ससार है बाबू।

६—ससार की नजर

इस ससार की नजर हमपर पडी। या शायद ससार की नजरो को हमने ही अपनी ओर खीचा।

पहले कुछ दिनो तक कानाफूसी रही, फिर जहाँ-तहाँ आवाजे कसी जाने लगी। हम भी अब इन हलचलो से नावाकिफ नही रहे। हमने देखा कि कुछ लोग दिन-रात हमारी हर हरकत को गौर से देखने मे ही अपने अमूल्य समय का सदुपयोग कर रहे है। औरतो मे एक खास हलचल थी। हमारे देश की स्त्रियाँ! इनका काम ही क्या है? दिन-भर घर मे बैठे-बैठे आटा गीला करना या हर लडकी या लडके के चरित्र की नुक्ताचीनी करना! जरा कही किसी बात की चर्चा हुई कि भनक मिलते ही ये ले उडी—कुछ ही क्षण मे घर-घर की नई बधुएँ तक उस समाचार से पूण अवगत हो गई।

बूढी स्त्रियाँ ग्राम-गजट का काम करती है—लडकियाँ उनके लिए 'खास सवाददाता' होती है। इस न्यूज-एजेसी से किसी समाचार का छिपा रहना असम्भव है।

मैने पिअरिया से इसकी चर्चा की। मेरी बाते सुनकर गभीर या चिन्तित होने के स्थान मे, वह हँस पडी। बोली—'तो आप क्या चाहते है? हमलोग उनकी आँखो मे उँगली घुसेडकर यह-सब किया करे, और वे बेचारे कहने-सुनने से भी गये!' मैने कहा—'हँसी मे मत उडाओ—कही यह उग्र रूप न धारण करे, बडी मुश्किल होगी!' और, सच बात तो यह है कि मुझे कुछ डर-सा लगने लगा था—अपने लिए नही, पिअरिया के लिए। हमारा आप का समाज पुरुषो के लिए काफी उदार है। आप सात घाट नापे, माफ किया जा सकता है, किन्तु औरतो का पैर जहाँ जरा-सा नीचा हुआ कि उनकी जिन्दगी खराब। प्रेमोन्माद में—पहले झोके मे—मैने इसपर इतना खयाल नही किया था, किन्तु इधर अब गौर करने से अपने को बचा नही सकता था। किन्तु मेरा गौर करना सब व्यथ था। म जिसके लिए चिन्तित था, डरता था, वह तो निश्चिन्तता और निडरता की मूर्त्ति बनी बैठी थी। हाँ, ठीक मूर्त्ति की तरह—सब तरह की मानसिक झझटो से परे! मेरी उपर्युक्त बाते सुनकर वह कह उठती—'मुश्किल होगी, क्या मुश्किल होगी मनोहर भैया? तुम भी बात का बतगड बनाते हो।' और, इतना कह, वह दूसरा प्रसग छेडकर मुझे बहलाने लगती!

एक दिन शाम को मै, कुछ मुँह-अँधारी हो जाने पर, घर की ओर जा रहा था। बगल मे डडा था, हाथ मे सुर्ती। मौज मे एक बिरहा टेरे हुए था। उसी तालाबवाली सडक से जा रहा था। सडक के पश्चिम खेतो मे मकई-आदि फसल उपजी हुई थी, पूरब के बगीचो मे आम का पहला ज्वार खतम हो चला था, दूसरा दौर था—यानी बम्बई, किसुनभोग, दलिमा आदि झड–से रहे थे, किन्तु मालदह, सिपिया, हैदरबखश आदि का जमाना बुरत शुरू हुआ था। अत वहाँ की चहल-पहल मे कमी नही थी।

म, यो, गाते हुए जा रहा था कि पश्चिम ओर के मचान से 'मनोहर भैया', यह आवाज आई। म पहचान गया कि किसकी बोली है। वह मोहन था। 'ठहरिये, मै आता हूँ, एक काम है'—उसने फिर कहा। 'ठहरा हूँ'—कहकर मै वही खडा हो गया। दो-तीन मिनट मे ही वह मेरे निकट था।

निकट आकर पहले उसने इधर-उधर देखा। फिर सजीदा-सा हो-कर बोला — 'भैया, आपसे बहुत बाते करनी है। म मौका ही ढूढ रहा था, अच्छे आये।' उसकी आज की बात मे वह चुलबुलाहट नही थी, जिसके लिए वह प्रसिद्ध था। मने भाँप लिया कि निश्चय ही वह कोई गम्भीर बात सुनायगा।

एकान्त मे मुझे घसीटकर ले गया और अपना पोथा सुनाना प्रारम्भ किया। किस प्रकार पिअरिया को लेकर गाँव मे एक हलचल फैली है, किस तरह गाव का हर बच्चा हमे सन्देह की दृ टि से देखता है, आदि-आदि बातो का वणन कर इस प्रसग की खास बात पर उतरा। किस प्रकार अमुक इस बात की चर्चा कर रहा था, किस तरह अमुक ने उस दिन पिअरिया के बाप से इसकी चर्चा की थी, किस तरह पिअरिया का वह चचेरा भाई, जो खुद ही पिअरिया पर मरता है, अब उसके बाप को उभाड कर कोई काड करने पर तुला हे, आदि बाते उसने ब्योरे-बार सुनाई। यही नही, किस प्रकार पिअरिया से उसकी मा द्वारा कहलवाया गया हे कि मुझसे बातचीत न करे, यही नही, सम्भवत वह कल से अब खेत भी नही आ सकेगी। यह-सब कहकर अन्त मे कहा– 'मनोहर भैया, आप इस प्रपच से अपने को हटाइये। एक तो आपकी शिकायत होती हे, जो मुझसे सुनी नही जाती, दूसरे, कुछ आपके दोस्त है, जो इस मौके से लाभ उठाकर आपको नेस्त-नाबूद करने पर तुले है। आपके कुछ ऐसे दोस्त है, जो अखाडे मे आपसे पटकाते है, किन्तु इस हार को वे अपने हृदय मे पोसे हुए ह और उसका बदला इस काड के द्वारा चुकाना चाहते है। यो ही बहुत से लोग है, जिनमे गाँव मे रहने के कारण कभी-न-कभी सख्त-सुस्त हो ही जाती है, वे लोग भी मौका ढूढ रहे ह। यही नही, पिअरिया पर भी बहुत से लोग नजर लगाये हुए है, और इनमे अधिकाश आपके दोस्त है, वे लोग यह देखकर कि वह आपपर मरती और उन्हे अँगूठा दिखाती है, जल-भुन रहे है और अपनी जलन निकालने के लिए, जो कुछ भी सम्भव हो, करने को तैयार है। आप सीधे है— जिस प्रकार आपका शरीर सुडौल है, उसी प्रकार आपका हृदय भी, दुनिया के हृदय की पेचीदगी का —कुटिलता का—आप अनुमान भी नही कर सकते।' कहते-कहते आखिर मोहन ने मेरे पैर पकड लिये और गिडगिडाकर बोला —'मनोहर भैया, मनोहर भैया, मै आपके पैर पडता हूँ, भैया, इस प्रपच से आप अपने को हटाइये। पिअरिया आपको चाहती है, मानता हूँ, पिअरिया आपपर मरती है, जानता हूँ, किन्तु, पिअरिया

का प्रेम यदि सच्चा है, तो उसके लिए भी यह वाछनीय है कि आप सकुशल रहे, आपका बाल बाँका न हो। किन्तु म सच कहता हूँ, यदि आपने मेरी विनती पर विचार नही किया, तो दो-चार दिनो मे ही कोई काड होनेवाला है। कुछ लोग इस काड के करने पर तुले हुए है, अब इसको रोक सकते है तो आप ही। भैया, आपको मेरी कसम, आपकी पिअरिया की कसम, कम-से कम दस दिनो के लिए आप उसके साथ का बोल्ना-चल्ना बद कर दीजिए। आँधी टल जाने दीजिए, फिर देखा जायगा। भैया-भैया !' मैने शाम के उस झुटपुटे मे भी अनुभव किया कि उसकी आँखो मे आँसू छल-छला आये है, गला तो रुँध रहा था ही। मै बडे पशोपेश मे पडा। वह जोर से मेरे पैरो को पकडे था। उसके शुद्ध अन्त करण के इन मार्मिक उद्‌गारो का मै तिरस्कार नही कर सकता था। अपने बचाव की ओर ध्यान नही था, बचपन से ही मै अपनी ओर से उदासीन रहता आया हूँ, अपने जीने-मरने के प्रश्न पर गौर करने का अभ्यास ही मुझमे नही है, किन्तु एक विशुद्ध हृदय से निकली, विशुद्ध भावना से ओत-प्रोत इस कातर प्राथना को मै नही ठुकरा सका। दिल को बडे जोर से दाब कर मैने कहा—'हॉ,' फिर इस बात को हलका बनाने के लिए, मैने हँसते हुए कहा—'अच्छा, मै सोचूगा। मोहन, इतना खिन्न क्यो होते हो, म तुमसे अलग हूँ थोडे, जो कहोगे, करूँगा'— और उसके हाथो को अपने पैरो से छुडाकर, उसको पकडे हुए खडा हो गया और उसे छाती से लगा लिया। फिर उसीके साथ इधर-उधर की गप्प उडाता पोखरे पर आया। वहॉ हाथ-मुह धो, जरा स्वस्थता अनुभव करते हुए, घर पहुँचा।

रात मे खा-पीकर जब सोने गया, तब मॉ ने भी, बडी ही दबी जबान से, इसकी चर्चा छेड दी। इधर, मॉ मुझसे बहुत कम बोलती। मै इस चुप्पी का कारण जानता था। यथाथ बात तो यह है कि वह बहुत दिनो से कहना चाहती थी, किन्तु सकोच उनकी जबान पकडे था। अत साधारण बातचीत भी बद थी। आज जैसे बाध टूट गया। वह बोली—

'यह क्या सुनती हूँ, मुन्नू!'

'क्या सुनती हो?'

'सुना है, पिअरिया के बाबूजी आज किसीसे कह रहे थे कि म बिना जेल खटवाये नही छोडूगा। मेरा मून्नू, तू तो ऐसा नही था! यह कैसी फसाद खडी कर ली तूने?'

मैने हँसकर कहा—

'फसाद कैसी, मैया ? जेल चोर जाते है, डाकू जाते है। मै क्यो जेल खटूगा, मैया ?'

'हँसी मे मत उडा, मुन्नू ! दैया कह रही थी, तू सचमुच फस गया है। बेटा, मुझ अनाथिनी को और अनाथ मत बना। तेरा ही मुह देखकर मैने अपनी भरी जवानी काट डाली, अब बुढापे मे तू मुझे रुला-रुलाकर मारना चाहता है ?'

घर मे अडी के तेल का दीया जल रहा था। उसके स्वच्छ प्रकाश मे मैने देखा, उनकी आखे मोती उगल रही है। मै सन्न हो गया। मै क्या बोलता, वही बोलती रही—

'पिअरिया !—पिअरिया !—मै तो उसे देवी समझती थी। वह डाइन है, यह मै क्या जानती थी ? क्या मेरे बेटे की सेवा उसने इसीलिए की थी ? मै अकेली अपने मुन्नू को अच्छा कर लेती। यदि उसका यह डायनपन जानती, तो उस कलमुँही को अपने आँगन मे घुसने भी देती ! बाप रे !'

अब मुझसे नही रहा गया। मै बीच ही मे बोल उठा—

'मैया, तू क्या फिजूल बक रही है ? लोगो ने अट-सट कह डाला है तुझसे ! चुप रह —लोगो को बकने दे—'

'यह अटसट है ? तो, दैया झूठी है ? उसका चचेरा भाई जो आज मुझे सुनाकर कह रहा था 'साले का सिर तोड दूगा' यह भी झूठा है ? तू मुझे ठगना चाहता है ? मुन्नू, मैने तुझसे ऐसी उम्मीद नही की थी—तू मुझे ठगना चाहता है'

माँ कुछ उत्तेजित हो चली थी। इसी उत्तेजना मे उनकी आँखो की मोती-माला भी सघन हो रही थी ! उनके गाल भीग गये थे, आचल तर हो रहा था। मेरी 'काटो तो खून नही' वाली हालत थी। मै क्या कहूँ ? कैसे उन्हे समझाऊँ ? कुछ समझ मे नही आता था। सिर भारी हो रहा था। तब, जैसा कि मेरा बोझ हलका करने के लिए ही, वह स्वय बोल उठी—

'अच्छा, जो हुआ, सो हुआ। आज तुझे मेरी देह छूकर शपथ खानी पडेगी। शपथ खानी होगी कि तू अब से पिअरिया से न बोलेगा, न उसकी परिछाही छूयेगा ? छू मेरा हाथ, शपथ खाता है या नही ?'

मैं तो विचित्र पशोपेश मे पड गया। हा-ना के द्वद्व के लिए भी गुजायश नही छोडी गई थी। माँ रो रही थी—उनकी आँखो से अजस्र अश्रुधारा जारी थी। इन आँसुआ की बाढ मे मुझे दुनिया भूल गई। आगापीछा बिना सोचे ही मैंने उनके अनरोध को मान लिया—'अब से म पिअरिया से नही बोलूगा, उसकी छाया भी नही छूऊँगा!'

मेरा यह आश्वासन पा माँ सो गई। किन्तु मैं?

७—आँखो में नींद कहाँ!

मेरी आँखो मे नीद कहाँ? विचारो की बाढ सी आ गई थी—न कोई शृखला थी, न सीमा। हाँ, एक केद्र अवश्य ही था। वह केन्द्र पिअरिया थी। आज मालूम हुआ कि पिअरिया मेरे लिए क्या है! उसका छोडना मेरे लिए कितना दुष्कर है? उसकी मूर्त्ति हजारो रूप धरके मेरी आँखो के सामने नाच रही थी। उसका हर अग, अगो की एक-एक हलचल, अपनी मोहकता का जादू मुझपर फेक रही थी। कितनी सुन्दर हे पिजरिया, क्या ऐसा सौन्दय प्राप्त कर के छोडने के लिए होता हे?

और, क्या चाहकर भी म उसे छोड सकता था? माना, मैंने मा के निकट आज प्रतिज्ञा की हे, शपथ खाई है, किन्तु यह प्रतिज्ञा, यह शपथ कब तक के लिए? ज्यादा-से-ज्यादा यही हो सकता है न, कि मै उससे न बोलूँ, किन्तु जब वह हँसती-हँसती आयगी और भौहो को जरा कुचित कर कुछ पूछ बैठेगी, तब? तब क्या मुझसे चुप रहा जायगा? और, मुझे चुप रहने के लिए वह छोडेगी भी? अभी उस दिन म, यो ही, जरा रूठ गया था, बोलना बद कर दिया था। क्या हुआ? दो-एक बार कुछ पूछा, उत्तर न पाकर पहले जरा, कुछ क्षणो के लिए, चिन्तित-सी हो गई। किन्तु वह हार माननेवाली थी? दौडकर मेरे निकट आई ओर गुदगुदी लगाकर मुझे हँसा ही दिया, बोला ही दिया। मै उसकी छाया भी न छूना चाहूँ, किन्तु जो स्वय छाया बन गई है, उससे अपने को अलग कैसे रखा जायगा? जिस समय पीछे से, औचक आकर, मेरी आँख मूद लेगी, तब? तब मैं क्या करूँगा?

लेकिन, माँ! माँ ने मुझसे प्रतिज्ञा जो करा ली है! क्या मै माँ के साथ विश्वासघात करूँगा? माँ के साथ! और, मा भी कैसी? मेरी

जानि मे पुन विवाह की प्रथा प्रचलित है। मेरे पिताजी जिस समय मरे थे, माँ भरी-जवानी मे थी। कोई दूसरी स्त्री होती, तो किसी युवक का पुन पाणिग्रहण कर अपना शेष जीवन आनन्द और उल्लास मे बिताती। माँ मेरी काफी रूपवती थी। कोई भी युवक उनका हाथ धरने मे अपने को सौभाग्यशाली समझता। किन्तु माँ ने अपने जीवन की सारी साधो और इच्छाओ को एक बार ही समाधिस्थ कर दिया! क्यो, किसके चलते? मेरे ही लिए तो! मुझी को देखकर तो! गाँव के लोग कहते—'सती निकली है! देखते है, यह सतीपन कब तक निभता है? सर-सोलकन होकर बाबू-भैया की स्त्रियो की नकल? अच्छा, जब पाँव भारी होगे, तब हाय-तोबा मचेगी!' किन्तु यह हाय-तोबा नही मची। मेरी माँ ने शत-शत प्रलोभनो और प्रताडनाओ के बीच रहकर भी अपनी टेक निभाई। टेक निभाई किसको देखकर, किसके चलते? क्या मै अपनी उस माँ के साथ विश्वासघात करूँगा? मा के साथ ?

किन्तु एक बात तो हे। क्या माँ के लिए यह उचित था? जब तक मै अबोध था, तभी तक मा के पथ-प्रदशन की आवश्यकता थी। अब तो मै सयाना हो चला हूँ, अपने भविष्य, अपनी दीन-दुनिया के बारे मे सोचने-विचारने की अक्ल मझमे आ गई है। फिर माँ मेरे रास्ते मे क्यो पडती है? उन्हे उचित है कि मुझे छोड दे। उनका कत्तव्य वही पूरा हो गया, जब कि मै जवान हो गया। अब तो वह अपने दायरे से बाहर पैर रखती है- अपने कर्त्तव्य-क्षेत्र का अतिक्रमण करती है। वह बूढी हुइ —पका आम। कब टपक पडे, कौन जाने! समूचा जीवन तो मुझे अकेले ही ढोना पडेगा। इस दृष्टि से भी उचित है कि वह मुझे अपने निणय के बारे मे स्वतत्र छोड दे। नही, वह अब मुझपर अत्याचार कर रही ह —निस्सदेह यह अत्याचार है! अपने अधिकार का यह दुरुपयोग है। यदि वह अपने अधिकार का दुरुपयोग कर रही है, तो मेरा भी कत्तव्य है कि अपने अधिकार की रक्षा करूँ। चाहे माँ हो या बाप —किसी का भी अत्याचार सहना अत्याचार को प्रोत्साहन देना है। यह समाज के लिए भी खतरनाक है। नही, मै इस शपथ से वाध्य नही हूँ! होगया, उनकी दिलजमई हो गई। किन्तु फिर भी तो यह विश्वासघात होगा! तो क्यो न जगाकर कह दूँ कि मैया, इस बारे मे मै तुम्हारी सलाह नही मान सकता! ठीक तो, जरूरत के वक्त मे ढीले-ढाले ढग से सोचना खतरनाक है। हमारा काम साफ होना चाहिए, नैतिक साहस का भी यही तकाजा है! अच्छा, तो उठाऊँ? किन्तु

मेरे इस कथन का मैया पर क्या प्रभाव पडेगा, यह सोचते ही मैं थर्रा उठा। क्या वह जीवित भी रहेगी ? इतना बडा सदमा किसीको भी मारने के लिए काफी है। और, आखिर उनका उद्देश्य भी तो बुरा नही हे। वह चिन्तित ह, तो मेरे ही लिए। मेरी मगल-कामना की भावना ने उन्हे यह अत्याचार — यदि यह अत्याचार भी हो—करने के लिए वाध्य किया है। वह समाज से डर रही ह

समाज ? ठीक, सारी फसाद की जड तो यह समाज ही है। और, समाज भी कैसा ? यह समाज बुजदिल है, प्रभुता-परस्त है। यह गरीबो को, कमजोरो को सताता है, धनिको के, बलवानो के तलुवे सहलाता है। वह—वह मेरे गॉव का मालिक सबकी ऑखो मे अँगूठा घुसेडकर, उस चमाइन से 'नेह का नाता' जोडे हुए ह। सब लोग जानते ह, गॉव का बच्चा-बच्चा इसको जानता है, खुलेआम वह उससे हॅस-हॅस कर बतियाता है, दिन-दहाडे उसके घर मे घुसता है। यही नही, उसका बॅगला उस चमाइन का केलि-भवन बना हुआ है। किन्तु कोई मॉ का लाल नही है, जो उसकी ओर उँगुली उठाये, उसकी चर्चा भी करे। कहा है समाज ? देखे न उसकी इस व्यभिचार-लील। को ! वह क्यो देखने चले ! वह तो धनियो का गुलाम है, लक्ष्मी का पूजक है। यो ही, उस जमीदार की विधवा पुतोहू की बात लीजिये। वह अपने नौकर से उलझी हुई है। इस बात को उसका ससुर जानता है, भसुर जानता है, सास जानती है, ननद जानती है। किन्तु कोई भी चू नही करता। समूचे समाज के सिर पर पैर रख कर वह ताडव नृत्य कर रही है, किन्तु किसीकी जबान से 'उहूँ' भी नही निकलता। क्यो निकले ? यह तो प्रभुता–परस्त है, शक्ति की पूजा करना इसका काम है। कहॉ तक गिनाया जाय, समूचे गाव में दुराचार और अनाचार का बोल-बाला है। ये धनियो के लौंडे गॉव के किसी गरीब की लडकी के सतीत्व को अछूता नही छोडते—बुलकी और झूमक गढा-गढाकर, रुपये और नोट थमा-थमाकर, उनकी गरीबी से फायदा उठा कर, उन्हे बरबाद करते ह। ये बेचारी हाड-मॉस की जीव ठहरी—इच्छा और साध इनमे भी है। अपने शरीर को जरा सजाकर रखने का, जवानी का तकाजा, इनमे भी होता है। किन्तु इनके गरीब मॉ, बाप, पति और ससुर इनकी इन इच्छाओ और साधो को पूरा नही कर सकते, फलत ये इन लोगोके, इन बदमाश छोकडो के, पजे मे फँस जाती है ! इनके फॅसाने मे ये छोकडे बशी का काम करते हैं ओर इनके घर की स्त्रियॉ चारे का। इन स्त्रियो को

नाना तरह के आभूषणो से, कपडो से सुसज्जित देखकर इनके मन मे वासना का उदय होता हे। जब ये देखती है, इनसे रूप-गुण मे जो हीन है, इनके निकट बदरी-सी है, वे भी झमक कर चलती है, तो ये भी अपनी एक-मात्र बेचने लायक चीज — वह चीज जिसकी कीमत तुरत और ज्यादा मिल सकती है —को बेच डालती ह। बेच डालती ह अपने सतीत्व को, स्वगिक सौन्दय को — इसलिए कि जरा ये भी झमककर चले , ठुमककर बोले। गॉव भर मे इस प्रकार की खरीद-बिक्री का बाजार गम है , किन्तु समाज नही बोलता, जबान नही हिलाता । पर, जब किसी गरीब के लडके का दिल किसी गरीब लडकी से लगता हे, तो हाय-तोबा मच जाती है । किसलिए ? इसीलिए न, कि धनियो के लाडले इन लडकियो पर अपना एकाधिपत्य समझते है, फलत एकाधिपत्य मे जरा भी विघ्न पडता देख प्राणपण से उसके बचाने की कोशिश करते ह। किन्तु, एकाधिपत्य के दिन लद गये, मै इन्हे बतला दूँगा ! मै पिअरिया को चाहता हूँ, पिअरिया मुझे चाहती है। हमारी इस चाह मे सोने-चादी की महिमा नही है, किसी प्रकार की लालच या धोखेबाजी नही है । यह तो शुद्ध हृदय की पुकार है — स्पष्ट पुकार है । फिर समाज हमारे बीच मे क्यो टाग अडाने आता है ? अडायेगा, तो मै उसकी टाँग तोड दूँगा — हाँ !

यो ही न-जाने क्या-क्या सोचता रहा । सोचते-सोचते चित्त उद्विग्न हो उठा। अब बिछावन पर लेटना मुश्किल हो रहा था । माँ खर्राटे ले रही थी। मै चुपके से उठा —लोटा ले लिया, जिसमे कोई पूछे तो दिशा-जगल का बहाना कर दूँ । आँगन मे आया । कृष्ण अष्टमी का चाँद अपना आधा रास्ता तै कर चुका था। बादल और उसमे आँख-मिचोनी हो रही थी। इसी तरह पिअरिया ओर मुझमे कितनी दफा आख-मिचौनी हो चुकी है ! पिअरिया ! फिर पिअरिया की याद, क्या पिअरिया मुझे पागल बना छोडेगी ?

रास्ता पकडे पोखरे पर आया। सारा ससार निस्तब्ध था। चारो ओर चाँदनी का धवल प्रकाश फैल रहा था। मालूम होता था, मानो दूध के समुद्र मे दुनिया स्नान कर रही हो। पोखरे के पश्चिम किनारे के ऊँचे टीले पर बैठ गया। पास के पीपल के पेड पर कचबचिया बोल उठी — जिससे मालूम हुआ, रात अब एक पहर से ज्यादा नही है । अष्टमी के चाँद का उठान भी यही पता दे रहा था। रह-रहकर शरीर का स्पर्श करनेवाले पूरबी हवा के ठढे झोके भी यही आभास दे रहे थे।

—मै पूरब रुख बैठा था। पूरब क्षितिज की आधी मजिल तय किये हुए चाद मन्द—मन्द मुस्कुराता-सा मालूम पडता था। उसकी ज्योत्स्ना सीधे मेरे मस्तक पर टकराती थी ।एक चॉद तो आकाश मे बादलो से आख-मिचौनी कर रहा था, दूसरा पोखरे के जल मे, उसकी तरगो से, लुकाछिपी खेल रहा था। हवा शान्त होते ही वह जल-तल मे अचल समाधि लगाये योगी का स्वॉग बनाना ही चाहता था कि ज़रा-सा खटका पाते ही तरगे उसे झकझोर डालती थी। वह खिलखिला पडता था—इतना कि थर-थर कॉपने लगता था , कापता और हँसता भी ! उसकी हँसी से टकराकर जल की एक-एक बूद चमचमा उठती थी। समूचा तालाब चमचम करने लगता था।

इस दृश्य ने मेरे मस्तिष्क को कुछ एकाग्र किया। हवा के ठढे झोके मानो दवा का काम कर गये—अगडाई और जम्हाई साथ-साथ आई। ऑखे झिपने के लिए अनुरोध करने लगी। मै वही कब लुढक गया, मालूम नही ! जब जगा, तो कान मे 'राम राम, राधाकृष्ण राधाकृष्ण', के उच्च शब्द सुन पडे। शायद इन्ही शब्दो के चलते मेरी नीद भी उचट गई थी। मुझे मालूम हो गया, मेरे गॉव का वह अध-पगला प्रात स्नान करने आया है। मै झटपट उठा, लोटा उठाया और तेज कदम से घर चला। रास्ते भर सोचता जाता था कि कही मा की नीद टूट गई हो , तब बडा अनथ हो गया होगा ! मुझे न पाकर न मालूम क्या-क्या कल्पना उसने कर ली हो और न-जाने किस हालत मे हो ? किन्तु यहॉ मॉ को सोया पाया। मा यो तो बहुत सबेरे उठ जाती थी, पर, न-जाने किस सबब से, वह आज अभी तक सोई हुई थी। हो सकता है, इधर कुछ दिनो से, इन हलचलो के कारण, उन्हे रात मे अच्छी नीद नही आई हो और आज मेरी प्रतिज्ञा पर विश्वास कर वह निश्चिन्तता की नीद ले रही हो।

८—ठन कर रही

कल मै अपने उस खेत की ओर नही गया। मातृ-प्रेम की आप इसे विजय कह सकते है। मित्र के अनुरोध की रक्षा भी हो गई—शाम को मै उस लौडे से भी प्रतिज्ञा कर चुका था न ! किन्तु, जब मै यह कहूँ कि पिअरिया के प्रेम के कारण ही मै उस ओर नही गया आर इसमे यथाथ विजय पिअरिया की थी, तो शायद इस बात को मान लेने मे आप हिचकिचायेंगे। अपने ऊपर आई मुसीबत को तो मै जैसे-तैसे झेल लूगा,

मै मद ठहरा, किन्तु यदि कोई घटना घटी, तो पिअरिया की क्या दशा होगी, इसकी कल्पना ने मुझे विचलित कर दिया था ! अच्छी बात हो कि आधी को टल जाने दिया जाय।

उसी शाम को मोहन से मालूम हुआ कि आज पिअरिया भी खेत नही गई थी। किन्तु उसके नही जाने का कारण कुछ दूसरा ही था। यथार्थत उसे जाने से मना कर दिया गया था। पिता ने कहा था—'अगर खेत की ओर गई, तो पैर तोड डालूगा।' और, उसके उस चचेरे भाई ने उसके सुर-मे सुर मिलाते हुए उसमे इतना और जोड दिया था—'और, उस साले का भी सिर तोड दिया जायगा !'

मुझे इस व्यक्ति के ऊपर बडी हँसी आती थी। यह खुद परले सिरे का कामुक था—व्यभिचार-परायण। यह पिअरिया पर भी बुरी निगाह रखता था। एक दिन तो इसने घृणित प्रस्ताव तक उससे किया था, जैसा कि मुझसे पिअरिया ने ही दबी जबान इशारतन कहा था। फिर भी यह पिअरिया के पिता के नजदीक सुखरू बना हुआ था और अपने को पिअरिया के धर्म-रक्षक रूप मे साबित करता था। ओह ! कैसे-कैसे मक्कार हमारे समाज मे पडे हुए है !

खैर, यह जानकर मुझे प्रसन्नता ही हुई कि पिअरिया ने खेत जाना बद कर दिया है। मैने निश्चिन्तता का अनुभव किया और दूसरे दिन उस ओर, अपने खेत मे, गया। दूसरे दिन, तीसरे दिन और चौथे दिन भी। इन चार दिनो मे पिअरिया के दर्शन भी नही हुए। यह कहने मे तो बडा सरल है कि पिअरिया के दर्शन भी नही हुए, किन्तु इस अदर्शन का क्या अर्थ था, मै ही जानता हूँ। ससार मेरे लिए सूना था—निरानन्द, निर्जीव, निस्पन्द। वे ही चारो ओर हरे-भरे खेत थे, जिनमे तोते-तूतियाँ किलोल कर रही थी, हवा के झोके से उस हरे समुद्र मे वैसी ही नेत्ररजक तरग-राशियाँ पैदा होती थी, आकाश मे वैसे ही बादल घिरते, झीसी-फुही होती, इन्द्रधनुष उगता, आम की डालिया पर बैठ कर पपीहा वैसी ही पुकारती, किन्तु इनमे वह आकर्षण नही था, आनन्द नही था — मालूम होता, इनके प्राण उड गये है, खाली ठठरी पडी हुई है ! हाँ, इनके प्राण उड गये है—इनके प्राण किसमे निहित थे ? जैसे चारो ओर से ध्वनि होने लगती—पिअरिया, पियारी, प्यारी !

मैं एक निष्काम योगी-सा घर का काम-धाम किया करता। अब मुझे निष्काम कर्म का रहस्य मालूम पडा। निष्काम होने की तह मे छिपा है घोर निराशावाद ! अपनी सारी आशाओ को ध्वस्तप्राय होते

देख दो ही उपाय रह जाते है , या तो डोरी पर झूल जाइये, आत्महत्या कर लीजिये, या ससार को क्षणभगुर समझकर उससे उदासीन हो जाइये और 'निष्काम' कम करते जाइये। कोई भी तत्त्वदर्शी कह सकेगा कि पहले का ही दूसरा नाम है वीरता और दूसरे का ही कायरता ! किन्तु हमारे देश मे तो कायरता ही वीरता के नाम से बिकती है।

खैर, यो ही, जैसे-तैसे, ये तीन-चार दिन काट डाले। कभी-कभी आत्महत्या के लिए भी प्रेरणा मिलती, किन्तु मा की असहायावस्था और पिअरिया की प्रेमपरता की याद आते ही उसे बरबस टाल देना पडता। अब भी आशा की एक झलक बाकी थी। यह आँधी शीघ्र ही टल जायगी और हम दोनो पुन पहले की स्वच्छन्दता प्राप्त कर सकेगे, इसकी एक क्षीण आशा अब भी जीवित थी। मै उसे पोसे जा रहा था।

एक दिन एक विचार और आया। क्यो न मै पिअरिया को लेकर यहा से चल दू ? मेरे पास यहाँ सम्पत्ति ही क्या धरी है, जो इस गाँव के छोडने मे दिक्कत हो ? मा की बात रही। सो, यदि मै जोर डालूँ, तो शायद माँ भी पीछे से मेरा साथ देने को तैयार हो जायँ। किन्तु इसमे तो मुझे और भी कायरता दीख पडी। कल से गाव के लोग क्या-क्या कहकर मेरी मखोल उडायँगे, मुझे गालियाँ देगे ! इसकी कल्पना मात्र से ही मै काप उठा। सबसे बढकर पिअरिया के उस पाजी चचेरे भाई की याद ने मुझे विचलित कर दिया। वह कल से किस तरह मूछ पर ताव देकर चलेगा। वह पापियो का सरताज कल से विजय-छत्र सिर पर दिये चलेगा, यह मै नही होने दूगा। जो होना होगा, होगा, म यही रहूँगा। रह-रहकर मन मे एक उमग उठती। कोई ऐसा मौका मिल जाय, जिसमे उससे मेरी गुत्थमगुत्थी हो, तो छठी के दूध की याद उसे करा दू। देह मे दम नही, मुट्ठो मे दाब दू तो भुरता हो जाय, किन्तु, शेखी बघारता फिरता है।

दूसरे ही दिन ऐसा मौका मिल गया। और, इसी मौके के चलते आज आपसे यह कहानी सुनाने का मौका भी मिला है बाबू।

मै अपने खेत की आरी पर हँसुए से घास काट रहा था—बडी अच्छी घास उग आई थी। घास काटने मे मै तल्लीन-सा था कि पीछे से किसीने चुपके-चुपके आकर मेरी आखे मूँद ली। यह कर-स्पश परिचित था ! म सिहर उठा — शरीर के रोम-रोम जैसे फूल उठे हो ! जिसकी आशका थी, वही हुआ। कही बिजली बाँध कर रखी जा सकती

है ? पिअरिया और बधन—दोनो दो ध्रुव की चीज़ ! वह न-जाने किस तरह कतरिया कर मेरे निकट पहुँच ही गई।

एक क्षण तक मैं स्तम्भित-सा रहा। फिर मनोभावो के तूफान मे उड चला। शायद जबदस्ती, खीच कर, मैं उसके कपोलो को चूम रहा था कि कानो मे एक कर्कश शब्द सुन पडा—'मारो साले को' !

'मारो साले को'—यह कह रहा था पिअरिया का वही पाजी पापी भाई। पिअरिया के पिता भी थे। दो एक आदमी और भी थे। सबके हाथो मे लाठियाँ थी ! मै स्थिति की भयकरता ताड गया। इधर मैं भी कुछ सावधान-सा रहता था। मेरी लाठी निकट ही थी—वह तेल से पोसी गई, लाल-टेस, बाँस-कुमारी ! झट हाथ में ले ली और कूद कर चार-पाँच डग पीछे आकर खडा होगया ! मेरे हाथ मे लाल लाठी थी, आँखो की अनुरागलालिमा क्रोध की लाली मे परिणत हो गई थी। मैंने कहा—'अब चले, पहले तुम्ही लोग चलाओ।' किन्तु मेरी इस रुद्र मूर्त्ति को देखकर शायद वे लोग स्तम्भित रह गये। बीच मे पिअरिया सिर गाडे हुए बैठी थी। देखता क्या हूँ—वह पाजी झपटता हुआ पिअरिया की ओर आ रहा है। लजानी बिल्ली खम्भा नोचती है। शायद वह अपनी वीरता अब पिअरिया पर निकालना चाहता था। बात भी यही थी। मैंने ललकार कर कहा—'खबरदार, इसकी देह छूना मत।' वह बोला—"मै इसे पीटूगा, तुम्हारा इसमे क्या लगता है ? मेरी बहिन है, मै इसे तदारुक दूँगा !' मैंने कहा—'तदारुक का भाई बना है, पाजी, हरामी कही का, अलग रह, नही तो देख इस दुख-भजन को, सिर तोड दूँगा !' वह लाल-पीला हो गया। एक बार पिअरिया के पिता और अपने साथियो की ओर देखा, फिर, जैसे उन्हे आगे बढने का निमत्रण देते हुए लपका और पिअरिया के बाल पकडकर इस ज़ोर से अपनी ओर खीचा कि वह जमीन पर पट हो रही। किन्तु, उसके मुँह से एक चीख भी नही निकली ! शायद वह लाज से गडी जा रही थी ! किन्तु वह चीखे या नही, यह मेरे लिए देखना असम्भव था कि मेरे ही सामने, मेरे जीते जी, मेरी ही आखो के आगे, कोई पिअरिया का ऐसा अपमान करे। मै बिजली-सा टूटा और उसकी गदन पकडकर इस जोर का झटका दिया कि वह मुँह के बल जा गिरा और शायद कुछ देर के लिए बेहोश भी हो गया। उसके साथी अब कैसे चुप रह सकते थे ? उनलोगो ने मुझपर तडातड लाठियाँ बरसानी शुरू कर दी। मैंने भी जवाब देना शुरू किया। किन्तु एक विचित्र बात थी कि पिअरिया के पिता अपनी जगह पर जैसे-के-तैसे खडे थे। वह इस तरह

हक्का-बक्का थे, जैसे पागल हो गये हो। मै भी उनकी ओर नही झुका।

दो-चार हाथ चलने के बाद ही खून की धाराये चलने लगी। मेरे सिर से भी खून टपक रहा था, उन लोगो के भी। अब पिअरिया पुक्की फाडकर रोने लगी और दौडकर पिता के चरणो मे लिपट गई। इतने मे ही तो कुहराम मच गया। चारो ओर से लोग दोड आये। कुछ लोग तो लडाई में शामिल हो गये—कुछ लोग मेरी ओर, कुछ प्रतिपक्षियो की ओर। किन्तु बहुत-से लोग इस मारपीट को शान्त करने की चेष्टा मे लगे। उन्ही लोगो के चलते कुछ देर मे शान्ति हुई। मै तो अब तक बेहोश-सा लाठिया भॉज रहा था। जब सुस्थ हुआ, तो मालूम हुआ कि एक लाठी की मार से मेरा मस्तक थोडा फट-सा गया है जिससे खून लगातार आ रहा है। उधर भी कई लोग घायल हुए थे किन्तु वह पाजी, पिअरिया का भाई, तो बेहोश था। एक ऐसी लाठी, सभवत मेरे ही हाथो से, उसे लगी थी कि उसकी खोपडी चूर हो गई थी।

इस होहल्ला मे मोहन भी आ पहुँचा था और इस मारपीट की शान्ति मे बडी चेष्टा की थी। वही मुझे लिये-दिये घर आया। मारपीट की चर्चा सुन मॉ भी मालिक के घर से दौडी-दौडी आ गई थी। वह मेरे शरीर को खून से लथपथ देखकर फफक-फफक कर रोने लगी। रोती थी और पिअरिया का नाम लेकर गालियॉ भी बकती जाती थी। मुझे बहुत बुरा मालूम हो रहा था, किन्तु उन्हे मना भी क्या कह कर किया जा सकता था? एक तो मस्तक की पीडा, दूसरी यह कलेजे की पीडा! खून पीकर दोनो को सह रहा था। मेरे चुलबुले दोस्त ने खून धो दिया, माँ बकझक कर दवादारू पर उतारू हुई। जिसने जो बताया, लेपने लगी। शरीर पर भी कई लाठियॉ लगी थी। अत पीडा अत्यधिक थी। पीडा कम हो जाय और नीद आ जाय, इसके लिए मुझे खूब भग पिला दी गई। भग छान, थोडा गरम दूध पी, म सो गया।

उस दिन मॉ ने कितना प्रेम प्रदर्शित किया था। पहले तो बहुत बकी-झकी थी, किन्तु पीछे कितनी गम्भीर बन गई थी! सब प्रकार की दवादारू कर, बहुत ही आग्रह और प्रेम से गरम-गरम थोडा दूध पिलाकर, मुझे गोद मे सटाकर सो गई। जरा भी बोलती नही थी, हॉ, वह खूब रो रही थी, इसका ज्ञान उस भग के नशे मे भी मुझे था।

और, वह सोना उस गोद मे, उस कुटिया म, उस गॉव मे, नही, उस दुनिया मे मेरा अन्तिम सोना था! आह रे वह सोना! आह री वह रात!

क्योकि, मेरी नीद तब टूटी, जब दरवाजे पर किसीन बडे जोर से धक्का दिया और जब तक माँ घर का द्वार खोले खोले, तब तक बाहर से फाटक तोड कर कई लट्ठधारी पुलिस के जवान मेरे घर मे घुस आये और मुझे गिरफ्तार कर लिया ! माँ कुछ समझ न सकी। वह चीख पडी ! दौडकर मुझे पकडने को बढी ही थी कि एक पुलिस के धक्के से वह दूर जा गिरी । मेरी आँखो मे खून उतर आया ! किन्तु इतने ही मे मेरी गर्दन पर भी एक जबर्दस्त धौल इन शुभ शब्दो के साथ पडी —'चल, साले, गुर्राता क्या है रे ?' देखते-देखते मेरे हाथो मे कडियाँ थी, कमर मे मोटा रस्सा और चारो ओर से लाल पगडी-वालो से घिरा मै थाने की ओर ले जाया जा रहा था । माँ शायद उस झटके पर ही बेहोश हो गई थी, क्योकि फिर उनकी हलचल नही मालूम हुई । अच्छा ही हुआ !

९—पिअरिया ! पिअरिया !

मै जेल पहुँचा। उसी जेल मे, जिसको आपलोग, बाबूजी, तपोभूमि कहते है । हाँ, आपलोग इसे तपोभूमि कह सकते है, किन्तु मेरे-जैसा आदमी जिसने यहाँ के नारकीय दृश्य देखे है, तप ऐसे पवित्र शब्द का सम्बन्ध इस नरक-भूमि से जोड नही सकता !

मुकद्दमा चला। मालूम हुआ, मुझपर 'रेप केस' चलाया जा रहा है। जमानत भी मजूर नही हुई। मुझपर अभियोग था कि पिअरिया नामक एक कमसिन लडकी से मै जबर्दस्ती दुराचार कर रहा था , वह चिल्लाई, उसका चिल्लाना सुन लोग दौडे, तब मैने लाठियाँ चला-कर कितनो को घायल कर दिया, जिनमे से एक की मार बडी ही सगीन है, वह शायद ही बचे। सगीन चोट है, यह सुनकर मुझे खूब खुशी हुई ! शायद ही बचे ! वह मर जाय, तो मै फाँसी पर भी खुशी-खुशी झूल जाऊँ। और, हाँ, पिअरिया नामक एक कमसिन लडकी से जबर्दस्ती दुराचार ! वह चिल्लाई ! ! खूब ! यही देखना है कि पिअरिया अपनी गवाही मे क्या कहती है ? क्योकि इस मुकदमे मे पिअरिया की गवाही जरूर होगी, एक गँवार आदमी होते हुए भी मै इतना भली-भाँति समझ सकता था।

हाँ, मै यह सुनने को उत्सुक था कि पिअरिया की क्या गवाही होती है । क्या पिअरिया मेरे खिलाफ गवाही देने आयगी ? क्या वह कहेगी

कि मने उससे जबदस्ती की ? —यही कौतूहल था। जेल के भीतर आने पर कितनी ही बाते याद आती, मॉ की याद तो रुला-रुला मारती , किन्तु इस कौतूहल के कारण ये सब बाते तले पड जाती। जेल का वह अभक्ष्य भोजन, वाडरो का वह यमदूती व्यवहार, रास्ते मे सिपाहियो का वह हुँरपेटा—किन्तु इन सबपर भी वह कोतूहल बढ कर था। जिस दिन यह मालूम हुआ कि पिअरिया की गवाही होगी, उस रात मे नीद नही आई। रात-भर पिअरिया आँखो के सामने नाचती रही ।

जब तक प्रेम-पात्र सामने रहता है, उसकी खूबी और खराबी हमारी आँखो मे उतनी नही चढती। हमपर एक प्रकार की मुह्यता, मुग्धता सवार रहती है, जिसका केवल एक ही तकाजा होता है—मै उसे देखा करूँ और वह मुझे देखा करे । किन्तु, जब किसी कारण-वश बीच मे अन्तराल आ जाता है, जब कोई घटना दोनो को दो विपरीत दिशाओ मे फेक देती हे, तब सिहावलोकन करने की प्रवृत्ति जाग उठती है—हम अपने प्रेम-पात्र की एक-एक बात, उसके सम्बन्ध का एक एक धटना, उसके अगो की एक-एक हलचल का विश्लेषण करने लगते हैं । किन्तु एक विचित्र बात है ! वह विश्लेषण सहारात्मक न होकर रचनात्मक होता है—यानी इस विश्लेषण के द्वारा हम अपने प्रेम-पात्र की खराबियो का उतना पता नही पाते, जितना उसकी खूबियो का। यहाँ तक कि ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते है, केवल खूबियॉ-ही-खूबियाँ निखरने लगती हैं। समय की आग खोटेपन को भस्मीभूत कर हमारे प्रेम-पात्र को खरा सोना -सा हमारी आँखो के सामने चमका देती है ।

ठीक यही बात थी। इधर मेरे चितन का एक ही विषय था—वह थी पिअरिया। पिअरिया ही नही, उसकी खूबियॉ ! उसकी बचपन से लेकर आज तक की जीवनी पर दृष्टि डाली, उसके जीवन की जितनी घटनाये याद थी, सबका विश्लेषण किया। कही भी, थोडी-सी भी, बुराई नजर नही आई। उसकी खूबियॉ-ही-खूबियाँ नजर आई । फिर वही पिअरिया कल मेरे खिलाफ गवाही देगी—भरी अदालत मे, इतने लोगो के सामने ? क्या यह सम्भव हे ? किन्तु ससार मे कितनी ही असम्भव बाते सम्भव हो जाती ह। हुआ करे ! पिअरिया ऐसा नही करेगी, हर्गिज नही। तो, फिर, उसका नाम गवाह मे क्यो दिया गया है ? क्या कोई दूसरी दफा मुझपर नही लगाई जा सकती थी ? मारपीट

भी तो हुई थी। क्या यही कई वर्षों के लिए मुझे जेल मे डाल रखने के लिए काफी नही थी? 'रेपकेस' चलाया है, तो निस्सदेह पिअरिया की सहमति से ही। पिअरिया पिअरिया तू क्या हो गई है ? पिअरिया पिअरिया

इन्ही बातो को सोचते हुए, आँखे मूद, मै वाड मे अपने कम्बल पर लेटा पडा था कि जमादार साहब के बूट गरज उठे, फाटक पर ताली झनझना उठी ! भोर हो गई थी। मेरे लिए यही अच्छा था।

निश्चित समय पर मै अदालत मे लाया गया और कठघरे मे खडा कर दिया गया। मेरी उत्सुक आँखे पिअरिया को ढूढने लगी। पिअरिया के बाबूजी सिर नीचा किये एक ओर खडे थे। वह पिअरिया का भाई बननेवाला हरामी भी था—उसके सिर मे अभी तक पट्टी बँधी थी। मै खूब खुश हुआ। मेरी ओर देखते ही वह मूछो पर ताव देने लगा—मै इससे जला नही, मुझे हँसी आ गई। इसमे कितनी कायरता भरी थी। छि ! शत्रु को बेबस फँसा जान कर इठलाना—इससे बढ कर कायरता तो शायद ही दुनिया मे कोई हो ! मैंने उसकी ओर तब से आँख भी नही उठाई—जब कभी अकस्मात् नजर जाती, मै हस देता, वह कट मरता।

इतने ही मे पिअरिया की पुकार हुई। रेपकेस का मुकद्दमा बडा ही दिलचस्प समझा जाता है। उस दिन अदालत के कमरे ठसाठस भरे होते है। हम कितने कामी है, यह इसका सूचक है। हम अपनी काम-वासना को अस्वाभाविक रूप मे दबाये रहते है, फलत वह जहा-कही भी थोडी-सी सुराख पाती है, निकल भागकर हमारा भडाफोड कर देती है। रडियो के नाच मे इतनी भीड क्यो होती है ? आशिक-माशूक की गजले हम क्यो गुनगुनाते रहते है ? रेपकेस की कहानी हमे क्यो प्रिय लगती है ? सबका एक ही उत्तर है—क्योकि हम काम के गुलाम है। ऊपर से अपने शरीर मे चदन या लवेण्डर लगाये रहते है, भीतर उसमे काम-वासना की गन्दी नाली बहती रहती है, जो अस्वाभाविक अवरोध पाकर इस तरह सड जाती है कि दुर्गन्ध से नाक फट जाय। रेपकेस के मुकदमे की भीड एक और घृणित मनोवृत्ति का सूचक है। हममे इतना पतितपना अभी बना हुआ है कि दूसरे की इज्जत से अपना मनोरजन करने मे हमे शर्म नही आती। ऐसे ही पतितो और बेशर्म लोगो से अदालत का कमरा भरा हुआ था। पिअरिया की पुकार होते ही, सबकी आँखे चमक उठी—उत्सुकता से और आनन्द से भी !

शिकार को देख कर शिकारी को आनन्द-विह्वल होना ही चाहिए। किन्तु मेरी हालत विचित्र थी। मै उस मनोभाव का वणन कर नही सकता। मालूम होता था, शरीर की सभी क्रियाओ—रक्त सचालन, हृदय की धडकन, श्वास-प्रश्वास—मे एक प्रकार की उथल-पुथल मच गई है! मै खडा था, देख रहा था, तो भी सज्ञाशून्य था।

एक लडकी ने कमरे मे प्रवेश किया। दर्शको के हृदय खिल उठे। मै आश्चय-चकित रह गया! यह तो पिअरिया की चचेरी बहन थी। क्या यह भी गवाही देगी? इमका क्या प्रयोजन यहाँ? गवाही शुरू हुई। पूछा गया—तुम्हारा नाम?

'मेरा नाम पिअरिया।'

'पिअरिया!' मै चिल्ला उठा। सब लोग मेरे मुह की ओर देखने लगे। मै समझ गया—पिअरिया के राज़ी नही होने पर इनलोगो ने दूसरी लडकी को उसके नाम पर अदालत मे घसीटा हे! पिअरिया! वाह पिअरिया!! तुमने मेरे मुँह की लाली रख ली। मैने मुस्कुराते हुए पूछा—

'ओहो, तुम्ही मेरी पिअरिया हो?' और खूब ज़ोर से ठठा उठा!

मैजिस्ट्रेट ने क्रोध भरी मुद्रा मे मेरी ओर देखा—शायद इस गुस्ताखी पर! मुद्दई के वकील धडल्ले से अँगरेजी मे दाँत-किट-किट करने लगे। पेशकार को कुछ हुक्म हुआ। उसने मुझसे कहा—'खबरदार, अब बीच मे कुछ बोलोगे या हँसोगे, तो सजा होगी। तुम्हारी ख्वाहिश हो, तो, आखिर मे जिरह करना।'

जिरह करे मेरी बला। मै तो जीत गया था। पिअरिया ने मेरे मुह की लाली रख ली—अब दा न जितनी सजा चाहा!

तबसे मै मस्त रहता। बहुत दिनो तक जेल से अदालत, अदालत से जेल होता रहा। मै आता-जाता। एक-एक करके गवाहिया गुजरती। वे क्या-क्या कहते? न मुझे सफाई पेश करनी थी, न वकील किया था। मस्त था—क्योकि मेरी पिअरिया ने मेरे मुह की लाली रख ली थी। वाह री मेरी पिअरिया!

अब, जज के निकट, सेशन मे मुकद्दमा चल रहा था। एक दिन जेल मे खबर हुई, एक मुलाकाती आये ह। मै चकित हुआ। भला कौन मुझ व्यभिचारी से मिलने आवेगा? देखा, वही, मोहन है—जिसने

चाहता हूँ! जेल से बढकर एकान्त स्थान कहाँ? हाँ, ये रुपये—सो इन्हे तुम हिफाजत से रखना। जब मै छूटकर आऊँगा—इसीसे एक मन्दिर बनवा दूगा '

वह रोता-धोता चला गया। म हँसता -रोता अपने वाड मे आया! हँस रहा था, अपने भाग्य पर, रो रहा था—पिअरिया के लिए! मैया!—उनके नाम पर भी आँसू की कुछ कम बूदे नही गिर रही थी। आह! बेचारी को कितना कष्ट हुआ। मेरे ही लिए उन्होने अपनी भरी जवानी खराब की, फिर भी मैंने उन्हे धोखा दिया! बेचारी मर न जाय, तो क्या करे? ऐसा बडा सदमा किसी भी आदमी को मारने के लिए काफी है!

भीतरी झाँकी

१—यह पाषाण-पुरी

यह पाषाण-पुरी !

पत्थर के बड़े-बड़े ढोकों से बनी ये ऊँची दीवारें—बेडौल, बद-शकल, कुरूप, घिनौनी ।

जोड़ों पर सिमेंट की टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें, जो जमाने के थपेड़ों से काली-काली बन गई हैं—ये काली नागिनें !

पत्थर की दीवारों पर काली नागिनें रेंग रही हों, मानो ।

पत्थर के ढोंके आत्माओं को कुचल रहे हैं, ये नागिनें कुचली आत्माओं को डँस रही हैं।

जहाँ देखिये, पत्थर-पत्थर —नागिनें, नागिनें !

इन पत्थरों ने यहाँ की हर चीज को पत्थर बना डाला है, इन नागिनों ने हर जीव को मूर्च्छित और बेदम बना रखा है !

यहाँ न आप कोमलता पा सकते हैं, न प्राण पा सकते हैं, बाबू !

पत्थर की दीवारों में एक ही दरवाजा—इस्पात का !

इस्पात ने आपको भीतर किया, पत्थर ने चारों ओर से घेर लिया !

जब पहले-पहल आया और एक भीषण चीत्कार के साथ यह दरवाजा खुला, मालूम हुआ, मानो नरक ने अपना मुँह खोला हो।

जहाँ नरक, वहा यमदूत भी !

कौन कहता है, ये आदमी हैं !

ये पत्थर की दीवारें कैदियों को ही आदमी नहीं रहने देती, ऐसी बात नहीं है। कैदियों में पहले तो वाडरों, जमादारों, जेलरों की इन्सानियत खत्म करती हैं ये ।

शिकारी पहले मरता है, शिकार तो बाद में !

एक का शरीर मरता है, दूसरे की आत्मा मर चुकी होती है !

अभी वह ण्हला दिन नही भूला, जब म इस पाषाण-पुरी मे लाया गया था !

हाथ मे लोहे की कडियॉ थी, कमर मे सूते का मोटा रस्सा था। उस रस्से को एक सिपाही पकडे था—दूसरा उसकी बगल मे चल रहा थ। ।

थानेदार ने कह दिया था, मै बडा ही दवग असामी हूँ।

तेजी से चलता था, तो थप्पड लगते थे—साले, भागना चाहते हो ! धीरे चलता था, तो कुन्दे का हुँरपेटा लगता था—'साले, पर नही उठ रहे है !' 'कैसा मजा किया होगा, उस छोकडी के साथ !'

क्या इसके बाद भी म होश मे रह सकता था ? मैने घूमकर सिपाही की ओर देखा—घूमकर, घूरकर। क्या मेरी ऑखा मे कुछ था ? उसने कहा—'तुम्हारी ऑखो मे कुछ देख रहा हूँ—भलेआदमी की तरह सीधे चल, नही तो देख यह सगीन !'

सगीन—सिपाही के कधे पर सगीन चम-चम कर रही थी !

मोहन ने कहा था—'भैया, तुम्हे पिअरिया की कसम, थाने या जेल मे कोई ऊधम नही करना ।'

सगीन की नोक मे मैने पिअरिया की कसम पढी !

फिर चलने लगा ! जेल आया, फाटक खुला।

'ओ चौडी छातीवाला, सिर नीचा कर के चल, नीचा करके। यह ससुराल नही है !'

वह जमादार बोल रहा था—वही जमादार, जो आपलोगो के आगे दुम हिलाता फिरता है ! और, मुझे आपलोगो के साथ देखकर आज भी दाँत पीसता है !

यह ससुराल नही है , क्या यह कहने की बात थी ? और, यह ससुराल होती, तो जमादार साहब से मेरा क्या रिश्ता होता , बाबू ? किन्तु अगर शादी मे मेरी जरा भी सुनी जाती, तो क्या मै कोई भी सम्बन्ध उससे जोड सकता था ?

मैने घूमकर उसे एक बार अच्छी तरह देख लेना चाहा !

आज भी याद है सूरत ! सिर पर लाल पगडी—मालूम होता था, तुरत-तुरत खून से रँगी गई है। चेहरे पर सबसे नुमायॉ सघन काली

मूछे, जिनकी नोके बरछी-सी तनी।—कितने खून कर चुकी है ये नुकीली बर्छिया ! ललाट पर, ऐसा लगता था, सिर्फ भाहे ही भोह है, जिनके नीचे, खड्ड मे छोटी-छोटी जल्ती आखे—मानो, किसी दगर मे दो अगारे धधक रहे हो ! चिपटी नाक—भद्दी, उभडे होठ, जिन्हे देख कर ही उकबाई आये। बाबू, म सात जनम मे भी उसे अपना ससुर नही बना सकता था !

मैंने सिर मोडा ही था कि पीछे के कैदी ने कहा—'क्या देखते हो, आगे बढो।' वह अनुभवी था, उसने पीछे चलकर मेरी बडी मदद की !

और ये पाषाण-पुरी के सुन्दर प्रकोष्ठ !

ईट के बने, चूने से पुते। ऐसा मकान साधारण आदमियो को जिन्दगी मे कहाँ नसीब होता है, बाबू !

भीतर कत्तार मे ऊँचे चबूतरे बने। एक चबूतरा मेरे हिस्से का हुआ। एक टाट, तीन कम्बल। टाट को मुलायम बनाने के लिए एक कम्बल उसपर डाल दीजिए, एक कम्बल का तकिया बना लीजिए, और एक, जाडा लगने पर ओढ लीजिएगा ! ओहो, है तो ससुराल का ठाठ ! पलग की जगह चबूतरा, तोशक की जगह टाट, रजाई की जगह कम्बल ! एक कसर—सो कभी जमादार साहब पूरी कर ही देंगे, मै मन ही मन मुस्कराया !

शाम होने को थी। घटी बजी। खाना आ रहा है।

लोहे के दो तसले मेरे सामने रख दिये गये। एक बडा, दूसरा छोटा। बडे मे खाइये, छोटे मे पीजिए ! खाइए—बिहारी डैट ! दिन मे भात, रात मे रोटी ! ये रोटियाँ—काली—काली। क्या मँडुवे की है ? गेहूँ की है, गेहूँ की ! गेहूँ की रोटी, और ऐसी काली ? किन्तु, यह घर नही है कि मा से सवाल-जवाब कीजिएगा। खाइए। खाइए और समझिए।

मुँह मे रखी। घुन की गध, मिट्टी का स्वाद, ककड की किचकिच। इसे निगला जाय तो कैसे ? जरा तरकारी मुह मे डाल लीजिए। तरकारी —सामने के सेमल के पेड मे फूल लगे थे। फूल की तरकारी, सेमल के फूल की। सेमल के फूल—डालो से तोडे, गँडासे से काटे, बडे कडाह मे विशुद्ध पानी मे उबाले गये। और, ऊपर से नमक छोड दिया। सेमल के फूल —कलेजे की तरह लाल-लाल ! गुस्से मे किसीका कलेजा आप खा जा सकते है, किन्तु क्या मजाल

कि पहली बार सेमल के फूल की इस तरकारी को जबान पर ले जाकर आप न थूक दे।

'खाओ भैया, खाओ। एक दिन की नही है, न-जाने कब तक '

यह नन्हकू था। वही, जो मेरे पीछे आ रहा था। अनुभवी—चतुर! किन्तु क्या मै खा सकता था?

रात मे पेट मे हाहाकार था ही—गिनती का हाहाकार समूची पाषाण-पुरी को तरगित कर गया।

एक-दो-तीन-चार, पॉच-छ-सान-आठ

साठ असामी ठीक ह—जगला-बत्ती ठीक है—गिनती करो पॉच नम्बर।।

एक-दो-तीन-चार, पॉच-छ-सात-आठ

चौव्वन असामी ठीक है—जगला-यत्ती ठीक है—गिनती करो बारह न—म्बर र।

ओहो, क्या ये रात भर सोने नही देगे? और, यह गर-गर-गर-गर क्या हो रहा है? हर दो-तीन मिनट पर–हर दो-तीन मिनट पर। गर-गर—गर-गर—गर-गर—गर-गर।

ऊपर से मच्छड का धावा, नीचे से खटमल की चढाई—ऊपर से जर्मन-वायुयानो के गोले बरस रहे है, नीचे से अँगरेजो की सबमैरिन के हुदक्के लग रहे है। एक-दो-तीन का लगातार हाहाकार—फिर रह-रह कर गर-गर-गर-गर।

पेशाब—एक बडा-सा टब रखा है, उसीमे खडे खडे यह गर-गर-गर-गर। बदबू, उकवाई, उकबाई बदबू।

भोर हुई—बदन ऐठ रहा था, ऑखे झिप रही थी। घटी बजी, शौच को चलो।

खुले पाखाने, कैदी को शरम क्या? 'एक'—बैठ जाओ, 'दो'—उस नल पर नगे आकर पानी छुओ, 'तीन"–होज मे हाथ-मुँह धोओ।

हुक्म पर उठना, हुक्म पर बैठना, हुक्म पर सोना, हुक्म पर जागना, हुक्म पर शौच जाना, हुक्म पर पानी छूना, हुक्म पर मुँह धोना—और ये पिछले तीनो काम पन्द्रह मिनट मे। जल्दी करो, नही तो डडे खाओ। उफ्—

और, लो यह खिचडी! खिचडी—चावल-देवता, इसमे आप कहाँ हैं? दाल देवी, आप कहा हैं? हल्दी —तुम्हारी जय! बस, एक जिंदा हो तो तुम्ही, यद्यपि तुमपर भी लोहे के बतनो न काला नकाब डाल दिया है! कुछ पतली-पतली, पीली-मटमैली चीज गट-गटकर कठ के नीचे उतारिए —बस, खिचडी का कैसा शानदार जलपान!

फिर, दिन के भात-दाल का क्या पूछना? भात मे चावल अधिक थे या ककड? चावल मे ककड थे या ककड मे चावल? दाल मे डुबकी लगाकर भी अगर खेसारी या मसूर का एक दाना ढूढ, ले, तो समझिए क्षीर-समुद्र मथकर आपने अनन्त-देवता पा लिया! अरहर-चने का सपना भूलिए।

शाम को आया था, अब दिन के प्रकाश मे लोगो के चेहरे देखे—सबके चेहरे खिचे, सबकी आँखे सुख! काली धारी के बिनाबाही के कुर्ते और मुश्किल से जाँघ तक ढँकने वाले अधपजामो की किट ने लोगो की सूरत को ओर भी भयानक बना रखा था। बालो ने, दाढी-मूछो ने उस्तुरो की याद भी भुला रखी थी! उफ, ये आदमी नही, दिन मे ही चलते-फिरते भूत मालूम होते है ये।

और, उन भूतो को हाँक रहे थे वाडर—रूपी भूतनाथ!

ये भूत, ये भूतनाथ! ये पत्थर, यह इस्पात, यह हाहाकार, यह गर-गर-गर-गर!

पाषाण-पुरी, पाषाण-पुरी! उफ, तुम्ही मे सात साल गुजारने है! लगभग ढाई हजार दिन—जिनका एक-एक दिन न जाने कितने दिनो का होगा, जिनकी एक-एक रात न जाने कितनी लम्बी-चौडी होगी!

आह, उफ!

बाबू, उस पहले दिन की बिपता की कल्पना भी आप कर सकते! खुद मै भी आज उसकी कल्पना नही कर पाता!

२—कोल्हू का बैल

पहले तीन दिन कोरटीन मे बीते। इन तीन दिना के अन्दर डाक्टरी हुई, शरीर की नाप-तौल हुई। नन्हूक ने कहा—जेल मे आना था, तो यह साँड का-सा शरीर ले कर क्यो आये? भगवान ही तुम्हारी रक्षा करे!

और, भगवान भी मेरी रक्षा नही कर सके!

चौथे दिन मुझे भी वह किट पिन्हा दी गई और हुक्म हुआ, चलो कोल्हू में।

कोल्हू मे? हा, साँड की-सी देह लेकर जो आया था मैं यहाँ? इस देह पर सब की नजरे गडी—जमादार की खूनी नजरे सबसे भीतर तक घुसी!

यह कोल्हू है, यह दस सेर सरसो है, पूरे ढाई सेर तेल निकालना है तुम्हे! साँड हो, तो कोल्हू मे बहो।

आदमी—साँड! कोल्हू—तेल! दस सेर सरसो, ढाई सेर तेल! कोल्हू मे सरसो रखकर जोरो से पेरे जाओ—सुस्ती की, तो फिर तेल सूख गया। और तेल सूख गया—तो

पेरे जाओ, पेरे जाओ। घर पर इतना दूध पीया, इतना घी खाया, इतनी कसरत की, इतनी कुश्ती लडी। पेरे जाओ, दस सेर सरसो, ढाई सेर तेल! देख नही रहे हो, वे लोग पेर रहे है, पेरे जाओ, सुस्ती की, तो तेल सूख जायगा। और तेल सूख गया—तो

छाती पर दस मन के महन का बोझ—ठेले जाओ, पेरे जाओ। साड हो, चले चलो। धीरे-धीरे! धीरे-धीरे क्या? तेजी से। तेजी से—

चर-चो—चर-चो! वह तेल चू रहा है, पीली-पीली धारा। ले लिया हे, बढे चलो। तेजी से बढे चलो। ललाट पर पसीना, बदन मे पसीना, सिर का पसीना पैर से चू रहा है। चूने दो, बढे चलो!

कोल्हू से तेल चू रहा है, बदन से पसीना चू रहा है। तेल से बरतन भर रहा है, पसीने से रास्ता गीला हो रहा है! हाँ, हाँ, रास्ता गीला। किन्तु बढे चलो—

महन घूम रहा है, सिर घूम रहा है। कोल्हू से पीला तेल गिर रहा है, आँखो के सामने का ससार अब पीला-ही-पीला है।

कोल्हू नाच रहा है, तुम नाच रहे हो, ससार नाच रहा है। नाचने दो, बढे चलो, तेजी से। सुस्ती की, तो तेल सूख जायगा तेल सूख गया—तो

तो तो तो

पैर थरथरा रहे है, शरीर भहरा रहा है, आँखो के आगे अधेरा! अधेरा अधेरा

और, जब आँख खुली, तो देखा, कुछ लोग मुझे घेरे हुए है ! मुझे पानी पिलाया जा रहा है, एक-आदमी फटे गमछे से हवा कर रहा है ! और, सामने, वह जमादार

'ओ चौडी छातीवाले, कहा था न कि सिर झुकाकर चलो '

उसने मूछो को उमेठा ! मूछ, बरछी ! आख —अगार ! पगडी से खून चू रहा ओर उसके पीले भद्दे दातो से उफ, मेरी आखे खुली न रह सकी बाबू !

रात मे नन्हूक ने कहा—कहा था न, यह साँड का-सा शरीर लेकर क्यो जेल मे आये ? यह साला जमादार तुम्हारी जान लेकर रहेगा !

'नन्हकुआ, तू क्या जाने ! चुप रह। जेल हे तो हम भी है। जेल हमे पहचानता है, हम जेल को। यह बेचारा नया फँसा हे, यह भी सीख जायगा। हाँ, पहले ही दिन बुरा फँसा, किन्तु कोई बात नही—सब ठीक हो जायगा '

'सब ठीक हो जायगा !'

यह दूमरा कैदी था। उसने बडे प्रेम से पूछना शुरू किया—तुम कौन हो ? तुम्हारे घर की हालत क्या है ? घर पर कौन है ? एक तो मेरे अग-अग टूट रहे थे, सिर घूम रहा था, समूचा शरीर घूम रहा था, मालूम होता था, अब भी कोल्हू से बँधा हूँ। फिर, क्या बताता ? घर की बात बताने के लायक ही क्या थी ? थोडा जो कहा, मालूम हुआ, उससे वह सन्तुष्ट नही हुआ—'राम ही मालिक' कहकर अपने चबूतरे पर चला गया ।

'बच गये दोस्त, बच गये !'—नन्हूक बोला। 'तुम जानते नही, यह साला जमादार का दलाल है। जमादार दिन मे लोगो से कोल्हू चलवाता है, रात मे इसे भेज कर रुपये ऐंठता है।'

'रुपये ?—जेल मे रुपये कहाँ से आयँगे ?'

'जेल में रुपये आते ह, यहाँ रुपयो की कमी नही है।,'

'आते है, कमी नही है ?'

'जान जाओगे, जान जाओगे ? लेकिन तुम बच गये। अगर मालूम होता कि तुम मालदार हो, तो फिर तुम्हारी खैर नही थी। तुम्हारी नस-नस दूह लेता यह साला !'

बाबू, आप जान नही सकते, यहा क्या-क्या होता था, क्या-क्या होता है ! ज्यो ही कोई मालदार आया, उसे कोल्हू मे जोता गया। फिर सौदा होना शुरू हुआ। दस हजार, पॉच हजार—पाच सौ से कम का सोदा तो होता ही नही ! सौदे मे वाडर, जमादार, जेलर सब शामिल। बडे सोदे मे सुपरिटेडेट भी। सौदा तय हो जाने पर एक जमादार छुट्टी लेता है, कदी का खत लेकर उसके घर पर जाता है, वहॉ से रुपये लाता है और फिर सब बॉट-बूट लेते ह।

किन्तु, यदि खत के बावजूद रुपये नही मिले तो ?

३—गीदड-कुटान

अभी-अभी उस दिन आया था वह, बाबू !

सुन्दर, गभरू जवान—जैसे घी के कुप्पे मे से निकाला गया हो। मॉ के लाड, पिता के प्यार का एक ही प्रतीक। लक्ष्मी-मैया का यह वरद पुत्र, कार्त्तिकेय का अवतार ही मालूम होता था।

धनी आदमी, खून के केस मे फॅस गया था। फॉसी से बच गया था, कालापानी ले आया था।

कालापानी—लेकिन कितना निद्वन्द्व लगता था वह ! जो होना था, हुआ, रोने-धोने से क्या फायदा ?

वह भी कोल्हू मे जोता गया।

तब तक मैं अभ्यासी हो गया था। पहले दिन मूर्च्छा आई थी, दूसरे, तीसरे दिन तक मतली आई थी, हफ्ते-भर देह मे ऐंठन रही, एक महीने तक सोये रहने पर भी मालूम होता था जैसे चाक पर रखकर मुझे घुमाया जा रहा हे, किन्तु उसके बाद, सब ठीक।

मै नियत समय पर दस सेर सरसो लाता, नियत समय पर ढाई सेर तेल जमा कर आता।

यारो ने तेल निकालने की कला बता दी थी ! पहले धीरे-धीरे, जब तक सरसो कुचल न जाय। फिर तेजी से, जब देह गरमा जाय, सरसो गरमा जाय। तेल चूने लगे, फिर सम !

किन्तु, वह बेचारा यह कला क्या जाने ! और, सामने जमादार ! उसे सिखाये कौन, बताये कौन ?

नया शिकार फँसा था ! जमादार रह-रहकर मूछो पर ताव दे रहा था !

ठीक मेरी-जैसी हाल्त हुई, मुझसे भी बदतर ! बेहोश होकर गिरा, तो एक घटे के बाद होश हुआ उसको !

रात मे सोदा तय हुआ, दिन मे वह अस्पताल भेज दिया गया।

एक हफ्ते के बाद देखा, वह फिर कोल्हू मे लाया गया। उसकी शामत, घरवालो ने रुपये नही दिये। क्यो नही दिये—वह बेचारा भी समझ न सका। इस बार जमादार साहब की त्यौरी कुछ और भी चढी हुई थी।

और, मालूम होता हे, उसने भी तय कर लिया था, सबकुछ का सामना करेगा वह ।

चार-पाँच दिनो तक वह जोर-शोर से कोल्हू चलाता रहा । किन्तु —जो शरीर फूलो से बना था, वह कोल्हू मे डट सके। वह रोज़-रोज छीजने लगा। देहात मे कहावत है, साग की तरह गल जाना—बाबू, वह उसी तरह गल रहा था ! एक हफ्ते मे ही उसके गाल की हड्डी उभड आई !

फिर दलाल जुटे, फिर ख़त लिखा गया, इस बार खुद जमादार गया—किन्तु, फिर वह खाली हाथ लौटा !

उसने रोकर मुझसे कहा—शायद अब मुझे जीने नही देगे ये लोग !

मैंने उसे ढाढस बँधाया, नन्हकू ने समझाया। किन्तु, जैसे वह धीरज खो बैठा था।

और, जमादार साहब भी धीरज खो बैठे थे—साले के दरवाजे पर हाथी बँधा है और रुपया निकालते नानी मरती है। या, इसके ख़त ही मे कोई इशारा रहता है न देने का ? बच्चू सीखेगे

गीदड–कुटान !

जमादार का ब्रह्मास्त्र है गीदड-कुटान।

देहात मे ज्यो ही बैसाख आया, गीदडो का शिकार शुरू हुआ। गेहूँ कटा, अरहड कटी। समूचा सरेह वीरान हो गया। अब गीदड

छिपे तो कहाँ ? अपनी माँद मे भी वह चैन से कहा रह पाता है ? माँद का पता लगा और लडके अपने कुत्तो को साथ लिये पहुँच गये। हाथ मे डडे, लाठियाँ, भाले भी। भूसे मे मिर्चा मिलाकर माँद के छेदो मे उसका धुक्कन दिया गया। धुएँ से व्याकुल होकर गीदड माद से निकला। निकला, भागा। कुत्ते पीछे पडे, बच्चे पीछे पडे। दौड-धूप हुई, गीदड थका, कुत्ते टूटे, डडे बरसे, भाले चमके। उफ री बुरी मौत ! गीदड की मौत !

घायल गीदड पडा है और कोई कुत्ता टाँग पकडकर खीच रहा रहा है, कोई उसकी अँतडी पर दाँत गडाये है। डडो से उसके सिर को भुरता बनाया जा रहा है, भालो से उसकी अँतडियाँ निकाली जा रही ह—उफ !

गीदड-कुटान ! जेल मे इस नाम से ही कैदी काप उठते !

वह बेचारा गीदड-कुटान की जद मे आ रहा !

चलो सेटर मे, जमादार साहब बुला रहे हे।—कल्लू ने उससे कहा। सेटर, जमादार साहब, कल्लू ! चलते समय उसने कैसी करुण दृष्टि हम पर डाली ओर ज्यो ही वह चला, नन्हकू की आँखो मे पानी छलछला उठा — सेटर मे जमादार साहब कल्लू

'क्यो बे, ठीक से काम क्यो नही करता ?'

'करने की कोशिश करता हूँ जमादार साहब ! जितना कर सकता हूँ, करता हूँ !'

'सकता हूँ ?—सकता हूँ का साला। काम करना पडेगा—'

'करूँगा जमादार साहब !'

'तो करता क्यो नही है बे ? उल्टे हमी लोगो को धोखा देता है ! कल्लू, इस साले को सेटर के भीतर ले जाओ !'

सेटर के भीतर क्या हुआ, कल्लू से पूछिए ! किन्तु सेटर के भीतर क्या होता है, कोन नही जानता ? कल्लू का एक रद्दा —पहलवान भी थौस जाय। ज्यो ही गिरा, ऊपर से कम्बल—जिसमे चिल्लाहट बाहर सुनाई न पडे, शरीर पर कोई दाग नुमायाँ न हो। कोई कम्बल के नीचे पडा है और ऊपर से बूटो की ठोकरे और डडो के हुँरपेटे लग रहे ह। चिल्लाहट तो नही, कराह सुनाई पडती है, जो सेटर मे ही गूजकर रह जाती है !

आह, आह ! बाबू आज भी उसकी सूरत याद आ रही है । गीदडकुटान तो हुआ, किन्तु वह गीदड नही था, जिसके प्राण कलेजे की सातवी तह के नीचे होते ह। वह तो मृग-छौना था। बूटो और डडो ने उसकी क्या दुर्गति कर दी

कल्लू उसके शरीर को उठाकर हौज की तरफ दौडा। वहाँ हौज मे पटक दिया। जमादार ने सीटी बजाई। कई वाडर दौडे।—जाओ, डाक्टर को खबर दो, इसे मिरगी आ गई है ।

मिरगी आ गई है ? —हाँ, मिरगी आ गई है !

हौज मे उसका शरीर पडा है। मिरगी आ गई है, पानी मे गिर गया है। मिरगी पानी खोजती हे न ? किन्तु उसकी नाक से, उसके मुह से जो खून निकल रहा है ? मुँह के बल गिर गया है ? शायद इसीसे नाक चिपक गई हे, गाल पर कट गया है। क्या एक बूट यहा भी पड गया था ? किन्तु, क्या कह रहे हो ? इसे तो मिरगी आ गई है ! मिरगी ? मिरगी मे लोग हाथ-पैर फटकारते ह—यह तो सुन्न पडा है, मुर्दे-सा ? तो मिरगी मे लोग मर भी जाते ह ! बदन मे वही बिना बाह का कुर्त्ता है, कितु हाथ पर मे काले निशान उगते आ रहे हैं । मिरगी मे काले निशान ? किन्तु, तुमलोग यहा खडे क्यो हो—भागो यहाँ से !

डाक्टर आये, डाक्टर आये ! लाश को, हाँ, अब लाश ही कहिए, हौज से निकलवाया। नब्ज देखी, कलेजे पर आला लगाया। जमादार की ओर रहस्य की आँखो से देखा । जमादार ने खीसे निपोड दी। लाश अस्पताल गई। दूसरे दिन डोमो ने उसे दफना दिया ! जेल मे मर गया, तो मच्छड, भाग गया, तो शेर !

जिस समय उसे उठाकर ले जा रहे थे, नन्हकू तो धाड मारकर रो पडा। मेरा तो होश फाख्ता था। जिसे कुछ घटे पहले हँसते-बोलते देखा था , उसीकी कुछ ही देर मे यह हालत ! कोई प्लेग नही, कोई हैजा नही—और, आदमी अचानक चल दे ! और, वह भी इस बुरी तरह । जैसे फूल को मसल दीजिए, आप पहचान नही सकेगे, यह बेला है या गुलाब, ठीक वही हाल उस बेचारे की लाश की थी। कुछ ही देर मे आदमी कितना बदल जाता है ? शरीर तो निर्जीव था, हाँ आँखे खुली थी। शरीर निर्जीव होने पर भी, मालूम होता था, आँखे ससार को कह रही हो—यही ससार है, जिसपर लोगो को

इतना गव है ! ससार, हमने तुम्हे कितना चाहा, लेकिन तुमने मेरे साथ क्या किया ?

उसकी वे आँखे बहुत दिनो तक मुझे परीशान करती रही, बाबू ! कई रात सोने नही दिया उन्होने। जिधर देखता, मालूम होता, वे आँखे पूछ रही ह—यह मेरे साथ क्या हुआ ? जमादार को ओर तो म अब देख नही सकता था। हाँ, कल्लू पर बहुत गुस्सा आ रहा था। आखिर कल्लू भी तो कैदी है ! उस अभागे ने यह क्या किया ? किन्तु हाथी को तो हाथी ही फँसाता हैं बाबू !

४—जेल कल्लुओ का है !

किन्तु जेल चले नही, अगर उसके अन्दर कल्लू-ऐसे कैदी नही हो।

कौन कहता है, जेल को जेलर, जमादार या वाडर चलाते है। बिल्कुल गलत बात। जेल को चलाते है कल्लू ऐसे कैदी—जो खुद जेल मे मौज उडाया करते है और कैदियो को मोटी रस्सी मे नाथ कर मनमानी चलाया करते है।

'पहरा' से उनका दर्जा शुरू होता है 'मेठ' तक जाता है ।

जेल के इतने काम के होते है ये कि इनका मुशाहरा भी बँधा हुआ होता है। मुशाहरा ? हा, हाँ—महीने मे चार ही आने सही, लेकिन ये पैमे इन्हे मिला करने ह सरकारी खजाने से।

जमादार की पारखी आखे तुरत चुन लेती है कि सारे कैदियो मे से उसके काम के कौन हो सकते है ? कुछ ही दिनो मे उनके सिर पर काली टोपियाँ पड जाती ह और होते-होते कनविक्ट-वाडर के बिल्ले भी उनकी कमर म चमकने लगते है।

ये लोग ज्यादातर लम्बी मुद्दत के कैदी होते है। प्राय ये दबग होते ह। जेल मे आये नही कि इनकी मुठभेड शुरू हो जाती है। पहले इन्हे तोडने की कोशिश होती है, बाद मे इन्हे मिला लिया जाता है !

फिर तो ये वैसे कुकम करने लगते है, जिनकी कल्पना भी नही की जा सकती। इनके सौ खून माफ होते है !

कल्लू, दशरथ, हबीब—हमारे जेल के इन त्रिरत्न को ही देखिए। तीनो ने खून किया था—कल्लू ने अपने भाई का, हबीब ने अपनी

ऊगाई का, दशरथ तो नामी डकैत ठहरा। उसके द्वारा की गई हत्याओ की क्या गिनती !

उससे पूछिए, किस फख्र से उन हत्याओ का वणन करता है—किसी-की गर्दन काट दो, उसकी लाश तडप रही हो, खून के फव्वारे छूट रहे हो—क्या इससे भी बढकर कोई सुन्दर दृश्य हो सकता है ? और, आदमी की गदन कितनी मुलायम ! भुँजाली का एक झटका दीजिए, सिर अलग, धड अलग ! सिर को उठाकर लेते जाइए और किसी खड्ड मे गाड दीजिए — फिर कौन खून का पता लगा सकता है ? वह मज़े ले-लेकर ऐसी बाते किया करता है ।

एक बार उसने एक डकैती के सिलसिले मे सारे परिवार का नाश कर दिया । बाप को मारा, बेटे को मारा, दो छोटे-छोटे पोतो को मारा और अन्त मे पुतोहू के पेट मे भुँजाली घोपकर चलता बना ! वह कहता है—औरत का मरना बडा कारुणिक होता है । उसका देखना बहुत मुश्किल है ! तबसे वह औरत पर हाथ नही उठाता।

हबीब को शक था, उसकी बीवी पडोस के एक नौजवान को प्यार करती है । वह खुद कलकत्ता रहता था। एक बार कलकत्ता से लौटा, तो उस नौजवान को अपने घर से निकलते देखा। पास मे छुरा लाया ही था। नौजवान तो निकल चुका था, बीवी पर टूटा। और, बाबू, जानते है, अपनी स्त्री का खून उसने कैसे किया ? उसके गाल पर छुरे मारे, उसके स्तन पर छुरे मारे और आखिर मे समूचा छुरा उसकी जाघो के बीच मे घुसेड कर चलता बना। बारह साल तक फरार रहा , सबूत तो मिट चुके थे—काला पानी लेकर आया है !

और, यह कल्लू ? यह नराधम ! एक बित्ता जमीन के लिए अपने ही भाई को गँडासे से बोटी-बोटी काट डालने मे हिचक नही हुई इसे, जेल मे आने पर तो कुछ दिनो तक यह पागल-सा बना रहता था। रह-रहकर मल्लू, मल्लू चिल्ला उठता, रोता। फिर जब शान्त हुआ है, तो यह जेल के लिए कहर हो गया है। जमादार को बुरा-से-बुरा काम कराना होता है, कल्लू को एक दम गाँजा पिला दिया —फिर, जो चाहा करा लिया ! इस जेल मे कितने की जाने ली है इसने, कितने को जिदगी भर के लिए बेकाम बना दिया है इसने ।

दशरथ, हबीब, कल्लू—इस जेल के राजा ये ही तीन है। जेल मे रोगियो के लिए जो दूध आता है , उसकी सारी मलाई ये तीन खाते

है। गोश्त की सिफ हड्डी ही अस्पताल मे जा पाती है। शाम-सबेरे देह मे तेल की मालिश—फिर, दड बैठक! जमादार के ये शिकारी जानवर है, जेलर इनसे डरता है, सुपरिटेडेट चाहता है कि इनसे सामना भी न हो!

कल्लू जल्लाद है, दशरथ हत्यारा, किन्तु, इस हबीब की मत पूछिए! इसकी औरत इसके शरीर पर जैसे हमेशा सवार रहती है! और, जेल मे औरत कहाँ से आवे? नतीजा यह है कि यह हमेशा अपनी ड्यूटी छोकरा-किता मे लेता है! बच्चे इसकी सूरत देखते ही कॉप जाते है! किन्तु वे करे, तो क्या? जाल की मछली, भाग कहाँ जायगी? अभी कुछ दिन पहले एक लडके ने आत्महत्या कर ली! गमछे को फाड कर महीन रस्सी बॉटी और जँगले से लगाकर लुढक पडा! गरदन लम्बी हो गई थी, आखे निकल आई थी। और, हबीब ने दूसरे लडको से कहा—देखो, जो मेरी बात नही मानेगा, उसकी यही गति होगी!

बाबू, बाबू, यह सचमुच पतितो का देश है!

यह कल्लू, यह दशरथ, यह हबीब—सिफ इनसे ही जेल नही चल सकता बाबू! ये तो पुराने पापी है, पाप न करे, यही अचरज की बात हो। किन्तु, मैंने देखा है, कितने शरीफ आये, कुछ दिनो तक शराफत दिखाते रहे। इस शराफत के चलते कुटे-पिटे। किन्तु, पीछे अपनी गलती महसूस की। शरीफो की अक्ल उनमे थी ही। अक्ल से काम लेना शुरू किया—जमादार कौन कहे, जेलर और सुपरिटेडेट तक की नाक के बाल बन गये वे! सारे जेल पर उनका दबदबा, सारे जेल को वे जिस तरह उठाये, बिठाये!

एक ऐसे ही आदमी थे सुन्दर सिह। नाम सुन्दर सिंह, किन्तु कुरूपता की मूर्त्ति! न जाने किसने उनके साथ बचपन मे ही यह नाम रखकर दिल्लगी की! सारे चेहरे पर चेचक के दाग, काला रग। किन्तु, एक बडे जमीदार के घर से थे। आपसी पट्टीदारी के झगडे के सिलसिले मे खून-खराबा हुआ, दस साल की सज़ा लेकर आये। कोल्हू मे जुते, जमादार और जेलर को सलामी पहुँचाई, पहरा हुए, मेठ बने! जेलर को एक हज़ार की सलामी दी थी और यहाँ से लौटे पाँच सौ अशर्फियाँ लेकर!

पाँच सौ अशर्फिया ?—हाँ, पाँच सो अशर्फियाँ ! जेल का सिक्का रुपया नही है, नोट नही है। जेल के सिक्के दो ह—अशर्फियाँ या चवन्नी ! चाँदीवाली छोटी चवन्नी। जेल मे जो सिक्के पहुचते ह, या तो गले होकर या गुदा होकर।

'गुदा होकर ?'

जी, गले होकर या गुदा होकर। जेल मे घुसते समय इतनी कडी तलाशी होती हे, और बाद मे जेल मे जो बार-बार तलाशिया हुआ करती है, उनके चलते कैदियो ने—कैदियो मे से पुराने पापियो ने—यह तरकीब निकाली है। शीशे की गोली मे चूना लगाकर उसे कठ मे रखते जाते ह। जबडे के निचले हिस्से मे छेद बनता जाता है। होते होते इतनी जगह बन जाती हे कि दस-दस अशर्फिया या चवन्नियाँ उसमे रख ली जायँ। इन सिक्को का पता पाने पर भी इन्हे जेलवाले निकलवा नही सकते। यो ही, आठ-आठ, दस-दस अशर्फियाँ या चवन्नियाँ गुदा-भाग मे रखकर जेल मे आते ह ओर जब जरूरत पडती है, निकाल लेते ह !

रुपये बडे पडेगे न? और, नोट तो गल जायगे ! इसलिए जेल के सिक्के अशर्फियाँ और चवन्नियाँ ही है !

इन सिक्को के बल पर जेल मे क्या-क्या न होता है ? जेल तो जुए का अखाडा है ही, शराब की चुस्की या गाँजे का दम न हो, तो जुए मे क्या मजा ? और जब शराब आई, गाँजा आया, तो कौन कुकर्म बाकी रहा ? औरतो और बच्चो पर मरनेवाले हबीब तो कम है, यहाँ मर्दो पर मर्द मरा करते ह, बाबू !

सुन्दर सिह इन्ही जुआबाज, शराबी और दुराचारी लोगो के सरगना बन गये। उनकी अशर्फियो को भुनाने का काम इनका, जुए का अड्डा ठीक करने का काम इनका, शराब और गाजा मँगा देने का काम इनका, लौडा जुटा देने का काम इनका ! लौडो पर माहवार बँधा हुआ है, सौदा कीजिए, माल लीजिए। उन्हे लेकर हाथ-हथफेर और उधारखाता भी चलता है यहा !

यह काम अकेले नही चला करता और बिना जमादार-जेलर की मर्जी के यह चल नही सकता। सुन्दर सिह का एक बडा गिरोह है, जिसमे उन्हीकी तरह के कितने रईसजादा कैदी शामिल है ! उन्हे आप

जेल का तहसीलदार और खजाची भी कह सक्ते है। जमादार या जेलर को जब रुपये की जरुरत हुई, सुन्दर सिह को हुक्म हुआ—रुपये हाजिर ।

जेल चलता है, कल्लुओ से, जेल चलता है सुन्दर सिहो से—जेल के छकडे के ये दो पहिए है—निमम, निष्ठुर !

५—कामदेव कहाँ नही है ?

कामदेव ने किसको न नचाया ?

शिवजी-महाराज सती की सडी लाश लेकर वर्षो पागल-सा दौडा किये !

शिवजी-महाराज ! —सडी लाश !

सडी लाश—बाबू, क्या हम-आप सभी सडी लाश नही ढो रहे है !

कहाँ है जिन्दगी ? चारो ओर सडन !

ज़िन्दगी ! —'ज़िन्दगी जिन्दादिली का नाम है !'

जिसमे उमग हो, न तरग, उछाह हो न उत्साह, लास हो न उल्लास, उबाल हो न उछाल—वह जिन्दगी कैसी बाबू ?

जो गेंद-सी उछली नही, गरम जल के कुड-सी उबली नही, हर्ष में जिसने उल्लास न दिखाया, प्रेम मे जिसने लास न पाया, कठिनाइयाँ जिसमे उत्साह न पैदा कर सकी, बाधाये जिसमे प्रगति न भर सकी, जिसमे नदी-सी तरग न हो, समुद्र-सी उमग न हो—भला वह भी कोई जिन्दगी है बाबू !

जिसमे दुगन्ध हा, पीव हो, कीडे हो—उफ री वह जिन्दगी, आह री वह ज़िन्दगी !

जिस जिन्दगी मे बाहर भी सडन हो, वह इस पाषाण-पुरी मे कसी बन जा सकती है, कल्पना कीजिए !

जेल दुराचारो का अड्डा है और इसका सबसे बडा अड्डेदार है यह जमादार ।

सेंटर पर बैठा, हर शाम को नये आनेवाले कैंदियो के चेहरे घूरा करता है यह, और उसकी बगल मे वह पापी-शिरोमणि हबीब !

जिस चेहरे पर थोडी लाली हो, जिस गाल पर थोडी चिकनाहट हो, जिस ऑख मे थोडा रसीलापन हो—बस, टूट पडे दोनो।

दोनो मे आँखो-आखो बाते हुई। खास खटालो मे उसे रखा गया। खास आदमी उसके अगल-बगल सोये। खास गुर्गे उसके आस-पास डोलने लगे। किन्तु, 'भय बिनु होहि कि प्रीत !' जिन गालो को चूमना जरूरी है, उनपर पहले कुछ थप्पड रसीद करने से स्वाद बढ जाता है ! ऑखो का रसीलापन तब निखरता है, जब उनसे कुछ ऑसू पहले टपका लिये जायँ ! चेहरे का गुलाब शाम को खिलेगा, दोपहर को उसे सख्तियो की धूप मे तपा लिया जाय, !

भय—प्रलोभन, प्रलोभन—भय। आग—पानी, पानी—आग ! लोहे पर पानी तब चढता है, काम का देवता तब प्रसन्न होता है !

अच्छे-अच्छे लोगो को यहॉ टूटते देखा है, बाबू !

किन्तु, हमलोग क्या जानते थे कि कामदेवता का ताल एक दिन हमारे भोले-भाले नन्हकू पर टूटेगा !

और किसके साथ ? —उस चुडैल जमादारिन के साथ !

जेल की जमादारिन ! अच्छा है कि जमादारिनो के चुनाव मे कुरूपता सवप्रधान सिफत मानी जाती है !

वे काली-काली, ढली-गली औरते—उन्हे काली पोशाक देकर चुडैल नही, चुडैल की चाची बना दिया जाता है ।

दिन मे चुडैल-सी लगे और शाम को ? खैरियत है कि रात मे उन्हे जेल मे आने भी नही दिया जाता !

इसी चुडैल जमादारिन से बेचारे नन्हकू की लड गई ! और, ठीक शाम के वक्त !

इधर नन्हकू रसोइया मे काम कर रहा था। 'ये कबहूँ नहि दूबरो होत, रसोई के विप्र कसाई के कूकुर।' इस कथन की सचाई आपको जेल मे ही सोलह आना दिखाई पडेगी !

अस्थि-कंकालो के बीच मे मुस्तडे लोग—नमक के समुद्र मे हरेभरे द्वीप !

किन्तु नन्हकू तो रसोइये मे गया मेरे चलते ! वहॉ रहूँगा, तो तुम्हारे लिए दो-चार अच्छी रोटियाँ बना लाऊँगा ! और, वह लाता था, मै खाता था। मेरा रोआँ-रोआँ उसे आशीर्वाद देता था। किन्तु, कोई आशीर्वाद उसके काम नही आया ।

रडी-किता मे वह कुछ दिनो से खाना देने जाता था।

रडी-किता! हाँ, जेल के नामकरण भी कुछ अजीब होते है बाबू! चाहे जो औरत जिस जुर्म मे आवे — यहाँ वे सब-की-सब रडी ह! रडी-किता, छोकडा-किता, फाँसी-किता—और आपलोग जहाँ ठहरे है, वह बाबू-किता! और हमलोगो का खटाल-ही-खटाल। खटाल न० १, न० २, न० ३ आदि!

तो, नन्हकू रडी-किता मे जाया करता था।

वह ज्यो ही भीतर घुसना चाहता, देखता, फाटक के सूराख से एक जोडा आँखे चमक रही है!

एक जोडा आखे चमक रही है! चमक रही है? क्या इनमे सिर्फ चमक है? चमक-चमक! नही, भूख-भूख!

भूखी आँखे , इन्हे भोजन चाहिए!

भोजन—मिट्टी के तसले मे एक के बदले डेढ करछुल खिचडी पडने लगी। डेढ करछुल खिचडी , डेढ नप्पा भात , दो की जगह तीन रोटियाँ! किन्तु भूख मिटती नही, बढती जा रही है।

छेद से दीख पडनेवाली आँखो मे चमक बढती जाती है—भूख बढती जाती है!

अब कितना दूँ?

मै सब समझ रही हूँ निगोडे—जमादारिन बीच मे कूद पडी। कितना दूँ? क्या दूँ—'यह पूछ उस हरामजादी से। बेवा है बेवा। ज़िन्दगी भर की भूखी! पहले शौहर को खाया, अब तुझे खायगी! निगोडी के चूतड की खाल खीचकर नमक न छिडका जाय, तब तक इसकी ,

और, तेरे पुट्ठे पर भी अब माँस चढ गये है नन्हकुआ!

जमादारिन की पीली धँसी आँखो मे चमक महसूस की नन्हकू ने। वह उसके पुट्ठे की ओर क्यो घूर-घूरकर देखा करती है?

चमक, भूख!

और, क्या नन्हकू की भूख भी जगी? क्या भूख भी सक्रामक होती है?

भगवान जाने, क्या बात हुई !

एक दिन नन्हकू तेज़ी से जा रहा था रडी-किता की ओर। कुछ देर हो गई थी जो ! सैकडो भूखियो के पेट भरकर वह लौटा, तो मुँह अँधेरा हो चला था ! रडी-किता और रसोईघर के बीच मे गौशाला पडती थी।

एक हल्ला, जमादार की सीटी !

यह नन्हकू को सेटर की ओर लाया जा रहा है। उसके दोनो हाथो को जमादार ने पीछे की ओर मोडकर पकड रखा है और उस पर धौल-धप्पडो की वर्षा हो रही है। वह सिर नीचा किये है, आँखे उठाये तो कैसे ?

और, यह पीछे कौन है ?

जमादारिन रोती आ रही है ! मुए ने मेरी इज्जत लूट ली ! ज़बर्दस्ती पटक दिया

हाँ, जबदस्ती पटक दिया — किन्तु, किसने किसको ?

नन्हकू को जाननेवाले कहते थे—बदमाशी इस चुडैल की चाची की होगी। वह सीधा-सूधा जानवर ! कभी खूटा छोडत, रस्सा तोडते देखा गया था उसे ? बेचारे को बरगलाया, फँसाया और अब रोदन पसार रही है, हरामज़ादी। रडी-किता से क्यो गोशाला तक आई ? क्या यही घसीट लाया था ? तो घसीटने के समय क्यो नही चिल्लाई ? पीठ मे जो यह गोबर-गोबर लगा रखा है—पीठ मे गोबर ! भठियारिन !

किन्तु, पाषाण-पुरी मे दलील और तक की जगह नही। रोती-धोती जमादारिन जेल के फाटक की ओर गई, नन्हकू सेल मे भेज दिया गया ! कल बेत लगेंगे—रात मे ही सारे जेल मे यह चर्चा फैल गई !

इस जेल मे कौन कुकर्म नही होता—किन्तु नन्हकू को बेत लगेंगे ! हबीब को क्यो नही बेत लगते ? जमादार को क्यो नही बेत लगते—जिसने इस सेटर को ही भटियारखाना बना रखा है ? दुपहरिया मे जब सब 'सुस्ती' मे सोते है, इस सेटर मे वह रास-लीला रचा करता है ! रास-लीला ? नही, रास-लीला मे औरतो का रहना लाजिमी होता है। जमादार की पाप-लीला के लिए कोई दूसरा नाम खोजना पडेगा। किन्तु, जब तक कोई नाम नही मिलता, तब तक वह अपराध कहाँ ? नन्हकू एक स्त्री के साथ

हाँ, जेल मे स्त्री सब से अधिक वर्ज्य प्राणी है ! रंडी-किता मे जमादार भी अकेले नही घुस सकता। सुपरिटेंडेंट का सबसे कडा ध्यान इसपर रहता है कि किस स्त्री का मासिक धर्म कब हुआ? बाज़ाप्ता चार्ट रखे जाते है। ज्यो ही चार्ट मे ज़रा गडबडी हुई, हल-चल मच जाती है ! पूछताछ, दौडधूप ! जेलर, डाक्टर

जेल मे सबसे अधिक वर्ज्य प्राणी है तो स्त्री ! और, नन्हकू ने यही किया ! आज जमादारिन, कल कोई रंडो !

नही, नही—नन्हकू को बेत लगने ही चाहिए, कल लगकर रहेगे !

६—तिकठी और बेत

भोर से ही जेलभर मे तहलका—आज बेत लगेंगे, नन्हकू को बेत लगेंगे।

नन्हकू और जमादारिन ! दोनो को लेकर तरह-तरह के किस्से गढ लिये गये ! थोडा सा दिन चढते-चढते उस किस्से मे जमादार भी शामिल था।

जमादार, जमादारिन मे गडबड चल रही थी। बीच मे पड गया यह गरीब नन्हकुआ और — 'दो पाटन के बीच मे साबित बचा न कोय ?'

नौ बजे सुपरिटेंडेंट पहुँचा। वह सीधे उस जेल मे गया, जहाँ नन्हकू था और दस बजते-बजते सेंटर पर तिकठी ख़डी कर दी गई !

तीन पैरवाली, तीन काठ की, यह तिकठी !

देहात मे कहावत है—तीन तेकट, महा बेकट। हाँ, तीन का समागम हमेशा विकट होता है।

तीन लोक, तीन काल, तीन देव, तीन वेद, तीन गुण—इन अनेक त्रिकोणो के चलते ही दुनिया मे इतनी परेशानी है बाबू !

मै तीन देखते ही घबरा जाता हूँ बाबू ! त्रिगुट दुनिया की सबसे बुरी गुट होती है।

इस जेल मे सुपरिटेंडेंट, जेलर और जमादार—दशरथ, हबीब और कल्लू —त्रिकोण, त्रिगुट, तिकठी।

तिकठी—सेटर मे खडी हुई कि सारा जेल थर्रा उठा !

तिकठी के सामने एक तिपाई पर बेत रखे गये !

लाल-लाल बेत ! कबसे तेल पिला-पिलाकर पोसे जाते रहे है ये ? छोटे, बडे, मॅझोले ! मोटे, पतले ! बहुत दिनो के बाद उन्हे पोछा जा रहा है—तेल लगा-लगा कर कपडे से पोछा जा रहा है।

सुक्खू डोम का चेहरा यो भी खूखार लगता था—आज उसकी ऑखे शिकारी जानवर की तरह लहक रही ह।

सुक्खू—पुराना चोर, मगहिया चोर। साल मे चार महीने बाहर रहता है, आठ महीने यहॉ !

चोरी करता है, तब आता है, जेल मे सफैय्या की जरूरत हुई, तब भी आता है ।

क्या नौकरी पर ?

नही, हर थाने मे मगहिया डोमो की सूची रहती है । इस पूरी कौम को ही जरामयपेशा कोम मान लिया गया है । ज्यो ही जेल मे सफैय्या की कमी हुई, थाने मे खबर की गई, उनमे से दो, चार, दस को पकडकर १०९ या ११० दफे मे चालान कर दिया गया !

सुक्खू सफैय्या का भी काम करता है और जल्लाद का भी। फॉसी के रस्से पर मोम वह लगाता है, बेत को वह पोसता और पोछता है।

हर फॉसी पर उसे चार रुपये का इनाम मिलता है, हर बेत के दिन उसे एक बोतल ठर्रा मिलता है !

तिकठी खडी है, बेत पडे है। सेटर पर बेत लगते ह, जिसमे सभी कैदी समझ जायँ, जेल क्या चीज है !

फॉसी सुपरिटेडेट के सामने होती है, बेत सुपरिटेडेट के सामने लगते ह ! तिकठी की बगल मे एक टेबुल और एक कुर्सी रख दी गई है ।

फिर स्ट्रेचर आता है, बडेज के लिए कपडा, रूई और टिचर रख दिये जाते है ।

और, वह नन्हकू को लाया जा रहा है । नन्हकू—रातभर मे ही कैसा काला पड गया है ! किन्तु जरा भी बोलता नही—सिर झुकाये आ रहा है । क्या शर्म लग रही है ? क्या पश्चात्ताप हो रहा है ?

दूसरी ओर से सुपरिटेडेट आते है, जेलर और डाक्टर आते है।

डाक्टर साहब नन्हकू के स्वास्थ्य की जाँच कर रहे है ! सभ्यता का युग है न ? मारने के पहले देख लेना पडता है कि कितनी मार लगने तक इसकी जान नही जा सकती है !

तीस बेत !

हजूर—नन्हकू ने मह खोला। शायद कुछ कहना चाहता था, किन्तु जमादार ने डाट दिया—चो प् !

पैट और कुर्त्ता हटा दिये गये। नगा करके तिकठी पर चढा दिया गया। नगा करके—कही कपडे मे बेत न उलझ जायँ !

दोनो हाथ और दोनो पैर तिकठी के दो पायो मे अलग-अलग बाँध दिये गये। तिरछी खडी है यह तिकठी। उसपर तिरछा लेटा हुआ है नन्हकू।

तिकठी पर नगी मानवता लेटी है !

चूतड पर टिचर लगाया जा रहा है ! बेत की सज़ा चूतड पर होती है ! जहाँ मास, वहा बकोट !

फिर टिचर मे भिगो कर कपडे की एकप टटी साट दी जाती है। इधर सुक्खू बेत सम्भाल रहा है—उन बेतो मे से एक लम्बा मजबूत बेत उसके लिए चुन लिया गया है !

जमादार गिनती कर रहा है, एक-दो-तीन

सुक्खू बेत मार रहा है—तडाक्, तडाक् तडाक्

पहले बेत से ही सारा जेल काँप उठा ! नन्हकू काँप रहा है, तिकठी काँप रही है, सेटर का टावर काँप-सा रहा है !

चार–पाँच–छ–सात

चूतड की ऊपर की खाल कट गई, पट्टी गिर गई, खून चू रहा है—किन्तु नन्हकू बोलता तक नही, क्या वह बेहोश हो गया है ? चूतड पर टिचर से भिगोई दूसरी पट्टी रख दी गई। जमादार की गिनती फिर शुरू हुई —

आठ–नौ–दस—

और, अब यह चीख ! हृदय-विदारक ! बाबू, आपलोग भी इस शब्द का प्रयोग करते है, किन्तु हृदय-विदारक क्या चीज है, आप तब तक नही जानेगे जब तक बेत की सजावाले की चीख न सुनेगे ! चीखने वाले का जब हृदय विदीर्ण होता है, तभी हृदय-विदारक चीख निकलती है। नन्हकू का चूतड पहले फट चुका था, अब उसका हृदय फट रहा था । अब बेत चूतड पर नही पड रहे थे, उसके हृदय पर पड रहे थे !

आठ नो दस

तडाक् तडाक् तडाक्

हा हा हा

हाँ, वह आह नही कर रहा था, उह नही कर रहा था। हा—हा—हा—मालूम होता था, उसके फेफडे की आखिरी साँस उसके मुह से निकल रही है। समूचे वातावरण मे उसकी हा-हा-हा छा रही थी !

ग्यारह—बारह—तेरह—

तडाक्—तडाक्—तडाक्——

हा—हा—हा——

चौदह—पन्द्रह—सोलह, तडाक्—तडाक्—तडाक्, हा—हा—हा— । बाद मे सिर्फ हा—हा—हा ! सिवा—हा—हा—के कुछ नही सुनाई पडता । चूतड पुर्जा पुर्जा कट चुका है, उसपर पट्टी पर पट्टी रखी जा रही है, माँस के लोथडे गिर रहे हैं, खून की धारा गिर रही है—और, वह आगे ?

क्या कम्बख्त ने पेशाब कर दिया ! नही, नही—यह उजला-उजला—तार-सा बँधा ! बाबू-बाबू, निलज्जता या अश्लीलता का दोष मत दीजिए ! छिपाऊँ कैसे, बताऊँ कैसे ? उसके चूतड से खून चू रहा था, उसकी जननेन्द्रिय से धातु का तार लगा था !

आदमी, आदमी ! तू आदमी की क्या दुर्गति कर देता है आदमी ?

आदमी की यह गति ? इस युग मे ? जब सभ्यता का इतना ढोंग है !

किन्तु, आदमी जितना सभ्य होता जा रहा है उतना ही क्रूर भी, निर्मम और निलज्ज भी। चूतड पर मारना, नगा करके मारना, इस तरह मारना, इतना मारना कि एक ओर से रक्त, दूसरी ओर से धातु !

थोडी देर के बाद उसका हा-हा भी बन्द !

जमादार ने तीस की गिनती पूरी की, सुक्खू ने बेत रखकर सुपरिटेंडेंट को सलाम किया। डाक्टर साहब स्ट्रेचर लेकर दौडे और नन्हकू को—बेहोश नन्हकू को—तिकठी से उतारकर , स्ट्रेचर पर लिटाकर, एक कम्बल ओढाकर अस्पताल ले गये !

कुछ देर तक ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था, जिसे मौत का सन्नाटा कह सकते है । सुपरिटेंडेंट और जेलर फाटक की ओर जब चले, तो उनके जूतो के शब्द आप गिन ले सकते थे !

खट्, खट्, खट्, खट्, एक, दो, तीन, चार,

७—पगली-घंटी !

टन टन टन् , टन् टन टन, टन् टन् टन्,

पहले दिन जब ये शब्द गूंज उठे थे, कौतूहल हुआ था ।

शब्द सुनते ही सारे कैदी भागे, खटाला के भीतर आ रहे। खटालो के दरवाजे पर वार्डर खडे हो गये । गिनती शुरू हुई। एक-दो-तीन-चार

उधर जेल के कोने-कोने मे बाहर से आये वार्डर दौडने लगे। कुछ इस ओर जा रहे है, कुछ उस ओर । कोई खाली पैर, कोई खाली सिर । किसीकी कमर मे धोती लिपटी , तो कोई सिर्फ लंगोट लगाये। किसीके हाथ मे डंडा , किसीके हाथ मे जलावन की लकडी। यह तो अजीब हालत है ? यो क्यो दौड पडे ये लोग ?

यह पगली घंटी बजी है । नियम है कि ज्यो ही जेल का कोई कर्मचारी यह घंटी सुने, जहाँ जैसे हो, दौड पडे फाटक की ओर और सामने जो कुछ पावे, हाथ मे लेकर भीतर घुस जाय ।

वार्डर चारो ओर दौड ही रहे थे कि हथियारबंद सिपाहियो का एक दस्ता भीतर घुसा—लेफ्ट, राइट, लेफ्ट

सेंटर टावर से अब लाल झंडा दिखाया जा रहा था। जिस ओर उससे इशारा किया गया , दस्ता उस ओर चला। दस्ता गोशाला की ओर जा रहा था !

फिर फायरिग की आवाज हुई । क्या गोलियाँ चलाई जा रही ह ? किनपर गोलियॉ चली, कौन उसके शिकार हुए ? आह रे, पत्थर की इन दीवारो के अन्दर जान इतनी सस्ती हे ?

लेकिन यह सब कुछ खिलवाड-खिलवाड था । पगली घटी का यह रिहर्सल हो रहा था । जेल मे कोई ऊधम हो जाय, या जेल से कोई भाग जाय, तब यह खतरे की घटी बजती है ।

जेल से कोई भाग जाय ? दिन मे छ बार गिनती—रात मे गिनती ही गिनती । इतनी ऊँची दीवारे—दीवारो पर पहरे पड रहे । कोई भागेगा कैसे ?

लेकिन पगली घटी बजती है, तो कोई भागता जरूर होगा।

और, किसीने भागकर दिखा ही दिया कि यो भागा जाता है।

रात का वक्त था, एकाएक पगली घटी घनघना उठी, अभी-अभी हमलोग सोये थे । घटी सुनकर अचानक जगे और अवाक रह गये । इस पाषाण-पुरी मे जैसे प्रेत लुकाठी लेकर दौड रहे हो ।

जेल के फाटक पर हमने प्राय ढेर-की-ढेर मशाले रखी देखी थी उन मशालो का क्या उपयोग—यह आज देख रहे हैं।

इधर हा-हा, उधर हू-हू। जेल की दीवारो के निकट मशालो की कतारे खडी हो गई । फिर कई दल मशाल लेकर खटालो की ओर दौडे। पहरो से पूछे जा रहे हैं, मेठो से पूछे जा रहे हैं । पाखानो मे देख रहे है, छतो पर देख रहे है । फिर पेड की डाली-डाली पर मशालो से रोशनी की जाती है ।

'उतर साला, उतरता है या गोली मार दी जायगी !'

कई वाडर एक साथ ही पेड पर चढ जाते है और उसे उतार लाते हैं ।

'बोल, तुम्हारे और साथी कहाँ है ?'

वह क्या बताता ? उस बेचारे को तो धोखा दिया गया, अब वह उन्हे किस तरह अपना साथी कहे ।

एक पुराना डकैत आया था, अभी वह हाजत मे ही रखा गया था। हाजत मे थोडी ढिलाई रहती है। अभी वे पूरे कैदी तो समझे नही जाते—इसलिए उनपर उतना ध्यान नही दिया जाता। कौन जाने, छूट ही जायँ! जमानत पर तो अधिकाश लोग चले ही जाते है ।

किन्तु वह डकैत जानता था, वह न तो छूट सकता है, न जमानत पर जा सकता है । कई खून उसके सिर पर नाच रहे थे !

हाल मे जब कचहरी गया था, शीशे की थोडी बुकनी लेता आया था। इस बुकनी को डोर मे लगाकर वह रात-भर खिडकी के छड को काटता रहता। लेटा हुआ है, डोर को दोनो हाथो से खीच रहा है, धीरे-धीरे, जिसमे शब्द न हो। लोहे के दो मोटे छडो को सूत की डोर ने, शीशे की मदद से, काट डाला !

फिर तीन पुराने पापियो का गिरोह बनाया उसने। गिरोह बनाने की कला मे डाकू प्रवीण होते ही ह ।

आज पहरे को उसने बडे प्रेम से गाँजा पिलाया था। गाँजा पीकर वह लुढक गया और गिनती करता रहा —ए दो ती चा

तब तक चार कैदी नौ दो ग्यारह हो चुके थे !

दोमजिले पर ये लोग थे। छड को तिरछाकर खटाल से बाहर निकले और पानी गिरने के लिए लगाये गये बम्बे को पकडते हुए नीचे उतर आये !

हौले पैर दीवार के नजदीक पहुँचे। एक के कधे पर एक, यो चौथा आदमी—वह मशहूर डाकू—दीवार के ऊपर था। पहले से ही धोतियो की सीढी बना ली गई थी। वह दीवार से ससर कर नीचे आया, दूसरा भी सीढी का आसरा लेकर दीवार पार कर गया ! किन्तु यह तीसरा ! दीवार के उस पार कूद गया ! धम्म —

पहरे का सिपाही जागा। तीनो कैदी धम्म-धम्म करते भागे । पगली घटी बजी—जो बेचारा भीतर रह गया, वह क्या करे ? कुछ सूझ नही पडा, तो पेड पर जा चढा !

पेड पर से वह नीचे उतारा गया और कुटाई-पिसाई के बीच उसे सेल पहुँचाया गया। किन्तु जेल मे जो भाग गया वह शेर, जो मर गया वह मच्छड !

अब इस मच्छड को मारने से ही क्या होता है ? शेर तो निकल चुके थ, तीन तीन। भोर से सारे ही जेल मे मातम छाया हुआ था। यहाँ हत्याये देखी है, बेत लगते देखा है, फाँसियाँ देखी है—किन्तु क्या कभी ऐसा मातम देखा गया था ? दो दिनो के अन्दर ही अन्दर

आई० जी० आ गये और हफ्ता भी नही लगा कि जेलर और जमा-दार की बदली हो गई। उनके ओहदे तोड दिये गये ओर उनके मुशाहरे मे भी कमी कर दी गई।

वह डाकू क्या गया, जेल के कैदिया को निहाल कर गया। जो नये जमादार और जेलर आये, उन्होने सख्तियो मे कमी नही की, किन्तु उनकी धाक जमने मे भी देर लगी और उनके प्रपच शुरू होने मे तो देर हुई ही। कल्लू, हबीब की चलती मे भी कमी हुई। कैदियो के रोम-रोम का आशीर्वाद उस डाकू को मिला करता!

किन्तु, यह क्या बात है, बाबू, कि जेल का भागा हुआ आदमी छ महीने के अन्दर ही जरूर गिरफ्तार होता है! ज्यादातर तो ऐसा होता है कि भागा और तीन दिनो के अन्दर ही फिर आ पहुँचा। जेल की पोशाक खासकर धोखा देती है। बाहर की उजली, काली या रगीन पोशाक मे जेल की धारीधार किट खप नही पाती। किन्तु, ये लोग भागे थे हाजत से—इसलिए इनके अपने कपडे थे। लेकिन, कपडे ने तो बचाया, पाप जो बचने दे। भागे हुए कैदी की मनोवृत्ति ही कुछ अजीब किस्म की हो जाती है—हर आवाज पर चौक उठेगा, हर अपरिचित सूरत पर काँप उठेगा। छोटे से घेरे से वह निकल भागता है, किन्तु सारे ससार को अपने लिए घेरा बना लेता है। उसका जेल फैल जाता है, उसके वाडरो और जमादारो की सख्या अनगिनत हो जाती है। आखिर, किन्ही काँइयो की नजर पडी और वह फिर जेल मे!

फिर जेल मे—और, तब की दुर्गति की मत पूछिए। उसके सिर पर की लाल टोपी हमेशा खतरे को सूचना देती है—सब उससे चौकस, सब होशियार। हर ओर घूसा, हर ओर हुँरपेटा! जेल का अछूत—कोई उससे बोलना नही चाहता, जो बोला वह भी गया! अलग खाना, अलग सोना! किन्तु रौरव की कल्पना रखते हुए भी समार मे पापियो की तादाद तो घटी नही!

८-फाँसिया भी देखीं

'हाँ मैने—फाँसियाँ भी देखी बाबू! दजनो फाँसिया देखी है, किन्तु तीन कैदियो की फाँसिया को मै भूल नही सकता। उनमे एक सियार की मौत मरा, दूसरा साँड की मौत और तीसरा शेर की मौत।

हाँ एक सियार की, दूसरा साँड की और तीसरा शेर की मौत मरा। जिस तरह कैदी कैदी मे अन्तर है, उसी तरह फासी-फाँसी मे भी अन्तर होना है बाबू !

वह, जो सियार की मौत मरा ।

वह जगली था। अपनी सास की, डायन होने के सन्देह पर, गर्दन काटकर आया था । अपनी सास की—क्योकि उसको शक था कि उसके जो बच्चे होते ह, उन्हे वह डायन खा जाती है । डायन सबसे अधिक अपने ही लोगो पर चोट करती है न ? वह खब्बीस बुढिया एक के बाद एक करके लगातार अपने तीन नातियो को खा चुकी थी !

एक के मरने पर सन्देह हुआ, दूसरे पर निश्चय किया, और, तीसरे पर प्रतिहिंसा जग उठी । वह जगल मे लकडी काटने गया था। । लौटा तो मालूम हुआ, तीसरा बच्चा भी मर चुका ! कई दिनो से बीमार था वह बच्चा । उसने सास को चेता दिया था—खबरदार, मेरे बच्चे को इस बार खाया, तो समझ लेना । किन्तु, बुढिया ने खा कर ही दम लिया । और खाकर अब रो-धो रही थी मक्कार ! कुल्हाडी उसके हाथ मे थी । उसी कुल्हाडी की धार से उसकी गर्दन काटकर उसके 'पास' से सिर को थुकचा-थुकचा कर दिया और खुद थाने मे हाज़िर हो गया ! खुद थाने मे हाज़िर हुआ और अपराध स्वीकार कर लिया —जैसे, उसने एक सुकम किया हो !

किन्तु, यह जोश, या खब्त कहिए, कायम नही रह सका। जब फाँसी की सज़ा हुई और उसका दिन भी तय हो गया, तो दूसरा दौर शुरू हुआ —दिन रात रोता रहता, चिल्लाता रहता। जब फासी के सेल से कोई आवाज़ नही होती, तो समझ लेते, वह सो गया है । फाँसी के दिन तो उसने कमाल किया, बाबू ! अमूमन फासी भोर को होती है । जब भोर मे वार्डर उसके सेल के निकट गये, तो उसने घिनौनेपन की हद कर दी। पाखाना करके रखे हुए था। उसे पेशाब मे घोल लिया था। और, अब उसके छीटे वार्डरो पर दे रहा था !

वाडर छी-छी करते, नाक-भौ सिकोडते भागे। किन्तु, क्या घिनौनेपन से फाँसी टल सकती है ? पहले समझाने-बुझाने की कोशिश की गई । तब दरवाज़ा खोला गया — वह गदगी उडेलता जाता था । झपट कर उसे बेकाबू किया गया । फिर टाँग टूँगकर

पीटते-पाटते फाँसी के तख्ते पर ले आये उसे। हाथ पीछे बाँध दिये गये, सिर पर फासी की टोपी रख दी गई। तख्ते पर खडा कराकर गदन मे फदा डाल दिया गया। सुपरिटेंडेट के हाथ से रूमाल गिरा और वह फाँसी के अधकूप में चला गया।

किन्तु, यह क्या? जहाँ दो तीन मिनट मे ही रस्सी का हिलना बन्द हो जाता है, वहा दस मिनट के बाद भी रस्सी हिल रही है! क्या बात हुई? देखा जाय?

अरे, यह तो खून खून हो रहा है। रस्सी ठीक से गदन म बैठी नही, जीभ निकल आई, जिसपर दाँत गड गये। गदन फाँसी में लम्बी हो ही जाती है, किन्तु, यह तो अजीब लम्बी हो गई है। तो भी जान निकली नही—न यह जी रहा है, न मर रहा है! सारा शरीर बेतहाशा काँप रहा है। सास का भूत भगाना चाहता था, अब जैसे आप ही भूत के पजे मे हो। क्या किया जाय? कुछ देर और देखा जाय? उफ री छटपटाहट! कितनी देर देखा जाय यह मर्मान्तिक दृश्य! तो फिर नये सिरे से फाँसी दी जाय?

फँासी के अधकूप से वह ऊपर लाया गया। गदन की रस्सी फिर से बाँधी गई। फिर तख्ते पर रखा गया। फिर अधकूप में झुलाया गया। तब कही उसकी जान निकली!

कहिए, यह सियार की मौत नहीं है, तो क्या है? यह जगली सियार—सियार की तरह मरा, या मारा गया?

किन्तु दूसरी मौत थी साँड की।

यह गाँव से आया था, किसान था। बपौती जमीन के लिए मार-पीट हुई। खून हो गया। खून इसने नही किया था, इसके आदमियो ने किया था। किन्तु, उसकी जिम्मेवारी से यह अपने को बरी नही करता था। इसको अफसोस था कि खून हुआ और खून हुआ उसका, जिसे यह जिन्दगी भर चाचा कहकर पुकारता था। उस भोर मे भी यह चाचा से मिला था और आरजू की थी कि पचायत से नही तो मुकद्दमे से मामला तय करा लिया जाय। चाचा भी राजी हो गये थे—किन्तु चाचा के बेटो ने नही माना। खेत मे हल चढा दिया। यह दौडा, इसके आदमी दौडे। ठन गई। अब लाठी की मार तो होती नही कि खोपडी फटकर, हड्डी टूटकर, रह जाय। गँडासे की मार, बरछे की मार। खैरियत समझिए कि एक ही खून

हुआ । चाचा का खून हुआ, मेरा भी खून हो सकता था—यह वीत-राग सा सारी कहानी सुनाता और खून के बदले खून के न्याय को मानकर अपने को पहले से ही मरने को तैयार कर लिया था इसने ।

थोडा पढा-लिखा था, रामायण पढता, हनुमान चालीसा का पाठ करता । क्या गरुड-पुराण सुनवा दीजिएगा जेलर बाबू ? इसकी शान्ति और निश्चिन्तता से सब हैरान थे । इसकी यह इच्छा भी पूरी कर दी गई—फॉसी के मोके पर राक्षसता मे भी मानवता उमड आती है बाबू ! भोर मे फासी होने को थी, उसके पहले दिन गोदान भी करा लिया इसने ।

गोदान के दिन इसकी मॉं आई थी, स्त्री आई थी। बूढी मॉं, जवान स्त्री ! वे चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी—किन्तु, इसने तो जीवित रहते ही निर्वाण प्राप्त कर लिया था जैसे । न कही हर्ष था, न कही विषाद । खून का बदला खून ! अपने दुधमुहे बच्चे को चूम-कर मॉं को दिया और कहा —अब तेरा बेटा यही है मॉं ! पृथ्वी का बदला पथ्वी पर ही चुकाकर जा रहा हूँ—नही तो हत्या का फल कुम्भीपाक मे भुगतना पडता !

घर के लोग चले गये, तो जेलर से कहा—जेलर साहब, सुनते है, स्वग मे भी पान, केला और दही नही मिलते । क्या इनका इन्तजाम कर दीजिएगा ? जेलर ने इन्हे मॅगा दिया , रात मे इन्ही का फलाहार किया इसने !

फाँसी का दिन—बहुत तडके उठा ! शौचादि से निवृत्त हुआ, पानी मँगाकर स्नान किया , रामायण का थोडा पाठ किया और हनुमान चलीसा पढते हुए फाँसी के चबूतरे की ओर चला !

हमलोग जाग गये थे। अपने-अपने खटाला से इसके पैर की बेडी के झनझन मे इसके मुँह से निकलते हुए पाठ को स्पष्ट सुन रहे थे ।

जयराम—जयराम——जयराम !

सबका अभिवादन किया—जेलर का, सुपरिटेंडेट का, जमादार का, जज का भी—जो फैसला सुनाने की विधि पूरी करने आये थे। फिर फॉसी के तख्ते पर चढ गया, चढ गया, झूल गया, जय रा

चलते-चलते एक निवेदन कर गया था—ब्राह्मण का बेटा हूँ, मेरी लाश चाडाल को नही छूने दीजिएगा ! जब खटाल खुला, देखा, चार ब्राह्मण वाडर उसकी लाश को स्ट्रेचर पर लादे गेट की ओर ले जा रहे हैं । भोर-भोर, सूरज की सुनहली किरणो म, उन चारो की आखो के कोर चमक रहे थे । पत्थर पसीज गया था बाबू !

कहते है, उस दिन जेलर के घर मे खाना नही बना—और दो दिनो तक सुपरिटेडेट जेल के भीतर नही आया, यह तो हमने पाया ही !

सब समझ रहे थे, जैसे एक सॉड की बलि चढा दी गई ! कितना सूधा था यह सॉड । कितना निर्दोष, कितना शान्त ! उसका शरीर भी सँाड की ही तरह था बाबू ! स्ट्रेचर पर जब उसकी लाश ले जा रहे थे, मालूम होता था, एक सॉड को ही ढोकर ले जा रहे ह वे ? सारा स्ट्रेचर मसर-मसर कर रहा था !

और तीसरा तो शेर था, शेर की ही तरह फॉसी पर फॉदकर चढ गया वह ।

कुछ दिनो से कानो कान एक कानाफूसी चल रही थी, कोई बडा भयानक कैदी जेल मे आनेवाला है। जेलर ने कई बार फॉसी-सेल का मुआइना किया। एक बार खुद सुपरिटडेट उस ओर देखा गया और जब उस दिन जेल के चारो ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा पडने लगा, तब हमने समझा—वह आ रहा है !

एक आधी रात को वह आया और उसी समय समूचे जेल को गुजित कर दिया उसने। जहॉ सिर्फ हाहाकार और चीत्कार था, वहॉ गगनभेदी नारे और उच्चकठ से गाये जानेवाले सगीत की ध्वनि-प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी । सख्त मनाही थी कि फाँसी-सेल की ओर कोई न जाय । किन्तु यह बात भोर मे ही फल गई कि वह एक नौजवान है, बिल्कुल अठ्ठारह उन्नीस साल का। गोरा रग है उसका और घुँघराले बाल । वह कोई मोटा तो नही है, किन्तु सारी मास-पेशियॉ कसी हुई ह। जब खुले बदन खडा था, तो मालूम होता था, सोने की मूर्त्ति किसीने खडी कर दी है !

उसे फॉसी होनेवाली है और अभी परसो। जल्दी-जल्दी की जा रही है, जिसमे बाहर किसीको खबर न हो। चुप-चोरी रात मे उसे लाया गया है यहॉ और चुप-चोरी फॉसी दी जायगी ! चुप-चोरी—

हाँ, हॉ, वह बम-पार्टी का आदमी है । एक सरकारी गवाह का खून करके आया है । सरेबाजार, भरीशाम को उसने उसे जहन्नुम पहुँचा दिया और किसीकी हिम्मत न हुई कि उसे पकडे । आखिर उसके एक साथी ने ही धोखा दिया और अब वह फॉसी पर झुलाया जायगा।

दो दिन और दो रात मे ही उसने इस जेल का काया-कल्प कर दिया। जेलर उससे डरता हे, सुपरिटेंडेंट ने कुछ शान दिखाई तो इस तरह घुडका कि उसकी सारी शेखी हवा हो गई। जमादार की बुरी गत है, वह उसके सामने होने से भय भी खाता है । किन्तु जो कैदी उसे खिलाने जाता है, उससे यह बडे प्रेम से मिलता हे — हॅसकर बाते करता हे और कहता हे, डरते क्यो हो ? ये सारे-के-सारे भूत ह । भूत कुछ नही हे, अपने मन का डर है। डर दूर करो, भूत अपने आप भाग जायगा !

जेल के अफसरो की यह दुर्गति हो सकती हे, इसकी कल्पना भी किसीने नही की थी । एक अकेला आदमी सिर तान कर खडा है और सब विरोधी, अत्याचारी शक्तियाँ थरथर कॉप रही है ! यह क्या बात है भाई ? यह कोन-सा जादू है ? हर कैदी यह सोचने लगा और ज्यो ही सोचना शुरू कीजिए, आदमी का बदलना शुरू हो जाता है । कायरता ही सक्रामक नही है, वीरता भी !

जिस दिन फासी होने को थी, रात-भर हमने नारे सुने, गाने सुने । जेल मे शायद ही कोई सोया हो । और, भोर मे सारा जेल फौजी पडाव बन गया था । जहॉ देखिए, हथियारबन्द पुलिस किरचे ताने खडी है । सुनते है, बाहर भी पहरे बिठा दिये गये थे !

बेडियो की झनझन मे अपने कठ का मादक स्वर भरते हुए वह फाँसी के चबूतरे की ओर बढा । बीच-बीच मे नारे लगाता जाता था !

'लाइए, यह फदा खुद गले मे डाल लू, जरा चूमने तो दीजिए ही—गुलाम देश की नौजवानी के लिए यह जयमाल है न ?'

सब दग, सब भयभीत। कोई आवाज नही, उसने अपने को सौप दिया—लीजिए, जैसी आपकी मर्जी , वही कीजिए ।

फासी की टोपी—हाथ पीछे करके हथकडी—पैर तख्ते पर—फदा गले मे ।

'अँगरेजी राज नाश हो"—'इन्कलाब जिन्दाबाद !'

वह चल बसा ! वीरो की मृत्यु ! चारो ओर बन्दूके, किरचे। दुश्मन से घिरा । मृत्यु सामने खडी। किन्तु जरा भी भय नही, झिझक नही। मरण का वरण —हँसते-हँसते ! देखनेवालो ने बताया, फासी के अधकूप से जब उसका निष्प्राण शरीर निकाला गया, तब भी उसके चेहरे पर हँसी थी—यद्यपि उसकी गदन लम्बी हो गई थी।

वह चल बसा—किन्तु, बहुत दिनो तक इस जेल मे रह-रह कर नारे का स्वर सुनाई पडने लगा था । कोई-कोई कहता—उसकी आत्मा यह नारे लगा जाती है । क्या यह सच हो सकता है ?

चाहे जो हो, चलते-चलते वह जेल का काया-कल्प तो कर ही गया। उसी दिन से जेल की सूरत बदलने लगी बाबू ! वह फॉसी पर नही चढा, सुपरिटेडेट, जेलर, जमादार, वाडर सबकी शान एकबारगी ही फॉसी पर चढ गई । उस शान को जिलाने के लिए कोशिशे की गईं, किन्तु फासी पर चढे हुए शव मे कही जान आती है !

एक शेर गया कितनो शेरो के लिए उसने पिजडा खोल दिया—पाषाण-पुरी कुछ ही दिनो मे 'सिहो की माद' बन गई।

लेकिन एक बात बाबू—चाहे सियार की मौत हो, साँड की मौत हो या शेर की मौत हो—फासी फिर भी फॉसी है !

क्या हत्या की सजा हत्या ही हो सकती है ? हमने हत्या की, तब तो हमारी हत्या की जा रही है । किन्तु, हमारी हत्या जो कर रहे ह, क्या उनपर यह नियम लागू नही ?

हत्या की सजा हत्या—तो यह शृखला रुकेगी कहाँ ?

सरकार के द्वारा की गई हत्या हत्या नही है, यदि यह मानते है तो यह भी मानिए कि 'वैदिकी हिसा हिसा न भवति !'

फिर क्या फाँसी के लिए कोई मानवोचित उपाय काम मे नही लाया जा सकता जो बबर युग की इस प्रणाली को जीवित रखा जा रहा है ?

दस दिन, बीस दिन पहले से ही खबर कर देना कि अमुक दिन तुम्हारी हत्या की जायगी — हर दिन यह पूछना कि क्या खाना चाहते हो, किससे मिलना चाहते हो —हर आदमी उसके नजदीक पहुँच कर कह जाया करे कि हाय, बेचारा जा रहा है—फिर दस दिन पहले से ही उस हत्या की तैयारी—

रस्से पर मोम लगाया जा रहा है—उसीकी वजन का एक बुत बनाकर उसके गले से फाँसी लटकाये जाने का अभ्यास किया जा रहा है—फॉसी के फ्रेम को खडा करके अच्छी तरह मुआइना किया जा रहा है कि ठीक से काम करता है या नही—और, इस एक-एक की खबर उस बेचारे के पास पहुँच रही है—वह जिन्दा ही तिल-तिलकल छीजता जाता है ! कहिये, यह कोई मनोवोचित प्रक्रिया है ?

और, यह गले की फॉस ! फॉसी द्वारा तीन ढग से मौत होती है बाबू, यह डाक्टर लोग बताते है । सबसे अच्छी मौत है झटके की । ज्यो ही तख्ता हटता और कैदी अधकूप मे लटकता है, कि इस तरह का झटका लगता है कि उसकी गदन की हड्डी टूट जाती है और तुरत मृत्यु हो जाती है । इसमे शायद ही एक मिनट लगे। दूसरी मौत, छाती की धडकन बन्द होने से होती है—अधकूप मे पहुँचते ही आदमी की सॉस अचानक रुक जाती — और छाती की धडकन एकाएक बद हो जाती है । इस मृत्यु मे भी ज्यादा कष्ट नही होता। किन्तु तीसरी मौत ? गले मे रस्सी कसती जा रही है, धीरे-धीरे सास बन्द हो रही है, आदमी छटपटा रहा है—उफ अजीब छटपटाहट ! समूचा शरीर कभी सिकुड रहा है, कभी तन रहा है, कभी धनुषाकार हो जाता है, कभी कुडलाकार — आह यह मौत है या

हत्या की सजा यदि हत्या है, तो हत्या का कोई दूसरा उपाय निकलवाइये बाबू ! गोली से मार दीजिये, बिजली से मार दीजिये—किन्तु आदमी का दम घोट घोटकर मारने की इस पाशविकता को तो दूर ही कराइये !

फाँसी मे अधिकाश मृत्यु इसी तरह गला घुटने से होती है। जिसका कलेजा मजबूत है, उस बेचारे की सबसे बुरी गत होती है — बशर्ते कि वह झटके से न मर जाय !

९—पत्थर पर फूल

कही पत्थर पर फूल खिलते ह ?

और, पहाडो पर तो फूलो की कमी नही होती ?

किन्तु क्या पहाड सिर्फ पत्थर है ?

जहाँ पहाड सिर्फ पत्थर है, वहाँ फूल नही खिलते, पौदे नही उगते। किन्तु पहाड का पत्थर भी हवा-पानी, गरमी-जाडा से प्रभावित होता है। पत्थर पसीजता है, टूटता है, चूर होता है, और जहाँ चूर हुआ कि मिट्टी बना!

मिट्टी बना और पौदे उगे, फूल खिले!

जिन्होने पाषाण-पुरी की रचना की होगी, उन्होने सोचा होगा यहाँ फूल खिल न सकेंगे। उनकी यह पाषाण-पुरी भीतर जाने वाले फूलो को भी मसल देगी।

किन्तु, वे भूल गये थे—'रग लाती है हेना पत्थर पर घिस जाने के बाद!'

कुछ ऐसे भी फूल हो सकते है, पत्थरो पर घिसने से जिनका रग और खिल उठ सकता है, जिनकी गध और भी फैल सकती है—काश, वे जान पाते यह सत्य।

और, कही हवा-पानी, जाडा-गरमी के असर ने पत्थर को मिटटी बना दिया, तो फिर क्या कहना?

एक दिन हमने देखा, इस पाषाण-पुरी मे पाँच फूल उग आये!

हाँ, फूल ही!।

फूल-सा रग, फूल-सा रूप, फूल-सी गध!

समूचा जेल जगमगा गया, गमगमा उठा!

शाही कैदी थे वे—शाही कैदी! कैदी भी शाही हो सकता है? इसकी तो कभी कल्पना भी नही की गई थी इस पाषाण-पुरी मे!

एक पूरा खटाल उनके लिए रिजर्व हुआ। खटाल के चबूतरे तोड दिये गये, पलग बिछ गये। पलग, गद्दे, तकिए। चादर, रजाई, दुशाले। खटाल मे ही बाथ-रूम बना—साबुन, सेंट, लोशन, स्नो। एक खास रसोई-घर बनाया गया—पूर्ड-हलवा, पोलाव-शोरवा, केक, टोस्ट! ओ हो!

समूचा जेल जगमगा गया, गमगमा उठा!

सुपरिंडेंटेंट रोज आकर कुशल-छेम पूछ जाते, जेलर शाम-सुबह हाजिरी बजा लाते—और, जमादार! वह कुत्ता, कुत्ते-सा अब दुम हिलाता फिरता।

कभी कलक्टर आते, कभी आई० जी० ।

जहाँ सूरज, वहाँ अधकार कहाँ ? प्रकाश फैलता जाता था, अध-कार सिमटता जाता था !

अब क्या जेल मे अत्याचार हो सकता था ?

सबसे अधिक भाग्य खुला मेरा बाबू ! इन बाबुओ के लिए कुछ पनियो की जरूरत हुई—जो साफ-सुथरे हो, शऊर-शलीका जाने, उनकी मेवा अच्छी तरह कर सके । पहले ही बैच मे मै उनके साथ कर दिया गया ।

बात प्रचलित थी कि वे लोग बडे भयक्र जन्तु है, इसीलिए सर-कार ने उन्हे पकडकर जेल मे रख दिया है। वे बडे आदमी ह, इसलिए उन्हे पूरे आराम के माथ रखा जा रहा है । खुद बादशाह सलामत के वे मेहमान ह —इसलिए, उनका यह शाही आदर-सत्कार !

किन्तु, नजदीक जाकर देखा, उनके ऐसे सरल, सूधे आदमी तो कही देखे नही । हाँ, वे बडे आदमी जरूर थे । खूब पढे, लिखे, उनमे से दो तो बैरिस्टर थे बाबू ! । मै जिनकी खिदमत मे रखा गया, वह कालेज के एक प्रोफेसर थे ।

प्रोफेसर साहब की प्रोफेसरी जारी रहनी चाहिए—मुझपर ही उनकी सारी विद्या खच होने लगी। उन्होने मुझे पढाया, लिखाया, सोचना सिखाया, बोलना सिखाया, पाषाण-प्रतिमा मे उन्होने ही प्राण-प्रतिष्ठा की, बाबू !

पूरे दो साल तक वे रहे यहा। दो साल तक उनके चरणो के नाचे बैठकर मै सीखता, समझता रहा ।

मेरे इस पटने-लिखने से जमादार कुडबुडाना—किन्तु, किसकी मजाल थी, जो उनलोगो की इच्छा के प्रतिकूल कोई काम करे !

सुपरिटेडेट उनके माथ चाय पीता, जेलर उनके साथ ताश खेलता ।

सिफ ताश ही नही, तरह-तरह के खेल भी होते अब—भीतरी खेल, बाहरी खेल । शतरज, चौपड—बैडमिटन, टेनिस । दिन दिन उनकी तादाद भी बढती जा रही थी। देश के कोने-कोने से पकड-पकड कर उन्हे जमा किया जा रहा था, इस पाषाण-पुरी मे !

सोचता हूँ, पिअरिया से यो प्रेम करना, क्या मुनासिब था ? एक तो—हम दोनो दो जाति के थे, फिर हमे क्या हक था कि यह जानते हुए भी हम एक-दूसरे से उलझे । किन्तु, इसका जवाब तो मै दिये लेता हूँ । जात-पात सो अब आखिरी सास ले रही है, दम तोड रही हे । यदि हम दो-चार लात लगाकर उसका अन्त और निकट ला दे, तो अच्छा ही है । वह घुट-घुटकर तो मर ही रही है, सो, जरा जल्दी ही क्यो न खतम हो जाय ? किन्तु, एक प्रश्न जबदस्त है । पिअरिया की भी शादी हो चुकी थी और मेरी भी। फिर , यह प्रेम क्या उचित था ?

किन्तु, यहा सवाल होता है, शादी ही क्या चीज है ? क्या शादी उसीको कहा जाय , जिसमे 'कही की इट कही का रोडा, भानमती का कुनबा जोडा' की कहावत के अनुसार दो प्राणियो को दो जगहो से लाकर जबदस्ती गठबधन कर दिया जाय ? क्या विवाह के लिए दो हृदयो के पारस्परिक मिलन की कोई अनिवायता है ही नही ?

यदि है—तो, हम उसे क्या कहे, जिसमे हृदय-मिलन तो हुआ नही, और गठबधन हो गया ? क्या उसे तोडने का हक हमे नही होना चाहिए ?

व्यभिचार—व्यभिचार ! आज समाज व्यभिचार के नाम से ही चौक पडता है ! ठीक भी है । समाज मे नैतिकता होनी चाहिए, सदाचार होना चाहिए । किन्तु, व्यभिचार की परिभाषा क्या है ? यही न, जो सभोग विवाह-सम्बन्ध के बाहर किया जाय ! किन्तु, जहाँ विवाह ही शुद्ध रूप मे नही हुआ, वहाँ व्यभिचार का सवाल ही कहाँ उठता है बाबू ? मेरे खयाल से तो सबसे बडा व्यभिचारी 'पति'-नामधारी वह महापुरुष है, जो 'पत्नी'-नाम्नी एक अबला पर, हृदय-मिलन की आवश्यकता को बिना महसूस किये ही, केवल इसीलिए कि वह किसी पडितजी या कुछ बडे-बूढो के द्वारा पति करार दिया गया है, अपनी पाशविक तृष्णा की पूर्ति करता है ! कैसा भयकर अधेर ! तथाकथित विवाह की ओट मे होनेवाली दिन-रात की इस व्यभिचार-लीला पर तो कुछ विचार नही किया जाता और यदि कभी इकले-दुकले युवक-युवती हृदय की पुकार से बाध्य हो परस्पर मिलते हैं, तो व्यभिचार-व्यभिचार का तूमार खडा कर दिया जाता है !

और, मै तो आपसे कहूँ, बाबू, इस सम्बन्ध मे हमारे पुरखे हमसे कही ज्यादा बुद्धिमान थे। वे 'गठबधन' को कभी भी महत्त्व नही देते थे, 'हृदय-मिलन' ही उनके लिए सब कुछ था। यदि ऐसी बात न होती तो शकुन्तला, मत्स्योदरी, गगा आदि 'देवियो' और भरत, व्यास, भीष्म आदि उनके 'सपूतो' की चर्चा हम अपने ग्रन्थो मे दूसरे ही रूप मे पाते! भला बतलाइये न, इन देविया के परिणय के लिए कब मडप रचाया गया था? कब ब्राह्मण-देवता ने मन्त्रोच्चार किया था? कब इनकी बरात सजी थी? कब गठबधन हुआ था? तो भी इनके 'सपूत' हमारे महापुरुष है! हम उनके नाम लेते नही अघाते।

यदि उस समय की हालत से इस समय की तुलना की जाय, तब पता चले, हम कितने पानी मे है! जरा कल्पना कीजिए, हमारी बहने या बेटियाँ बिना हमसे पूछे, किसी बसतकालीन दुपहरिया मे किसी लता-कुज के नीचे, या प्रातःकालीन कुहासे मे किसी नदी के किनारे, या चकमक चादनी-चर्चित कलस्विनी की मध्य धारा मे किसी युवक को देखकर ललच जायँ, उससे उलझ जायँ, अजी अपने हृदय की प्यास बुझा ले, तो, खबर मिलने पर क्या आप उन्हे जिन्दा दरगोर किये बिना छोडेगे?—उनके बच्चो को भरत, व्यास या भीष्म की तरह पूजा पान का सौभाग्य तो दूर रहे, क्या वे बेचारे दुनिया की रोशनी भी देख पायँगे!

किन्तु, मै कहाँ बहक रहा हूँ, बाबू? मै पतित ठहरा—मुझे क्या हक कि धर्मात्मा समाज की कार्रवाइयो पर उँगली भी उठाऊँ? किन्तु, एक बात!

कुछ दिनो मे आपलोग भी बाहर जायँगे। बाहर जायँगे, और जैसा कि आपलोग कहा करते है, इस पृथ्वी पर स्वर्ग बसाने की कोशिश करेगे। पृथ्वी पर स्वर्ग!—कितनी सुन्दर कल्पना! यह सपना सत्य हो, सफल हो!

पर, क्या आपलोगो के उस पृथ्वी के स्वर्ग मे भी पतित रहेगे बाबू? और, सबसे बढकर, क्या उसमे भी पतितो का यह देश आबाद रहेगा?

जहाँ पतित हो, जहाँ पतितो का देश हो—क्या उसे स्वर्ग के नाम से अभिहित किया जा सकता है?

जहाँ कल्लू हो, जमादार हो, जहाँ बेत की तिकठी हो, फाँसी का तख्ता हो—वह स्वग तो हो नही सकना। ये तो पृथ्वी के ही कलक है—स्वग की तो बात अलग।

स्वग बना सके, बसा सके—फिर क्या कहना? किन्तु म कहूँ, यदि पृथ्वी से इन कलको को दूर कर दे, तो कम मे कम यह आदमियो के रहने लायक तो हो ही जाय।

देवता हम पीछे बनेगे, पहले हम पूरे आदमी तो बन ले।

लाल तारा

शहीद बैकुंठ शुक्ल को

एक जाज्वल्यमान तारा था

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

नये रूप मे

'लाल तारा' मेरे शब्दचित्रो का पहला सग्रह है। इसका पहला रूप उस जमाने में निकला था, जब मै सिर से पैर तक लाल—लाल था।

दूसरे सस्करण मे इसका कुछ रूप बदला और अब तीसरे सस्करण मे यह बिल्कुल नये रूप में पाठको के हाथ में आ रहा है।

इसकी कुछ चीजें, जिनका गुलाबी रग था, नई पुस्तको मे रख दी गई है, कुछ और चीजें इसमे जोड दी गई है, जो अन्यत्र सग्रहीत थी, किन्तु जो अपने अगारे के-से रग के कारण, इसीके लिए उपयुक्त जँची।

मेरे विचार से, अपने इस नये रूप में, यह अपने नाम को और भी साथक करता है।

'लाल तारा' एक नये प्रभात का प्रतीक था। वह प्रभात अब अधिक सन्निकट है। शायद इसीलिए अधकार भी अधिक सघन हो चला है।

यह अधकार छँटे, नये प्रभात का स्वर्णोदय हो, इसी कामना के साथ।

आश्विन की अमावस्या
१९५३

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

लाल तारा

निविड अन्धकार और घने कुहासे के पर्दे को फाडकर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था।

गरभू उठा। पूस का जाड़ा, पुआल की तहो को छेद, इस आखिरी रात को गरभू के कलेजे तक पहुँच चुका था। पहले दमा उठा, फिर गरभ।

गरभू उठा, झोपडी के बाहर आया।

एक बार कॉपते-कॉपते उसने खलिहान को, चारो ओर नजर दौडाकर, देखने की चेष्टा की। खलिहान—उसकी वर्ष भर की मेहनत जहाँ बोझो के अम्बार और अन्न की रास के रूप मे पडी थी।

वर्ष भर की मेहनत—धान की सुनहली बालियो के रूप मे। इस सोने पर, जब कि वह सोया हुआ था, किसी चोर-छिपार की बुरी नजर न लगी हो!

देखने ही से सतोष नही हुआ। एक बार खलिहान के चारो ओर वह घूम आया।

फिर बटुवे से सुर्ती निकाली, चुनौटी से चूना। दो-चार बार कसके चुटकी लगाई और एक मीठी थपकी दी। अँधेरे मे ही, स्पश के द्वारा, कुछ महीन सुर्ती अलग कर नाक मे डाली, शेष मुँह मे।

नाक से छीक आई, सिर का बोझ दूर हुआ। सुर्ती की एक पीक गले के नीचे उतारी, शरीर गरमा गया।

क्या वह सोये ?

उँह, यह भभूका—लाल तारा—उग चुका ! यह तो रामनाम की बेला है।

गरभू प्रभाती टेर रहा था—

'लाज मोरी राखहु हो ब्रिजराज !'

× × ×

यह लाल तारा !

गरभू के कितने सपनो का साथी हे वह !

उसका वह बचपन !

लाल तारा देखते ही उसका बाप उसे उठा देता। गरभू उठता, आँखे मलता, बथान मे जाता और तुरत की ब्याई उस गुजराती भैस को खोलकर पम्रर चराने को निकल पडता।

कितनी ही चाँदनी रातो मे दप-दप सुफेद साडी पहने चुडैलो ने उसे फुसलाया !

कितनी ही अँधेरी रातो को काले प्रेतो ने उसे डराया—धमकाया !

किन्तु गरभू जानता था, जब तक वह भैस की पीठ पर है, उसका कोई कुछ बिगाड नही सकता। लक्ष्मी के निकट कही भूत-प्रेत आते है !

लोही लगने पर वह लौटता। चारो ओर हरे-भरे खेत, ओस के मोतियो से लदे। उसकी अघाई भैस झूमती, बच्चे के लिए चुकरती,

घर की ओर भागी आ रही। और, गरभू उसकी पीठ पर बैठा—उसे वह अनुभव होता, जो किसी इन्द्र को अपने ऐरावत की सवारी पर।

× × ×

जब वह जवान हुआ—

इस लाल तारे को केन्द्रित कर उसके कितने न स्वर्ण-जाल बने!

स्वर्ण-जाल? उतना ही कीमती, उतना ही रंगीन, किन्तु कितना क्षणिक!

सोने का जाल? या मकड़ी का जाला!

गरभू को वे दिन—नहीं, रातें—अब भी याद हैं। अपनी नवोढा पत्नी के साथ, अपनी कुटिया में लेटे-लेटे, वह सारी रातें गपशप में बिता डालता। इतने में ही उसकी पूरब की छोटी खिड़की से यह लाल तारा उसके घर में झाँकने लगता।

'ऐ, भोर हो गई!' उसकी नवोढा बोल उठती। इस आवाज में कितनी तड़प, कितनी चाह और कितनी आकुलता भरी होती!

वह सोचती—दिन आ रहा, उसके और उसके इस अलबेले के बीच एक कठोर अन्तराल खड़ा हो जायगा!

रूढ़ियों की दीवाल!—पत्थर की दीवाल से भी ठोस, कठोर, हृदयहीन!

दोनों आँगन में आते। देखते, परखते—हाँ, यह लाल तारा ही तो है? तब—

तब, एक बार हुलसकर लिपटने और विदा होते। एक दरवाजे की ओर—दूसरी, अपनी उस प्रणय-पर्ण-कुटीर की ओर।

उनकी आँखों में भी तारे चमकते—उजले-उजले, काली-काली बरोनियों की सघनता को भेदते, चाँदनी के स्पर्श में मोती-सी छिपते!

× × ×

और यह प्रभाती, यह गाना!

गाना—गरभू कितना गाता, कैसा अच्छा गाता? आज तो दो पदों के बाद ही उसका गला बैठा जा रहा है।

गरभू गाने के लिए बदनाम !

हाँ, गरभू गाने के कारण बदनाम भी हो चुका है। न उसके पास श्याम की बासुरी थी, न उसमें वह भुवन-मोहन रूप था, किन्तु उसके अटपटे गाने कितनी ही 'राधाओं' को उसके पास खीच लाते !

न यमुना, न वृन्दावन, न कदम्ब, न कुज-कुटीर !

किन्तु तो भी इस गाँव के कितने ही स्थल है, जहाँ पर उसके प्रणय-चिन्ह अदृश्य कूचियो से अकित है !—बाबुओ की अमराई, तालाब का कछार, सरसो के खेत, गाव की अँधेरी गलियाँ !

वह गाते-गाते जगता, गाते-गाते सोता ! काम भी करता गाते-गाते ! कन्धे पर हल लिये खेत की ओर जा रहा है, गाते-गाते। हल चला रहा है, गाना हो रहा है और ताल टूटता है—बैल के पुट्ठे पर ! "चल बे पट्ठे"—बैल नाचने-से लगते, वह गाने लगता—

'आम की डाल कोयलिया कुहके,
बनवा मे कुहके मोर,
मोरा अँगना मे कुहके सोने की चिडइया,
सुन हुलसे जिया मोर।'

'हाँ जी, सुन हुलसे जिया मोर !!'

गाते-गाते कभी परिहथ छोड कर वह नाचने भी लगता !

गाँव के लोग इस अलबेले हलवाहे पर फब्तिया कसते, उसके बाप से शिकायत करते। किन्तु बाप—

बाप कहता—जिस दिन से गरभू ने हल पकडा, उसके खेत सोना उगलते है, घर मोती सँजोते है।

टट्टी की जगह मिट्टी की दीवाल। फूस की जगह खपडैल का छाजन। उसके बाप के बदन पर सुफेद अँगोछा—माँ की देह पर कोर-दार साडी !

और रग-बिरगी चूनर पहननेवाली तो पीछे आई !

पर आज ?

कहाँ गये बाप, कहाँ गई माँ ? अच्छा हुआ, ये दुर्दिन वे न देख सके !

मिट्टी की दीवाल की जड नोनी लगने से खोखली हो चुकी है, आज गिरे या कल! खपडैल के बीच-बीच फूस है, ठीक उसी तरह, जैसे उसकी स्त्री की पुरानी चूनर मे ननकिलाट के पेबन्द!

और, मानो गरभू आज उस बेचारी के ही शब्दो मे गा रहा हे—

'लाज मोरी राखहु हो ब्रिजराज!'

× × ×

गरभू का गला भर आया। गाया न गया। इस जाडे मे भी उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया।

झोपडी से निकल वह खलिहान मे घूमने लगा।

यह बोझो का अम्बार—यह अन्न की रास?

क्या ये उसके घर जा सकेगे?

कितने गिद्धो की नजर न लगी होगी इनपर—मानो ये गरभू की मेहनत के नतीजा न हुए, कोई लावारिश लाश है।

जब तेजी थी, लगान बढते-बढते आसमान से जा लगी—अब मन्दी मे भी वह वही लटकी है। वह क्यो उतरे?

बकाया! बकाया! बकाया—साल-साल देते जाओ, देते जाओ, तो भी बकाया!

परिवार बढा—आमदनी घटी। कर्ज। फिर सूद—और दरसूद। कितना दोगे? और जिनसे अन्न लेकर खेती की, उनका ड्योढा तो सबसे पहले चुकाना होगा।

इस अम्बार की एक-एक बाली का हिसाब लगा हुआ है, इस रास के एक-एक कण का जमा-खर्च बँधा हुआ है।

साल भर दिन-रात एक की। माघ का जाडा घुटना मे सिर छुपाकर काटा। जेठ की दुपहरिया कुदाल की छाया मे गँवाई। भादो की रिमझिम कीचड मे खडा-खडा, हँस-हँस, गुजार दी।

किन्तु जब फल खाने का वक्त हुआ, ये गिद्ध!

ये गिद्ध?—हा, ये गिद्ध नही तो क्या है? ये गिद्ध है—मास-खोर है। गिद्ध तो मुर्दार मास खाता है। ये गिद्ध के भी चचा है, जिन्दा मास खाते है।

उफ, मेरा बच्चा—कितनी तपस्या के बाद मिला बच्चा! दिन-दिन सूखता जा रहा है। वह हँसता-खेलता बच्चा, क्या-से-क्या हो

गया ! दिन-रात बुखार, खाँसी। पहले कफ़ थूकता था, अब खून उगलता है।

और, उसकी वह बहिन—गरभू की इकलौती बेटी ! बेचारी की जवानी अकारथ बीती जाती है। पैसे नहीं कि उसका गौना करा दूँ। कैसी पीली पड़ती जा रही है।

मेरी······कहाँ गई उसकी चूनर ? बेचारी की लाज तक ठीक से नहीं ढँक पाती।

आज क्या यह मुनासिब नहीं था कि अपनी मेहनत की इस कमाई से अपनी सुख-दुख की साथिन की लाज ढँकता, अपनी बेटी की जवानी को बर्बाद होने से बचाता और—और अपने प्यारे बच्चे····

वैद्यजी कहते थे—वह अब भी बच सकता है।

किन्तु ये बचने देंगे ? बिना उसको खाये इनको चैन होगा ?

क्या बाबूसाहब को पैसे की कमी है ? क्या साहूजी का तोड़ा ज़रा भी खाली है ? फिर लगान-लगान, सूद-सूद की यह कैसी रट ?

नहीं, ये गिद्ध के चचा हैं—बिना ज़िन्दा मांस खाये...

गरभू काँपने लगा, गिर पड़ा।

पहले बड़बड़ाहट—फिर नाक की आवाज़—तब सन्नाटा।

और उधर—

निविड़ अन्धकार और घने कुहासे के पर्दे को फाड़कर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था !
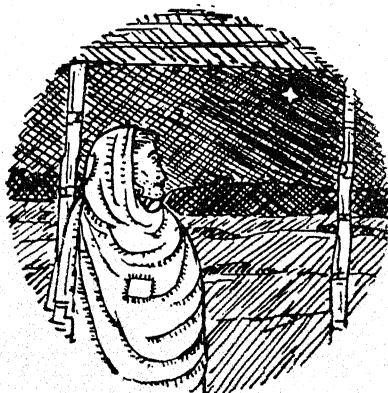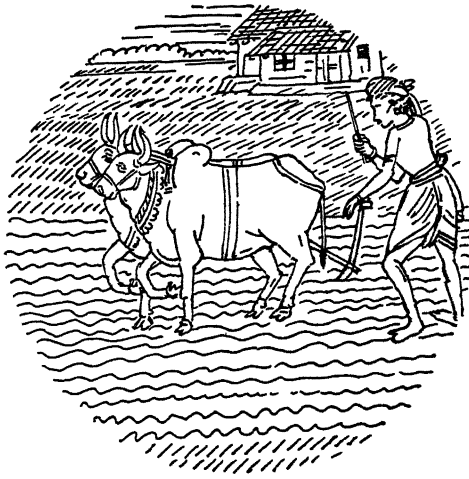
हलवाहा

ऑव-ऑव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-सगी, चलता चल !

न जाने, किस कुक्षण मे मेरा-तेरा सग हुआ कि तूने मुझे आत्म-सात्-सा कर लिया है।

हा, मैं मनुष्य होकर भी आज बैल हो रहा हूँ।

स्वय घास-पात पर गुजर कर दूसरो के लिए पृथ्वी का कलेजा चीरता ओर उसके विविध रत्नो से उनका भण्डार भरता।

छडी-चाबुक खाते-खाते इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब सीग-पूछ हिलाना भी छोड दिया ह।—पूरा बछिये का ताऊ बन गया हूँ।

ऑव-ऑव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-सगी ! चलता चल !

× × ×

जीवन-सगी !

हा, तू ही तो मेरे जीवन का सदा का साथी है।

भोर हुई, आकाश मे लाली छाई, बाग मे फूल चिटखे।

किन्तु मेरे भाग्याकाश को तो सदा अँधियाला रहना ही बदा है—मेरे बाग मे बसन्त कहाँ ?

मै उठा, मुँह-अँधारे, अभ्यास के सहारे, अँधेरे मे ही जल्दी-जल्दी कुट्टी काटी, उसमे भूसा रखा और थोडी खल्ली के साथ तेरे निकट उमे रख दिया।

किरन छिटकी। मेरे कन्धे पर हल, तेरे कन्धे पर जूआ।

खेत पहुँचे। मेरे हाथ मे 'परिहथ', तेरे कन्धे पर 'पालो' का बोझ।

तू आगे-आगे, मै पीछे-पीछे।

ऑव-ऑव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-सगी !

× × ×

मेरे शरीर से पसीना टपक रहा है—तेरे मुँह से सुफेद झाग चू रहा है। उफ ! यह धूप है या अगिन-बान ?

वह ! वह कौन आ रही है ?

वही तो है।

मडुए की एक रोटी, टिकोरे की थोडी चटनी, एक पूरा सूखा मिर्चा, थोडा-सा नमक, बस !

एक टुकडा तू भी खा ले, ओ मेरा जीवन-सगी ! अपने को तो सदा अधपेटा रहना ही है।

तिपहरिया—दोनो थके-माँदे, किन्तु मुझे तो तेरी खबर लेनी ही है।

आह ! यदि मेरा हलवाहा भी मेरी खबर इसी तरह लेता।

वह तो दिन भर मुझे जोतता है और शाम को यह खबर भी नही लेता कि कभी मुझे भरपेट खाना भी मिला।

मैं तेरी चिन्ता करता हूँ—यह बेचारा अधपेटा रहेगा, तो फिर कल हल कैसे खीचेगा ? किसी उपाय से तेरा पेट भर ही देता हूँ।

किन्तु वह ?

वह दिन भर मुझे जोते रहता—बारह मास जोते रहता है, किन्तु एक बार भी ऐसा नही सोचता कि आखिर इस मनुष्य-रूपी बैल के भी पेट हे या नही।

उलटे, जब कभी सयोग से मेरे निकट 'हरी घास' देख पाता हे, झपटकर स्वय हडप जाता है।

खेत मेरा, खलिहान उसका, भूसा मेरा, अन्न उसका।

उफ–ओह !

× × ×

चल ओ मेरा जीवन-सगी, जरा तेजी से चल !

सुना, द्वापर मे भी एक हलधर था। हा, हलधर ही तो–मेरा सगा-सम्बन्धी !

एक बार वह बिगडा।

अपने हल की नोक, उसने, जमीन मे कुछ गहरे धँसा दी, फिर, समूची पृथ्वी को, उस हल के बल खीचकर, समुद्र मे डुबोने को वह उद्यत हुआ।

हॉ, वह हलधर था ओर अपने हल की नोक मे समूची पृथ्वी को खीचकर समुद्र मे डुबोने चला।

कहा जाता हे, सब व्याकुल हो उठे। उसके पैरो पर गिरे। हलधर ही तो था—पसीज पडा बेचारा। पृथ्वी बच गई—बच गई उस-पर की सारी सृष्टि !

किन्तु, मै नही पसीजूगा, ओ मेरे जीवन-सगी !

ओ मेरे जीवन-सगी ! जरा तेजी से चल !

आज इस समूची पृथ्वी को, अपने हल की नोक से खीचकर, मै समुद्र मे डुबो दूँगा।

वह पृथ्वी रहकर क्या होगी, जहाँ मनुष्य बैल बन जाता हे ? जहा उम बैल को दिन-गत खटाया जाता है, किन्तु चाग भी नही दिया जाता ?

जहा वह भूखो मरता हे जो पैदा करता हे। जहाँ वह मौज उडाता हे, जो अजगर–सा बैठा रहता है।

जीवन-सगी ! तेजी से चल। इस पृथ्वी को समुद्र मे डुबोऊँगा, चलता चल, तेजी से चल ! आव-ऑव !

× × ×

आह रे, हलवाहे का हृदय !

यदि सचमुच एक बार वह कठोर हो पाता।

जीवन-सगी, यदि सचमुच म कठोर हो पाता !

पसीने से पृथ्वी को मुलायम ओर जरखेज बनाने के बदले एक बार अपने खून की खाद से इसे सीचता और उबर बना पाता।

ऑसू तो बहुत बरसाये—एक बार चिनगारियॉ चमका पाता।

जीवन-सगी, तेरे ये दो सीग मेरे मस्तक पर उग आते।

तेरी तरह पूछ तो बहुत हिलाई। अब जरा सीग फटकारने की अकल भी मुझे दे—ओ मेरे जीवन-सगी !

ऑव-ऑव, चलता चल, चलता चल

यह और वह

हजारीबाग रोड स्टेशन ! चार बाबू-कैदी वेटिग रूम से निकल-कर प्लैटफाम पर हवाखोरी कर रहे है।

दिनभर की कडी धूप के बाद यह शाम कैसी अच्छी मालूम हो रही है ! चारो ओर धूसर पहाडियॉ—दूर पर एक पहाडी को सुशो-भित करता पारसनाथ का वह मदिर ! पश्चिम मे सूय अपना बचा खुचा सोना बॉटकर, हँसता हुआ, विश्रामागार को जा रहा है। पूरब मे चतुदशी का चॉद अपना चॉदी का थैला लिये, मानो दान के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे है—भला इस गोधूलि बेला मे भी कोई पुण्य कम किया जाता है ?

रह-रहकर हवा का एक शीतल झोका दिन भर की गर्मी को भुलाने की चेष्टा करता हुआ सन्-सन् करके निकल जाता है।

कि इतने मे ही एक बालिस-ट्रेन प्लैटफाम आ लगती है।

खुले डब्बा की एक लम्बी कतार। डब्बो मे गिट्टियाँ भरी। गिट्टियो पर कुछ आदमी बैठे, अपने हथोडे चलाये जा रहे ह। कुछ लोहे के चूल्हे मे कोयला रख उसे धधकाने की चेप्टा मे हैं–धुआँ-धुआ हो रहा है। कुछ गिट्टियो पर पडे, पत्थर का तकिया किये, सोये हुए हैं, उनकी नाक की 'सर-सो आवाज साफ सुनाई पडती हे। उनके सिरहाने अध-सूखे पत्तोवाली डाल हिकमत से खडी' की हुई हे। मालूम होता हे, कुछ पहल धूप से बचाव के लिए उन्होने यह तरकीब की थी। कुछ खडे होकर स्टेशन की ओर देख रहे हैं। उनमे से कुछ के ध्यान को तो इन बाबू कैदियो की ओर जाना ही था।

यह बबुआना वेश और पुलिस की निगरानी मे!

एक अपने डब्बे से कूदकर बाबू कैदियो के नजदीक आता हे–शायद इस अजीबो-गरीब जानवर की अच्छी तरह पहचान रखने के लिए!

'तुम्हे कितनी मजदूरी मिलती हे, भाई ?'

'भाई'—वह पूछनेवाले बाबू-कैदी को सिर से पाँव तक देखता है! 'भाई'—इस अपरिचित शब्दो से जैसे वह घबडा जाता हे। उसे जिन शब्दो से आज तक बाबुओ ने पुकारा, उनमे यह शब्द तो नही था!

'मै तुम्हीसे पूछता हूँ दोस्त। बालते क्यो नही ?'

पहले भाई, अब दोस्त। हिचकिचाते हुए उसने कहा—"चार आने।'

'और, काम कब से कब तक करते हो ?'

इस फिजूल सवाल का क्या अथ ?–उसकी घबराहट बढती मालूम होती है।

'यही—भोर से शाम तक।'

दिनभर मे छुट्टी नही मिलती ?'

'बीच मे खाने के लिए एक घटे की।'

'अच्छा, तुम्हारे घर मे कितने आदमी है ?'

'पाँच—मा, मै, मेरी स्त्री, दो बच्चे।'

'दो बच्चे ?'

'जी हाँ।'

'बाप मर चुके ?'

उसने सिर हिलाकर 'हाँ' भरी।

'चार आने में पाच प्राणियो की गुजर कैसे चलती है ?'

अब तो उसकी घबराहट अन्तिम छोर पर पहुँच चुकी थी, लेकिन इसी समय इजिन ने सिटी दी—वह दौडता हुआ अपने डब्बे मे चढ गया। ट्रेन चल दी। उस धुँधले प्रकाश मे बाबू-कदी ने देखा, वह दोनो हाथ मस्तक से सटाये उन्हे अभिवादन कर रहा है।

× × ×

'जरा स्नान क्यो न कर लिया जाय'—एक बाबू-कैदी ने अपने दूसरे साथी से, रेल के स्टेशन पर बडी तेजी से चलते हुए पानी के के नल को देखकर, कहा।

झर-झर-झर—नल का पानी उसके सिर पर गिर रहा है, लेकिन उसका दिमाग तो अभी तक ठढा नही होता—साफ नही होता। खड-खड-खड-खड करती हुई वह बालिस-टेन उसके दिमाग मे कुहराम मचाये हुइ है। बालिस-ट्रेन पर चलता हुआ वह हथौडा मानो उसके मस्तक पर तडातड पड रहा हो और जलता हुआ वह चूल्हा उसके अन्तर मे भट्ठी फूँक रहा हो। गिट्टी पर पत्थर का तकिया लगाये सोये हुए उस मजदूर की नाक से निकली आवाज सायँ-सायँ कर उसमे भाथी चला रही है ओर सबसे बढकर उस नौजवान की आकृति, उसकी चार आने मजदूरी, फिर पाँच प्राणियो की गुजर और अन्त मे उसका वह प्रेम-पूण अभिवादन! एक साथ ही—धू-धू हू-हू! चिता भी जल रही है, तूफान भी चल रहा है। भला ऐसे दिमाग को पानी के ये फुहारे क्या फायदा पहुँचा सकते थे ?

इसी समय प्लैटफाम के नीचे, शटिग की लाइन पर, रेल का एक डब्बा जगमगा उठा।

उस जगमग मे उसके भीतर के दृश्य साफ नजर आ रहे है।

एक सज्जन—नही, वह 'साहब' कहलाना ज्यादा पसद करेगे—तो, एक साहब कुर्सी पर बैठे है। तुरत-तुरत गुस्ल-खाने से निकले

है। बिजली की रोशनी मे उनके भीगे केश पर की बूद कैसी चमक रही ह, जैसे हरी घास पर ओस के कण, जिन्हे सूय-किरणो ने रग-बिरगा बना दिया हो। बडे आईने के सामने सोफियाने ब्रश से, अपने बाल को सम्हाल रहे ह। किंतु बिजली-पखे की हवा से उड-उड कर वे मुलायम बाल बार-बार उनके चेहरे पर लटक आते है। मालूम होता है, बालो का कौतुक उन्हे भी पसद है—बार-बार ब्रश फेरते और बीच-बीच मे ठहर-ठहरकर उनके बिखरने की प्रतीक्षा करते है। फिर, कुछ उजली-उजली, मक्खन-सी चीज निकालकर चेहरे पर मलते है। कमीज पर कालर और नेक्टाई बाँधते ह—ऊपर से काट डालते ह। तब एक बार गव से आईने मे देखते है। उनकी असल और नकल दोनो सूरते—यहाँ, इस नल पर से, साफ-साफ दिखाई पड रही ह।

इतने ही मे खानसामा पहुँचता है। हाथो मे ट्रे है और चेहरे पर एक दहशत। टेबिल पर ट्रे रख देता है। ट्रे के ऊपर से सुफेद कपडे को हटा कर एक बार साहब सरसरी नजर से सब चीजो को देखते है—फिर, भौ कुछ टेढी करके खानसामे की ओर ताकते ह। पचास गज के फासले से भी उस बिजली की रोशनी मे, खानसामे पर जो आतक छाया, उसका पता साफ-साफ चल रहा है। एक घुडकी—उसका पीछा हटना। फिर टे की कुछ चीजो का उठाना—दृश्यपथ से गायब होना। कुछ देर के बाद लौटना, कुछ लिये-दिये।

काँटे-छुरे चमक रहे है। बीच-बीच मे छोटी-छोटी प्याली में कुछ रगीन तरल पदार्थ कठ से नीचे उतारा जा रहा है।

नहाने वाला बाबू उद्विग्न हो उठता है, जैसे आँख मूद कर वहाँ से चल देता है। वेटिग रूम मे आता है।

'यह कौन साहब है ?'

'उस सैलून मे ?'

'हाँ।'

'रेलवे के कन्ट्रैक्टर ह—अबरख का भी आपका बडा कारबार है।' इतने मे—'लारी आ गई, चलिए' की पुकार।

लारी की अगली सीट पर चारो बाबू-कैदी बैठे ह, दारोगाजी ड्राइवर की बगल मे—चारो सिपाही पिछली बेंच पर।

लाल तारा

आधी रात का सन्नाटा—उस पहाडी प्रदेश मे वह लारी चली जा रही है।

सडक के दोनो ओर हरे-हरे दरख्त—दूर क्षितिज की गोद मे सिर रखकर सोई-सी पहाडियाँ—चाँदनी, समूची दुनिया मानो तरल चाँदी में स्नान कर रही हो ! ठढी पहाडी हवा मन-प्राण को जुडा रही ह।

लेकिन उस समय भी एक का दिमाग इस तरह व्याकुल है, जैसे चिलचिलाती धूप मे, जल मे बाहर रख दी गई, मछली ! वहाँ द्वद्व मचा हुआ है–

यह है कन्ट्रैक्टर—रेलवे कन्ट्रैक्टर—रेलवे की लाइने बनाने, सुधारने का काम—पुल, स्टेशन भी बनवाते होगे।

वह बालिस ट्रेन, वे कुली—इन्हीकी मातहत तो वे बेचारे काम करते होगे।

यह कन्ट्रैक्टर साहब ! यह कौन-सा काम करते है ? देखभाल ? —झठी बात—देखभाल तो इनके दूसरे नौकर करते होगे, जिहे हम ओवरसियर कहे, इजीनियर कहे।

तब ?

तब इनके रुपये है, उन रुपयो से इन मजदूरो को—नही, तो उनकी मजदूरी को ही कह लीजिए—खरीदते ह—उनसे मनमाने काम लेते है। और, उनके काम पर मनमाने दाम वसूल करते है।

यो मेहनत किसीकी, नफा किसीका !

ओर, अबरख का कारबार होता है ?—क्या कारबार ? ऐसा ही या कोई खान होगी हज़रत की।—कुछ कुली, कुछ कारीगर मरते होगे आर उनका यह श्राद्ध रचा रहे ह ?

लेकिन, एक बात तो सोचनी होगी ही—आखिर रुपये के लिए कुछ तो मिलना ही चाहिए।

लेकिन यह रुपया आया कैसे ? इसी तरह कभी-न-कभी किसीको मूडकर आया होगा। नफे के रूप मे नही सही, किराये के रूप मे, सूद के रूप मे, माल्गुजारी के रूप मे।

तमाशा है, जो मेहनत करे, वह उस बालिस-ट्रेन मे

ओर जो जो

दारोगाजी अचानक बोल उठते है, 'वाह हजारीबाग की आब-हवा भी इस गर्मी मे क्या चीज है, न्यामत ही समझिए'--उन्होने पीछे की ओर देखा ।

वह मानो, इन बाबू-कैदियो पर सहानुभूति ओर धैय की एक साथ वर्षा करना चाहते थे। इन भलेमानसो पर उन्हे थोडा रहम तो जरूर आता होगा, जो इतना पढ-लिखकर इस तरह बार-बार जेलो मे जाने के कारनामे करते रहते है। पागलो पर भी तो रहम होता ही हे।

किन्तु, अफसोस—उनके इस तरह सहानुभूति-प्रदशन, इस धैय-दान पर दाद कोन दे ? बाबू कैदियो मे से तीन की आखे बन्द थी—न जाने, वे किस स्वप्नलोक मे विचर रहे थे ?

और, चौथा जगा था जरूर ! लेकिन उसके कान, उसकी आँखे, उसकी सभी इन्द्रियाँ, जाने, कहाँ कहाँ थी ?

अपने विचार-सूत्र को जारी रखते हुए वह बडबडा उठा—

'और इतने पर भी लोग कहते है, तुम क्या समाजवाद, समाजवाद चिल्ला रहे हो !'

हँसिया और हथौड़ा

सर्, सर्, झिन्-झिन्—पके धान की सुनहली बालियो के सचय मे लगी है, हँसिया !

खट्-खट्, धडाम-धडाम—तपे हुए लाल लोहे पर बरस रहा है, हथौडा !

चमचमाती देह, पतली कमर,—हँसिया नाचनी-सी इठला रही है !

मुस्तड बदन, घन-गर्जन—हथोडा तो औद्धत्य का अवतार ठहरा।

एक दिन दोनो मे नोक-झोक हो रही थी—

'मै सचय की रानी, विश्व की अन्नदात्री, सदा हँसती, हमेशा इठलाती—देखो मेरी इन बतीसियो को।'—वह ज़ोरो से हँस रही थी !

'मै सभी उद्योगो का जनक, दुनिया को सभ्यता मन दी। नही मानोगी ? तो ।'—वह आँखे गुरेड रहा था !

"मेरी दुबली देह पर मत जाओ—पतलापन काट करने की ताकत का सूचक भी होता है, और दुनिया जानती है, बड़ा कोन—धार या प्रहार ?"

'मै अबला से मुह नही लगाता !'—क्या हथौडा के पास कोई जवाब नही था ?

× × ×

हँसिया-हथौडा ! शक्ति और कर्तृत्व के ये दो प्रतीक है !

कृषि और उद्योग के !

प्रकृति और पुरुष के !

ससार-रथ इन्ही दो पहियो पर बढा जा रहा है। हाँ, दोनो पहियो पर—

एक पहिया भी गिर जाय, तो यह रथ एक पग बढने का नही ! हँसिया-हथोडा ससार-रथ के ये दो पहिये है।

× × ×

हँसिया रो रही थी !

हथौडा उदास बैठा था !

'क्यो, बहना ?'

"यह कबतक बर्दाश्त किया जा सकेगा ?"

'मै भी तो यही जानना चाहती हूँ।'

'उफ ! कहाँ है तुम्हारी वह चमक—वह हँसी ?'

'तुम्हारी मासल भुजाएँ भी क्या भूलने की चीज है ? और, मस्तानापन !'

'उठो बहन !'

'बढो भाई !'

दोनो बढ रहे थे—

‘दुनिया को दिखा दूगी, मै सचय की ही देवी नही, सहार की धात्री भी हूँ।’

‘निर्माण का काय हममे खूब लिया गया, दुनिया अब जरा हमारा प्रहार भी देखे !’

‘बढे चलो, भैया !’

‘हाथ बँटाओ बहिनी !
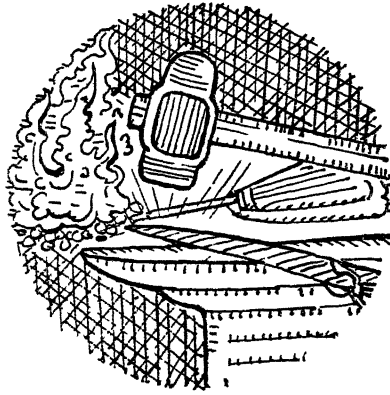
कुदाल

आज उसने कुदाल उठाई है।

पैर के अँगूठे जमीन को चापे हुए है। दबे उच्छ्वासो से छाती फूल उठी है। हाथ की नसो मे तनाव है। तमतमाये चेहरे पर कुदाल की चमचमाती धार की परिछाई कौंध रही है।

यह तेज धूप ! ये लू की लपटे ! गर्मी की दुपहरिया का यह सन्नाटे का आलम। दिशाये थर्राहट मे। निरानन्द-निस्पन्द नील आकाश मे कभी-कभी चील की चीख।

इस फिजा मे उसने आज फिर अपनी कुदाल उठाई है। पृथ्वी का वज्र-हृदय उसके प्रहार के पहले ही सिहर कर टूक-टूक होना चाहता है।

खेत की झुलसी तृण-राजि थरथर काप रही है। किन्तु, क्या इसके प्रहार का लक्ष्य ये तुच्छ तृण-पुज है ?

× × ×

आज वह रत्नगर्भा की छाती छेदकर किस रत्न को अतल से निकालना चाहता है।

समुद्र को मथा देवो और दानवो ने। तरल समुद्र, मन्दर के समान मथानी, शेषनाग-से रज्जु। आज यह मनु का बेटा ठोस मिट्टी को अकेले मथने की तैयारी मे है! मथने ?—नही भुस्स उडाने!

देवो-दानवो ने जल-तल के सभी रत्न प्राप्त कर लिये—उच्चैःश्रवा, ऐरावत, लक्ष्मी, अमृत!

थल-तल के अछूते रत्न आज पहली बार सृष्टि का प्रकाश देखेगे।

उसके पसीने की बूँदो की तरह ये रत्न जगमगा उठेगे—चकमक, झलमल।

आज उसने इसलिए इस फिजा मे कुदाल उठाई है!

× × ×

क्या कहा ?—कही दूसरा गरल निकला तो ?

छि—गरल क्या बिगाडेगा इसका? देखते नही, इसके शरीर का काला रग। कोई समुद्र का गरल पीकर नीलकठ हुआ—यह पृथ्वी का सारा ताप-दाप पीकर नखशिख नीलवण है।

विश्वास रखो, गरल के लिए भी यह किसी शकर की शरण मे नही गिडगिडायगा!

यह डरपोक देवता नही, मनु का मर्दाना बेटा है।

डुगडुगी

(एकाकी नाटक)

पात्र

१-बूढा सुक्कन भगत

२-उसकी बेटी सोना रानी

३-उसकी पत्नी

४-जमीन्दार का तहसीलदार

५-तहसीलदार का नौकर, जेठरैयत आदि

पहला दृश्य

(फूस के एक मकान का बाहरी बरामदा। टूटी खाट पर नीचे पैर लटकाये, एक बूढा हुक्का पी रहा है। चेहरे पर झुर्रियो का अड्डा,

जिसपर गद की एक परत पसीने से कीचड बनी। खाली बदन, कमर मे एक फटी धोती। ताबडतोड हुक्के का कश खीचता और बीच-बीच मे खॉस उठता है। जमीन की ओर निगाह, ध्यानमग्न !

आँगन से एक लडकी निकलती है। हाथ मे पानीभरा लोटा। चौदह-पन्द्रह बरस की सॉवली सुन्दरी, एक फटी चूनर, फटी चूनर के भीतर मसकी चोली जिसके अन्दर से उसकी जवानी की किरणे बर-बस झाक रही। वह पानी लेकर बूढे के पैरो से जरा हटा कर रख देती और एक ओर खडी हो जाती हे। बूढे ने, मानो, न लोटे को देखा, न लडकी को। वह हुक्का पिये जा रहा है। कुछ देर बाद—)

लडकी—बाबूजी ! (बूढा ध्यान नही देता—कुछ देर ठहरकर फिर कहती है।) बाबूजी ! (फिर भी बूढे का ध्यान नही टूटता—अब जरा आवाज तीखी करके) बाबूजी, मै क्या कह रही !

बूढा-(नजर उठा कर एक बार लडकी को पैर से सिर तक देखता है। फिर मुस्कुराने की चेष्टा करता हुआ) क्या बेटी–!

लडकी–मै कह रही हूँ, पैर धोइए, चलिए, खाइए।

बूढा–पैर धो लेता हूँ––क्यो न धोलूँ ? मेरी सोना रानी कहती है और न धोऊँ ? लेकिन, बेटी, भूख तो नही हे !

लडकी—भूख नही है ? तिपहरिया आई और भूख नही है ? बिना अन्न दाना के दिनभर कुदाल चलाते रहे और भूख नही है ?

बूढा—कुदाल चलाता रहा ! ठीक तो, कुदाल चलाता रहा, किन्तु न चलाने से कैसे बनेगा, बेटी ! मेरी ऐसी ही अच्छी तकदीर रहती, तो तू बेटा न होती ?

(लडकी उदास हो जाती है, उसकी नजर अपने पैर के अँगूठे पर चली जाती हे। बूढा भी अन्यमनस्क हो फिर हुक्का का कश खीचने और खासने लगता है। इसी समय एक अधवयस स्त्री भीतर से आती ह। ननकिलाट की मैली साडी, फटी। चोली नही–साडी से ही देह को लपेटे-सी। बाल अस्त-व्यस्त। आते ही कहती है)

स्त्री—यह क्या तुम्हारी आदत है ? जब तब मेरी सोना को उदास कर देते हो—तू बेटा न हुई, तू बेटा न हुई। क्या बेटा होना उसके हाथ की बात थी ?

(बूढा जैसे अपनी गलती महसूस करके उठता है, सोना के निकट पहुँचता है। उसकी ठुड्डी को ऊपर उठाता, गद्-गद् कठ से बोलता है)

बूढा—तू सचमुच उदास हो गई, मेरी रानी बेटी ! माफ करना सोना, बूढा हुआ, जबान से अट-सट निकल आती है। मेरे अँधेरे जीवन की तू ही एक रोशनी है ! यदि तू ही नाराज हो गई, तो मैं कहाँ का रहूँगा, मेरी बिटिया !

(लड़की कुछ नही बोलती—धीरे से मुँड, आँचल से आँखे पोछनी, घर के अन्दर चली जाती है)

स्त्री—आखिर तुमने मेरी सोना को रुलाकर ही छोडा !

बूढा—(दयनीय आकृति कर गिडगिडाते हुए कहता है) हा, सोना रानी रो पडी। मने ही रुलाया ! लेकिन मै कहूँ, तुम्हे विश्वास होगा—मै तो दिनरात रोता रहता हू ?

स्त्री—विश्वास की क्या बात, म अधी हूँ क्या ? लेकिन, देखो, दिन-रात के इस रोने से क्या फायदा ? अब जो विधना ने दिया, उसे तो हँसी-खुशी भुगतना ही ह !

बूढा—रोने से क्या फायदा ? मै भी देख रहा हूँ, रोने से क्या फायदा होता है ? और सब गया था, आँखो की नूर बची थी, वह भी जा रही है। अब अच्छी तरह दिखाई भी नही पडता। लेकिन करूँ क्या ? बिना रोये रहा भी तो नही जाता, सोना की अम्मा !

स्त्री—करना क्या है ? धीरज धरना है।

बूढा—धीरज ? धीरज धरना है ? धीरज धरूँ ? देखो, इस घर को—तीन साल से छाजन मे एक तिनका नही रखा। पहले साल पानी से बचाव नही हुआ, दूसरे साल जाडे से और अब धूप से भी बचना मुश्किल ! दीवारे ढह रही, बाँस तक सड गये। देखो, इस बाहरी आँगन को। अब तक खूटो के ये निशान मौजूद है। यहाँ जोडा बैल बँधते थे, उस जगह वह कामधेनु बँधती थी, उस नाद के निकट वह भैंस—नब्बे रुपये मे खरीदा था उसे, याद है न ? (एक लम्बी उसाँस लेकर) कहती हो, धीरज रखो। और-तो-और, कहाँ से धीरज लाकर तुम्हे इस रूप मे देख सकू—तुम्हे और अपनी सोना-रानी को। बुढापे मे कितने देव-पित्तर पूजने के बाद एक बेटी मिली। उसके

शरीर पर एक गहना दे सका ? कभी एक अच्छी साडी पिन्हाई ? और, अब तो उसे किसी योग्य हाथो सौपने का बन्दोबस्त चाहिए ? किन्तु, बन्दोबस्त का भी कोई सरोसजाम है ? धीरज धरूँ—कहाँ से धीरज लाऊँ ?

(बूढा शोक-उत्तेजना मे खाट पर ढह पडता है और कमर से धोती का फेटा खोल उससे मुँह ढाँक लेता है। स्त्री कुछ देर चुप-चाप खडी रहती है। फिर, खाट के निकट जा बैठती और धोती के फेंटे को उसके मुँह से हटाती हुई कहती है—)

स्त्री—तुम फिर रोने लगे ? बताओ ऐसा करोगे, तो हमारी क्या गत होगी ? एक तो बुढापे का शरीर—फिर, यह रोना-धोना। कितने दिन चलेगा यह ? और, तुम न रहे, तो हम कहाँ ?—सोना को ही कौन पूछेगा ?

(इसी समय जमीन्दार का एक सिपाही दरवाजे पर आता और अपनी वजनी लाठी ठाय से पटकता है। आवाज सुनकर स्त्री उस ओर चौक कर देखती, अस्तव्यस्त हो उठती और ठिठक कर दरवाजे से लग कर खडी हो जाती है। बूढा उठकर बैठता है। सिपाही के पैर मे उठी हुई नोक का भयकर चमरोधा जूता है। घुटने से जरा ही नीचे लटकती मोटी धोती। बादामी रग का कुर्त्ता और सिर पर लाल पगडी। लाठी अपनी कद से एक फुट ऊँची, पोर-पोर लोहे से बँधी—नीचे ऊपर लोहे के गुल्म।)

सिपाही—सुक्कन भगत, कचहरी मे बुलाहट है।

(बूढा उठता है—अपनी कमर से कुछ निकालता हुआ उसकी ओर बढता है। झुककर सलाम करता है और धीरे से उसकी मुट्ठी मे थम्हाकर हाथ जोड कर बोलता है)

बूढा—सिपाही जी, बस, दस दिन की और मुहलत दो, बडी मिहर-बानी होगी, धरम होगा।

(सिपाही हाथ झाड देता है—एक छोटी-सी चमकीली चीज अलग गिर पडती है।)

सिपाही—भगत, यह न होगा। बहुत मिहरबानी कर चुका। अब मेरे बूते के बाहर की बात है। तुम्हारी अठन्नी पर म अपनी नौकरी नही खोऊँगा। खुद तहसीलदार साहब आये है, तहसीलदार साहब—

बूढा–तसीलदार साहेब, आयँ, तसीलदार !

(सिपाही तमककर चल देता है—गुर्राती आँखो से बूढे को देखता हुआ, बूढा कुछ देर तक निस्तब्ध खडा रहता है, फिर खाट पर ढह पडता है।) ✓

दूसरा दृश्य

(जमीन्दार की कचहरी—एक अच्छा खासा बँगला। लोगो की भीड। एक कुर्सी पर नौजवान तहसीलदार साहब साहबी ठाट मे बैठे, सिगरेट का धुआँ उडा रहे। साहबी ठाट—जो देहात मे किसी अद्धशिक्षित के पाले पडकर अजीब रूप धारण कर लेता है। हेट है, कालर है, टाई है कोट है, पैंट है, मोजे हैं, बूट है—किन्तु सब भोडे ! हाँ, देहातियो पर रोब जमाने के लिए काफी। सामने के टेबिल पर इधर-उधर बिखरे रुपये–जो सलामी मे चढाये गये है। कुछ हटकर एक चौकी पर पटवारी बैठा—बहियो का एक दफ्तर-सा फैलाये। बेचारा कुछ लिखता जा रहा है—बूढा है वह, आँखो पर चश्मा, जो एक तरफ का फ्रेम टूट जाने से तागे के द्वारा कान से बँधा। गोडाइत, जेठरैयत, सिपाही तथा किसानो के समूह इधर-उधर बैठे-खडे। बूढा सुक्कन भगत तहसीलदार साहब के सामने हाथ जोडकर खडा–)

बूढा–दोहाई मा-बाप की, मै बहाना नही करता

तहसीलदार–बहाना नही, तो यह क्या है ? एकाध बरस की बात हो, तो टाली भी जाय–मुशीजी बतला रहे हैं, आज चार वर्षो से तुम मालगुजारी नही अदा कर रहे हो ?

बूढा–हुजूर, हर साल देता हूँ, किन्तु पूरी अदाई नही हो पाती है। कोशिश करके भी नही हो पाती है !

तहसीलदार—क्यो नही हो पाती है ? सबकी हो पाती है, तुम्हारी क्यो नही होती !

बूढा—सबकी हालत कैसे बताऊँ, हुजूर ! अपनी जानता हूँ। इधर चार-पाँच वर्षो से खेत ने मानो फसल देने से इन्कार कर दिया है। खेत बेचारा क्या करे ? कभी 'मघा' की बाढ से तबाही होती, तो कभी 'हथिया' ही नही बरसता। भदई-रब्बी भी खुलकर नही आती। कुल मिलाकर इतनी उपज भी नही होती कि खेती का खर्च ठीक से

निक्ले। घर के ख्च ओर दूसरे खर्चो की तो बात अल्ग । कज्र से डूबा हूँ, तकाजो के मारे नाकोदम है। इतने यहा पच ह, पटवारी जी से ही पूछिए, मुक्कन ने कभी किसीका तकाजा सहा ? लेकिन, तकदीर जो न कराये, सरकार !

तहमीलदार—मै तुम्हारी तकदीर की कहानी सुनने नही आया, मुक्कन ! उपज नही होती तो कज ले, बैल-गोरू बेच, गहने बेच, खेत बेच—जो भी बेच सको, बेचो ! किन्तु रुपये दो। नही तो, नालिश होगी, नीलाम होगा। तब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने !

बूटा—हुजर का हुकुम सिर-आँखो पर—मै कज लेने को तैयार हूँ कोई दे, तो। ओर गोरू और गहन ? उन्ह कब न बेच चुका सरकार ! रह गया हे सिफ बाप-दादे का चार बीघा खेत। सो, सोचता हू, मै कान होता हूँ उसका बेचनेवाला !

(इसी समय एक जेठरैयत तहमीलदार के निकट पहुँचता है और उमके कान मे कुछ फुसफुसाता है। तहसीलदार प्रसन्न होकर कहता है—)

तहमील्दार—ठीक तो, बाप-दादे की चीज क्या बेचा, अपनी ही चीज जब हे, तब

बूढा (आश्चय मुद्रा से)—मेरे पास अब बेचने को क्या चीज बची हे ? जेठरैयतजी, सरकार को आपने क्या कहा ? बताइये न, वह क्या चीज है ?

(जेठरैयत खीसे निपोड देता है—तहमीलदार ठहाका मारकर हँसता है।)

तहमीलदार—भगत, तब न तुम्हे बाप-दादे की चीज पर इतनी ममता है। ठीक भी तो, सांप भी मरे, लाठी भी बची रहे।

बूढा—दुहाई सरकार, गरीब का भूल्भुलैये मे मत रखिए—आपका क्या मतलब हे ?

तहसीलदार—अच्छा भगत, जरा नजदीक आओ।

(बूढा कॉपता-कॉपता तहसीलदार के नजदीक जाता है। तहसीलदार मुस्कुराता, उसके कानो में फुसफुसाता हे, मुक्कन चौक उठता है।)

सोना—बाबूजी, यह आप क्या कह रहे हैं ?

बूढा—क्या झूठी मुँहपुराई कर रहा हूँ, बेटी ? जब मैं बीमार पड़ा, मैंने समझा, सब गया। लेकिन, तू तो बाप की सच्ची बेटी निकली। आखिर खेती सम्हाल ही ली। सच कहूँ—ऐसी फसल इधर कई वर्षों से नहीं देखी थी। (बढ़कर धान की कुछ बालियों को हाथ में लेता, झुककर उन्हें चूमता फिर कहता है—) खाट पर पड़ा-पड़ा ऊब गया था। आज सोचा, ज़रा देखू तो। सो, देखा क्या, निहाल हो गया। (फिर एक-एक बाली को बड़े गौर से, जैसे उसके एक एक दाने को देखता हुआ) सोना रानी देखती हो, इन बालियों में कैसे दाने भरे हैं। समूची बाली में एक भी खखरी नहीं। बेटी, बेशक यह तेरे हाथ की बरकत है ! ख्वाहिश होती है, इनकी आरियों पर घूमता ही रहूँ—बेटी, ज़रा मन भर घूमें तो।

(दोनों खेत की आरियों पर घूमते हैं—बूढा एक हाथ से लाठी टेकता और एक हाथ से सोना के कंधे का आसरा लिये चलता है। रह-रहकर वह खड़ा हो जाता और धान की बाली को पकड़ता, गौर से देखता और चूमता है। आरियों के एक मोड़ पर जाकर वह खड़ा हो जाता और चारों ओर नजर दौड़ाकर देखता है और मुस्कुराते चेहरे से कहता है—)

बूढा—बेटी, एक बात कहूँ, बुरा नहीं मानेगी ? बोल

सोना—यह क्या बोल रहे हैं आज, बाबूजी ! मैं बुरा मानूँ ? आपकी बात से ?

बूढा—ठीक-ठीक, तू बुरा क्यों मानेगी ? लेकिन तू लजायगी तो नहीं ? (सोना शर्माती-सी उसके चेहरे की ओर देखती है, बूढे की बतीसी चमक उठती है। वह कहता है—) मेरी लजीली बेटी ! लेकिन आज मैं बिना कहे नहीं रहूँगा। अच्छा जरा बैठ जा, पर दुख गये, तब कहूँगा। (दोनों बैठ जाते हैं। बूढा बेटी के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसे सहलाता हुआ) सोना, यह फसल तेरी है। मैं सोचता हूँ, यह तुझी में लगे। जिसकी चीज़, उसमें लगे और मुफ्त में मेरा मनोरथ पूरे।

सोना—(लजा जाती है) आज यह क्या खुराफात सूझ रही है आपको बाबूजी !

बूढा–(जोर से हँसकर) हा, खुराफात ही तो। लेकिन जिन्दगी मे खुराफात भी कर ही लेनी चाहिए ओर जल्दी ही। कौन, जाने-पका आम हूँ, कब टपक पडू ? (कुछ देर रुककर फिर कहता है—) हाँ, तो खुराफात होगी! एक अच्छा दूल्हा खोजूगा—खूब खूबसूरत दामाद। वह पालकी पर आयेगा—बरात आयगी, बाजे आयँगे—मेरे दरवाजे पर दिनरात बाजे झहरते होगे—पोपो-पोपो-पीपी-पीपी—डुगडुग, डुगडुग

(इसी समय कही से डुगडुगी की आवाज सुनाई देती है। बूढा चुप हो जाता है और उसकी बाते सुनकर जो शर्म के मारे गडी जा जा रही थी, उस सोना से पूछता है—)

बूढा—सोना, यह तो डुगडुगी की आवाज है न ? कहाँ से आ रही है। लगन के दिन तो नही—अगहन मे कही लगन होती है ? देख तो बेटी, (सोना खडी हो जाती है—बूढा भी लाठी के सहारे खडा हो जाता है, ध्यान-पूर्वक सुनकर)—तो यह आवाज डुगडुगी की ही तो है। कहा से आती है, किधर से आती है, रानी बिटिया ?

सोना—अपने उस खेत के नजदीक से—हा, वही से तो। बहुत लोग है। कुछ लडके, कुछ सयाने ?

बूढा–(आतुरता से) किसी को पहचानती हो ? क्या अनजान लोग हैं ?

सोना—लोग तो पहचान के मालूम होते हैं। वह शायद बुद्धू चमार है, वही मालूम पडता है। कुछ और लोग है। चार-पाँच मालूम होते है, अरे लाल पगडियाँ भी है!

बूढा—(आश्चर्य से) लाल पगडियाँ है ?

सोना—हा, लाल पगडिया है, कुछ लोगो के हाथो मे लाठियाँ भी है–लम्बी-लम्बी!

बूढा—ओहो, बुद्धू है, लाल पगडियाँ है, कुछ लाठियाँ है! तो क्या किसी का खेत नीलाम हुआ है ? दखलदिहानी कराने आये है! यह कौन हत्यारा है ? यह किसपर बज्र गिरा है ? भला इस भरी फसल मे दखलदिहानी कराई जाती है ? यह हत्यारापन नही तो और क्या है ? जिसकी तैयार फसल लुट जायगी, वह बेचारा कैसे रहेगा ? देख तो बेटी, वे किधर जा रहे है ?

सोना—कहा न, इधर ही तो आ रहे है। वह क्या, आ गये, नजदीक तो आ गये।

(बूढा आँखो पर हथेली की ओट किये उस ओर निर्निमेष देखता हे। वे सब-के-सब उसके खेत की उस तरफ की आरी पर आकर रुक जाते है। बुद्धू अपनी डुगडुगी बजाता है। आवाज होती है। बूढा घबराया-सा)

बूढ—बेटी, यह क्या हो रहा हे ? क्या मेरे खेत को नीलाम कराया गया है ? दखलदिहानी लेने आये है ? सोना, बोल—बोलती क्यो नही ?

सोना—बोलू क्या बाबूजी, ये तो सचमूच हमारे खेतपर बोली बोल रहे है।

बूढा—समझा, समझा ! यह उस तहसीलदार के बेटे की शैतानी है। उसे सोना ही चाहिए न ? न आँगन का सोना, तो खेत का ही सही।

सोना—यह क्या बोल रहे है आप बाबूजी ? सोना चाहिए ? क्या वे मुझे चाहते है ? बाबूजी

बूढा—(एकबारगी गम्भीर हो जाता हे) न जीते जी खेत दूगा, न सोना। अच्छा, वह तहसीलदार का जना भी है ? जरा अच्छी तरह देख तो।

सोना—हाँ, वही तो है बाबूजी, वह हमलोगो की ओर देख कर हँस रहा है !

(बूढे मे, न जाने कहा से, ताकत आ जाती है। वह सोना के कन्धे को छोड कर हिरन की तरह उस ओर दौडता हे। सोना एक क्षण स्तव्ध रहती हे—फिर बाबूजी, बाबूजी कहती उसके पीछे दौडती हे। बूढा जाकर अपनी लाठी तहसीलदार के सिर पर चला देता है। तहसीलदार पर लाठी लगते ही सिपाहियो की लाठियाँ उसपर बरसने लगती है। सोना चिल्लाती ह—बूढा गिरता है। सब भागते है। खून से लथपथ बूढे की लाश को उठाती सोना धाड मार कर रोती है)

सोना—बाबूजी, बाबूजी

(बूढा एक बार नजर खोलता है। सोना के चेहरे को घूरता है—फिर लपक कर धान की एक मुट्ठी बालियो को पकड कर चूमने की-सी चेष्टा करता और लुढ़क पडता है। फिर आँखे खोलता, बडबडाता है।)

बूढा– सोना चाहिए, खेत चाहिए! धन लेंगे या धरम लेंगे! दौलत दो या इज्जत दो। बदमाश, शैतान! (हँसता हुआ) अहा कैसी लाठी लगी—तुम्हारा एक चुल्लू खून—हमारा एक घडा खून! खून—खून! ओहो! (दर्द महसूस करता हुआ) पानी, बेटी पानी! (दुबलता मे खडा होता हुआ) वह आया बेटी, वह आया! लाठी लाठी—खून-खून! दौलत दो या इज्जत दो! लाठी बेटी, लाठी! (गिर पडता है)

सोना—(व्याकुल होकर) बाबूजी, बाबूजी!

बूढा–बेटी सोना, पानी! पानी! (सिर से निकलते खून की धारा को प्यास की अधिकता मे अँगुली से पोछकर चाटता है!) खून, उफ! (थूकता है) खून लो, शैतानो, खून लो! खून पीओ! (उठने की चेष्टा करता हुआ) तुम कसाई हो, राक्षस हो, जोक हो! राक्षस, जोक, कसाई! खून पीओ, खून पी (बूढा ढह पडता है, उसकी साँस बद होने लगती है)

शहीदों की चिताओं पर

"मातृ-मन्दिर मे हुई पुकार,

चढा दो हमको हे भगवान !"

हॉ, माता ने पुकार की।

माता ने — बन्दनी माता ने। जिसके पैरो मे बेडियॉ थी, हाथो मे कडियॉ थी। जिसकी आँखो मे ऑसू थे, जिसकी पुकार मे गुहार थी।

बन्दनी मॉ पुकार रही थी, गुहार रही थी। कितु किसे फुसत थी सुनने की ? सब अपने मे भूले थे, सबको अपनी पडी थी।

बडे-बडे विद्वान—दिग्गज विद्वान ! बडे-बडे बलवान—कलियुगी भीम ! माँ बन्दिनी थी, किन्तु बन्ध्या न थी। विद्वानो, बलवानो, कवियो, कलाकारो, वैज्ञानिको, दाशनिको से अब भी गोद भरी थी उसकी।

किन्तु किसे फुसत थी, उसकी पुकार सुनने की ? गुहार सुनने की ?

विद्वान अनुसन्धान मे लगे थे। बलवानो को आपसी ज़ोर-आज़माई से ही फ़ुसत नही थी। कवि दिवा-स्वप्न देख रहे थे, कलाकार रगामेज़ी मे लगे थे। वैज्ञानिको को प्रयोगशाला ने उलझा रखा और दाशनिको का 'तत्वमसि' का मसला हल नही हो पाता था।

आँसुओ से माँ का आँचल भीगा जा रहा था, पुकार से उसका गला रुँधा जा रहा था !

"ओ मेरे बेटो, कहाँ हो ? ओ मेरे बेटो ! किधर देख रहे हो ? क्या कर रहे हो ?

अरे, ये मेरी बेडियाँ, ये कडियाँ ! और यह मेरा बुढापा ! तुम क्या कर रहे हो ! क्या सुन रहे हो !

क्या मेरा उद्धार न करोगे ? क्या मै यो ही तडप-तडपकर मर जाऊँ ? क्या इसी लिए दूध पिलाया था ? क्या इन्ही दिनो के लिए तुम्हे गोद खेलाया था ?

तुम बेटे हो मेरे ? तो फिर क्यो नही सुनते ?"

किन्तु कौन सुने ? फुसत किसे थी ? विद्वानो का तत्त्वान्वेषण समाप्त नही हो रहा था, बलवान अखाडे पर डड पेल रहे थे, कवियो का दिवा-स्वप्न टूट नही रहा था, कलाकारो का कल्पना-लोक विस्तृत ही होता जाता था, वैज्ञानिको को प्रयोगशाला छोडती नही थी और दाशनिक इस जगत्याम् जगत के झमेले मे अपने को क्यो लगाये ?

और, मा पुकार रही थी, गुहार रही थी, रो रही थी, चीख रही थी।

कि लोगो ने देखा—वह कोई बढ रहा हे !

कोई बढ रहा है ! पागल-सी सूरत, भोलेपन की मूरत। आँखो मे प्रमाद की-सी छाया। किन्तु पैरो मे, चाल मे एक अजीब दृढता !

वह बढा-बढा, बढता गया—बढता गया !

× × ×

"सफलता पाई अथवा नही
उन्हे क्या ज्ञात दे चुके प्राण,

विश्व को चहिए उच्च विचार ?

नही, केवल अपना बलिदान !"

जब वह चला, किसी ने कहा—पागल ! किसी ने कहा—बददिमाग !

अरे गुस्ताख है, गुस्ताख ! जहाँ बिजली-बत्ती भी बुझ जाय, वहाँ यह चिराग जलाने की जुरत करने चला है ?

रुको—आगे मे मत कूदो। तुम आदमी हो, पतगा क्यो बनते हो ?

किन्तु इन बातो पर उसने मुस्करा दिया ! वह बढता गया !

"नाथ ! कहा चले तुम मुझे छोडकर नाथ ?"

"भैया, भैया ! कहाँ जा रहे हो, हमे छोडकर ?'

"बेटा ! उफ्, कितनी तपस्या के बाद तुम्हे पाया। मेरी गोदी क्यो सूनी कर रहे हो, बेटा ?"

"मित्र, जरा हमारी ओर भी तो ध्यान दो !"

अब हँसी की जगह उसके चेहरे पर करुणा थी ! किन्तु वह बढता गया।

दम्भी शासन ने उसे ललचाया !

दम्भी शासन ने उसे धमकाया !

दम्भी शासन ने अपना खूनी पजा बढाया।

ललचाया, धमकाया, खूनी पजा बढया ! खूनी पजा—मृत्यु का पजा !

दुनिया चीख उठी—आह, आह ! प्रकृति चीख उठी—आह, आह !

हवा काँपी, जमीन कापी, हृदय काँपे !

किन्तु, वह बढता गया—दृढ चरण, सम गति, धमनियो मे उल्लास की तरगे, चेहरे पर आनन्द की लहरियाँ।

"नाथ ! "

"भैया ! "

"बेटा ! "

"मित्र ! "

कान मे यह क्या साय-साय आवाज ? क्षण भर के लिए वह चौका, वह रुका ! कान मे यह कैसी सॉय-सॉय आवाज़ ?

किन्तु, इसी समय फिर उसके कानो मे भनक आई—"ओ मेरे बेटो ! अरे, ये मेरी बेडियॉ "

"आया मॉ, आया !" वह चिल्ला उठा, वह बढा चला ! सामने सनसनाती गोलिया, उसने सीना खोल दिया ! आगे फॉसी का तख्ता, वह उछल कर चढ गया !

खून की कुछ बूदे जमीन पर गिरी !

एक कीमती जान घुटकर चल बसी !

नीचे दुनिया रो रही थी, ऊपर वह तराने लगाता जा रहा था ! नीचे स्वजनो और परिजनो की हिचकियाँ ! ऊपर किन्नरियो के नृत्य, अप्सराओ के पखो की फटफटाहट !

बुढिया मॉ ने देखा, उसकी जजीर की एक कडी कट चुकी है !

× × ×

"ऐ शहीद ! उठने दे अपना फूलो भरा जनाजा !"

शहीद का जनाजा—वह फूलो से भरा उठाना ही चाहिए !

जिसने अपने को देश पर, आदश पर कुर्बान कर दिया, उसके प्रति अपना अन्तिम सम्मान भी तो हम प्रकट कर ले।

काश, ऐसा हो पाता ?

कितने ऐसे शहीद हुए, जिन्हे यह अन्तिम सम्मान भी प्राप्त हो सका ?

जिन्होने उन्हे शहीद बनाया, उन्होने यह भी कोशिश की कि उनकी लाश तक किसी को नसीब न होने पाये।

उनकी जान लेकर ही उन्हे सब्र न हुआ, उनकी लाश की दुगत कराने से भी वे बाज नही आये !

फिर, शहीद न्यौता देकर तो मरने जाते नही—प्राय उन्होने ऐसी जगहो पर प्राणार्पण किये, जहॉ उनका अपना कोई नही था !

सन् सत्तावन के शहीदो के कारुणिक निधन पर बागी बादशाह 'जफर' ने आँसू बहाये थे—

न दबाया जेरे चमन उन्हे,

न दिया किसी ने कफन उन्हे,

किया किसने यार दफन उन्हे,

वे ठिकाना उनका मजार हे !

सत्तावन के शहीदो की यह परम्परा हमारे देश मे हमेशा कायम रही !

कूका-विद्रोह के शहीदो का कही मजार है !

१९०५ से १९१५ तक के बम-पिस्तौल-युग मे जिन शहीदो ने कानाडा से अमृतसर और बगाल से कुस्तुन्तुनिया तक अलौकिक कारनामे दिखाये, क्या उनका नामोनिशान भी हम कही पा रहे है, आज !

१९२१ से १९४२ तक के, गाँधी-युग के, अनेक शहीदो का भाग्य भी कुछ दूसरा नही रहा !

सरदार भगत सिह को किस चमन मे दफनाया गया ? सरदार नित्यानन्द को क्या कफन भी दिया जा सका ?

आजाद-हिद-फोज के जिन सैनिको ने अपने खून से शौनान से मणिपुर तक की भूमि को सीचा, उनकी चिताये कहाँ जलाई गई ? बयालीस के बाद जिन बागियो ने देश के कोने-कोने मे शहादत की धूनी रमाई, उनका ठोर-ठिकाना भी क्या आज मिल सकता है ?

जब हम युद्ध मे होते ह, हमे पीछे देखने की फुरसत कहाँ रहती है ?

जब हम युद्ध से बाहर होते है, आगे की तैयारिया या निर्माण की समस्याये ही हमे इस तरह आ दबोचती है कि चाहकर भी हम पीछे देख नही पाते।

ज़िन्दो के ममले हमपर इस तरह हावी हो जाते ह, कि मुर्दो की ओर कौन ध्यान दे ?

आह, ओ शहीद !

हाय, ओ शहीद !

× × ×

शहीदा की चिताओ पर
जुडेगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालो का
यही बाकी निशाँ होगा।

तो भी यह कहा गया है। इसे गाया गया है !

क्या यह झूठ हे ? क्या ऐसा इसलिए कहा गया है कि कुछ बेवकूफ आगे बढ कर जान दे दे ? या किसी भावी शहीद ने अपने को आत्मवचना मे रखने के लिए ये पक्तियाँ लिख दी थी ?

आज हम आजाद ह, खूब मेले लगा रहे है। किन्तु शहीदो की चिताओ पर एक भी मेला जुटते आज तक कही देखा गया ?

किसी ने यह पता लगाने की कोशिश की कि वे कौन थे ? उनकी चिताये कहा-कहाँ पर जली ?

आत्मवचना ! विश्वप्रपच !!

किन्तु ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो !

सत्य का सूय प्राय बादल से ढँकता है। किन्तु बादल बादल है, सूर्य सूय !

शहादत सत्य हें, फानूस मे ढँपी दीप-शिखा की तरह विस्मृति की धुँधलाहट से घिरी शहादत और भी सुन्दर लगती है।

अलग-अलग घर से दीये आते है, देवस्थान पर पहुँच कर उनकी भिन्नता नष्ट हो जाती है, वे सब एक दीपावली के नाम से अभिहित होते है !

तुम किसी शहीद का नाम भुला दो, उसकी बलि-भूमि की भी याद तुम्हे न रहे—किन्तु शहादत को तुम भूल नही सकते, शहीद भुलाये नही जा सकते !

जब-जब शहीदो की चर्चा होगी, हमारी आँखे गीली हो उठेगी।

जब-जब शहीदो की चर्चा होगी, हमारे हृदय उच्छ्वसित हो उठेगे !

जब-जब शहीदो की चर्चा होगी, हमारे सिर आप-ही-आप झुक जायेगे !

रक्त के बने हम प्राणी, रक्त-दान को हम नही भूल सकते !

धन्य है, वे जो रक्त-दान देकर अमर हो गये !

उनका स्थान सदा वही होगा, जहाँ अमरो का अधिवास है।

जहाँ जरा नही है, जडता नही है, ज्वर नही है, जाडा नही है।

जहाँ सदा बसत हे, अक्षय स्वास्थ्य है, निर्धूम चेतना है, शाश्वत यौवन है।

जहाँ क्षुद्रता न है, विस्मृति न है।

हमारे शहीद वहाँ पहुँच चुके है, जहाँ से वे हमारी स्मृति-लघुता पर मुस्करा रहे होगे, हमे अनेक क्षुद्र स्वार्थो मे उलझे देख सिहर-सिहर उठते होगे !

वे पृथ्वी पर आये थे, किन्तु अमरो के वश से थे।

इसलिए पृथ्वी के पाप-ताप उन्हे न दबोच सके, और पहला मौका पाते ही हमे मरने-जलने को छोड कर वे चलते बने !

उनकी स्मृति ही उनकी चिता हे। वह चिता मानव-मन मे हमेशा धू-धू करके जलती रहेगी और उनके आस-पास सदा मेले जुडते रहेगे।

मेले—जहाँ पत्नियो के आसू होगे !

मेले—जहाँ माताओ की उसॉसे होगी !

मेले—जहाँ बहनो के सूखे चेहरे होगे !

मेले—जहा मित्रो के मुरझाये मन होगे !

मेले—जहाँ हर आदमी के हाथो मे श्रद्धाजलि की मालाये होगी !

हाथो मे माला, आखो मे ऑसू—

"वतन पर मरने वालो का यही बाकी निशाँ होगा।"
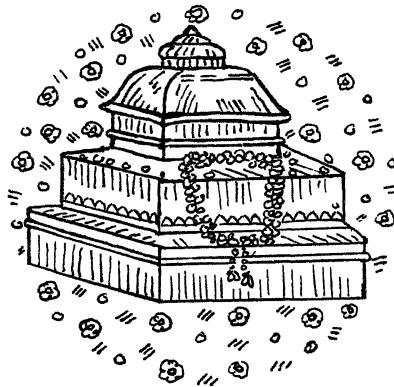
आँधी में चलो

आप खिली चादनी मे चलना चाहते है, म चिलचिलाती धूप मे। आपको सध्या की सुनहली साडी पसन्द आती है, मुझे निशीथ का कज्जल अचल। आपके भावुक हृदय को ऊषा की मुस्कान जँचती है, मेरा ऊसर मन दुपहरिया की धू-धू खोजता है। योही, आप शीतल मन्द सुगन्ध समीर मे मन्द-मन्द विचरण करना चाहते है और मैं आँधी के बीच इठलाते चलना चाहता हूँ।

कितने नीरस हो तुम—कहेगे आप! कितने खूसट है आप—कहूँगा मै!

न मालूम किसने और क्यो सौन्दय के साथ कोमलता का गठ-बन्धन कर दिया। सौन्दय का नाम लेते ही हमारी आँखो के सामने किसी कामिनी का गुलाबी चेहरा, किसी पुष्प की मृदुल कलिका, किसी उपवन की झलमल रगीनियाँ या किसी जलाशय की चचल लहरो पर

चाँदनी का नृत्य नाचने लगता है। मेरे जानते ये मानव-जाति की शिशुता की कल्पनाये है। बच्चे ही रगीन चीजो को ज्यादा पसन्द करते है ?

शिशुता की कल्पना होने पर भी इसमे पुरातनता की सडी गन्ध है। इसीसे मै कहता हूँ, आप खूसट है।

जरा नये ढग से सोचिए—नवीन रुचि, नवीन प्रवृति, नवीन-इच्छा, नवीन आकाँक्षा, नई चाह, नई राह—जवानी का यही तो श्रृगार है। यदि यह नही, तो जवानी कहाँ, यौवन कहाँ !

यदि आप गौर करेगे तो पायेगे कि आपकी धारणाये आप की अपनी नही है, या तो आपने उधार लिया है या चुपके से, चोर की तरह आपके दिमाग मे घुस कर उन्होने घर कर लिया। ऐसा घर कि घरवाले के लिए घर मे जगह नही। चोर बोलता है, और हम समझते है हम बोल रहे है। आह ! मनुष्य अपने को कितना गुलाम बनाये हुआ है ? हमारी आँखे अपनी होती है, किन्तु देखते है दूसरे की नजर से, हमारे कान अपने होते है, किन्तु श्रवन-शक्ति दूसरे की, हमारा मस्तिष्क अपना होता है, किन्तु चिन्तन-प्रणाली अन्य की। यदि आप स्वतत्र होना चाहते है तो अपनी ज्ञानेन्द्रियो को गुलामी से छुडाइये—अपनी आँख से देखिए, अपने कान से सुनिए, अपनी नाक से सूघिए, अपनी जीभ से चखिए। सोचिए अपने ढँग से, बोलिए अपनी बात।

आप चाँदनी का सौन्दर्य देखते है पुरानी नजरो से, जरा नई नजर से चिलचिलाती धूप के सौन्दय को देखिए। मन्द समीरण का मजा, पुरानी रुची के अनुसार बहुत लूट चुके, अब जरा आँधी की बहार भी लूटिए।

सौन्दय का क्षेत्र सीमित नही है। जहाँ कही भव्यता है, प्रोज्वलता, महत्ता और अलौकिकता है, वही सौन्दय है। हाँ देखनेवाली आखे चाहिए।

पुष्पवाटिका मे विचरण करनेवाली "ककण किकिणी नुपुर-धुनि" वाली कुमारी जानकी मे सौन्दय है, तो अशोक-वाटिका मे बैठी, रुक्ष केश, शुष्क बदन, तपस्या-रत अर्द्धागिनी सीता मे भी कम सौन्दर्य नही है। जनकपुर मे दुलहे के रूप मे बैठे 'कोटि मनोज लजावन

हारे' राम मे सोन्दय है, तो समुद्र से राह माँगकर भी न पाने वाले क्रुद्ध मूर्त्ति, कुटिल भकुटि, बाण चढा कर धनुष की प्रत्यचा खीचते हुए रुद्र-रूप राम मे भी अपार सौन्दर्य है। आप गोकुल की रास-लीला मे लीन कन्हैया मे सौदय पाते हैं, किन्तु भीष्म के बाण से व्याकुल कुरुक्षेत्र के चक्रधर मे नही, तो मै कहूँगा आपका दुर्भाग्य है। हरिणी की निरीह आँखे सौन्दयमयी है, और क्रुद्ध सिह की जलती आखे भी। चाँदनी मे मजा है, तो धूप मे भी ! सन्ध्या को आप बहुत टहलते होगे, एक दिन आधी रात को टहलिए—चारो ओर घोर अन्धकार, निस्तब्धता का साम्राज्य, कोई राही नही, कही राह नही ओर आप दनादन अकेले आगे बढते जा रहे है, ? आह ! कितना मजा !!

और आँधी के बीच ? मत पूछिए। दिन रात "इन्कलाब जिन्दा-बाद" चिल्लाते हुए भी आपने यदि आँधी का मम नही जाना, तो म कहूँगा आप अभी ऊपर की सतह पर हैं, चीजो के मम मे घुस कर देखने की सतत जाग्रत प्रवृति आपमे है नही।

हड हड हड, हा हा हा—वृक्ष उखड रहे है, पत्ते उड रहे है, धूल और तिनके का नाम निशान मिटना चाहता है। हड हड हड हा हा हा—खिडकियाँ टूट रही है, छते हिल रही है, छप्पर उखड रहे हैं। हड हड हड, हा हा हा—मनुष्य व्याकुल हो राम-गुहार कर रहे है, पशु व्याकुल हो इधर उधर मारे-मारे भाग रहे हैं, और बेचारे पछी–कितने के डैने टूट गये, कितने के चगुल मे मरोड पड गया— पतली डालियो को चगुल से जकड कर वे बचना चाहते थे। कड कड कड—वह डाली टूटी, हड हड हड—वह छप्पर उडा, हा हा हा—वह क्रन्दन सुनिए—कोई दुर्घटना हुई क्या ?

और, ऐसी आधी मे चलना। आँखो मे धूल, देखने की किसकी हिम्मत ? कानो मे एक ही स्वर, और कुछ सुन नही सकते। कभी एक झोका पूरब की ओर घसीट ले जाता है, कभी दूसरा दक्षिण की ओर। तो भी चलते रहना—अपने निश्चित लक्ष्य की ओर। कैसे ? एक दिन चल कर देखिए—बताने से ऐसी चीजे समझ मे नही आती।

आँधी, तूफान, ज्वार, बाढ, इन्कलाब, विप्लव, क्रान्ति, रेवोलू-शन सब प्रकृति की एक ही उद्दाम–लीला के भिन्न-भिन्न नाम है। हाँ।

किसी ने कहा हे, Think dangerously—खौफनाक ढग से सोचो। दूसरे ने कहा है—Live dangerously—खतरे मे रहो। मै कहता हूँ—दोनो को अपनाओ, ये एक दूसरे का पूरक हैं।

कोमलता बचपन है, कठोरता जवानी। बुढापे की बात, बूढे जाने।

युवको ! कठोर बनो—साहसी बनो, दुस्साहसी बनो। आँधी मे चलो, तूफान से दोस्ती जोडो। हाँ, तूफान से।
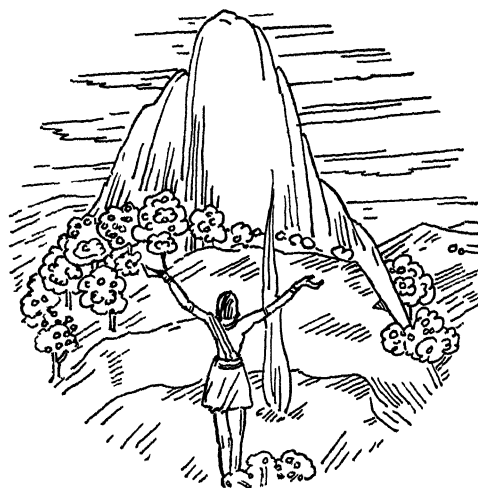
कस्मै देवाय हविषा विधेम

'कस्मै देवाय हविषा विधेम ?'

किस देवता के श्री चरणो मे मै अपनी अँजलि अर्पित करूँ—कौन है वह देवता जो मेरी इस श्रद्धाजलि के पाने का उपयुक्त पात्र है ?

वह—वह जो अभी आने को है, किन्तु जिसकी झलक अभी से उस पवत की चूडा पर दीख पडती है। क्या वह उपयुक्त पात्र है, मेरे इस दिव्य उपहार के पाने का ?

वह प्रकाशमान है, ज्योति-दाता है। है—मै मानता हूँ। किन्तु साथ ही वह वही तो है जिसकी पहली किरण पवत की सबसे ऊँची चोटी पर पडती है, दुपहरिया मे सबसे ऊँचे स्थान मे रह कर जो दीनो पर

अग्निबाण बरसाता है और अत मे भी जिसकी उच्चप्रियता कम नही होती, अपनी अतिम उसासो से—अपने कलेजे के खून से—आकाशचारी बादलो को रक्त-रजित कर जाता है।

नही—कदापि नही।

वह, जो इतने विशाल रूप मे हमारे सामने खडा है ?

उसका उज्वल धवल ललाट कितना आकषक, कितना मोहक हे—प्रात सध्या को वह और भी कितना सुन्दर रूप धारण कर लेता है। उसके वक्षस्थल का पीत रग, उसके कटि-देश का धूसर रग और उसके पद-प्रदेश का नेत्ररजक कलित हरित रग—कैसा सुहावना हे वह। किन्तु इतने झरनो, नालियो और नदियो का जल-दाता होकर भी तो वह पत्थर-हृदय हे।

नही, कदापि नही।

किसकी मधुर स्मृति मे यो गुनगुनाती जाती हो—सहचरी सरिते ! कितनी ही ऊषा, सन्ध्या और निशीथ तेरे इस अव्यक्त गान का अथ लगाने मे मैने व्यतीत कर दिये, कितनी ज्वालाओ को तेरी तरगो--तेरे हृदय के फफोलो के साथ खेलने को छोड दिया, कितनी ही कामनाओ को तेरी अन्तर्धारा मे लीन कर दिया। हे जगत के पाप-ताप तिरोहित करनेवाली तरगिनी ! इच्छा होती है, यह अध्य भी तुम्हारे ही चरणो मे चढा दू। किन्तु तुम नगराज कन्या जो हो। यह विद्रोही, राज-सत्ता को कैसे स्वीकृत करे !

नही, कदापि नही।

वनस्पति ?—ऊँचे-ऊँचे, आकाश-हृदय-विदारी, पादप-पुज, उनसे लिपटी लोनी-लोनी, पुष्पो से लदी, लतिकाये, गले-से-गले हिले-मिले रग-बिरगे पौधे, जगत को जीवन देनेवाली ससार-प्राण-स्वरूपा श्यामल शश्यराजि, और, पृथ्वी की सरसता का अनेक पद-प्रहारो को सह कर भी अक्षुण्ण रखनेवाली प्यारी-न्यारी दूब—मन उमगता है, हृदय उछलता है तुम्हारे ही ऊपर अपनी इस अजलि को अपण करने का। किन्तु विनाश की गोद मे खेलनेवाला यह विद्रोही केवल शिव-सुन्दरम् की उपासना कैसे करे ?

नही–कभी नही !

तो फिर वह कौन हे, वह अमगल-मूर्ति, सुन्दरता-सदन, प्रलय-पटु, सृष्टि-कुशल,—जिसके पावन पदो मे यह अध्य अर्पित हो—सादर समर्पित हो ! कौन है वह देवता—कहाँ हे वह देवता—हे मेरे अन्तर के प्रभु, बताओ। बताओ—

'कस्मै देवाय हविषा विधेम !'

इन्कलाब जिन्दाबाद

भगतसिंह की शहादत पर

अभी उस दिन की बात है। हिन्दुस्तान की नामधारी पार्लियामेन्ट—लेजिस्लेटिव-एसेम्बली मे बम का धडाका हुआ। उसका धुआँ विद्युत-तरग की तरह भारत के कोने-कोने मे फैल गया। बडे-बडे कलेजेवालो के होश गायब हुए, आँखे बद हुई—मूर्च्छा की हालत मे कितने ही के मुँह से कितनी ही अट-सट बाते भी निकली।

उस धुएँ मे एक पुकार थी, जो धुआँ के विलीन हो जाने पर भी, लोगो के कान को गुजित करती रही। वह पुकार थी—"इन्कलाब जिन्दाबाद।"

"लौग लिव रेवोल्यूशन"—"इन्कलाब जिन्दाबाद"—"विप्लव अमर हो।" इस पुकार मे न जाने क्या खूबी थी कि एसेम्बली से निकल

कर भारत की झोपडी-झोपडी को इसने अपना घर बना लिया । देहात के किसी तग रास्ते मे जाइए, खेलते हुए कुछ बच्चे आपको मिलेगे। अपने धूल के महल को मिट्टी मे मिला कर उनमे से एक उछलता हुआ पुकार उठेगा—"इन्कलाब" एक स्वर मे उसके साथी जवाब देगे "जिन्दाबाद ?" फिर छलॉग भरते वे नौ दो ग्यारह हो जायँगे !

सरकार की नजर मे यह पुकार राजद्रोह की प्रतिमा थी, हममे से कुछ के विचार मे इसमे हिंसा की बू थी। इसके दबाने की चेष्टाये हुई। किन्तु ऐसे सारे प्रयत्न व्यथ हुए। लाहौर कॉग्रेस के सभापति प० जवाहर लाल नेहरू ने अपने भाषण को इसी पुकार मे समाप्त कर इसपर वैधता की मुहर लगा दी। अब तो यह हमारी राष्ट्रीय पुकार हो गई है।

हम नौजवान इस पुकार पर क्यो आशिक ह ? क्रान्ति को हम चिरजीवी क्यो देखना चाहते ह ? क्या इसमे हमारी विनाश-प्रियता की गन्ध नही है ?

युवक समझते है कि हमारी सरकार, हमारा समाज, हमारा परिवार आज जिस रूप मे है, वह बरदाश्त करने लायक, निभाने लायक, किसी तरह काम चलाने लायक भी, नही है। उसमे व्यक्तित्व पनप नही सकता, बन्धुत्व और समत्व के लिए उसमे स्थान नही, मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार स्वातन्त्र्य तक का वह दुश्मन है। आज मनुष्यता इस मशीन मे पिस रही है—छटपटा रही है, कराह रही है। कुछ तोड-जोड, कुछ काट-छाँट, कुछ इधर-उधर से अब काम चलने-वाला नही। यह घर कभी अच्छा रहा हो, किन्तु अब जान का खतरा हो चला है, अत हम इसे ढाह देना चाहते है, जमीदोज कर देना चाहते है । क्योकि इस जगह पर हम अपने लिए एक नया सुन्दर हवादार मकान बनाना चाहते हैं। हम विप्लव चाहते हैं—क्या करे, सलाह-सुधार से हमारा काम चल नही सकता।

और, हम चाहते है कि विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो। क्यो ? क्योकि मनुष्य मे जो राक्षस है, उसकी हमे खबर है। और खबर है इस बात की, कि यह राक्षस, राक्षस की ही तरह, बढता और मनुष्य को आत्मसात कर लेता—उसे राक्षस बना छोडता है। इस लिए कि यह राक्षस शक्तिसचय न करने पाये, मनुष्यता को

कुचलने न पाये, हम क्रान्ति का कुठार लिए उसके समक्ष सदा बद्धपरिकर रहना चाहते हैं। क्रान्ति अमर हो, जिसमे मानवता पर राक्षसता का राज्य न हो, क्रान्ति अमर हो, जिसमे कँटीले ठूठ विश्व-वाटिका के कुसुम-कुजो को कटक-कानन न बना डाले, क्रान्ति अमर हो, जिसमे ससार मे समता का जल निमल रहे, कोई सेवार उसे गँदला और विषैला न कर दे। प्रवचना, पाखड, धोखा, दगा के स्थान मे सदयता, सहृदयता, पवित्रता और प्रेम का बोल-बाला रहे—इसलिए विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो।

विनाश के हम प्रेमी नही ह किन्तु विनाश की कल्पना-मात्र ही हममे कँप-कँपी नही लाती, क्योकि हम जानते ह कि बिना विनाश के निर्माण का काम चल नही सकता।

इन्कलाब जिन्दाबाद का प्रवतक आज हममे नही रहा। विप्लव के पुजारी की अन्तिम शय्या सदा से फाँसी की टिकटी रही है। भगत सिह अपने वीर साथियो—सुखदेव और राजगुरु के साथ हँसते-हँसते फासी पर झूल गया। झूल गया—हँसते-हँसते, गाते-गाते—'मेरा रँग दे वसन्ती चोला'। सुना हे, उसने मैजिस्ट्रेट से कहा—"तुम धन्य हो मैजिस्ट्रेट कि यह देख सके कि विप्लव के पुजारी किस तरह हँसते-हँसते मृत्यु का आलिगन करते है"। सचमुच मैजिस्ट्रेट धन्य था, क्योकि न केवल हमे, किन्तु उनके मा-बाप सगे-सम्बन्धी को भी उनकी लाश तक देखने को न मिली। हाँ, सुनते ह, किरासिन के तेल मे अधजले माँस के कुछ पिड, हड्डियो के कुछ टुकडे और इधर उधर बिखरे खून के कुछ छीटे मिले ह। जहे किस्मत!

भगत सिह न रहा। गाँधी का आत्मबल, देश की सम्मिलित भिक्षा-वृति, नौजवानो की विफल चेष्टाये—कुछ भी उसे नही बचा सका। खैर भगतसिह न रहा, उसकी काय-पद्धनि आज देश को पसन्द नही, किन्तु उसकी पुकार तो देश की पुकार हो गई है। और, केवल इस पुकार के कारण भी वह इतिहास के लिए अजर-अमर हो गया।

सभी ऋषि मत्र-निर्माण के अधिकारी नही, उनमे भी गायत्री का प्रवत्तक तो ब्रह्मा ही हो सकता है। इन्कलाब-जिन्दाबाद साधारण

मत्र ही नही रहा, वह राष्ट्र का गायत्री-मत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कमण्डलु की जल से नही, अपने खून के छीटे से इसे पूत किया है।

आज भारत का जर्रा जर्रा पुकार रहा है—

"इन्कलाब जिन्दाबाद।"

(इस लेख पर लेखक को गोरी सरकार से डेढ साल की सख़्त कैद की सजा मिली थी।)

नई संस्कृति की ओर

हिन्दोस्तान आजाद हो गया। आजाद हिंदोस्तान का ध्यान एक नये समाज के निर्माण की ओर केन्द्रित हो रहा है।

यह नया समाज कैसा हो ?—उसका मूल आधार क्या हो, उसका विकास किस प्रकार किया जाय ? हिन्दुस्तान का हर देश-भक्त इन प्रश्नो पर सोच-विचार कर रहा है।

समाज को अगर एक वृक्ष मान लिया जाय, तो अर्थनीति उसकी जड है, राजनीति तना, विज्ञान आदि उसकी डालियाँ है और संस्कृति उसके फूल !

इसलिए नये समाज की अर्थनीति या राजनीति आदि पर ही हमे ध्यान देना नही है बल्कि उसकी संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान देना है, क्योकि मूल और तने की सार्थकता तो उसके फूल मे ही है।

फिर इन तीनो का सम्बन्ध परस्पर इतना गहरा है कि आप इन्हे अलग-अलग कर भी नही सकते। नई अथनीति और राजनीति के साथ एक नई सस्कृति का विकास हमारी आँखो के सामने हो रहा है– भले ही हम उसे देख न पाये या उसकी ओर से अपनी आँखे मूद ले।

अन्य क्षेत्रो मे हमारी पच-वार्षिक, दश-वार्षिक योजनाएँ आ रही है, किन्तु क्या यह आश्चय की बात नही है कि सस्कृति के विकास मे प्रगति देने के लिए एक भी व्यापक योजना हमारे सामने नही आ रही है !

गत पचास वर्षो के राजनीतिक आर्थिक सघर्षो ने हमारे दिमाग को इतना भोथरा बना दिया है कि सस्कृति की सुकुमार दुनिया हमारी पथराई आँखो के सामने आकर भी नही आ पाती।

गेहूँ हमारी आँखो पर इस कदर छाया हुआ है कि गुलाब को हम देखकर भी नही देख पाते।

गेहूँ के सवाल को हल कीजिए, और जरूर हल कीजिए, किन्तु किसलिए ? सदा याद रखिए, आदमी सिर्फ चारा या दाना खानेवाला जानवर नही है।

समाज की सारी साधनाओ की परिणति उसकी सस्कृति मे हे। जड मे खाद-पानी दीजिए, तीनो की डालियो की रक्षा कीजिए, किन्तु नजर रखिए फूल पर !

फूल पर, गुलाब पर, सस्कृति पर !

नये समाज की वह हर योजना अधूरी है, जिसमे नई सस्कृति के लिए स्थान नही।

× × ×

सूरज डूबने जा रहे थे, उन्होने कहा कौन मेरे पीछे इस ससार को आलोक देगा !

चाँद थे, सितारे थे—सब चुप रहे। छोटा-सा मिट्टी का दीया। उसने बढकर कहा—देवता, यह भारी बोझ मेरे दुबल कधो पर !

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता की यह एक कडी है।

जब राजनीतिज्ञ, अथशास्त्री दूसरी बडी-बडी योजनाओ मे लगे है, ओ कलाकारो चलो, हम अपनी परिमित शक्ति से इस क्षेत्र मे कुछ काम कर दिखाये।

आखिर यह क्षेत्र भी तो हमारा ही है। गुलाब की खेती के माली तो हमी है, फूलो के ससार के भौरे तो हमी ह। हम न करेगे तो यह काम करेगा कौन ?

हमारी यह गुलाब की दुनिया—फूलो की दुनिया—रगो की दुनिया—सुगन्धो की दुनिया—इतनी सुकुमार, इतनी नाजुक दुनिया है कि कही अथशास्त्रियो के हथौडे और राजनीतिज्ञो के कुल्हाडे उसका सवनाश न कर दे या प्रेमचन्द के शब्दो मे—'रक्षा मे हत्या' न हो जाय !

इसलिए, हमे ही यह करना हे ! उन्हे कुछ दूरदूर ही रखना है।

× × ×

नई सस्कृति—नये समाज के लिए नई सस्कृति ! किन्तु इसका मतलब यह नही कि हम पुरानी सस्कृति के निन्दक या शत्रु ह। पुरानी सस्कृति की सरजमीन ही पर तो नई सस्कृति की अट्टालिका खडी करनी है हमे !

पुरानी सस्कृति से हम प्रेरणा लेगे, पाठ लेगे। वह हमारी विरासत है, हम उसे क्यो छोडेगे ?

किन्तु पुरानी सस्कृति नष्ट हो रही है, क्योकि उसमे सडन आ गई है—घुन लगा हुआ है। इसलिए नई सस्कृति की रूपरेखा नई होगी ही, नये साधनो को अपनाने से भी हम न हिचकेगे।

हमारा उद्देश्य होगा, जीवन के हर सास्कृतिक पहलू का इस प्रकार विकास करना कि हमारा सामाजिक जीवन स्वतत्रता, समता और मानवता के आधार पर पुनर्सगठित हो ओर वह सौन्दर्य एव आनन्द को पूण रूप से उपलब्ध कर सके।

हाँ स्वतत्रता, समता, मानवता ! नई सस्कृति के आधार तो यही हो सकते है !

किन्तु इनका अथ हम सिफ राजनीतिक और आर्थिक अर्थों मे नही लगाते। तीसरा शब्द मानवता हमारे उद्देश्य को स्पष्ट और पुष्ट कर देता है।

हम सारी दासताओ से—सारी विषमताओ से मानव को मुक्त कर उनके परस्पर के सम्बन्ध को विशुद्ध मानवता पर प्रतिष्ठित करना चाहते है। क्योकि हम मानते ह कि तभी आदमी अपने जीवन मे सौन्दर्य और आनन्द की उपलब्धि कर पायेगा।

सौन्दय और आनन्द! नई सस्कृति को इसी ओर चलना है, बढना है!

आज के समाज मे कुरूपता ही कुरूपता है, पीडाओ की विविधता है, बहुलता है। हम इसे सुन्दर बनायेगे—हम इसे सुखी बनायेगे।

लेखको को, कवियो को, पत्रकारो को हम इकट्ठा करेगे कि वे परस्पर विचार-विनिमय करके जनता के जीवन के अभावो और अभियोगो का सही चित्रण करे और साहित्य को उस पथ से ले चले जिसके द्वारा जनता स्वतत्र और पूण जीवन का उपभोग कर सके।

इतना ही नही—जो कलाकार नाटक, सगीत, नृत्य और चित्रकारी मे लगे है, उन्हे भी एकत्र करेगे और उन्हे प्रोत्साहित करेगे कि वे अपनी कलाकृत्तियो मे जनता की इच्छाओ और आकॉक्षाओ को प्रतिफलित होने दे और सामाजिक जीवन को सौन्दर्यमय बनाकर उसे आनन्द से परिपूरित करे।

इस तरह हम उन सभी कलाकारो का आह्वान कर रहे है जो अपनी लेखनी या कूची, वाणी या वाद्यो द्वारा समाज को 'सत्य' 'शिव' 'सुन्दरम्' की ओर ले जाने मे लगे है किन्तु एक व्यापक सगठन नही होने के कारण जिनकी साधनाये इच्छित फल नही दे पा रही है।

इनका सगठन करके हम शहरो ओर गावो मे ऐसे सास्कृतिक केन्द्र खोलना चाहते है जिनमे उनकी कलाकृतियो का प्रदशन हो सके और जहॉ से नई सस्कृति का सन्देश भिन्न-भिन्न साधनो द्वारा हम देश के कोने-कोने मे फैला सके।

हम बार-बार जनता पर जोर दे रहे है—क्योकि हमने देखा है और दुख के साथ अनुभव किया है कि आज की सस्कृति कुछ अभिजात्य लोगो तक ही सीमित और परिमित है।

नया समाज जनता का समाज होगा, सस्कृति को भी जनता की सस्कृति होनी है।

नये समाज का भविष्य महान है, नई सस्कृति का भविष्य महान है।

अब तक की सस्कृति मानवता के सैकडे एक का भी सही प्रतिनिधित्व नही कर पाती थी। जो सौ मे सौ का प्रतिनिधित्व करेगी, वह कितनी बडी चीज होगी – कल्पना कीजिए।

कितनी बडी चीज, कितनी रग-विरगी चीज !

सौ मे सो की इच्छा-आकाक्षा, हर्ष-उल्लास, मिलन-विरह शौय-बलिदान, दया-क्रोध, पीर-रुदन का वह चित्रण और उनकी ही कलम या कूची, वाणी या वाद्य द्वारा।

सदियो से अवरुद्ध निझरणी जब एकाएक शैल श्रृग से फूट पडेगी। युगो से पिजर-वद्ध विहगी जन वन-विटपी की फुनगी पर पर तोलते हुए कलरव कर उठेगी।

कल्पना कीजिए, खुश होइए और आइए हमारे इस सदुद्योग मे हाथ बटाइये।
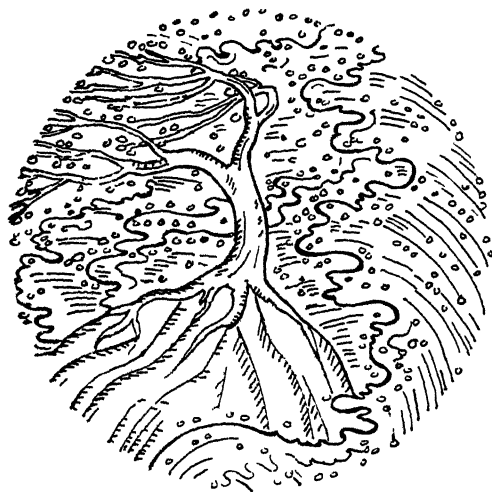
कुछ क्रान्तिकारी विचार

(बर्नार्ड शॉ के क्रान्तिकारियो के जेबीकोष से)

क्रान्तिकारी वह है जो तत्कालीन सामाजिक विधान को परित्याग कर नये की परीक्षा करना चाहता है।

जो जिन्दगी मे खास महत्व प्राप्त करते ह, वे सब के सब क्रान्तिकारी की हेसियत से जिन्दगी शुरू करते हैं। जो जितना महान होता है, वह ज्यो-ज्यो बूढा होता हे, उतना ही क्रान्तिकारी होता जाता है, यद्यपि लोग उसे कट्टरपथी समझने लगते हैं, क्योकि सुधार के प्रचलित तरीको पर से उसका विश्वास उठता जाता हे।

जो आदमी तत्कालीन समाज के विधान को समझते हुए भी अपनी तीस साल की उम्र के अन्दर क्रान्तिकारी नही बना तो समझो वह पूरा आदमी नही है।

× × ×

जिसमे ताकत हे, वह करता है। जिसमे ताकत नही, वह उपदेश देता है।

विद्वान आदमी उस आलसी का नाम हे, जो अध्ययन के जरिये वक्त बरबाद करता हे। उसके झूठे ज्ञान से बचो, उसके ज्ञान से अज्ञान अच्छा।

ज्ञान तक पहुँचने की एक सडक है—सतत काय।

× × ×

जो आदमी अपनी भाषा का ममज्ञ नही है, वह दूसरी भाषा सीख नही सकता।

× × ×

जिस तरह मृत्यु की क्षतिपूर्ति नही की जा सकती, उसी तरह कैद की भी क्षतिपूर्ति नही हो सकती।

मुजरिम कानून के हाथो नही मरता है—वह आदमी ही के हाथो मारा जाता है।

फॉसी की तख्ते पर की गई हत्या सब हत्याओ से बुरी है, क्योकि यह हत्या समाज की स्वीकृति से की जाती हे।

जुम वह खुदरा माल है, जिसके थोक माल का नाम हे कानून।

जब तक जेलखाना कायम है, तबतक यह सवाल फिजूल है कि हममे से कौन उसके सेलो मे है।

जरूरत सिफ यह नही है कि हम फॉसी पाये हुए मुजरिम को हटा दे। अब जरूरत यह है कि इस फॉसी पाये हुए समाज को ही हम हटा दे।

× × ×

प्राउधो ने कहा था—धन चोरी का माल हे। इस विषय पर इससे ज्यादा सही बात कभी नही कही गई।

× × ×

उस आदमी से डरो जिसका भगवान आसमान पर रहता है।

× × ×

पाप से बचने का नाम पुण्य नही है। पुण्य वह है जिसमे पाप की ओर प्रवृति नही जाय।

× × ×

जिन्दगी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करने की कला का ही नाम किफायतशारी है।

× × ×

बेवकूफ राष्ट्रो मे प्रतिभाशील व्यक्ति देवता बना दिया जाता है—उसकी पूजा सब करते है, किन्तु उसके रास्ते पर कोई नही चलता।

× × ×

आनन्द और सौन्दर्य सहकारी पैदावार है।

खुशी और खूबसूरती सीधे वेवकूफी तक पहुँचाती है।

सुन्दरी नारी से आजीवन आनन्द पाने की कामना ठीक वैसी ही है, जैसा हमेशा मुँह मे शराब भरे रखकर उसका मजा पाने की चेष्टा करना।

बडा-से-बडा आनन्द ज्यादा देर तक उपभोग किये जाने पर असहनीय पीडा पैदा करता है।

× × ×

जिसके दॉत मे दद होता है, वह समझता है कि सभी अच्छे दॉतवाले सुखी है। गरीबी से परेशान आदमी धनियो के बारे मे ठीक ऐसा ही सोचता है।

आदमी के पास उसकी जरूरत से ज्यादा जितनी ही चीजे इकट्ठी होती है, उतना ही वह चिन्ता से चूर होता जाता है।

कुरूप और दुखी ससार मे धनी आदमी सिफ भद्दापन और तकलीफ ही खरीद सकता है।

बदशकली और बदबख्ती से बचने के लिए धनी उन्हे और भी बढा देता है। महलो की एक-एक गज रौनक झोपडियो की विभीषिका को बीघो मे बढा देती है।

× × ×

आज के जमाने मे भला आदमी वह है जो बिना उपजाये ही उपभोग करे।

आधुनिक भद्रता के मानी है परोपजीविता।

भले आदमी के लिए देश का दुश्मन होना जरूरी है। लडाई मे वह अपने देश की रक्षा के लिए नही लडता, बल्कि इसलिए लडता है कि कही उसके बदले कोई विदेशी उसके देश को नही लूटे। इन लडाकू लोगो को देशभक्त कहना वैसा ही है, जैसे हड्डी के लिए लडनेवाले कुत्ते को पशुओ का हितैषी समझना।

यदि आप शिक्षा मे, कानून मे और शिकार मे विश्वास करते है, तो सिफ थोडा धन मिल जाने से ही आप भले आदमी बन जायँगे।

× × ×

आदमी अनुभव के अनुपात मे नही, अनुभव ग्रहण करने के अनुपात मे बुद्धिमान होता है।

सिफ अनुभव से ही बुद्धि आती, तो राजधानी की सडको के रोडे सबसे जयादा बुद्धिमान होते।

× × ×

जवानी के सौ खून माफ हैं—लेकिन जवानी अपने को नही माफ करती। बुढापा अपने को माफ कर देता है, लेकिन उसे माफ नही किया जाता।

जहाँ ज्ञान नही है, वहाँ अज्ञान विज्ञान का नाम पाता है।

स्वामित्व की उपार्जित भावना प्राकृतिक भावनाओ से ज्यादा मजबूत होती है।

उस आदमी से होशियार रहना, जो तुम्हारा घूँसे का जवाब नही देता। वह न तुम्हे क्षमा करता है और न तुम्हे यह मौका देती है कि अपने को क्षमा कर लो।

दो भूखे आदमी एक भूखे आदमी से दुगुने भूखे नही हो सकते, लेकिन दो शैतान आदमी एक शैतान आदमी से दस गुना ज्यादा जह-रीले हो सकता है।

विनाश को तभी अपनाया जाता है, जब वह उन्नति का बुर्का पहन लेता है।

सामाजिक समस्याओ पर माथापच्ची करना फिजूल है—गरीबो की एक ही समस्या है, वह है गरीबी, धनियो की एक ही समस्या है, वह है बेकारी !
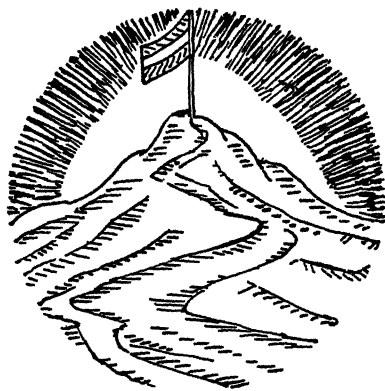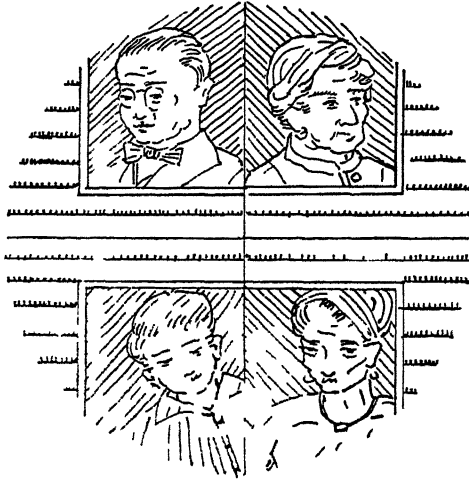
रेलगाड़ी

फर्स्ट क्लास

(बाह्य)

स्प्रिंगदार गद्दे—साफ-सुथरे। ऊपर बिजली के पखे सायँ-सायँ कर रहे। रोशनी चमचमा रही।

एक बर्थ पर राजा साहब। सिर पर पगडी—सोलहवी सदी के कट की। जवाहरात की कलँगी, एक बडा हीरा झलमल कर रहा। शरीर मे अँगरखा—सुफेद, फेन की तरह। कन्धे पर, गले मे, आस्तीन पर पक्का 'काम'। चूडीदार पाजामा। कामदार मख़मली जूते।

दूसरे बर्थ पर सेक्रेटरी ! चुस्त-दुरुस्त नौजवान।

(अन्त)

लखनऊ ! साली भागी जा रही है।

वह—कैसी आग-भभूका ! कही ऐसी खूबसूरती होती है ? लेकिन 'वह' तो 'उससे' भी अच्छी – कितनी मासूम ? गाती भी है, गाना भी क्या बला है ? तान, ताल – जहन्नुम मे जायँ ये चोचले। लेकिन नही, गाना अच्छी चीज है, क्योकि जब वह गाने लगती है, उसका चेहरा सुख हो जाता, गाल गुलाब हो उठते है, गरदन लम्बी सुराहीदार हो जाती है और सीना

'वह'—उसमे भी मज़ा है ! धन्य रे इन्सान, तूने भगवान को भी छकाया !

उँह

यह फिजूल फिक्र। अभी मिल जायगा। सूद ज्यादा देने पडेगे, पडे। लोग कहते है, मैने रियासत बेच दी। साली यह होती है किस दिन के लिए, कोई बेवकूफो से पूछे तो ?

लाट साहब—इन्टरव्यू।

हा हा हा —अब तो सुराजियो का राज हुआ है। ये गाँधी टोपीवाले ! कल तक साले मारे-मारे फिरते थे, भीख माँगते थे, आज नवाब के नाती बने है ! नही, हम उनसे मिल नही सकते ?। मिलना ?—उनसे ? अभी कितने दिन बीते, आये थे चन्दा माँगने ! कितनी देर धरनिया दिये रहे !

यह कौन स्टेशन है ? अरे, गाडी धीमी

सेकेन्ड क्लास

(बाह्य)

डब्बा फर्स्ट क्लास की ही तरह, किन्तु कुछ घटिया—सेकेन्ड क्लास है न।

सेठजी बैठे है। सिर पर मारवाडी पगडी। हाथ मे एक अगरेज़ी अखबार, मानो उसको पढने की कोशिश कर रहे।

एक कोने मे उनका सामान धरा। मोटे-मोटे होलडौल। बडी-बडी पेटियाँ। बेत के बने फलो के टोकरे। एक सुराही, चाँदी का ग्लास जिसके सिर पर।

उनके सामने के बथ पर एक सपत्नीक सज्जन।

(अन्त)

देशी कारबारो के लिए यह अच्छा दिन है। कम्पनी चलकर रहेगी। न भी चले, अपने को तो कभी घाटा नही। और, घाटा हुआ भी तो ? जिस तरह आया, उस तरह जायगा।

एक लडाई ठन जाय ? इच्छा होती हे, हिटलर के पास कोई सौगात भेजू । लेकिन वह क्या करे बेचारा—दुनिया तो हिजडा हो गई, वह लडे किससे ? अपने जानते उसने लडाई के लिए कुछ उठा रखा है ?

वाह री जमनी की वह लडाई—एक फूक मे पँचकौडीमल से मै सेठ करोडीमल बन गया ! हे युद्ध के देवता, कहाँ छिपे हो, इस धराधाम पर अवतार लो, अपने भक्तो की रक्षा करो !

हाँ, यह पिछला कौन शहर था ? यहा कोई धमशाला है ? लेकिन यहाँ धमशाला बनना किस काम का ? यहाँ अपना रोजगार होता, तो गाहक जुटाने मे मदद होती, जिधर निकलता, तारीफे होती।

ये भलेमानस—क्यो बीवियो को साथ लिये फिरते है ? क्या यह अपने देश का धम है ? लेकिन, यह स्त्री है खूबसूरत ! बडी चोखी ! एक मेरी भी सेठानी है !

लेकिन मेरी 'वह'—अप्सराये तो देवताओ के घर मे भी ह ! उसके नजदीक यह चुडैल है ! पर नही—इसमे भी कुछ है !

राम, राम। यह अधम हुआ ! मैने उस दिन गीता देखी थी, गोरखपुर की टीका। भगवान ने कहा है—मानसिक पाप

भगवान हा हा

गाडी धीमी क्यो ?—हा, यह कौन स्टेशन है ?

इन्टर क्लास

(बाह्य)

बेचो पर गद्दे—लेकिन, फटे, पुराने। पखा नही—रोशनी के दो धीमे बल्ब !

एक बेच पर दो, एक पर तीन सज्जन बैठे ओर एक पर अकेले एक सज्जन मुँह ढाप कर सोये।

इधर-उधर की जगहे सामानो से ठसी !

(अन्त)

मुझे उठ बैठना चाहिए, यह कोई भलमनसाहत हे कि किसी को बैठने की जगह न हो और म लेटा रहूँ !

किन्तु, क्या बैठ सकता हूँ मै ?

भलमनसाहत, तेरा बुरा हो !

ये साफ-सुथरे कपडे, ये कटे-छँटे बाल, यह घुटा-घुटाया चेहरा, यह इन्टर का सफर ! लोग समझते होगे, कितना मुर्खी हूँ मै।

किन्तु, क्या यह सच हे ?

इस हरे-भरे उद्यान के भीतर जो रेगिस्तान हाहाकार कर रहा हे, कौन समझे, कौन जाने ?

हम कही के न रहे ? गरीबी ओर अमीरी के बीच की अजीब हमारी हे स्थिति। गरीब हमे बेगाना समझते है, अमीर हमसे घृणा करते ह। हम समाज के त्रिशकु है।

हम—मै क्यो 'हम' पर आ गया। हममे भी कोई सुखी हो सकता है। मै तो अपनी देखू, अपनी जानू।

बडी तपस्या के बाद तो नाकरी मिली। नोकरी मिली, तो बला आई। परिवार की आँखे मुझपर, कुटुम्बियो की आँखे मुझपर। सब मुझे चूसना चाहते है। उधर आफिस मे कितनी जोडी आखे दिन-रात मुझपर गडी रहती ह।

बीवी की तडप—बच्चा की चिल्ल-पो !

फिर भी चेहरे पर हँसी रखनी ही है, भले आदमीपन के सभी तकाजे पूरे करने ही है।

बीवो—वह बेचारी भी क्या जानती होगी, किसके पाले पडी ?

और, बच्चे जब बाबूजी कहकर गले से लिपट जाते है और पडोसियो के बच्चो के हाथ मे देखी किसी चीज की माग करते ह, तब उफ

नही-नही, अब मुह ढँका नही रह सकता—मेरा दम घुटा जा रहा है।

थर्ड क्लास

(वाह्य)

चारो ओर काठ-काठ। काठ पर बैठे, काठ पर पैर लटकाये, सिर के ऊपर काठ – अगल-बगल काठ। काठ—ठेठ काठ।

भीड-भडक्का। कोई बैठा, कोई खडा। बिना टिकट का वह बेचारा बेच के नीचे लेटा और एक 'बाबूसाहब' सामान रखने के ऊपर के लटकते छपरखट्ट पर नाक बजा रहे।

कही थूक, कही राख, कही पानी, कही जलेबी का रस, कही मूगफली के छिलके !

कोलाहल !

(अन्त)

न-जाने वह कैसा देश होगा ?

सुना, दाल-भात तो दोनो वक्त मिल जाता है, मछली भी खूब मिलती है। किन्तु मलेरिया तुरत हो जाती है।

मलेरिया—बाबा रे, वह तो जिन्दा भूत है। हड्डी-हड्डी हिला देती, कलेजे के कलेजे को भी कॅपा डालती है।

मै किस फेर मे पड गया ?

मिन्नू की शादी मैने क्या की, आफत मे फॅस गया। वह बीस रुपये का कर्जा—न जाने, किस-किस लोक मे हमे घुमायेगा ?

सुना है, पैसे वहॉ तुरत मिलते है।

मै तो मजबूत हूँ। खूब काम करूँगा। खूब पैसे मिलेगे। उन पैसो मे से कर्जे का रुपया अलग रख, बाकी से अपने लिए कोट बनाऊँगा, मिन्नू के लिए एक रेशमी कमीज, उसकी बीवी के लिए साडी लूँगा और मिन्नू की मॉ—हॉ, उसके लिए भी कुछ लेना ही होगा।
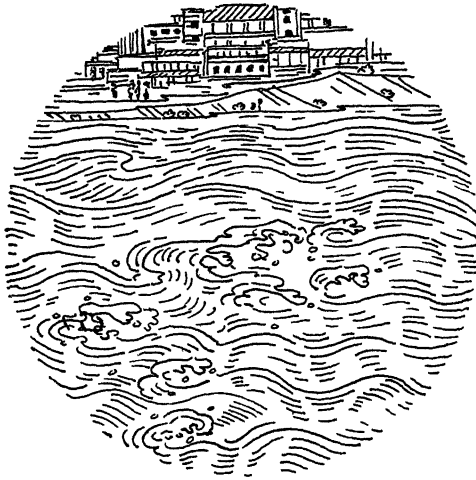
जवानी

हिन्दी के एक पुराने कवि ने जवानी की उपमा चढती हुई नदी से दी है।

कितनी उपयुक्त है यह उपमा !

चढती हुई नदी—

तीव्र प्रवाह—बडी-बडी नौकाओ को भी खतरे मे डालनेवाला। जगह-जगह भीषण भँवर—जिनमे फँस कर बच निकलना मुश्किल ही नही, असम्भव। कीचड और खर-पात से गन्दा दीख पडनेवाला पानी —किन्तु उसमे कितनी जीवनी शक्ति !

कगारे टूट-टूट कर गिर रहे है। बडे-बडे वृक्ष उखड कर अररा रहे है और तिनके की तरह बहे जा रहे है।

चढती हुई नदी—मानो प्रकृति की खुली चुनौती !

लो, एक भीषण उफान आया। अब कगारे, किनारे कुछ दीख नही पडते। सहस्रमुखी हो नदी मानो ससार-विजय को निकली हो—

करोडो कगारो को धडधड गिराती,

नावो व' गावो को सरसर बहाती,

पलक मे ही नालो व खालो को भरती,

चली है नदी, नापती मानो धरती !

प्रकृति, सम्हलो !—तुम्हारी ही एक बेटी आज चडिका बन चुकी है। मनुष्यो, बचो !—प्रकृति की एक पुत्री तुम्हे बताने आई है कि तुम कितने तुच्छ हो !

बाढ ! बाढ !!

× × ×

आज सुकुमारी घर से दीये लेकर निकली है। आँचल की ओट मे वे कैसे झिलमिल कर रहे है।

सुकुमारी दीये लेकर निकली हे !

आज गगा-मैया उसकी कुटिया के निकट पहुँची है, दीपदान क्यो न दे ?

घर-घर से सहस्रो दीप आ रहे है !

तिनके के छोटे-छोटे बेडे—बेडो पर कच्ची मिट्टी के दीये। एक के बाद एक—वे छोडे जा रहे है। प्रकाश की एक लम्बी लडी के ऐसे वे तीव्र प्रवाह मे भँसे जा रहे है !

कगारो को ढहानेवाला, बृक्षो को आमूल गिरानेवाला, नाश और महानाश का प्रत्यक्ष रूप—यह उद्दाम प्रवाह तिनके के तुच्छ बेडे पर रखे कच्ची मिट्टी के इन क्षण-भगुर दीपो को अपनी छाती पर रखे मानो दुलारा रहा है, नचा रहा है, खेला रहा है !

जहाँ तक देखो जगमग !

विनाश की मूर्त्ति का यह अघ्यदान धन्य ! अघ्यदान की ज्योति से जगमगाते यह विनाश की मूर्त्ति धन्य !

झकझक—झलमल !

× × ×

यह दीपदान क्यो न हो ?

दुनिया की जितनी बडी-बडी सभ्यताये ह, सब नदियो के किनारे ही तो पनपी, बढी, फूली, फली, फैली !

ससार के जितने बडे नगर है, सब नदियो के किनारे ही बसे ह ।

कला, कविता—सब का चरम विकास तो स्रोतस्विनी के पावन तट पर ही हुआ है ! वही स्रोतस्विनी जो अपनी 'चढती' मे इतना भयकर मालूम पडती थी।

विध्वस से घबडा उठने वालो ! जरा निर्माण के इस पहलू को भी देखो !

× × ×

तो, जवानी की उपमा चढती हुई नदी से दी गई है।

जवानी—चढती हुई नदी !

वहाँ जीवन—यहाँ जीवन ! जीवन मे प्रवाह—दोनो ओर !

हहर-हहर कर बहने वाली नदी—हाहा-हूहू मे मचलने वाली जवानी !

कितने अरमानो के भँवर है इसमे !

उच्छ्ुखलता का कैसा नग्न नृत्य है यहाँ ?

मै सीमाओ को तोडूगी, बधनो को काटूगी।

मै ससार को छा लूगी—उसपर अपना रग चढा कर छोडूँगी !

तुम्हारी हरी-भरी दुनिया डूबती है, डूबने दो, तुम्हारे शत-सहस्र वर्षो के परम्परा-वृक्ष उखडते है, उखडने दो !

अजी, ससार आपादमस्तक हरा-भरा हो, इसके लिए कुछ हरे पौदो को खाद बनाना ही होगा। यह ठूठ रूख गिरेगा नही, तो नये विरवे पनपेगे कैसे ! फिर नये भवन के लिए लकडियाँ भी कहाँ से आयँगी ?

× × ×

माँझी, अपनी नाव की खैर चाहते हो, तो हमारे प्रवाह का रुख समझो, सम्हलो ! नही तो तुम्हारी यह नाव डूबी !

बाढ-बाढ मत चिल्लाओ !

चतुर और दूरदर्शी किसान की तरह अपने खेतो की मेडे मजबूत करो। यदि एक फसल बर्बाद भी हुई, तो यह ऐसी खाद दे जायगी कि दूसरी फसल मे निहाल हो जाओगे !

सुन्दरियो से कहो—हमे अध्यदान दे !

ओ हमारे ताण्डव-नत्य पर भय-चकित होनेवाले क्षुद्र हृदय मानव जीवो ! हमी शिव ह, इसे क्या भूलते हो ?

व्याघ्र का चालक, श्रृगी का वादक, श्मशान का निवासी, उत्तुग शिखर का प्रवासी वही बृषभ-वाहन, गणेश पिता, गोरी-पति अबढर दानी, शकर, शिव भी है !

बोलो—शिवम् ! सत्यम्, ! सुन्दरम् !

कलाकार

पटना जेल के सेल के निकट का वह वाड। ऑगन मे बडा पीपल का पेड। पेड पर दो चार कीले ठुकी हुई। जिन्हे सेल से भी सतोष न हो, वे ज़रा अपनी हथकडियो को इन कीलो मे लगाकर, ऊर्ध्ववाहु हो, झूले का मजा ले!

पानी का यह नल—नल के नीचे पक्के गच का, इट का बना विस्तृत 'टब'!

ऑगन मे बेले के कुछ पेड—सूखे! हमने उनमे रस डालना शुरू किया। पहले पत्तिया निकली, फिर कलियाँ फूटी। पटना का 'मोतिया' एक नामी चीज है न? जेल का वह हिस्सा गमगमा उठा। रात मे जब हम वाड मे बन्द होते, खिडकियो की राह चैत की चादनी मे इन मोतियो का चिटखना स्पप्ट सुनते!

जरा बाहर जाकर इस चादनी मे, इन बेलो की क्यारियो मे घूम पाता ? आह रे—'बेला फूले आधी रात, गजरा केकर गले डालू ?' किन्तु, यहाँ तो गजरे पाने की कौन बात, देखने की इच्छा भी नही पूरी होती !

भोर होते-होते फूल भी गायब ! जो अपने ककश बूट-रव से रात मे सोना हराम करते, उनके 'सुर्ती-सनित' पाकेटो मे पड कर वे जेल के बाहर पहुँच चुके होते !

× × ×

किन्तु, म बहक गया ! जिस तरह वकील साहब बनने की आकाक्षा करता हुआ 'गान्ही बाबा का भाटियर' बन गया था, जिस तरह सम्पादक बनने की इच्छा मे हिन्दी-सम्पादन-ससार का पीर-बबर्ची-भिस्ती-खर यानी प्रूफ-रीडर, मैनेजर, कन्वासर, एडिटर आदि सब एक ही बार हो गया—उसी तरह आज भी बहक रहा हू।

× × ×

तो उस दिन एक छोटा-सा बच्चा लाया गया और उस सेल मे रखा गया !

बच्चा छोटा-सा—और जेल नही, सेल मे !!

एक दिन वह सेल के दरवाजे पर पलथी मारे बैठा था—बडी ही विचित्र उदासीन मुद्रा मे। मैने उसे देख कर भी न देखा। अपने मोतिये मे पानी डालने मे लग गया कि वह दौडकर मेरे निकट आया और खडा हो गया। कितना चपल ! उसकी आँखो से प्रतिभा टपक रही थी। मै उससे कुछ पूछता ही कि वाडर गरज उठा—'इससे मत बोलिये बाबू, साला गिरहकट्ट है, कई बार आ चुका।'

बच्चा बेशम-सा खिलखिला पडा ! बोला–'नही सुराजी बाबू, ये तुहमत लगाते ह। मै कब आया था यहा सिपाहीजी ? वह दूसरा होगा कोई साला, मुझे बेकसूर पकडा गया है।' फिर कानो मे कुछ सट कर फुम-फुमाया—सुराजी बाबू, जरा हलवा दीजियेगा ?'

मेरी उसकी दोस्ती हो गई।

वह सेल से छूटते ही मेरे पास दौड आता। हलवा लेकर खा लेता और गप्पें करने लगता। मै जानना चाहता था कि वह कौन

है, क्या करता था, जेल मे क्यो लाया गया ? किन्तु वह तो प्रति-दिन बाते बदलता। इतना-सा छोटा बच्चा, इतनी शरारत कहाँ से आई इसमे ?

एक दिन, दुपहरिया मे, पीपल के पेड के निकट बैठा वह खेल रहा था। खेलता क्या था, कुछ बनाने मे मस्त था। मै दबे पाँव गया। अरे, यह तो विचित्र

लाल सुर्खी, उजले चूने और हरी दूब के सयोग से, ज़मीन पर जैसे कारचोबी के काम कर दिये हो उसने ! और, उसके बीच मे सुन्दर नागरी हरूफो मे लिखा है—पिअरिया !

'अरे, तू पढा-लिखा भी है ?'

मुँह बना, सिर हिला, उसने हामी भरी !

'यह पिअरिया कौन है ?'

अब उसकी आँखे सुख थी। फिर छलछला उठी। अपने को जैसे वह रोक न सका हो, भूत-सा बकने लगा।

वह कहने को किसी भगी का बेटा है। माँ हैजे मे मर गई। बाप चोरी मे पकडा गया, तब से न लौटा। पिअरिया उसी की बहिन है—उससे बडी। बहिन ने कोशिश की कि वह म्युनिसिपल स्कूल मे पढे। किन्तु फीस और किताबो का अभाव, उसपर आये दिन उपवास का निमत्रण !

इतने मे एक 'दोस्त' मिल गये—ठीक उस दिन जब कि कई शाम का भूखा वह स्टेशन पर मारा-मारा फिर रहा था।

'दोस्त' जो ने इसे 'जेब-कतरन-कला' सिखलाई।

कैसा मजा—चुपके-चुपके एक बच्चा टिकट कटाते समय आपके निकट आ खडा हुआ या रेल के डब्बे मे बगल मे आ बैठा। आप लापरवाह ह, बच्चा अपनी घात मे। टिकट की खिडकी से आपके हटते ही वह हट गया। क्या यो ही, नही जनाब, आपकी जेब सहित ! आप इधर कई स्टेशन जाने पर जब पान-सिगरेट के लिए पैसे निकालने लगे, घबराये, चिल्लाये। और वह 'दोस्त' के निकट पहुँचा, थैली उसे दी। माल उसने रख लिया। बच्चे को मिले—पूरी-जलेबी, पान सिगरेट, सिनेमा-थेटर ! कुछ पैसे बहिन के लिए भी !

लडका चालाक—मै कहूँ प्रतिभाशील ! मेहनत करूँ मै, पैसे पाये 'दोस्त', यह क्यो ? 'दोस्त' कहते—अरे, दारोगाजी को भी हिस्सा देना होता है न ? झगडा हुआ—बच्चे ने स्वतत्र पेशा अख्तियार किया, किन्तु उसी दिन पकड लिया गया। बच्चा कह रहा था मुझसे—'साले 'दोस्त' ने पुलिस से मिल कर पकडवाया है बाबू ! अच्छा बच्चू को मै फँसाऊँगा ।'

मुश्किल से ११-१२ वष का बच्चा है। इतनी अक्ल ! फिर उसकी यह कारीगरी ! मेरी आखो मे सुर्खी-चूने से बने कारचोबी के काम चमचमा उठे।

'अरे, तुझे तो आट-स्कूल मे पढना चाहिए !' मैने कहा—'इन शैतानियो को छोड बाहर जाकर पढना-लिखना शुरू करना।'

वह हँसा ! फिर बोला—'बहिन भी पढने को ही कहती थी सुराजी बाबू ! कितु, क्या किया जाय, आप ही कहिए ? फीस तो माफ है। किताबे तो चाहिए ही, फिर पेट भरने पर ही तो अक्षर सूझते है।' वह सजीदा-सा होकर बोला—'पढना-लिखना तो बडे लोगो का काम है, बाबू।'

'और तुम्हारा काम है जेल जाना ?'

"जेल भी कोई बुरी चीज नही—खाने को ठीक समय पर मिल जाता हे। लेकिन बहिन की याद आती है !'

उसकी आँखे फिर उमँड आईं !

× × ×

मै कभी सुर्खी, चूना, दूब से बने उस चित्रकारी की ओर देखता, कभी उसके मुँह की ओर ! मेरे दिमाग मे हाहाकार मचा था !

और उस हाहाकार को द्विगुण कर दिया एक और घटना ने।

× × ×

जेल से छूट कर गगाशरण की मा को प्रणाम कर आना जरूरी ही था।

गगा के गाँव मे एक छोटा-सा जगल है—जगल का 'पाकेट एडीशन' कहिए। हमलोग वही बैठे थे। माघ बीत रहा था। फगुनहट

सबके दिमाग मे गरमी भर रही थी । वृक्षो पर बैठी बुलबुल इतने जोर से चहक रही थी मानो भग पी ली हो। कुछ और चिडियो के स्वर की सवारी पर चढ जब-तब कोयल की कूक भी सुनाई पडती थी। ईरान और हिन्दुस्तान का यह सास्कृतिक सम्मिलन था !

कि इतने ही मे–

'छोटे-मोटे सैयाॅ हो।'

जगल की एक ओर से आवाज़ आई। स्वर मे इतना सुरीलापन था कि समूचा जगल गूँज-सा उठा। श्यामनन्दन बाबा ने कहा—'वह आ गया ! लकडी तोडने आया होगा, मै बुला लाता हूँ, सुनो उसका गाना !'

दौडे गये वह और एक छोटे-से बच्चे को कधे पर टागे ले आये। बाबा ठहरे—हमलोगो के सावजनिक बाबा। बच्चे के हाथ मे अब भी एक सूखी टहनी थी।

उसे बीच मे बैठाया गया। वह गाने लगा। गाने निस्सन्देह ही ग्रामीण रुचि के पोषक थे, किन्तु उसका गाना !

स्वरो का चढाव-उतार, आवाज का कम्पन और दद, कठ का वह सुरीलापन—एक समाॅ-सा बॅध गया। मालूम होता था, सगीत सपक्ष होकर वहाॅ चारो ओर उड रहा हो। थोडी देर के लिए मालूम हुआ जैसे बुलबुल चुप हो गई हो, कोयल शरमा गई हो, दूसरी चिडियाॅ आश्चय-चकित हो रही हो ।

'बाबा, यह है कोन ?'

'अरे, यह है, सो हे । क्या पूछो हो, लडके ?'

मालूम हुआ, एक अनाथ बच्चा है—हाॅ, माॅ बची है। किन्तु, माॅ के रहते भी तो अनाथ ही हे। पिता इसके नामी गवैया थे। पैसे भी कमाये, किन्तु खर्राच—कफन के लिए भी छोड कर नही मरे। बडी मुश्किल से दिन कटते है—यह बच्चा जब-तब जलावन तोडने इस जगल मे आता है।

'क्यो न इसे उच्च सगीत की शिक्षा दी जाय, गगा ?'

'क्यो न हमे स्वराज्य मिल जाय, हजरत !'

'जरा जमीन पर पैर रख के बतिआइए, बेनीपुरीजी !'—यह रामचन्द्र ने कहा !

X X X

कला और कलाकार की जब चर्चा सुनता हूँ, दोनो बच्चे आँखो के निकट घूमने लगते है।

एक जेल की हवा खा रहा था—दूसरा लकडियाँ तोड रहा था। हमारे रविवर्मा, हमारे तानसेन जेलो मे सडते है, इधन के गट्ठर ढोते है।

और, उसी समय अपने दो मित्र-तनयो की याद आती है। एक ७५) महीने खच कर शाति-निकेतन मे फकत लकीरे खीचा करते है, दूसरे ५०) मासिक एक सगीतज्ञ पर खच कर जब-तब भोर की मेरी अनमोल नीद हराम करते है।
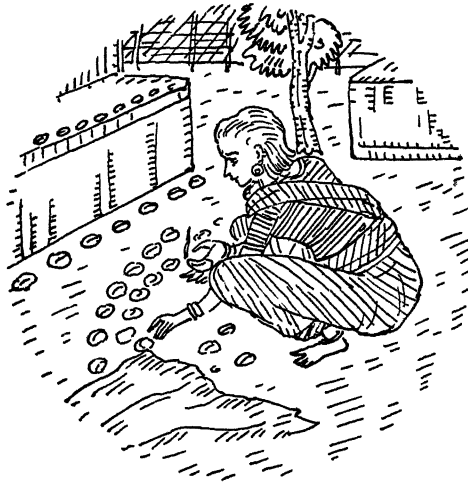
दीप-दान

एक

'बिटिया, यह क्या कर रही है ?'

वह गीली मिट्टी और पतली अँगुलियो के सयोग से छोटे-छोटे दीपो की रचना कर रही थी। अपने काम को जारी रखती, मेरी ओर मुँड कर मुस्कराती हुई बोली—

दीये बना रही हूँ, आज दिवाली है न ?

'हॉ, आज अमावस्या है। कहॉ वह घन-अजन ३ ˎ कहॉ मिट्टी के ये छोटे दीये !'

किन्तु शायद दुस्साहसिकता पर ही तो ससार कायम है।

× × ×

लोग कहते है, यह लक्ष्मी की तिथि है। मै कहता हूँ, यह शक्ति की तिथि है—वैसी शक्ति, जो प्रकृति पर भी विजय प्राप्त करने की हिम्मत रखती है।

प्रकृति कहती है—आज अन्धकार रहेगा, मेरा यही आदेश हे, मेरा यही नियम है।

मनुष्य की अन्तर्हित शक्ति गरज उठती है—नही, आज यहाँ उजाला रहेगा, प्रकाश रहेगा, मेरा यही प्रयत्न है। तेईस अमावस्या तेरी, एक अमावस्या मेरी।

युग-युग से प्रकृति और मनुष्य का यह सग्राम जारी हे। अभी तक किसीने हार नही मानी।

× × ×

बहने दीप जला रही है—या दीपो की माला से घर-आँगन जगमगा रही हैं। जगमगा रही है और गुन-गुनाकर कुछ गा रही है।

भाई खर-पात के मशाल बना, हमजोलियो की टोलियाँ बाँध, गाँव के बाहर खेत और सरेह मे हाहा-हूहू मचा रहे है।

घर-बाहर गाँव-सरेह सबमे उजाला है।

अन्धकार का राज्य तभी दूर होगा, जब घर मे बहने ओर बाहर भाई—दोनो तुल पडे। घर मे बहने दीप सजा रही हो, बाहर भाई मशाले लिये दौड रहे हो। बहने गुनगुना रही हो, भाई हाहा-हूहू कर रहे हो।

× × ×

ये दीपक, ये पतगे!

एक हँस रहा है, दूसरा जल रहा है।

हम बैठे कवितायें बनाते ह।

शायद दुनिया इसीका नाम है।

कोई हँसे, कोई जले, कोई इन दोनो का आनन्द

× ×

आज लक्ष्मी आने वाली है।

क्या लक्ष्मी का प्रवेश अन्धकारमयी तिथि मे ही हुआ करता है ? क्या लक्ष्मी को अन्धकार से प्रेम है ?

उल्लू पर जो सवार है, उसके लिए कुहू-निशा से बढकर कौन तिथि हो सकती है ?

× × ×

स्नेह मे तूल न दो—लोगोको कहते सुना है।

'स्नेह' और 'तूल' के सयोग से ही दीपावली मचती है—अपनी आँखो देखा है।

कान का विश्वास करे या आँख का ?

शायद सत्य इन दोनो से परे है।

× × ×

उनके घर मे शायद आज घी के चिराग जल रहे है !

इस घी के लिए कितने मूक प्राणियो ने अपने खून को दूध के रूप मे परिणत किया होगा, कितने बछवो के मुह का आहार छिन गया होगा, कितनी कोमलागियो के हाथ मथानी के चक्कर मे घिस गये होगे !

अफसोस, यदि वे इन बातो को सोच सकते—समझ सकते !

× × ×

दो

बाहर चकमक-झकमक, भीतर अजनोपम अन्धकार ! दरवाजे पर केले के खम्भो की हरीतिमा, आँगन मे सडी हुई मोरियो की गध ! कही मिठाइयो की लूट, कही टुकडो पर क्षुधित दृष्टि ! कही चौसर की बाजी, कही जीवन का दिवाला ! हम आज इसे ही दिवाली कहते है न ?

× × ×

माँ आज अपने घर दीये नही जलेगे ?'

माँ चौकी ! चिकनी मिट्टी सानी ! दीये गढे। अचल से चीथडे फाड कर बत्ती बनाई।

किन्तु तेल ?

माँ की आँखे छलछला उठी—बरस पडी। सामने पडे दीये उससे भर चले। फिर गिली मिट्टी के इन स्नेह-पात्रो को मिट्टी के रूप में परिणत होते कितनी देर लगती ?

बच्चा माँ का मुह देख रहा है।

किन्तु माँ ?

× × ×

जिस दिन हमने दिवाली का पव मनाना प्रारम्भ किया, उसी दिन हमारे घर मे 'दिवाला' नामक शिशु का जन्म हुआ !

× × ×

लक्ष्मी जब पूजन और प्रदशन की चीज बन जाय, उपभोग और उपयोग की चीज नही रहे, समझिए, उसी दिन वह 'काली' बन गई ? तब वह रक्त पीती है—मानव रक्त !

× × ×

बास की कोपलो पर लिपटे सूखे छिलको को कमाँची मे गाँथ-गुथ कर लुकाठी बनाये गाँव की सडको पर अग्नि-लीला दिखाने वाले नटराजो ! देखो, कबीर बाबा तुम्हे एक दोहा सुना रहे है, क्योकि वह भी तुम्हारे-से ही खिलाडी हैं—भले ही वह बूढे हो।

वह क्या कह रहे है, सुनो—

'कबिरा खडा बजार मे लिये लुकाठी हाथ,

जो घर फूके आपना, चले हमारे साथ।'

जाओगे उनके साथ, प्रकाश-पुज को खेलवाड समझनेवाले ओ नटराजो !

× × ×

दिवाली की रात के आखिरी प्रहर मे हमारी बूढी मातायें उठी और सूप को सनई की डटल से पीट-पीट कर हमारे घर से दरिद्रता को भगाने का मन्त्रोच्चार करने लगी।

भला, इतने पर भी हमारे घर मे दरिद्रता क्यो रह पाती ?

वह भागी, किन्तु

वह भागी, किन्तु हमारे खेतो और खलिहानो में ही उसने अपने अचल आसन जमा दिये। भला उसके लिए भी तो कही जगह चाहिए ही ?

× × ×

महलो पर शत-सहस्र दीप-मालिकायें देख, वह बोल उठे—वाह !

किन्तु मैंने ज्यो ही उस ओर नजर की, मेरी आँखे झिप गईं।

मेरी पगली पुतलियो ने कुछ विचित्र ही दृश्य देखा—

मनुष्य की कलेजी को काट-कूटकर दीये बनाये गये ह, उसमे उनका हृदय-रक्त भर दिया गया है, उनके अरमानो की बत्ती बनाई गई है, जो बिना दियासलाई छुलाये ही निर्धूम जल रही है !

लोगो ने देखा—चकमक ! चकमक !

मेरी पगली पुतलियो ने मुझे दूसरा ही दृश्य दिखाया।

× × ×

आज झोपडी को भी दिवाली मनाने की सूझी है !

आखिर मजार पर भी तो दीये जलाये जाते ह !

× × ×

अभागे, यह नन्दा दीपक सजाना तुझे क्या भाया ?

जिसके वाहनो ने तेरी यह दुगत की, उसीकी अभ्यथना !

यदि प्रकाश ही चाहता है, तो इस झोपडी मे ही चिनगारी छुला देख।

दो घडी की कैसी जगमगाहट रहेगी !

और, यदि कही इसकी लपटे महलो की ओर भी बढ सकी

चिता के फूल

रामू और राघो

ऐसे

पटना-कैम्प-जेल

के

अनेक साथियो

को

जिनके बलिदान

ओर

त्याग

से

देश आजाद हुआ!

ये फूल !

काश, ये फूल होते ! हमारे पूर्वज कैसे तत्त्वज्ञ थे, जिन्होंने चिता-भस्म में चमकती हड्डियो को फूल का आस्पद दिया। मृत्यु और सहार की विभीषिका को ढँकने की यह चेष्टा धन्य है !

अपनी इन सात कहानियो में देश और समाज की विषम स्थिति से उत्पन्न मृत्यु और सहार की विभीषिकाओं को ही मैंने कलात्मक रूप देने की चेष्टा की है। किन्तु इनमें ढँकने की कोशिश कही नही की गई है, बल्कि उभारने का ही प्रयास है। हम इन विभीषिकाओ को देखें, समझें और अपने समाज को ऐसा नया रूप देने की चेष्टा करे, जिसमें हमें ऐसे दृश्य न देखने पडें।

मेरी कहानियो का यह पहला सग्रह है। बहुत दिनो तक ये फूल इधर-उधर बिखरे पडे थे—धन्यवाद है उन मित्रो को, जिनके बार-बार के आग्रह ने इन्हे सग्रहीत होने और प्रकाश मे आने को बाध्य किया।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

चिता के फूल

(१)

दोपहर से ही खेतो ओर मेडो से एक-एक तिनका इकट्ठा करता हुआ शाम को रामू घास के एक बडे गट्ठर के साथ घर पहुँचा। गट्ठर पटक आँगन मे घुसा। माँ ने मकई की चवेनी तैयार कर रखी थी। हरी मिच और नमक के साथ जल्द-जल्द उसने दस-पाँच फँक्के मुह मे रखे और लोटा-भर पानी छाक लिया। फिर दरवाजे पर आ घास की कुट्टी काटी, उसमे थोडा रबिया भूसा मिलाया। खूँटे से बँधी, ब्याई भस चुकर रही थी। छीटी-भर उसके निकट रखकर वह चला बुझावन दादा के दरवाजे।

क्योकि आज शुक्रवार है न? आज ही तो बुझावन दादा के पास अखबार पहुँचता है, क्योकि डाक-पिउन का बीट आज ही का है। रामू ने पढा-लिखा बहुत ही कम, किसी तरह टो-टाकर काम चला लेता है। माँ-बाप का एकलोता ठहरा। बाप ने स्कूल मे पढने को जरूर भेजा, किन्तु एक तो माहवारी फीस और साप्ताहिक 'सीधे' की जबरदस्त माँग, दूसरे, अकेले बाप से खेती-गृहस्थी सँभलती न थी, अत वह अधिक दिनो तक स्कूल मे नहीं रह सका। किंतु देश और ससार की खबर जानने का उसे बडा शौक है। हर शुक्रवार को, जब अखबार आता, रामू बुझावन दादा के नजदीक जरूर जाता और उनसे देश का हाल-चाल जानता। बुझावन दादा भी अपने इस किशोर श्रोता को बहुत मानते, क्योकि देहात मे अखबार की खबरे जानने के लिए उत्सुक लोगो

की सख्या ही कितनी होती है ?

जाडा शुरू हो रहा था। बुझावन दादा के दरवाज़े पर एक अच्छी-सी धूनी जल रही थी। लोग उसके चारो ओर इकट्ठे हो रहे थे। बुझावन दादा भी वही बैठे थे। रामू ने वहाँ पहुँचकर छूटते ही पूछा—"दादा, अखबार का हाल कहिए न। गाँधी बाबा का जहाज बम्बुई पहुँचा या नही ?"

"हाँ-हाँ, उसी जहाज पर गाँधी बाबा रामू के लिए स्वराज्य ला रहे है। क्यो रामू, स्वराज्य मे से थोडा हमे भी दोगे ?"—धूनी तापनेवालो मे एक ने व्यग्य से कहा और ठठाकर हँस पडा। रामू इस हसी पर उबल पडा, और वह अपनी जबान का चरखा चालू ही करनेवाला था कि बुझावन दादा, एक तो विवाद शात करने के लिए, दूसरे, उस दिन खबर भी ऐसी न थी कि ज्यादा समय तक जब्त रखी जा सके, कह उठे—"अरे, बडा अधेर हो गया, रामू ! जवाहरलालजी गिरफ्तार हो गये, और गाँधीजी भी हो ही चुके होगे !"

"क्या ? जवाहरलालजी गिरफ्तार ? गाँधीजी भी ? कहाँ, क्यो—यह क्या ?" आदि कितने ही प्रश्न दनादन किये जाने लगे। बुझावन दादा सबको समझाने लगे—किस तरह गाधी जी ने राउँड-टेबुल-कॉन्फ्रेस मे पूण स्वराज्य का दावा रखा, किस तरह उनकी बातो पर उचित ध्यान नही दिया गया। किस तरह उसके अदर यहा, अपने देश मे, युक्त प्रात के किसानो ने सस्ती की वजह से अपनी मालगुजारी कम करने की बात पेश की, किस तरह उनकी माँग ठुकरा दी गई, किस तरह उन लोगोने कर-बदी शुरू की, तो उनका नेतृत्व करने के कारण प० जवाहरलालजी को गिरफ्तार किया गया है। फिर बुझावन दादा ने बताया—जिस समय जवाहरलालजी गिरफ्तार किये गये, लगभग उसी समय, सीमाप्रात मे किस तरह 'लाल कमीज'-दल के सगठन के लिए खान अब्दुलगफ्फारखाँ भी सपरिवार निर्वासित किये गये। अब गाँधीजी के लौटने पर बबई मे काग्रेस-काय-समिति बैठी है और वायसराय से खत-किताबत चल रही है। आज के अखबार मे इतनी ही खबर है, किन्तु उसमे लिखा है कि गाधीजी का गिरफ्तार होना भी निश्चित जान पडता है, क्योकि सरकार पहले से ही तैयार बैठी है और नये वायसराय का दावा है कि वह एक महीने के अन्दर ही इस आदोलन को दबा लेगे।

लोगोने यह समाचार बडी उत्सुकता से सुना। फिर बहस-मुबाहसा प्रारभ हुआ। किसीने कहा—भविष्य-पुराण मे लिखा है, अँग्रेजो का सात 'टोपियो' तक राज्य रहेगा, अभी तो तीन ही हुई ह, स्वराज्य कैसे हो? किसीने कहा—"विना युद्धेन केशव!"—कही बिना लडाई के राज्य मिलता है? किसीने कहा—देशी राजे गाँधीजी को मदद दे, तो आज स्वराज्य हो जाय। फिर किसीने प्रह्लाद की उपमा देकर, तो किसीने "रावण रथी, बिरथ रघुबीरा" की चौपाइयाँ पढकर यह सिद्ध किया कि गाँधीजी जरूर जीतेगे, स्वराज्य जरूर होगा। किन्तु रामू चुपचाप सब सुनता रहा। यही नही, बहस-मुबाहसे के शोर-गुल के बाद लोगो ने पाया कि रामू वहाँसे खिसक चुका था।

ठीक ही रामू वहासे खिसक चुका था। यह समाचार ही उसके लिए दु खदायी था। फिर, इस बहस-मुबाहसे ने तो उसके हृदय को छलनी कर दिया। वह ज्यादा पढा-लिखा नही था, किन्तु बुझावन दादा की सगति और टो-टाकर अखबार पढने के कारण अपने देश से, अपनी मातृभूमि से, उसे ममत्व हो चला था। स्वराज्य मे सोने-चाँदी की वर्षा होगी, या भाई का गला भाई काटेगे—इस बात पर उसने कभी गौर नही किया था। किन्तु वह इतना जरूर जानता था कि दुनिया मे केवल एक उसीका देश है, जो गुलामी का तौक पहने हुए है। यह अवस्था उसके लिए असह्य थी। जब गाँधी-इरविन-सुलह हुई, और गाँधीजी राउँड-टेबुल-कॉन्फ्रेस में गये, तो उसने समझा—गुलामी की जजीर कटेगी तो नही, कुछ ढीली जरूर होगी, किन्तु इस खबर ने उसकी इस आशा पर भी पानी फेर दिया। सबसे ज्यादा उसे खटका नये वायसराय का यह दम्भ कि एक महीने के अदर ही वह इस आदोलन को दबा दे सकेगे। वह चुपचाप घर आया। भैस दुहने बैठा—कहा नही जा सकता, दूध की कितनी धार झबई मे पडी और कितनी जमीन पर। उस दूध की मीठी धार मे उसकी आखो की नमकीन धारा की दो-एक बूदे पडी या नही—यह भी किसे मालूम? भोजन करने के बाद वह चुपचाप सोने गया। दूसरे दिन उसकी माँ उसकी लाल आँखे देख चौक पडी। उसने समझा, उसकी तबीयत खराब है—शरीर छुआ, ज्वर तो नही था। किन्तु, वह बेचारी क्या जानती थी कि एक ज्वर ऐसा भी होता है, जो शरीर को ठडा रखता है, परतु हृदय को जलाता है।

दिन-भर रामू ने अपने दैनिक कम भलीभाति सपन्न करने की चेष्टा की, किन्तु किसी काम मे भी उसका मन नही लगा। यो ही दो-तीन दिन ओर बीते। वह मशीन-सा सब काम करता रहा। धीरे-धीरे खबर मिल गई कि गाधीजी एव देश के अन्य सभी नेता एक-एक कर गिरफ्तार कर लिये गये—काग्रेस-कमीटियाँ गैर-कानूनी करार दे दी गई—चारो ओर गिफ्तारी, जब्ती आदि की धूम है। ऐसी हर खबर पर रामू की आत्मा जोर से उससे पूछती—"रामू, यह क्या हो रहा है ? तुम्हारा भी कोई कत्तव्य इस समय है कि नही ? उसकी व्याकुलता दिन-दिन भीषण रूप धारण करती जाती।

एक दिन बडे तडके रामू घर से निकल पडा। उसका कोमल मन इतना हृदय-मथन बरदाश्त नही कर सकता था।

(२)

घर से चलकर रामू शहर मे आया। उसे मालूम था कि काग्रेस का जिला-ऑफिस शहर मे है। किन्तु काग्रेस तो गैर-कानूनी घोषित हो चुकी थी, वह किससे पूछे कि काग्रेस का ऑफिस कहा है ? शहर मे आने पर यह भी पता चला कि जहाँ पहले काग्रेस का ऑफिस था, वहाँ अब पुलिसवालो ने अपना डेरा डाल रखा है—जहा तिरगा झडा लहराता था, वहा यूनियन जैक उड रहा है।

रामू असमजस मे पडा हुआ था कि उसने अकस्मात् देखा, उसीकी उम्र के पाँच-छ किशोर झडे लिये, गीत गाते, आगे बढे आ रहे है। काग्रेस तो गैर-कानूनी है, फिर ये नौजवान कहाँसे निकल पडे ? झडे कहासे मिले इन्हे ? वे बढते जा रहे थे। रामू उन्हे देखकर मन-ही-मन अनेक तक-वितक करता उसी ओर आगे खिसक रहा था कि उसने देखा, कुछ पुलिस के जवान दौडते हुए उन किशोरो के निकट जा पहुँचे। जाते ही उन्होने झडे छीनना शुरू किया। कुछ खीच-तान हुई, पर किशोरो के सुकुमार हाथ पुलिस के इस्पाती हाथो से कब जीत सकते थे ? झडे छीन लिये गये और उन्हे गिरफ्तार कर पुलिस थाने की ओर बढी। वे अब भी जय-जयकार कर रहे और गीत गा रहे थे। उनके पीछे एक छोटी-सी भीड भी जमा हो गई थी।

भीड और गिरफ्तार लोगोके साथ पुलिस कुछ दूर चली

कि पीछे से सुनाई पडा—"महात्मा गाधी की जय !" सबका ध्यान आकृष्ट हुआ । लोगोने देखा, एक किशोर-वयस्क बालक हाथ मे झडा लिये जय-जयकार कर रहा है । पुलिस मे से एक जवान दौडा हुआ उसके निकट पहुँचा, और उसे भी गिरफ्तार कर लिया । यह कौन था ? यह था रामू । पुलिस और स्वयसेवको मे झडो को लेकर जब छीना-झपटी हो रही थी, एक झडा उछलकर अलग जा गिरा था । रामू ने उसे छिपाकर रख लिया था, और ज्यो ही वे लोग बढे, वह झडे को उडाते हुए जय-जयकार करने लगा । उसने सोचा, काग्रेस के ऑफिस की तलाश कहाँ तक की जाय, उमे पता भी चले या नही ? क्यो न इन्ही लोगो-के साथ हो ले ? जेल होगी ? तो, इसीलिए तो वह आया है । इनसे जान-पहचान हो जाने पर पीछे काम करने मे भी सहूलियत होगी ।

रामू उन साथियो के साथ थाने पर लाया गया । उसने सोचा, रात मे उसे थाने मे रहना पडेगा, कल मजिस्ट्रेट के सामने वह पेश किया जायगा, जब कि उसे सजा मिलेगी । किन्तु, यहा उसने विचित्र ही हालत देखी । कुछ पुलिस के अफसरो ने सारे कानून को अपने हाथो मे कर लिया है । वे इस आदोलन को दबाने के लिए जुल्म और ज्यादती की हद कर रहे है । रामू अभी कच्चा सोना था, किन्तु पहली बार ही उमे खरी कसौटी पर चढना पडा । थाने के पुलिस-अफसर ने इन सात सुकुमार बच्चो की सब प्रकार परीक्षाये ली—थप्पड, बेत, ठोकर, कान पकडकर उठना-बैठना, दीवार मे नाक रगडना, कहाँ तक गिनाया जाय ? किन्तु वाह रे रामू ! उसने एक बार भी आह न की, वरन् साथियो को भी ढाढस दिलाता रहा । इस अपराध के चलते तो उमे और भी सजा भुगतनी पडी, किन्तु वह डटा रहा—डटा रहा । पीछे इन सातो को स्टेशन ले जाया गया । कहा गया—तुम पटना-कैप-जेल मे भेजे जाओगे । किन्तु उन्हे गाडी पर चढाकर, जब गाडी खुलने को हुई, साथ के सिपाही वहासे चलते बने । कडाके के जाडे मे, ठिठुरते हुए, सातो बच्चे दूसरे स्टेशन पर उतरे, तो उनकी दुर्दशा का क्या पूछना ? उनका क्षत-विक्षत शरीर देखकर स्टेशन-मास्टर को भी दया आ गई । उनकी वह रात उस दयालु स्टेशन-मास्टर की ही शरण मे कटी, और भोर ही, छ मील पैदल चलकर ये काग्रेस-शिविर मे आ पहुँचे—वह गुप्त शिविर, जिसकी खबर सिर्फ काग्रेस कार्यकर्त्ताओ को ही रहती थी ।

कांग्रेस-शिविर मे पहुँचकर रामू को सबसे प्रसन्नता यह देखकर हुई कि गैर-कानूनी करार दिये जाने पर भी कांग्रेस के कामो की श्रृंखला पूरी तरह अक्षुण्ण है। देहातो से लोग लगातार आते-जाते हैं। थाने-थाने मे कांग्रेस के काय-क्रमो को अच्छी तरह सम्पन्न किया जाता है और उसकी बाज़ाब्ता रिपोर्टें आती हैं। ये रिपोर्टें डाक से न आकर खास स्वयसेवको द्वारा आती है। स्वराजी डाक का एक बाजाब्ता सगठन हो गया है। एक जिले का दूसरे जिले से और सब जिलो का प्रान्त से घनिष्ठ सबध इस स्वराजी डाक के कारण बना हुआ है। राष्ट्रीय अखबार बद हैं, किन्तु कांग्रेस की बुलेटिने नियमित रूप से प्रकाशित ही नही होती, बाज़ार मे बिकती भी हैं। सबसे विचित्रता तो यह है कि पुलिस प्राय इधर-उधर छापा मारा करती है, किन्तु वह आज तक यह पता नही पा सकी कि कांग्रेस का शिविर यथाथत है कहाँ ? शिविर के स्थान प्राय बदलते रहते—एक तरह से शिविर एक चलता-फिरता पडाव बना हुआ है। कांग्रेस के सभी काय-कर्त्ताओ मे फौजी प्रवृत्ति बढ रही है। वे प्रकट और गुप्त लडाइयो की कलाएँ धीरे-धीरे जानने लगे हैं। नये वायसराय ने कहा था, वह एक महीने मे आदोलन को कुचल देगा, उसकी शेखी धूल मे मिल गई—रामू के आनन्द का क्या कहना ?

रामू की वीरता की कहानी उन किशोर स्वयसेवको से सुनकर शिविर-पति ने उसकी प्रशसा की, उसकी पीठ ठोकने से भी वह नही चूक सके। रामू की उम्र यही तेरह-चौदह साल की थी—बडा भोला-भाला-सा लगता था उसका चेहरा। किन्तु उसकी तत्परता और उत्तरदायित्व के ज्ञान ने शिविर के सभी लोगोके मन मोह लिये। जो काम उसे सुपुर्द किया जाता, वह भली-भाँति सम्पन्न करता। पीछे चलकर डाक ले आने और पहुँचाने मे तो उसने बडी नामवरी हासिल की। न केवल देहातो से, किन्तु जिला-ऑफिस से प्रातीय ऑफिस मे डाक ले जाने और ले आने का काम भी वही करता। सरेआम स्टेशन पर जाता, टिकट कटाता, रेल पर सवार होता, प्रातीय ऑफिस मे पहुँचता, किन्तु क्या मजाल कि कोई उसे पकड पावे। वह भोला-भाला चेहरा ! फिर वेष भी तो वह प्राय बदलता ! एक दिन जब भिखमगे की सूरत उसने बनाई, तो सभी साथी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। यो ही एक दिन उसने गूगे का स्वाँग रचा, तो ठहाके-पर-ठहाके

लगे। सी० आई० डी० की पूरी पलटन के रहते हुए भी आखिर तक सरकार इस डाक-प्रबध का पता न पा सकी, उसमे रामू-ऐसे कुछ किशोरो की दिलेरी और कौशल ही काम करते थे।

हाँ, सिफ कौशल का ही नही, यह दिलेरी का काम भी था। सबके सामने, सरेआम, गुप्त चीजो को लेकर यो आना-जाना क्या कम हिम्मत का काम है? फिर जब कभी 'स्वराजी डाक' के हरकारे पकडे जाते, उनकी जो सेवा-शुश्रूषा की जाती, उसे मत पूछिए। यह आग से खेलवाड करना था, काले नाग से खेलवाड करना था।

किन्तु कुछ दिनो तक इस काम के करने के बाद रामू का मन इस आँख-मिचौनी से ऊब उठा। वह खुलकर मोर्चा लेना चाहता था। और, जहाँ चाह, वहाँ राह!

एक दिन सरकार द्वारा जब्त किये गये काग्रेस-आश्रम पर चढाई करने का काय-क्रम निश्चित हुआ। जब पुलिस हमारे आश्रम पर जबदस्ती कब्जा कर लेती है, तब हम अपने आश्रम को फिर से दखल करने की कोशिश क्यो न करे? सुना गया, पुलिस इसकी भनक पाकर पहले से तैयारी कर रही है। कहा जाता था, वह बडी सख्ती से काम लेगी इस बार। गोलियाँ भी चलाई जायँगी, इसकी भी अफवाह थी। इन बातो को सुन-सुनकर रामू का हृदय और भी उछलता। कभी कभी माँ-बाप का ध्यान आने पर, यह समझकर कि वही अपने माँ-बाप के बुढापे का एकमात्र सहारा है, अत यदि उसकी मृत्यु हुई, तो वे बेचारे तडप-तडपकर मर जायँगे, वह विचलित-सा होने लगता। किन्तु उसी समय अनेको शहीदो की स्मृतियाँ उसके हृदय को मजबूत कर देती। वह उत्सुकता से निश्चित दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन सुबह-सुबह, जब पुलिसवाले झपकियो मे ही थे, और शहरवाले भोर की मधुर नीद के मजे ले रहे थे, 'स्वतत्र भारत की जय' के शोर से दिशाये निनादित हो उठी। काग्रेस-आश्रम के चारो ओर थोडी देर तक शोर-गुल रहा—फिर दो-तीन बार गोलियो की धायँ-धायँ सुनाई दी—और अन्त मे सन्नाटा! इसे शाति कहना तो इस शब्द की हत्या करना होगा।

(३)

जरा हम अब रामू के गॉव चले ।

उसके मॉ-बाप उस भोर मे उसे न पाकर बहुत चितित हुए। भैस अभी तक बथान मे बँधी चुकर रही थी—उसका पाडा एक कोने मे अलग शोर कर रहा था। रामू भैस को तडके घर से बाहर करता, उसे खिलाता, फिर दुहता। आज वह कहॉ चला गया ?

शायद निकट के गाव मे किसी काम से गया हो—मॉ बाप ने ऐसा मान लिया, और उसपर नाराज होते हुए कि क्यो बिना खबर दिये वह यो निकल गया, शात हुए। किन्तु, जब दोनो प्राणी बिना खाये-पिये दोपहर तक राह देखते रहे, और रामू नही आया, तो उनकी चिता बढने लगी। बुझावन दादा से भी कुछ पता नही चला, तब तो उनके प्राण सूखने लगे। शाम हुई। अब तो चिता का पारावार नही रहा। मा से नही रहा गया। उस झुटपुटे के वक्त, जिस समय निकट के दरवाजे पर देहाती भजनीको की जमात गा रही थी—"सॉझ भई घर आए न मुरारी, कहॉ अटके बनवारी"—वह बेचारी अपने मुरारी के विरह मे व्याकुल हो फूट-फूटकर रोने लगी। बेचारे पिता की ऑखो से भी आसू बहने लगे। गॉव के कुछ लोग इस क्रदन-ध्वनि पर आकृष्ट हो उन्हे सात्वना देने को पहुँचे। रामू-ऐसा सुशील, समझदार बेटा यो एकाएक कही चल दे—यह बात सबको आश्चयजनक मालूम पड रही थी।

किन्तु, यह समस्या भी तुरत ही हल हो गई। इसी गाव के एक सज्जन कही बाहर से घर लौट रहे थे। रामू के दरवाजे पर आकर उन्होने खबर दी कि रामू की उनसे रास्ते मे भेट हुई है—उसने कहा है, बाबूजी से कह देना, मै तीथ-यात्रा करने जा रहा हूँ, शीघ्र लौटूगा। इस खबर ने अनिश्चितता को कुछ हद तक दूर किया—थोडा आश्वासन मिला। पर आश्चय यही हो रहा था कि इस बालपने मे ही यह वैराग्य उसमे कैसे आ गया ?

पर, यह तीर्थ कौन-सा है, और वह वैराग्य कैसा है—इसका पता चल गया उस दिन, जब दारोगाजी सदल-बल पहुँचकर गॉव को प्रकपित और आतकित करने लगे। उनका दल पूछ-ताछ करते सीधे रामू के दरवाज़े पर पहुँचा, और उसके दरवाज़े पर बँधी भैस को

कुक किया। मालूम हुआ, रामू काग्रेस के काम मे गिरफ्तार हुआ है, और उसे छ महीने की सख्त कैद और ५०) जुरमाने की सज़ा हुई है, जिस जुरमाने की वसूली मे यह कुर्की की गई हे। दारोगाजी की जबानी यह भी पता चला कि उस दिन शहर मे भीड पर गोलियाँ चली उसमे रामू भी था, और भाग्य से ही वह बच गया, घायल होकर ही रह गया !

भस की कुर्की की ज़रा भी परवा उसके मा-बाप को नही हुई। जिस दिन से रामू गया, उसके पिताजी विचित्र ढग से अन्य-मनस्क बने रहते। कुछ दिनो तक तो कुछ काम ही नही किया, अब करते भी, तो जैसे मशीन काम कर रही हो—न रस, न उत्साह। भैस रामू की सबसे प्रिय यादगार थी। उसके खरीदने मे उसकी ज़िद काम कर गई थी, उसके पालने मे उसका हाथ था, उसके दूध-दही का सबसे बडा भोक्ता भी वही था। रामू के पिता के हृदय मे यह भैस बुरी तरह कसक पैदा करती। वह रामू से ऐसी घुलमिल गई थी कि उसके जाते ही खाने-पीने मे उदासीनता दिखलाने लगी। वह सूख चली थी—दूध भी कम देने लगी थी। जब दारोगाजी ने उसे कुक किया, और सिपाही उसे खोलकर एक मोटा डडा उसकी पीठ पर देकर, उसे ले चले, तो एक बार रामू के पिता को ऐसा लगा, मानो कोई कलेजा निकाले जा रहा है। किन्तु, वह कलेजा नही, कलेजे का कॉटा था। इसके निकालने मे दर्द था, परतु घाव भरने की सूरत भी यही थी। उन्होने सोचा, जाने दो, रामू ही नही, तो भैस रखकर क्या होगा ? फिर भैस की क्या परवा करते बेचारे, उन्हे तो रामू के लिए दूनी चिता हुई। वह घायल हुआ, न-जाने कहॉ-कहॉ घाव लगे हो। वह जेल मे है—न-जाने वह कैसे रखा जाता हो ? उसी क्षण, बिना किसीसे कुछ कहे, वह शहर की ओर चल पडे।

(४)

रामू पटना-कैंप-जेल मे है।

भला, यह जेल है, या मेला ? कॉटो के तार के घेरे के अदर है यह जेल, जहॉसे चारो ओर के खेतो मे वसत की बहार देखिए। न वाडर का पहरा, न जेल-अधिकारियो की छेड-छाड। कही सभाएँ हो रही है, कही कवि-सम्मेलन जमा है, कही ताश और शतरज पर लोग जुटे है, कही स्कूलो के

क्लास लगे है। कबड्डी, आसन, कुश्ती, सेवा-दल का परेड, जिसमे जी लगे, शामिल होइए। रविवार के दिन जब मुलाकाती आते, एक हुजूम-सा मच जाता। साधारणत खाना-पीना भी अच्छा ही था—उसमे भी पद्रहवे दिन जब 'भोज' मिलता, तब का क्या कहना ? यहाँ आकर रामू ने कुछ पढना-लिखना भी शुरू किया, और दीन-दुनिया को समझने की भी चेष्टा की। मन के लायक उसे कुछ दोस्त भी मिल गये, जिनको लेकर वह खूब ही मस्त रहता।

इसी बीच एक रविवार को उसके पिता उससे भेंट करने को आ पहुँचे। रामू उनकी दशा देखकर द्रवित हो गया। उसके पिताजी हड्डियो के ढाँचा-मात्र हो रहे थे। रामू ने आश्वासन दिया—यहाँ उसे कोई तकलीफ नही है, गोलियाँ जब चली, तो भाग्य-वश वह बच गया, केवल पैर मे कुछ छर्रे लगे। अब तो चार ही महीने की देर है, वह शीघ्र ही आकर माँ के चरण छुएगा।

किन्तु, आह री उसकी माँ और आह रे उसके पिता! क्या उनका ऐसा अच्छा भाग्य था ?

कैंप-जेल मे ऊपर-ऊपर जितना आनद था, भीतर-भीतर उसमे उतना ही खोखलापन था। वह बीमारियो का अड्डा बना हुआ था। डिसेंट्री का वहाँ बोलबाला था। निमोनिया वहाँकी मारक बीमारी थी। और भी 'किं रूप किमाकार' बीमारियाँ वहाँ ताडव-नृत्य करती रहती। ऐसा भी समय आया कि कुल आबादी की एक चौथाई बीमार हो शय्याशायी हो गई। वहाँ बीमार पडना भी कोई साधारण बात न थी। एक बार जो बीमार पडा, वह समझता, अब गया! जेल मे डॉक्टर भी थे, दवाइयाँ भी थी। सुपरिंटेंडेंट अपने को बीमारो का बाप ही समझता और कहता। अपनी समझ से, दूध और फल का भी उसने यथेष्ट प्रबध कर रखा था, किन्तु न-जाने क्यो, इतने पर भी बीमारी वहाँ एक जीवित भूत थी—एक प्राण-पीडक आतक।

रामू भी बीमार पडा।

पहले तो उसे डिसेंट्री की थोडी शिकायत हुई। अपने वार्ड मे रहकर और माँड-भात खाकर ही उसने उसे भगा देना चाहा। किन्तु पीछे उसे अस्पताल जाना ही पडा, क्योकि डिसेंट्री के साथ बुखार भी आने लगा। अस्पताल क्या था, साधारण वार्डों को ही अस्पताल मे परिणत कर लिया गया था, जहाँ बहुतो को जमीन मे ही लेटना

पडता। अस्पताल के नाम पर दो खास कमरे भी थे, किन्तु एक तो वहा 'सीट' कम, फिर, वे तो कुछ 'खास बीमारो' के लिए रिजव रखे जाते, अत रामू को भी उन वार्डोवाले, नाम के अस्पताल मे ही, रहना पडा, और इन वार्डो के ही लायक उसकी दवा भी हुई। धीरे-धीरे बीमारी बढती गई। कुछ स्वयसेवको ने, जो उसकी वीरता को पहचान गये थे, उसके गुणो ने जिन्हे उसका मित्र या भक्त बना लिया था, उसकी सेवा मे कुछ भी उठा नही रखा, किन्तु बीमारी केवल तीमारदारी से ही तो अच्छी नही होती !

अब हालत ऐसी हो गई कि मित्रो ने उसके जीवन की आशा खो दी। खून के दस्त और अत्यधिक बुखार। वह प्राय चेतना-शून्य हो जाता, और अट-सट बकने लगता। कभी-कभी उसके मुंह से 'माँ', 'बाबूजी' ऐसे शब्द भी निकलते, लेकिन ज्यादातर वह उन घटनाओ को दुहराता-सा मालूम होता, जो इधर के कुछ महीनो मे उसकी जिंदगी मे घटी थी। "स्वराज नही देख सकूगा ?" —एक दिन जब थोडी रात बाकी थी, उसने टूटे-फूटे शब्दो मे यह कहा, और धाड मारकर रोने लगा। फिर दो-चार हिचकियाँ और

अरे, यह क्या हो गया ? उसके साथी भौचक्के हो 'डॉक्टर-डॉक्टर' पुकारने लगे, लेकिन जब तक डॉक्टर आवे, तब तक तो रामू चल बसा था !

लोगोने देखा, उस वाड से भोर मे एक लाश निकाली जा रही है। इस तरह लाशो का निकलना कैंप-जेल के लिए नई बात नही रह गई थी। शुरू मे जब कुछ लोग मरे थे, तो उनकी लाशे चौक पर रखी गई थी, और जेल के एक-एक राजबदी ने उनपर फूल चढाये थे। लेकिन फूल भी चुक गये थे, उत्साह भी कुठित हो चुका था। जहाँ दूसरे-तीसरे दिन लाशे निकले, वहाँ श्रद्धाजलि की यह प्रथा कैसे जारी रखी जा सकती थी ? हाँ, रामू के कुछ साथी और मित्र जरूर उसकी लाश के पीछे-पीछे फाटक तक जा रहे थे। उनकी आखो से जो मोती झरते जाते थे, वे प्रभात की सूर्य-किरणो के स्पश से कभी लाल और कभी फिरोज़ी बनकर चमक उठते थे।

घोर देहात मे था रामू का घर। उसकी लाश जेल से बाहर ले जाने के लिए समय पर कोई पहुँच नही पाया। ऐसे मृत राजबन्दियो के लिए, सरकारी प्रबध था, कुछ वाडर ही उनकी

लाशे गगा-किनारे ले जाते और सरकार द्वारा कृपा कर दी गई तीन मन लकडियो से अतिम सस्कार कर देते। रामू के भाग्य मे भी यही बदा था।

किन्तु, यह क्या? जब उसकी चिता ठढी पड रही थी, अचानक दो व्यक्ति रोते-चिल्लाते आते दिखाई पडे। रामू-रामू कहते, वे लगातार छाती पीट रहे थे। अब तक वार्डरो के हृदय मे एक हल्की उदासी के भाव-मात्र थे, जो ऐसे अवसरो पर स्वभावत ही आ जाते है। किन्तु, इन दोनो को देखते ही जैसे उनके हृदय की करुणा-मन्दाकिनी भी अचानक फूट निकली। वे आगे बढकर उन्हे समझाने की चेष्टा करने लगे। बूढे को पकडा, वह धाड मारकर रो पडा, किन्तु उस बूढी को क्या करे जो, लगती थी, इस चिता को ही बटोर कर हृदयस्थ कर लेगी! अब चेतन की क्या बात, जड भी रो रहे थे मानो। गगा का वह किनारा, किनारे पर का वह बूढा पीपल का पेड, गगा की धार—सब आसुओ मे डूबे हुए थे!

कोई वहॉ ऐसा नही था, जो इसकी घोषणा करता, कि रामू ने अपने को देश के लिए कुर्बान कर दिया, किसीके मुँह से उस दिन रामू का जयकार नही निकला, उसका जनाजा फूलो-भरा भी नही निकल पाया था! एक जगली फूल की तरह वह खिला और अनदेखे झड पडा—उसकी शहादत की अमर साक्षिणी एकमात्र मॉ-गगा रही, जिनके पावन-जल मे, जी-भर कर रो-धो लेने के वाद, उसके पिता ने कॉपते हाथो से उसकी चिता से चुन कर पॉच फूल अपित किये—चिता के वे फूल, श्वेत-शुभ्र, पावन-पवित्र!

कहीं धूप, कहीं छाया

(१)

बाबू साहब की बेटी की शादी है। उनके घर की सरगर्मी का क्या कहना ? किंतु उससे भी ज्यादा सरगर्मी समूचे गाँव मे है। गाँव ही क्यो, उनकी जमीदारी-भर के गावो मे एक हलचल-सी देख पडती है।

बढई बुलाये गये और उन्हे आज्ञा हुई कि इतने पलँग, इतनी कुर्सियाँ, इतनी बेचे आदि तैयार करो, पुराने फरनीचरा की मरम्मत अलग। कुम्हारो को हुक्म मिला कि इतनी हाडियाँ, इतने घडे, इतनी तश्तरियाँ और इतने आबखोरे बनाकर ड्योढी पर हाजिर करो। छोटी जातियो के सछूत लोगो के दरवाजे पर धान के बोरे 'चिउडा' कूटने के लिए रखवा दिये गये, अछूत भी न बचे, दाल ओर आटे के लिए अरहर और गेहूँ के बोरे उनके आँगनो मे फेकवा दिये गये। तबोली से पान की और तेली से तेल की फरमाइश हुई। लोहार से तबू-शामियाने के लिए खूटे और मोखियाँ तैयार करने तथा जलाने के लिए प्रचुर परिमाण मे चैला चीरने की ताकीद कर दी गई। राज को बुलाकर ड्योढी की दीवारो की मरम्मत और उनपर सफेदी करने का आदेश हुआ। ग्वालो तथा गाय-भैस पालनेवाले दूसरे लोगोपर दही और घी के लिए फरमान

निकले । इस तरह, जो जिस योग्य था, उसके सिर पर वैसा बोझ लादा गया —किंतु लादा गया सबके सिर पर कुछ-न-कुछ जरूर । बाबू की बेटी का ब्याह है या ठटठा ?

फिर गॉवो की सरगर्मी और हलचल का क्या पूछना ?

एक पहर रात से ही मूसलो की धम्म-धम्म और चक्कियो की घर-घर्र से — जिनमे कभी-कभी कॉच की चूडियो की खन्-खन् और कासे के कडो की टन्-टन् भी मिली होती थी — सारा गॉव मुखरित हो उठता । कुम्हार का चाक अविरल गति से नृत्य करता, जिसपर उसकी थाप अपने थप्-थप् शब्द से ताल-सी देती रहती । बढई के बसूले की खट्-खट् और लोहार की कुल्हाडी के ठायँ-ठायँ की कण-कटुता को तेली के कोल्हू का चर्र-चो और ग्वाले के मटके का घर-घो बहुत अशो मे स्निग्ध और मधुर बनाने की चेष्टा करता । बाबू साहब की ड्योढी से सटे, एक कमरे मे, दर्जी की सिगर मशीन हरहराती रहती , दूसरी तरफ सोनार की हथौडी-छेनी खुट-खुट करती हुई सोने और चॉदी की निर्जीवता मे सजीव चित्रण करने का प्रयत्न करती । कहा तक गिनाया जाय, सारे गाव का वायुमडल नाना प्रकार के शब्दो से आदोलित और प्रकपित रहता !

कोई दौडा हुआ तबू और शामियाने की मँगनी को जा रहा है, तो कोई कहीसे इत्रदान और गुलाबपाश के गगा-जमुनी जोडे ला रहा है। बाजेवाले और आतिशबाजीवाले—सबको साइयॉ दी जा रही है। पुराने तालाबो की मरम्मत हो रही है, कुओ का कीचड निकाला जा रहा है, टूटी सडके दुरुस्त की जा रही ह , बागो के गड्ढे-सड्ढे भर-भराकर, घास-फूस छील-छालकर, उन्हे साफ-सुथरा बनाया जा रहा है। क्यो न हो ? इतनी बडी बरात आनेवाली है, उसके आराम-चैन के लिए इतना भी न किया जाय ?

बाबू साहब के घर मे भी सरगर्मी है—बाबू साहब बरात के ठहराने, खिलाने-पिलाने, दहेज देने आदि की स्कीमे बनाने मे तल्लीन हैं , और उनकी श्रीमतीजी अपने दामाद को नाना तरह के उपहार और अपनी बेटी को अच्छी बिदाई देने का प्रबध कर रही है। यो बाबू साहब के घर की सरगर्मी कुछ कम नही है , किंतु उनके घर की सरगर्मी और इन गॉवो की सरगर्मी मे कितना अतर है ! ऊपर की सूरत-शकल मिलने पर भी अदर मे —हृदय मे —कितना भेद

है। एक तरफ उल्लास है, आनद है, मनुहार है —दूसरी ओर लाचारी है, बेबसी है, बेगारी है!

(२)

मखना—मातृभक्त मखना अपनी बीमार माँ के सिरहाने बैठा अनवरत पखा झलता और जब-तब माँ को उसकी अपनी करनी के लिए कोस रहा था कि किसीने बाहर से पुकारा—'मखना! ओ मखना! मखना रे—सुनता नही है? घर से बाहर आता है कि "

मखना की माँ आज चार-पाँच दिनो से बीमार है। बीमार तो सभी पडते है, किंतु इस बीमारी को, मखना की समझ मे, उनकी माँ ने स्वय निमत्रण देकर बुलाया है, इसलिए सब सेवा करता हुआ भी वह झल्लाया हुआ था।

बात यह थी कि एक दिन बाबू साहब का सिपाही एक मज़दूर के सिर पर एक बोरा धान लिये पहुँचा और फरमान सुनाया कि आठ दिन के अदर इसका चिउडा कूटकर ड्योढी पर पहुँचाना होगा। डेढ मन धान है, एक मन चिउडा होना चाहिए, तौल मे कमी हुई, तो ख़ैर नही, चिउडा पतला हो, कन-भूसा जरा भी रहेगा, तो अच्छा न होगा। इतना कह, बोरा पटकवा, सिपाही चलता बना। वह कुछ सुनने-सुनाने को राज़ी न था—मालिक की ऐसी ही मर्जी थी।

मखना भी बडा जीवट का आदमी था। पुष्ट शरीर पर कुश्ती ने और भी मद लाद दिया था। वह डेढ मन के बोरे को अकेले सिर पर रखकर बाबू की ड्योढी की ओर चल पडा।

"अधेर है—दिन-भर बेगारी करते-करते मरा जा रहा हूँ, न खाना, न दाना, आज यहाँ जाओ, कल वहा जाओ, आज यह करो, कल वह करो। बाप रे, गाँव-भर परेशान है। यह शादी क्या हुई, हमलोगोकी जान साँसत मे आ गई। अब यह चिउडा!—मेरी स्त्री नैहर चली गई, माँ बुड्ढी और बीमार है, कौन कूटेगा?—उहूँ, यह न होगा, अपनी माँ के गले मे खुद फाँसी न लगाऊँगा, न लगने दूँगा! नही-नही, मुझीको मार डाले! यह उनकी बेटी है कि मेरा काल। एक दिन तो मरना ही है—इसी यज्ञ मे सही "

प्रकार अपने पर अत्याचार कर और मखना को धोखे मे रख उसने चिउडा तैयार कर दिया। मखना भी उसे ड्योढी पर तौलवाकर कुछ निश्चित-सा हुआ।

किंतु मखना की माँ अपने बेटे को धोखे मे डालकर भी प्रकृति को धोखा न दे सकी। अब प्रकृति ने अपने नियम के व्यतिक्रम का दड चुकाना आरभ किया। मखना की माँ बीमार पडी। चार-पाच दिनो से वह शय्या पर बेहोश-सी पडी थी। अग-अग टूट रहे थे, बुखार उतरने का नाम ही नही लेता था, किंतु ज्यो ही आज थोडा बुखार घटा कि मखना को शात करने की कोशिश करने लगी। वह बताना चाहती थी कि बीमारी स्वभावत हुई है, चिउडा कूटने के सबब से नही, किंतु मखना को अब धोखे मे नही डाला जा सकता था। झल्ला-झल्लाकर माँ को कोसता, कहता—"कर अब बेटी का ब्याह ! कहाँ है बेटी ? क्यो नही आकर दवा-दारू करती ? धनी की बेटी गरीबो की मौत होती है ! वह विना खाये तुझे न छोडेगी—हा, तू भी मरेगी, मै भी मरूँगा। मै तुझे अकेले मरने न दूगा। समझी ? मर तो "

इसी प्रकार की झल्लाहट के बीच एक दिन मखना के कानो मे बाहर से पुकार की आवाज पहुँची। बोली से ही वह पहचान गया कि बाबू साहब का सिपाही है। ऐसे श्रुति-मधुर शब्द दूसरे किसके मुँह से निकल सकते थे ? भर्राई हुई आवाज मे उसने भी जवाब दिया—"मुझे फुर्सत नही, मेरी मा बीमार है ?"

"तुम्हारी मा बीमार है, तो क्या इसलिए बाबू साहब की बेटी का ब्याह रुक जायगा ? चल, भरथुआ चौर से पुरइन के पत्ते लाना है, शाम तक लौट आयगा, चलता है "

"नही चलता। बाबू साहब की बेटी का ब्याह नही रुकता, तो क्या मै किसीकी बेटी के लिए अपनी मा को मार दूँ। दूसरा कोई देखनेवाला भी तो नही है, मै नही जाता "

इस सूखे कथन को इस रूखे ढग से कहा गया था कि सिपाही दाँत पीसता हुआ ड्योढी की ओर चल पडा।

(३)

ड्योढी पर आकर सिपाही ने एक की दस-बीस बनाकर सुनाई। मुशीजी—बाबू साहब के कारबार के एकमात्र कर्त्ताधर्त्ता

मुशीजी—क्रोध से आग-बबूला हो गये, और "पाँच सिपाही जाकर, टाँग-टूगकर उस हरामजादे को ले आओ—" यह हुक्म उनके मुँह से निकला ही था कि रामधनी मुखिया बीच मे पड गये। उन्होने मुशीजी को बहुत तरह समझाया—"मखना अभी लडका है, गदेल है, उसका बाप मँगरू ड्योढी का वफादार असामी था। मखना भी सदा बेगार करता रहा है, सचमुच उसकी माँ बीमार है, तो भी उसने ऐसा नही कहा होगा, शायद सिपाहीजी को सुनने मे धोखा हुआ है। मै अभी जाकर बुला लाता हूँ"

रामधनी वृद्ध थे, गाँव के मुखिया थे, मुशीजी ने उनकी बात मान ली। रामधनी अपनी लाठी टेकते मखना के घर आये, बहुत समझाया। मा ने भी आजिज़ी प्रकट की। खैर, मखना राज़ी हो गया और ड्योढी पर आया। रामधनी साथ थे। उन्होने मखना को रास्ते मे ही समझा दिया था कि तुम वहाँ कुछ नही बोलना, जो हुक्म हो, चुपचाप मान लेना। मखना भी यह निश्चय करके आया था, किन्तु यहाँ तो कुछ दूसरा ही होना था।

मुशीजी के सामने एक हट्टा-कट्टा नौजवान खडा था। उसकी चौडी छाती, मासल बाहो और भरे चेहरे को देखकर मुशीजी को आनद नही हुआ। जो एक धनो के लिए गुण है, गरीब के लिए घोर अवगुण। कौन नही जानता कि जब कही चोरी होती या डाके पडते है, तो दारोगाजी आस-पास के ऐसे नौजवानो को ही पहले पकडते है, जो गरीब होकर भी हट्टे-कट्टे होते है। मुशीजी ने मखना को देखते ही समझ लिया कि यह जरूर बदमाश होगा। रुखाई से पूछा—"हूँ, क्या तुम्हारा ही नाम मखना है?"

मखना ने सिर हिलाकर जवाब दिया। मुशीजी बोले—"बोलता क्यो नही बे, क्या गूगा है? क्या सचमुच तूने कहा था कि नही जाता?"

मखना ने स्वाभाविक स्वर मे कहा—"जी हाँ।"

"जी हाँ!"—मुशीजी का क्रोध ज्वालामुखी-सा एकाएक भडक गया। बोलते गये—"जी हाँ कहता है? बदमाश, पाजी। क्यो तुमने ऐसा कहा?"

"सरकार, मैया बीमार ..."

"तेरी माँ की ..."

बस, मुशीजी ने एक ही साँस मे कितनी ही गालियो की गोलियाँ दनादना बरसा दी। वह सुनते ही सन्न हो गया। एक बार उसने रामधनी की ओर घूरकर देखा, मानो उसकी आँखे कह रही हो—रामधनी चाचा, तुम्ही आज मुझे बेइज्जत करवा रहे हो। फिर उसने अपनी प्रज्वलित आँखो को मुशीजी की ओर करके कहा—"मुशीजी, कहे देता हूँ, गालियाँ मत बकिये ..."

"गालियाँ मत बकिये! बकूगा, तो क्या होगा? बोल, बोल, बोल तेरी ..."

मखना के कानो ने सुना, उसकी माँ को न-जाने क्या-क्या गदी गालियाँ दी जा रही है। उसका हृदय चलनी हो गया। उसके गरम मस्तिष्क से विचार-शक्ति भाप बनकर उड-सी गई। वह कहाँ है, यहाँ क्या हो सकता है—आदि बातो के सोचने की बुद्धि ही उसमे न रह गई। वह पागल-सा हो उठा? बिजली-सा कडककर बोला—"गालियाँ रोकिये, रोकिये, नही तो ..."

"नही तो—नही तो—नही तो क्या ... क्या होगा? बोल पाजी।"

यह कहते हुए स्वय बाबू साहब अपने कमरे से निकले। वह भीतर दालान के कमरे मे थे, ओसारे पर मुशीजी बैठे थे। मखना ओसारे के नीचे आगन मे खडा था। कमरे से निकलकर बाज की तरह वह मखना की ओर झपटे। पैर मे खडाऊँ थी। जाते ही उसके सिर पर तडातड मारने लगे।

बाबू साहब का आना और मारना पलक मारते हुआ। मखना नही जानता था कि बाबू साहब भीतर बैठे सब सुन रहे है। शायद रामधनी भी नही जानते थे। बाबू साहब को देखते ही मखना स्तम्भित-सा हो गया। यहाँ तक कि दो-तीन खडाऊँ खोपडी पर पडने पर भी अचल खडा था, किंतु जब सिर से लहू की बूँदे टप-टप करके टपकने और उसके ललाट, गाल आदि को भिगोती हुई जमीन पर गिरने लगी, तब जैसे वह कुछ चचल-सा हो उठा। बाबू साहब उसके एकदम

निकट खडे खडाऊँ मारे जा रहे थे। इस बार ज्यो ही उन्होने खडाऊँ उठाकर उसके सिर पर पटकनी चाही, त्यो ही उसने उस प्रहार को रोकने की नीयत से अपनी बॉह उस ओर बढा दी। खडाऊँ सिर तक नही पहुँची, किंतु इस प्रकार रोकने से जो प्रतिघात हुआ, उसे बाबू साहब—दुबल-काय, क्षीण-शरीर बाबू साहब—बर्दाश्त न कर सके। वह ढिलमिलाकर जमीन पर आ रहे। बाबू साहब को गिरते देख मखना भौचक हो उठा। लपककर उठाना ही चाहता था कि एक सिपाही ने उसके सिर पर एक जबरदस्त लाठी जमा दी।

फिर तो 'मारो-मारो' का तमुल-नाद होने लगा। दो-तीन आदमी बाबू साहब को लेकर ओसारे पर बिठा आये—क्योकि उन्हे चोट-ओट तो आई नही थी, सिफ कमजोरी के कारण जरा लुढक गये थे। बाकी लोग—सिपाही, नोकर, अमले आदि—मखना पर प्रहार-पर-प्रहार करने लगे। लाठी, छडी, जूते, लात, सबका विपुल प्रयोग किया जा रहा था।

लाठी-छडी, लात-जूते, इन सबका विपुल प्रयोग किया ही जा रहा था कि इतने मे उन्हीमे से एक आदमी चिल्ला उठा—"मर गया! मर गया!!" रामधनी अलग खडे बगल से यह सब देख रहे थे। 'मर गया', यह आवाज सुनते ही दौडे, और मखना के शरीर पर लेट गये। इनके लेटने और 'कही मर न गया हो, फिर तो कल से ही शादी के बदले ' इस आशका के कारण भी, यह प्रहार-प्रकरण जहाँ-का-तहा रोक दिया गया।

मखना का क्षत-विक्षत शरीर निर्जीव-सा पडा है। उस जगह की जमीन खून से रँग गई है। खोपडी एक जगह फट गई है, जिससे रक्त का अविरल प्रवाह चल रहा है। नाक और मुँह से भी खून निकल रहा है। जहा एक मिनट पहले एक हट्टा-कट्टा नौजवान था, वहाँ अब मास का एक लोथडा-सा पडा है। रामधनी कभी उसकी नाक दबाते और कभी मुह मे पानी देने की चेष्टा करते है। बाबू साहब तो अपने कमरे मे पलँग पर जा लेटे ह, जहाँ उनपर पखा झला जा रहा है। किंतु मुशीजी इस घटना के गुरुत्व को—'कही मर गया, तो पुलिस के द्वारा कितनी परेशानियाँ उठानी पडेगी', इस बात को समझकर वहाँ खडे उसे होश मे लाने के लिए नाना तरह के उपचार बता रहे है। जिन निर्दय हाथो ने

निष्ठुर प्रहार किये थे, वे अब कृत्रिम उपचार में लगे हैं। शायद तडपने का तमाशा देखने के लिए!

(४)

चार दिनो से समूचे गॉव मे धूमधडक्का मचा हुआ है। बाबू साहब की बेटी के ब्याह की बरात आई है। ऐसी बरात इस जवार मे कभी नही आई। गॉव के बुड्ढे, जवान, बच्चे, स्त्रिया, लडकिया सब बरात देखन मे मग्न हैं। दूर-दूर के गावो से भी लोग दशक-रूप मे आते-जाते रहते ह।

हाथी, घोडे, मोटर, बग्घी आदि की क्या गिनती? नाच-गान का बाजार दिन-रात गरम रहता। रात मे थिएटर होता, आतिशबाजिया छूटती, हा-हा-ही-ही-हू-हू से दिगत आदोलित रहता।

खाने-पीने की भरपूर व्यवस्था है। चिउडा-दही की कौन बात, दिन-रात गरमागरम पूडियॉ-कचोडिया उडती रहती। नाना तरह की मिठाइया की सुगध से तमाशबीनो की नाक भरी रहती, खानेवालो की जीभ की हालत का क्या वणन किया जाय!

बाबू साहब की उमग का क्या कहना! मुशीजी के पैर तो जमीन पर पडते नही। यदि बाबू साहब इस महाभारत के दुर्योधन थे, तो मुशीजी शकुनि। नौकर-चाकर सभी रगीन कपडे पहने उडते-से दीख पडते।

बाबू साहब के महल मे सगीत की गगा-जमुना तरगे ले रही ह। सास खुश हैं—योग्य दामाद पाकर, सरहज खुश है—सुघड ननदोई देखकर, और सालियॉ व्यस्त हैं—सुन्दर बहनोई लेकर।

चारो ओर मस्ती, आनद, उन्माद, उल्लास का समुद्र लहरा रहा है।

किंतु गॉव मे एक ऐसा भी घर है, जहॉ इस समय एक दूसरा ही समुद्र अपना तूफानी रूप दिखला रहा है—न-जाने यह किसकी भरी नाव डुबाएगा।

मखना उस दिन मरा नही, किंतु, जी गया घुल-घुलकर मरने के लिए। जब कुछ उपचार के बाद उसे होश आया, रामधनी उसे उठाकर उसके घर ले गये। निस्सदेह चलते समय मुशीजी ने चॉदी

के कुछ चमचमाते टुकडे रामधनी के हाथ मे रख दिये कि इनसे इसकी दवा-दारू करना, किंतु रामधनी ने विनय-पूर्वक अस्वीकार कर दिया। कहा—"सरकार, अभी मेरे पास कुछ पैसे है, जरूरत पडेगी, तो ड्योढी पर हाजिर होऊँगा।" वह अनुभवी थे, जानते थे, ये रुपए उदारता-वश नही दिये जा रहे है, वरन् जिसमे किसी तरह पुलिस को खबर न लगे, इसके लिए यह घूस मिल रही है।

बेटे की यह हालत देखकर माँ की क्या हालत हुई होगी, कल्पना कीजिए! पहले तो वह चीख उठी। किंतु, तुरत ही अपने को जब्त कर वह बेटे की सेवा-शुश्रूषा मे लग गई। न-मालूम उसकी बीमारी कहाँ चली गई? न-जाने उसमे यह शक्ति कहाँ से आ गई?

गाव के दो-चार नवयुवको ने थाने मे खबर देने की चर्चा की, किंतु बूढो ने डाँट दिया। बाबू साहब से मुकदमे मे कौन जीतेगा, फिर, मुकदमे के लिए रुपए भी तो चाहिए।

इस दुस्सवाद को सुनकर मखना की पत्नी भी आ गई है। दोनो सास-पतोहू दिन-रात परिचर्या मे लगी है। रामधनी भी वही बैठे रहते है।

देहात मे परिचर्या ही क्या? कुछ लोगोने अस्पताल मे ले जाने की बात चलाई, किंतु इसकी खबर ज्यो ही ड्योढी पर पहुँची कि बाबू साहब ने खुद रामधनी को बुलाकर डाँट दिया। अस्पताल मे जाने से पुलिस पर भेद खुल जाने का डर था।

मखना की हालत दिन-दिन खराब होती गई।

वह दिन-रात कराहता रहता। ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, पीडा घुलती गई, कराहना बढता गया। उसके अग-अग कचोटते रहते, रह-रहकर टीस उठती—मानो सैकडो सुइयाँ एक साथ चुभोई जा रही है। सदा बुखार—जोरो का बुखार—बना रहता। वह प्राय बेहोश ही रहता। वह बेहोशी में अटसट बका करता—मैयाँ चिउडा सिपाही मुशीजी तेरी बाबू साहब खडाऊँ मारो-मारो रामधनी चचा—बस, इन्ही कुछ शब्दो के इर्द-गिर्द उलटा-पुलटा उसका बकना होता। कभी हँसता, कभी रोता, कभी उत्तेजित होकर खडे होने की कोशिश करता। तीनो प्राणी सँभाल कर रखते और रोते—पत्नी रोती, माँ रोती और रोते रामधनी चाचा।

किंतु आज अकस्मात् मखना की हालत अच्छी देखी गई। न वैसी कराह है, न छटपटी। थोडी चेतनता के चिह्न भी दीख पडे। बुखार कुछ उतर गया था। रात उसे नीद भी आई। भोर मे ज्यो ही उसने आँखे खोली, माँ ने उत्सुकतापूवक हौले से पूछा—"बेटा, जी अच्छा है न ?"

मखना ने सिर हिलाकर 'हाँ' की सूचना दी। माँ जैसे निहाल हो गई। आनद से उसकी आँखे चमकने लगी, जिनके कोने पर पानी की कुछ बूदे डबडबा आई। फिर मखना ने जैसे कुछ बोलने का प्रयत्न किया—किंतु बोल न सका। बेचैनी की एक रेखा-सी उसके ललाट पर खिच आई। माँ इसको ताड गई। कुछ पूछना ही चाहती थी कि मखना ने इशारे से पानी पिला देने का भाव जतलाया। मा ने अस्त-व्यस्त होकर बहू से पानी लाने को कहा। बहू ने झटपट पीतल के एक कटोरे मे औटा हुआ पानी लेकर सास के हाथ मे दे दिया। मा ने सोये-सोये ही पानी पिला देना चाहा। किंतु, मखना ने उठाकर पिलाने का सकेत किया। सास-बहू ने मिलकर यत्न से उठाया—रामधनी बाहर गये थे। उठाकर ज्यो ही उसके मुँह से कटोरा लगाया कि मखना को ज़ोर से हिचकी आई। एक दो तीन। तीसरी हिचकी के साथ-ही-साथ उसके मुँह से जमे हुए खून का एक लोदा नीचे गिर गया। उस लोदे को देखते ही सास-बहू अधीर हो गई। माँ सिसकिया भरती हुई 'बेटा-बेटा' कह ही रही थी कि इधर बेटे की आँखे उलट गई। वह लुढककर उसकी गोद मे गिर पडा।

आज बाबू साहब की बेटी की बरात वापस जानेवाली है। रात से ही महफिल जमी है, जो भोर तक भी खतम नही हुई। रग-गुलाल उड रहे हैं, गुलाब-इत्र का छिडकाव हो रहा है, पान-इलायची कचरे जा रहे हैं। समधी-समधी मिल रहे हैं—हा-हा-ही-ही का बाज़ार गम है। नाच-गान का समा बँधा है—हँसी-दिल्लगी के फव्वारे छूट रहे हैं। समूचा गाँव इस उत्सव-तरग में डुबकियाँ ले रहा है। इसी गाँव मे, इसी समय, एक घर मे, इसी बरात के चलते, जो एक प्रलय-दृश्य उपस्थित है, उसकी ओर कौन ध्याद दे ?

गाँव के एक छोर पर एक फूस के घर से, हृदयवेधी आवाज आ रही थी—"हो रजऊ !" दूसरे छोर पर, एक विशाल शामियाने के नीचे, "गरवा मे गरवा लगा जा हो बालम" का सुरीला स्वर निकल रहा था।

ज़ुलेखा पुकार रही है

(१)

दो दिनो तक राची की ठढी हवा से दिमाग मुअत्तर करने के बाद सोचा, क्यो न घर लौटने के पहले जरा उस जगह को भी देख लू, जहाँ हिन्दुस्तान भर के बद-दिमागो की बस्ती बसाई गई है? मेरा मतलब काके से था। फिर क्या, अपना बोरिया-बधना सँभाल वहा जा पहुचा। जब पागलखाना देखने के लिए टिकट पाने की दौड-धूप मे था, तब पता चला, मेरा पुराना क्लास-फ्रेड हसीब ही उस पागलखाने का इन दिनो डिप्टी-सुपरिटेडेट है। हसीब उसी पुराने प्रेम से मिला। हाथ मिलाने से ही उसे तसल्ली नही हुई, वह मुझसे भरपूर लिपट गया। खादी के धूमिल कुर्त्ते से दपादप सूट का वह गाढालिगन देखने ही लायक था।

हसीब ने बडे प्रेम और चाव से मुझे पागलखाना दिखलाया, फिर अपने बँगले मे ही ठहराया। जब हम खाना खा रहे थे, मैंने कहा—"हसीब, तुमने यह क्या नौकरी पसद की? यह तो सुना था, तुमने डॉक्टरी लाइन पकडी है, लेकिन मैंने यह सपने मे भी नही सोचा था कि तुम्हारा तूफान मेल यहाँ आ लगेगा।"

यह कहते समय निस्सन्देह मेरे दिमाग पर पागलखाने के दयनीय और वीभत्स दृश्यो का बोझ था। किन्तु, हसीब ने अपने हँसमुख चेहरे से, मानो मेरे इस बोझ को हलका करने के लिए ही,

दिल्लगी के स्वर मे कहा—"और, मने भी यह नही सोचा था कि तुम वकील बनने की साध लिये एक दिन कौम के फकीर बन जाओगे । अरे यार, यह दुनिया हे—यहाँ आदमी सोचता कुछ ओर हे, और हो जाता कुछ और है ।"

खाने-पीने के बाद कुछ इधर-उधर की गप-शप चली । हम दोनो यार बहुत दिनो पर मिले थे । बहुत-सी बाते करनी थी । हसीब खोद-खोदकर पूछता भी था । लेकिन, मेरा दिमाग तो जसे पागलो की बस्ती मे था—"उफ्, आदमी क्या से क्या हो जाता है !" म यह सोचता और मुँह से उसके सवालो का हाँ-ना जवाब दिये जाता । आखिर मैंने उसका ध्यान भी इस ओर केद्रित किया । एक-दो बार उसने बाते टालने की कोशिश भी की, किंतु मेरी अज़हद दिलचस्पी देखकर वह इस ओर रुजू हुआ, और बोला—

"मेरे दोस्त, पागलो से दिलचस्पी तो सब लोग रखते ह लेकिन भीतर, तह तक, जाने की कोशिश कौन करता है ? उन्हे तरह-तरह के स्वाग भरते, तरह-तरह की भावभगी दिखाते, तरह-तरह की अजीबोगरीब हरकते करते देखकर लोग हँसते ह, मन बहलाते हैं, दो घडी की दिलबस्तगी कर लेते है और इस दिलबस्तगी और मन-बहलाव के लिए कुछ खच करने को भी तैयार हो जाते है । सिफ तुम्ही नही आये, बहुत-से लोग यहा हमेशा आते ही रहते हैं । यह पागलखाना क्या हुआ, चिडिया-घर हो गया , अलीपुर न देखा, कॉके देखा । ये आदमी नही, चिडियाघर के चित्र-विचित्र जानवर है । देखो, हँसो ! वह बदर है, ज़रा छेड दो , वह शेर है, ज़रा दूर ही रहो । यही इन दशको की मन स्थिति इन पागलो के बारे मे होती है । भयानक पागलो को अलग-अलग से ही देखा, और सुधुओ से दो-एक दिल्लगी कर ली, मन-भर हँस लिया और चल दिये। खैर, अच्छा ही है, क्योकि अगर तह तक जाया जाय, तो हँसन के बदले इनपर रोना पडे, आसुओ से मुँह धोना पडे । क्याकि आज तुम जिन्हे जानवर देख रहे हो, कभी वे तुम्हारी ही तरह इसान थे—दया, ममता, खुशी-गमवाले इसान ! जिन्हे आज तुम यहाँ ढूह की शकल मे देख रहे हो, वे कभी सुन्दर इमारते थी—हा, सुन्दर, मोहक ! लेकिन, अचानक ऐसे धक्के लगे कि ये अपने तो गिर ही गई , कितनो को मलवे के नीचे ले बैठी—कितने अरमानो, और उम्मीदो को। दोस्त, पागलपन !—यह ट्रेजडी है, ट्रेजडी !"

हम दोनो टेबुल के दोनो ओर कुरसियो पर आमने-सामने बैठे थे। मैने देखा, हसीब का चेहरा यह कहते-कहते लाल हो उठा है। और, उसकी आखो मे शायद नमी भी थी, जिसे उसका चश्मा छुपाये हुए था। बात यो थी कि गो इस लाइन मे वह नौकरी की गरज से ही आया था, लेकिन उसका जजबाती दिल धीरे-धीरे पागलो की जिदगी मे रस लेने लगा था। पागलखाना उसके लिए अब सिफ रोटी का जरिया नही रह गया था, बल्कि अब वह उसका लेबोरेटरी हो चला था, जहाँ वह नये-नये प्रयोग करता, और नये-नये अनुभव प्राप्त करता। वह सिफ पागलो का डॉक्टर नही था, उनका हमदद हो चला था। मै देख रहा था, जब वह बोल रहा था, उसकी जबान ही नही हिल रही थी, उसके दिल के तार झनझना रहे थे। थोडी देर रुककर, मानो मेरे मनोभावो को पढने की चेष्टा करता हुआ, वह फिर बोला—

"और पागलपन कोई शख्सी बीमारी नही है, दोस्त, यह तो एक सामाजिक रोग है। सिवा चद खानदानी पागलो के आदमी बजातखुद पागल नही होता, बल्कि पागल बना दिया जाता है। आज शाम को तुमने किसी भलेमानस को भला-चगा देखा, वह प्यारा पति, भला बाप, नेक बेटा, सच्चा दोस्त था। एक हँसता-खेलता बिलकुल नेचुरल इसान! लेकिन, रात मे ही कुछ ऐसी घटना घटी कि रातोरात उसका चेहरा ही बदल गया! वह अजीब ढग से बोलने लगा, अजीब ढग से चलने लगा, अजीब हरकते करने लगा। दुनिया चिल्ला उठी—वह पागल हो गया! उसे बाधा गया, बहुत बार पीटा भी गया, फिर रो-धोकर उसकी दवा-दारू कराई गई, और जब कुछ न बन पडा, तो काके के इस काजीहाउस मे उसे डालकर निश्चित हो जाया गया। किन्तु, कोई भला-आदमी इसपर कुछ सोचने की तकलीफ गवारा नही करता कि आखिर उसकी यह दुगत क्यो हुई? किसने की? आग लगाकर पानी के लिए दौडना इसीको कहते ह।"

इसके बाद उसने कई मिसाले पेश की। सुन-सुनकर मेरे रोगटे खडे हो जाते। उसने पूरे तीन दिनो तक मुझे वहाँ रोक रखा। कई पागलो को उनके इतिहास के साथ उसने मुझे दिख-लाया। किन सिद्धान्तो पर उनकी चिकित्सा होती है, कैसे उन्हे अच्छा किया जाता है, यह सब ब्योरे के साथ उसने बताये। अत

मे, जिस दिन मै जाने की तैयारी कर रहा था, उसने जो एक कहानी सुनाई, क्या मै ज़िदगी-भर उसे भूल सकूगा ?

(२)

शाम का वक्त था। हसीब अपने बॅगले मे बैठा हुआ कुछ दोस्तो से गप-शप कर रहा था। उसी समय उसके चपरासी ने एक मुलाकाती काड उसके सामने रखा। उसपर एक डिप्टी-कलक्टर साहब का नाम था। वह मुसलमान थे। डिप्टी साहब को हसीब ने बुलाया। अधबयस-से आदमी, चेहरा सूखा, भर्राया। किस काम से तशरीफ लाये, पूछे जाने पर उनकी आखो से झर-झर ऑसू झरने लगे। बडी मुश्किल से कह पाये, उनका लडका—पटना-कॉलेज का शानदार ग्रेजुएट—अचानक पागल हो गया है। बहुत दवाये की, अच्छा नही हुआ। आखिर उसे यहा ले आये ह। उन्होने सुना था, हसीब यहाका डिप्टी-सुपरिटेडेट हे। उन्हे थोडा धीरज हुआ कि हम-मज़हब होने की वजह इस मुसीबत-जदे पर उसका ज्यादा ख्याल होगा। इसी उम्मीद मे उसके पास वह आये ह। हसीब ने उनसे बीमारी का ब्योरा पूछा। उन्होने बताया, वह कोई भयानक या गदी हरकत नही करता, न गालियॉ बकता, न चीखता-चिल्लाता है। यो बडा भोला-भाला-सा है, लेकिन अचानक वह चौक उठता हे, इधर-उधर कोई चीज़ खोजता है, अगर कोई चीज मिली, तो उसे लेकर, नही तो हाथो से ही वह जमीन खोदने लगता है। जमीन खोदता है, रह-रहकर ज़मीन से कान लगाकर कुछ सुनने की कोशिश करता है, फिर खोदता है, और यदि जबर-दस्ती पकड न लिया जाय, तो तब तक खोदता रहता है, जब तक बेहोश न हो जाय। उसकी उँगलियॉ घिस गई ह, उन्हे वह खोदते-खोदते लहूलुहान कर डालता है। यह खोद-खाद वह कब शुरू करेगा, कोई ठिकाना नही। लोगोके पूछने पर कि क्या कर रहे हो, होठो मे ही कुछ बुदबुदाता है, जो किसीकी समझ मे नही आता।

उस समय उन्हे धीरज देकर और कल रोगी को लाने को कहकर हसीब ने उनसे फुरसत ली। दूसरे दिन भोर मे ही बेटे को लिये वह डिप्टी साहब पहुँचे। बेटा बिलकुल नौजवान था। अभी मसे भीग रही थी। सूखे, उदास, खाये-खोये चेहरे से भी खूबसूरती टपकी पडती थी। बडी-बडी ऑखे, जिनमे से प्रतिभा झॉकती-सी मालूम पडती थी। कभी वह बहुत जहीन रहा होगा,

इसमे शक नही। हसीब ने उसका नाम पूछा, एक बार बडे गौर से उसने हसीब के चेहरे को देखा, फिर अपना नाम बतला दिया। कहाँ तक पढा है, क्या क्या विषय लिये थे, कॉलेज मे उसके कोन-कौन प्रोफेसर थे, सबका जवाब उसने सही-सही दिया। हसीब ने समझा, मर्ज लाइलाज नही है। उसकी भर्ती पागलखाने मे करा दी। बाप को इत्मीनान दिलाया कि वह घबराये नही, उनका लडका जरूर ही अच्छा हो जायगा।

पागलो की चिकित्सा मे उनकी कहानी जानना सबसे जरूरी है। कुछ बाते तो उसने बाप से दरियाफ्त की, कुछ मरीज से। किस्से से निकट का सम्बन्ध रखनेवाल अन्य कई व्यक्तियो से भी कुछ बाते पूछी-पुछवाई। बडी मुश्किल से एक-एक कडी जुटाकर जो चीज बनी, वह या थी—

डिप्टी साहब का यह एकलौता बेटा है। इसका जन्म तब हुआ था, जब डिप्टी साहब पढ ही रहे थे। डिप्टी साहब का परिवार साधारण हेमियत के देहाती काश्तकार का था। काश्तकारी अच्छी थी, अच्छे खाते-पीते लोग थे। डिप्टी साहब के पडोस मे ही, उनकी ही हैसियत के, उनके एक लँगोटिया यार थे। दोनो की बीवियो मे भी खामी दोस्ती गँठ गई थी। डिप्टी साहब के इस बच्चे के जन्म के चार माल बाद उनके दोस्त के एक लडकी हुई। दोनो बीवियो ने हँसी-हँमी मे तय कर लिया कि इन दोनो की शादी होगी। दोनो यारो ने यह खबर सुनकर एक जोर के ठहाके मे स्वीकृति दे दी।

दिन बीतने लगे। डिप्टी साहब बी० ए० करके सब-डिप्टी फिर पूरे डिप्टी बन गये, लेकिन उनके यार देहात के ही काश्तकार बने रहे। दोनो के बच्चे भी बढे। जब दोनो बच्चो को होश हुआ, उन्हे खबर लगी, दोनो का ब्याह पहले से ही तय है। लडकी शुरू से ही शर्म करने लगी, बच्चा बचपन से ही उसे छेडने लगा। दोनो की जोडी जैसे खुदा ने खुद बनाकर भेजी हो। दोनो से खूबसूरती चुई पडती। बच्चे का नाम था सलीम, बच्ची का जुलेखा।

सलीम लोअर, अपर और मिडिल देहान मे ही करके अपने डिप्टी बाप के साथ शहर में रहने लगा। जुलेखा घर पर ही

उर्दू लिखना-पढना सीखकर सिलाई-बुनाई मे कलाकारी हासिल करने लगी ।

सलीम की माँ घर पर ही रहती । तब वह जमाना न था, जब डिप्टी साहब लोग अपनी मेम साहब को साथ रखते । पुराने रीति-रिवाज का दोरदौरा था । छुट्टियो मे डिप्टी साहब आते, उनका यह एकलौता लडका आता, जिसके देखने के लिए उसकी माँ छटपट किये रहती । इस लडके के बाद उस बेचारी के एक बच्ची हुई, जो मर गई । तबसे कोई बच्चा नही हुआ । फलत उसका ध्यान अपने इस बच्चे पर ही हमेशा टँगा रहता । गाव के नजदीक मिडिल तक स्कूल था, तब तक उसने अपने इस प्यारे बेटे को आँखो से ओझल नही होने दिया था, लेकिन अब तो लाचारी थी । लडके का पढना-लिखना जरूरी था, इसलिए उसे अलग करना पडा, लेकिन छुट्टी होने पर अगर उसके पहुँचने मे एक-आध दिन की देर हो जाती, वह छटपट करने लगती ।

छुट्टी मे जब सलीम आता, शहर की कुछ दिलचस्प सौगात जुलेखा के लिए जरूर लाता । जुलेखा भी उसके लिए रूमाल, तकिए के खोल, टेबुल-क्लॉथ आदि पर कुछ बेल-बूटे काढकर तैयार रखती ।

जब सलीम फिर पढने चला जाता, उसकी मा जुलेखा को प्राय अपने ही घर पर रखती, और उसे तरह–तरह की दस्त-कारी और घरेलू काम–काज सिखाती। जुलेखा कभी उसके घर को बसायगी ही, फिर वह अभी से उसे तालीम देकर क्यो न योग्य पतोहू और चतुर गृहिणी बनाकर रखे ?

धीरे–धीरे सलीम कॉलेज में गया, मूछ पर जरा-सी काली रेखाएँ आने लगी। उसकी माँ सोचने लगी, अब जल्द शादी कर दी जाय। जुलेखा की माँ भी यही चाहती थी। लेकिन, डिप्टी साहब टालते गये। उनका कहना था, कम-से-कम लडके को ग्रेजुएट होने दो, शादी हो जायगी। तयशुदा बात है, जल्दी क्या है ? माँ कहती, तुम्हारी शादी तो पहले हो चुकी थी, तो भी तुम पढते रहे, बी० ए० किया, डिप्टी हुए। शादी हो जाने दो, मुझे अकेले घर नही सुहाता। डिप्टी साहब हँसकर कहते—पतोहू को घर मे तो पहले से ही रख लिया है, अब जाब्तगी की ही तो देर है, घबराहट क्या है ? माँ इस झाँसे-पट्टी मे नही आती, वह जवाब देती, इसीसे तो और

भी कहती हूँ कि जल्द शादी हो जानी चाहिए। जिसको इतना नजदीक रखती हूँ, उसमे जरा भी परायापन महसूस करूँ, यह बरदाश्त नही होता। लेकिन, डिप्टी साहब की मर्जी तो सबके ऊपर थी। बात टल्ती ही जाती। जुलेखा और सलीम के कानो मे भी ये बात पडती। जुलेखा शर्म से गडी जाती, सलीम दिन मे सपने देखता।

किंतु कैसी दुःख की बात —मा बेटे की शादी का अरमान लिए ही अचानक चल बसी। गाँव मे हैजा फैला था। वह भी बीमार पडी, और जब तक डिप्टी साहब या सलीम पहुँचे, वह सास तोड चुकी थी।

डिप्टी साहब अब छुट्टियो मे घर कम आते, बाद मे तो आना ही छोड दिया। सलीम चाहकर भी छोटी छुट्टियो मे नही आ पाता। जुलेखा अपने घर रहती। जब कभी बडी छुट्टियो मे दो–चार दिनो के लिए सलीम इस देहाती गाव मे पहुँचता, जुलेखा निहाल हो जाती।

कुछ साल यो ही बीत गये। अब सलीम बीस साल का अच्छा-खासा नौजवान था, जुलेखा सस्कृत-कवियो की प्यारी 'षोडशी' हो चली थी। सलीम भी ग्रेजुएट हो चला था। अगर उसकी माँ रहती, तो कुछ पूछना ही नही था, शादी भी हो चुकी होती। लेकिन, उसके अभाव मे अब डिप्टी साहब से तकाजा कौन करे ? बेटी को इस उम्र मे देख जुलेखा की माँ को उसकी शादी के लिए चिंतित होना लाजिम था। उसने अपने पति पर जोर डाला। उस बेचारे ने अपने पुराने लँगोटिया यार डिप्टी साहब को लिखना शुरू किया। लेकिन डिप्टी साहब उन्हे इत्मीनान दिलाते हुए टालते गये। एक साल यो ही बीत गया। अब जुलेखा की मा ने अपने पति को, खत-किताबत पर न रहकर, डिप्टी साहब के पास जाने को लाचार किया। यह महाशय डिप्टी साहब के दरबार मे पहुँचे। डिप्टी साहब की उस शहरी शान-शौकत का क्या कहना ? लेकिन, उन्होने अपने लँगोटिया यार की खातिर मे कमी नही की। पूरे दुनियादार आदमी थे। उनकी खातिरे की, बहुत-सी फालतू बाते भी की, लेकिन शादी की चर्चा से बचते रहे। और, जब यार ने लाचार यह प्रसग छेड ही दिया, तो फिर, 'जल्दी क्या है,' कहकर दूसरी बातो मे उन्हे बहला दिया।

जब वह घर पहुँचे, जुलेखा की माँ बहुत बिगडी—तुम समझते नही, घर मे जवान बेटी रखे हुए हो, और आप यारबाशी करते

फिरते हो। जुलेखा की शादी इस साल होनी ही चाहिए। तुम फिर एक बार जाओ। उनसे साफ कहो, यह तो उनकी पतोहू है ही, उसे अपने घर अब ले जायें। सलीम भी बडा हुआ, खुदा उसे सलामत रखे।

लेकिन इस बार जब यह बेचारे डिप्टी साहब के पास पहुँचे, तो प्रसग चलाने पर वह किस तरह कन्नी काट गये—"अरे यार, तुम निरे देहाती भोले हो, बातो को समझते नही। यह ठीक है कि मै वादा कर चुका हूँ। बात तय-सी थी, लेकिन आजकल के लडके पढ-लिख-कर क्या माँ-बाप के रह जाते है। खासकर शादी के मामलो मे? तुम्हारी लडकी बडी खूबसूरत, बडी नेक है—एक ज़माना था, सलीम उसे चाहता भी था। लेकिन, आजकल लडको की पसद की बात मत पूछो। मुझे शक है, जुलेखा अब सलीम को भा सकेगी, या वह उसे अपनी बीवी बनाना चाहेगा? तरह-तरह के लोग निस्बत लेकर आ रहे है। एक सब-जज साहब है, उनकी लडकी इट्रेस मे पढ रही है, दहेज मे मोटर देने को तैयार है। उस दिन एक एस्० पी० साहब आये थे, लडकी का फोटो भी लाये थे, कहते थे, मेरे यहाँ शादी होने दीजिए, सलीम को मै पढने के लिए विलायत भेज देता हूँ। यहाके कलक्टर ने भी एक दिन एक निस्बत की बात चलाई थी! बताओ, यार, इतने पर भी क्या वह तुम्हे अपना ससुर चुनना पसद करेगा? मुझे अफसोस है, लेकिन दूसरा चारा ही क्या है—अब जाओ, जुलेखा की शादी कही दूसरी जगह कर दो, पैसे की दिक्कत हो, तो कहना, मै तुम्हारी मदद को हमेशा तैयार हूँ।"

जुलेखा के बाप के सिर पर जैसे वज्र टूटा! वहाँ एक क्षण भी ठहरना वह गवारा नही कर सके। भागे-भागे घर आये, बीवी से बाते सुनाइ। बीवी ने एक बार सिर पर हाथ मारा फिर सँभल-कर बोली—तुम सलीम से नही मिले, वह जुलेखा को प्यार करता है! पिछली बार भी जब आया था, दोनो कैसे घुले-मिले थे। वह शरीफ लडका है, वह धोखा नही दे सकता। लेकिन शौहर ने दीन-दुनिया समझाई, जमाने का रग-ढग बताया और फिर दोनो नये घर-वर की तलाश मे लग गये।

जहाँ चाह, वहाँ राह। आखिर जुलेखा के लिए एक वर ठीक हो ही गया, शादी का दिन भी तय हो गया।

डिप्टी साहब के पास से लौटकर अपने बाप के आने के बाद जुलेखा ने सब सुना था। उसके काटो, तो खून नही। लेकिन, न वह रोई, न चिल्लाई, न चेहरा उदास किया, न आँसू बहाये। मानो शकर की तरह जहर का घूट पीकर रह गई। उसकी माँ को भी आश्चय होता, जुलेखा क्या सचमुच सलीम को नही प्यार करती थी ? खैर, जब शादी का दिन तय हो गया, और उसके बाप ने अपने लँगोटिया यार डिप्टी साहब को शिष्टाचार-वश निमत्रण का खत भेजा, तो उस खत के साथ, माँ के आग्रह पर, जिदगी मे पहली बार उसने एक पक्ति सलीम को लिख दी—"क्या तुम आ सकोगे ? एक बार तुम्हे देख ले, फिर न जाने जिदगी मे कभी भेट होती है या नही ?"

निमत्रण का खत पाकर घाघ डिप्टी साहब मुस्कुराये। अब उनकी गोटी लाल थी। अब अपने बेटे की शादी वह मनमानी जगह कर सकेंगे, खूब दहेज वसूल कर पायेंगे। ऊँची रिश्तेदारी होगी, खानदान का रुतबा बढेगा। जब बात तय हो ही चुकी, तो एक आखरी रस्म से क्यो मुँह मोडे ? अच्छी तरह न्योता पूरा जाय। सयोग की बात, गर्मी की छिट्टयो मे सलीम भी कॉलेज से फुरसत पाकर उनके पास, जो एक मुफस्सिल शहर मे उन दिनो रहते थे, आ गया था। शादी मे सिफ दो दिन रह गये थे। उन्होने सलीम को न्योते के खत के साथ जुलेखा का वह खत भी दिया और उससे आग्रह किया कि तुम्हे जरूर जाना चाहिए। मानो, बेटे पर अपनी उदारता की धौस जमा रहे हो। इसी सिलसिले मे यह भी कहा कि जुलेखा के बाप दो बार आये थे, उन्होने उनसे थोडा और ठहरने को कहा था। मगर उनकी लडकी सयानी हो चली थी, कैसे ठहरते बेचारे ? खैर, अब सलीम को उस सब-जज साहब या उस एस० पी० साहब की निस्बतो पर विचार करना होगा। एक पुराने रईस की ओर से ज़िले के कलक्टर साहब ने भी उनसे कहा था। यहाँ तक कि बाते करते-करते एस्० पी० साहब के यहा से आया फोटो भी उन्होने सलीम के सामने रख दिया।

सलीम कुछ समझ न सका, कुछ बोल न सका। डिप्टी साहब उसी शाम को बाजार गये और न्योते के लिए चीज़े खरीद लाये। जुलेखा के लिए एक बढिया साडी, सलूका और चादर लाये, और बोले —"उसकी माँ से कहना, इसी को पहनाकर बेटी को ससुराल

भेजे । आह, कहाँ बेचारी मेरे घर आती, कहाँ पराये घर जा रही है ।" डिप्टी साहब की आँखे भी नम थी ।

न्योता लिये जब सलीम गाँव पहुँचा, बरात आ चुकी थी। जुलेखा के दूल्हे को देखा, अच्छा-खासा खूबसूरत नौजवान था । उसे थोडा सतोष हुआ । फिर, जुलेखा के घर पहुँचा । उसके बाप ने उसकी आमद पर खुशी जाहिर की, और बताया, सयोग से जुलेखा को अच्छा घर-वर मिल गया है । उसकी मा की आँखे सलीम को देखते ही डबडबा आई, लेकिन इस खुशी के वक्त आँसू के लिए जगह कहाँ थी ? आखो का पानी आखो मे ही पी गई । उससे खैरियत पूछी, डिप्टी साहब की सेहत दरियाफ्त की । सलीम की बोली सुनते ही जुलेखा घर से निकली । वह पहले की तरह ही हँसकर मिली । उसपर लगन सोलहो आना सवार थी, वह पूरी दुल्हन मालूम पड रही थी ।

"खैर, तुम आ गये—इतनी उम्मीद तो मैंने की ही थी"—उसने सलीम से कहा, जब उसकी मा जान-बूझकर उन दोनो को एकात देने के लिए वहासे हट चुकी थी । सलीम क्या बोले, उसकी समझ मे नही आ रहा था । ये सारे दृश्य, सारी बाते उसे भौचक मे डाले हुई थी । यह सबने महसूस किया कि सलीम मे न तो पिछला चुलबुलापन है, न उसके होठो पर हमेशा खेलनेवाली वह हँसी हे । हाँ, इसके मानी अलग-अलग लोगोने अलग-अलग लगाये । रात को हँसी-खुशी मे शादी हुई । बरात के खाने-पीने और महफिल की धमा-चौकडी मे रात गुज़र गई । सलीम सब चीज़ो मे शिरकत करता रहा । लेकिन, सिर्फ कल के पुतले की तरह । भोर हुई, किन्तु यह क्या ? जुलेखा के घर से एक चीख की आवाज निकली ! यह उसकी माँ रो रही थी । शाम को गीत, भोर मे रुदन ! जुलेखा चल बसी थी !

उसे क्या हुआ था, क्या बात थी, किसीकी समझ मे नही आया । माँ ने सिफ यह बताया कि शादी के बाद, बहुत देर तक, वह सखियो से गप-शप करती रही । लेकिन कोहबर में जाने के लिए सखियाँ उसकी तैयारियाँ कर ही रही थी कि उसने बताया, उसका सिर चक्कर दे रहा है, उसे मतली आ रही है । दो-एक बार कै उसने की, लोगोने समझा, भीड-भाड के चलते ऐसा हुआ है । कोहबर की रस्मे यो ही पूरी करके उसे निश्चित सोने

का मौका दिया गया। दूल्हा मियाँ रात-भर सालो-सल्हजो से गप करते रहे, मा घर के कामो मे फँसी रही। भोर मे ज्या ही मा उसे जगाने को गई, पाया, अरे, यह तो जुलेखा की ठढी लाश-मात्र है !

जुलेखा के घर पर, बरात पर, समूचे गाव पर जैसे मातम छा गया। खैर, जो होना था, हो चुका था। जहाँसे जुलेखा की लाल पालकी निकलती, वहा से उसकी काली ताबूत निकली ! कब्रगाह मे उसे दफनाते वक्त फातहा पढने को उसके बहुत-से बुजुर्ग और अजीज गये, उसका दूल्हा भी गया। लेकिन, लोगोको आश्चय हुआ, सलीम वहाँ नही था।

बरात वापस गई, दूल्हा वापस गया, हित-कुटुम्ब सब अपने-अपने घर गये। शाम हुई, रात आई। सलीम के घर उसके कुछ बचपन के साथी आ जमे। वे लोग बडी रात तक जुलेखा और इस आकस्मिक घटना की तरह-तरह चर्चा करते रहे। एक-ने इसी चर्चा के बीच दबी जबान से कहा--सलीम भैया, आप फातिहा पढने नही गये, यह अच्छा नही किया। उफ, वह बेचारी आपको कितना प्यार करती थी ! उसकी रूह कब्र मे तडपती होगी ! अनमना सलीम इस बात को यो टाल गया, जैसे इसका कोई महत्त्व नही। दूसरी चर्चाओ मे भी वह बहुत कम हिस्सा लेता रहा। आज दिन मे उसे इस बात की भी पूरी खबर मिल चुकी थी कि किस तरह उसके बाप ने शादी नामजूर कर दी थी। इन बातो का उसके सिर पर भारी बोझ था। जब सभी साथी घर गये, सलीम भी सोने का उपक्रम करने लगा। लेकिन, जल्दी उसे नीद आई नही। जब गाँव का पहरुआ दूसरा पहरा दे चुका, तब कही उसे नीद आई।

नीद आई ?--वह तो सिफ एक झपकी थी। और, उस झपकी के बाद ? वह फिर सोया --- ?

भोर मे कब्रगाह की ओर एक शोर मचा। कुछ ढोर चरानेवाले अपनी भैसे उसी ओर ले जा रहे थे कि उन्होने देखा, जुलेखा की कब्र के नजदीक कोई पडा हुआ है ! वे चिल्ला उठे। लोगाने वहाँ जाकर देखा, कब्र की बगल मे बहुत-सी मिट्टी खोद दी गई है। और, उसी मिट्टी निकलने से बनी खोह मे सलीम का सिर

है, और बाकी धड बाहर पडा है। झटपट उसके सिर को खोह से निकाला, देखा, जरा-जरा साँस आ रही है। बगल मे ही उसकी छडी टुकडे-टुकडे होकर बिखरी थी। उसके नाखून लहू-लुहान हो गये थे। लोगोकी समझ मे कोई बात नही आई। उस बेहोशी मे ही उठा कर घर ले आये। बेहोशी दूर होती ही नही थी। डिप्टी साहब के पास आदमी दौडाया गया। वह डाक्टर लेकर दौडे आये। बहुत उपचार के बाद, पाच दिनो बाद, उसन आखे खोली। इधर-उधर देखा। फिर आँखे मूद ली। दो दिन तक यो ही आँखे खोल्ता-मूँदता रहा। चिकित्सा होती रही। आखिर, वह बैठने-उठने लायक हुआ। थोडे दिन बाद मालूम हुआ, अब वह बिलकुल अच्छा होने जा रहा है कि अचानक एक दिन आगन के एक कोने की ओर दौडा। बगल मे एक लकडी पडी थी, उसीसे जमीन खोदने लगा। लोग पकडने दौडे, लकडी छीन ली, तब वह नाखूनो से ही जमीन कुरेदता रहा, जब तक कि लोग उसे जबरदस्ती उठा नही लाये। तबसे यह दौरा बराबर हुआ करता है।

(३)

यह करुण कहानी यही समाप्त नही होती है---

हसीब ने बताया, इस कहानी की कडी जोडने मे उसे कितनी दिक्कते उठानी पडी थी। डिप्टी साहब, जुलेखा की मा, उसके बाप, गाव के लोग, सलीम के यार-दोस्त सबसे पूछ-ताछ की गई थी। लेकिन उसके सोने और बेहोश होने के बीच की कडी को तो खुद सलीम ही जोड सकता था। सबसे बडी दिक्कत की बात यही थी कि ज्यो ही जुलेखा का नाम उसके सामने लिया जाता, वह चौक उठता, इधर-उधर देखने लगता, सिर झुकाकर जमीन से उठती हुई किसी कल्पित आवाज़ को सुनने की चेष्टा करता, किसी चीज की तालाश मे दौडता, न मिलने पर हाथो से ही कभी कभी मिट्टी खोदने लगता। बडे धीरज से हसीब ने धीरे-धीरे एक-एक बात पूछी। ज्यो ही देखता, वह चौकन्ना हो रहा है, रुक जाता, दूसरी बातो मे उसे बहला देता। फिर धीरे से शुरू करता।

बात यो हुई कि सलीम जब उस रात पहली झपकी मे था उसने ख्वाब मे देखा कि जुलेखा वही दुलहन की साडी पहने उसपर

मुस्कुरा रही है । व्याकुलता मे उसकी नीद टूट गई। उसने सोचा, फातिहा नही पढा, इसीसे उसकी रूह शायद मडला रही है। दिन मे जाऊँगा, तो लोग क्या कहेगे ? बिछावन पर से उठा, टॉर्च जलाई। कपडे पहन, छडी ली और कब्रगाह की ओर चल पडा। वहा टॉर्च से उस नई कब्र को देखा, फिर फातिहा पढने लगा। दो बार बैठा-उठा, तीसरी बार जब बैठकर सिर झुकाया, उसे मालूम हुआ, जैसे जुलेखा पुकार रही है—सलीम, मेरे प्यारे ! --- मै अभी जिदा हूँ --- मुझ इस कब्र से निकालो ! --- उफ्, मेरा दम घुटा जा रहा है --- जल्दी करो !" ऐ, यह क्या ? उसने जमीन से कान लगाया, आवाज और साफ सुनाई पडी । तो, जुलेखा जिदा है—यह कैसी गलती हुई ? किसीको पुकारने की उसे सुध कहा रही ? अपनी छडी से कब्र खोदने लगा। छडी टुकडे-टुकडे हो गई, तो उँगलियो से ही बकोटने लगा। इसी खोद खाद मे वह बेहोश हो गया था।

उस रात मे उसने किस तरह ख्वाब देखा और कब्रगाह मे पहुँचा, इसके जानने मे तो पद-पद पर कठिनाई हुई थी। कब्रगाह मे फातिहा पढने समय की बात कहते-कहते वह जोर से चिल्ला उठा—"जुलेखा पुकार रही है", ओर एक चीख के साथ जो बेहोश हुआ, तो दो दिनो तक उसे होश मे नही लाया जा सका, और पूरे एक महीने मे कही जाकर वह चलने-फिरने लायक हुआ।

निस्सदेह सलीम के दिल मे जुलेखा की गाढी मुहब्बत थी—मुहब्बत उस गहराई तक जा पहूँची थी, जब वह जबान की चीज नही रह जाती । उसकी शादी दूसरी से होगी, वह दूसरे की हो जायगी, इसकी कल्पना भी उसने नही की थी। शहर मे रहकर, अँगरेजी की ऊँची तालीम हासिल करके भी, उसने अखलाक नही खोया था। जुलेखा को छोडकर कभी किसी दूसरी लडकी से शादी की बात वह सोच भी नही सकता था । फिर, अपनी माँ को वह बहुत ही प्यार करता था। जुलेखा के प्रति उसकी मुहब्बत मे उसकी मा की जुलेखा के प्रति जो स्नेह-भावना थी, इसका भी बहुत हिस्सा था। जुलेखा उसकी सिर्फ अपनी ही नही थी, बल्कि मातृप्रेम की एक प्रतीक भी थी । किन्तु इन बातो पर दुनियादार डिप्टी साहब का कुछ ध्यान नही रहा । अपनी अजहद चतुराई के कारण वह खुद ठगे गये ।

किन्तु सिफ डिप्टी साहब की तम्बीह करने स तो कुछ होता-जाता नही था। हसीब ने भी तय किया, वह अपनी पूरी कला लगाकर इस मरीज को अच्छा करने की कोशिश करेगा। यह एक ऐसा केस था, जिसपर प्रयोग करने मे उसे भी रस अनुभव होने लगा। हाँ, इस रस मे करुणा की मात्रा कही ज्यादा थी।

उसने डिप्टी साहब मे कहा कि ऐसी एक लडकी ठीक कीजिए, जिसकी सूरत-शक्ल जुलेखा से कुछ-कुछ मिलती हो। उसने यह भी बताया कि वह लडकी जरा होशियार हो, उसके कहे मुताबिक वह कर सके। उसे सलीम की चहेती बनना पडेगा, ओर यदि सलीम अच्छा हुआ, तो उससे शादी भी करनी पडेगी। डिप्टी साहब को उसने इत्मीनान दिलाया कि खुदा के फज्ल से वह सलीम को भला-चगा करने मे जरूर ही सफलता प्राप्त कर सकेगा।

जुलेखा की खाला की एक लडकी थी, हूबहू जुलेखा की-ऐसी। यद्यपि जुलेखा की मा अपनी बेटी की मोत का कारण डिप्टी साहब को ही मानती थी, उनसे वह बहुत हो नाराज थी, लेकिन सलीम से जो उसे प्रेम था, उसके सबब उसने अपनी बहन को राजी किया कि वह उस लडकी को सलीम की सेहत के लिए जरूर दे। फिर कही सलीम अच्छा हुआ, तो इसकी शादी भी हो जायगी, और यो जुलेखा की शादी की कलक भी दूर हो जायगी—बेटी की शादी नही हुई, बहन की बेटी की हुई! वह लडकी काफी होशियार थी। वह भी तैयार हो गई। उसे लेकर डिप्टी साहब हसीब के पास पहुँचे। हसीब ने उसका रूप-रग देखकर खुशी ज़ाहिर की। अब उसे विश्वास-सा हो गया कि वह सलीम को भला-चगा कर सकेगा।

पहले दिन ही जब वह लडकी को लेकर पागलखाने मे सलीम के सेल के निकट पहुँचा, सलीम उसे घूर-घूरकर ताकता रहा। उस दिन उसने बार-बार जमीन खोदने की भी चेष्टा की—और दिनो मे कही ज्यादा। यह प्रतिक्रिया अच्छे शकुन की सूचक थी—हसीब को आनन्द हुआ, उसे जरूर कामयाबी हासिल होगी।

धीरे-धीरे वह लडकी सलीम के पास प्राय भेजी जाने लगी। एक दिन उसने सलीम को सलाम किया, खैरियत भी पूछी। सलीम

चुपचाप सब सुनता रहा। चलते समय पान का एक बीडा उसने सलीम की ओर बढाया। उसने हाथ बढाकर ले लिया।

हसीब ने देखा, सलीम की जिंदगी पर इस लडकी का असर हो रहा है।

कुछ दिनो के बाद वह सलीम को अपने बंगले पर ही बुला लेता। वह लडकी अब उससे बाते करती, उसे खिलाती-पिलाती। उसकी खाला-जुलेखा की माँ को भी हसीब ने बुला लिया था। वह भी हसीब के कहे मुताबिक सलीम से व्यवहार रखती। एक दिन सलीम अचानक चौक पडा, जब उन्होने अपनी इस बहन की बेटी को जुलेखा कहकर पुकारा। फिर तो उसपर जैसे भूत सवार हो गया। लगा वे ही पुरानी हरकते करने। लेकिन, ज्यो ही वह लडकी पहुँची और उसका हाथ पकडा, वह सुधुआ गाय बन गया। उसने उसे कुरसी पर ला बिठाया। चाय पिलाई, बाते की। जरा नाराजी के स्वर मे यह भी कहा—"तुम यह क्या करते हो?" सलीम सहमा, सिकुडा, आजिजी प्रकट करने लगा—"नही, मैने कुछ नही किया।" हसीब ने समझा, अब तो मैने बाजी मार ली।

धीरे-धीरे सलीम की हालत सुधरती गई। जुलेखा की मा ने एक दिन उससे यह भी बता दिया कि यह मेरी बहन की बेटी है, जुलेखा इसका भी नाम है। इस बात से उसे थोडा धक्का लगा, लेकिन इसका असर भी दूर होने लगा। वह लडकी इस तरह उस पर प्रेम-भाव प्रकट करती, उससे यो लगी-लगी रहती कि उसकी जिंदगी पर वह पूरी तरह छा गई थी। आखिर वह दिन भी आया, जब दोनो एक साथ रहते, गप-शप करते, ताश खेलते, कभी-कभी सलीम कोई उपन्यास, कहानी या कविता की किताब लेकर भी उसे सुनाता। इस नई जुलेखा पर, उसकी खाला यानी जुलेखा की माँ पर, डिप्टी साहब पर और उससे बढकर हसीब पर एक नये आनन्द का रँगीन बादल छाने लगा। सब खुश थे, सब उस दिन की प्रतीक्षा मे थी, जब यह रँगीन बादल रगीन बरसात लायगा, पपीहे की प्यास बुझेगी, दुनिया हरी-भरी होगी।

हसीब अपने फन की बारीक चातुरी से एक-एक कदम आगे बढता गया। उसने सोचा, अब चीजे वहाँ पहुँच गई है, जहाँ "फाइनल टच" दिया जा सकता है। उसकी राय से एक दिन

जुलेखा की माँ ने बातो-ही-बातो उसपर प्रकट किया कि वह नई जुलेखा से शादी कर ले। और, शादी की बात पक्की हो गई।

उस दिन हसीब के बँगले पर खुशी की बाढ आई हुई थी। कुछ चुने हुए लोगोको न्योता देकर बुलाया गया था। गाना-बजाना हो रहा था, खाने-पीने के इतजाम हो रहे थे। सलीम दूल्हा बना यहा-वहा घूम रहा था। जो लोग आते, डिप्टी साहब को उनकी खुशनसीबी पर और हसीब को उसके फन की उस्तादी और कामयाबी पर मुबारकबाद देते। रात हुई, हँसी-खुशी मे शादी हुई। जुलेखा की माँ को उस समय अपनी बेटी की याद आई, और याद आई सलीम की माँ की। काश, बेचारी यह खुशी देख पाती! शादी के बाद कोहबर के लिए दूल्हा-दूल्हन खिलवत मे गये। डिप्टी साहब अब अपने को सँभाल न सके। हसीब के पैरो से वह लिपट गये। हसीब 'हाँ-हाँ' करता रहा, लेकिन वह क्यो मानने लगे, रोते, कहते—डाक्टर साहब, आप मेरे लिए इसान नही, खुदा हैं। आपने मेरे बेटे को नई जान दी है—मुझ निपूते को फिर एक वार बेटवाला बना दिया है। यह सलीम मेरा बेटा नही, आपका बेटा है, डाक्टर साहब!

बडी रात तक आगतुको ने बाते जारी रखी। शादी और डॉक्टरी—उनकी चर्चा के ये ही दो मुख्य विषय थे। डिप्टी साहब अपनी दुनियादारी पर शर्मिंदा थे, दूसरे लोग इसमे सबक ले रहे थे। डॉक्टरी, खासकर मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की, तो भूरि-भूरि प्रशसा हो रही थी। जो लोग कल तक साइस के नाम से भडकते थे, वे ही आज उसकी तारीफ करते नही अघाते थे। बातो से थकथकाकर लोग सुख की नीद सोने गये।

लेकिन भोर होते ही फिर एक चीख सुनाई पडी। यह नई जुलेखा की चीख थी। जब उसकी नीद टूटी, उसने देखा, सलीम उसके नज़दीक नही है। दरवाजा खुला था, इधर-उधर उसने देखा, उसे कही नही पाया। उसका माथा ठनका। वह चीख पडी। सब लोग जगकर इधर-उधर तलाश करने लगे। सलीम कहाँ गया, क्या हुआ—सबके चेहरे पर हवाई उड रही थी, सबके पैरो में पर लग गये थे। आखिर ढूढते-ढूढते लोगोने हसीब के बगले की फुलवाडी मे जो एक चमेली का पौधा था, उसके नजदीक उसे पाया। उसे?—नही, उसकी लाश को! पौधे के निकट उसने एक खोह-सी खोद रखी थी।

उसका सिर उसी खोह मे था। खोह काफी गहरी थी। मालूम होता था, खोदता हुआ अपना सिर उसमे वह घुसेडता गया था। खोदते-खोदते उसमे ताकत नही रह गई, वह मूच्छित हो गया, और अन्त मे उस सँकरी जगह मे दम घुट जाने के कारण मर गया !

जिस बादल से अमृत की बूदे बरसती, वहासे वज्र गिरा ! बेचारे डिप्टी साहब की हालत का क्या कहना ? वह तो जिदा ही मुर्दा बन चुके थे। हसीब के दिल पर भी कम सदमा नही लगा ! लेकिन सबसे ज्यादा असर हुआ इस नई जुलेखा पर। बेचारी ने दुनिया मे पैर रखे ही थे कि यह धक्का लगा। इस धक्के को वह बरदाश्त नही कर सकी। उसने अपने घर जाने से साफ इनकार कर दिया। अब हसीब के घर ही वह रहती है, और हर भोर को उस चमेली के पौधे के निकट जाकर कुछ फूल चढा आती है। हर भोर को—चाहे जाडा हो, या गर्मी, वर्षा हो रही हो, या ओले गिर रहे हो ! हसीब का सारा साइंस इस भोली लडकी के नजदीक पराजय मान चुका है—सिर झुका चुका है।

वह चोर था

(१)

जेल मे पहुँचकर लक्ष्मी बाबू ने अनुभव किया, जेल वह भयानक चीज नही है, जिसकी कल्पना से ही वह घबरा उठते थे, उनके हित-मित्र उदास हो जाते थे, और उनकी श्रीमती आँखो मे आँसू लाकर उसाँसे भरने लगती थी। गाँधी बाबा के प्रताप से जहाँ देश-भक्ति आसान चीज़ बन गई है– यही, खादी पहनिए, चदे मे कुछ पैसे दिया कीजिए, हो सके, तो जब-तब चर्खे को गुनगुना लीजिए, और खुदा-न-खास्ता जब कभी मौका आ जाय, तो जेल की गगा मे हल्की-फुल्की एक-दो डुबकियाँ लगा लीजिए। उसी तरह, उनके पुण्य-बल से, यह जेल भी पुरानी जेल नही रह गई है, जहाँ पहले कोडे बरसते थे, बेडियाँ खनकती थी, खाने को पेनल डायट और रहने-सोने को काल-कोठरी मिलती थी। अरे, यहाँ की तो अब दुनिया ही निराली है। माना, लक्ष्मी बाबू का वह बडा बँगला, वह ड्राइग रूम, वे कालीन और सोफे और वे बावर्ची, वे चाँदी की तश्तरियाँ यहाँ नही है। किंतु, जो कुछ है, शरीफो की गुजर के लिए काफी है। वह ए० डिवीजन के राजनीतिक कैदी ह। सरकार ने अपना इतजाम तो किया ही हे, उसने इजाजत भी दे रखी है, आप अपने खाने-पीने, रहने-सहने मे और जो कुछ इजाफा कर सकते है, करे।

लक्ष्मी बाबू को रहने के लिए जो कमरा मिला, उसे उन्होने थोडे ही दिनो मे ऐसा सजा लिया कि वह उनका 'मिनिएचर' बँगला बन चुका था। जो रसोइया था, वह धीरे-धीरे बावर्ची बनता जा रहा

था, और जो पनिया मिला था, उसे तो उन्होने 'बेरा' कहकर पुकारना भी शुरू कर दिया था। कभी-कभी वह सोचते, काश, ये जेलवाले एक दिन मेरी श्रीमती को भीतर आकर मिलने की इजाजत देते, तब उस भोली औरत को दिखा देता, जेल के बारे मे उसकी धारणा कितनी गलत है। वह कमबख्त जब-जब मुलाकात करने को आती है, मुँह लटकाए, आँसू बहाती हुई—सारा मजा ही किरकिरा हो जाता हे। जेल के फाटक के मोटे-मोटे लोहे के छड, बडे-बडे ताले और सतरियो की किरचो से ही इसके भीतर का भी अदाज लगाती है ।— वह क्या समझे, बैतरनी के बाद ही स्वग की बस्ती है।

जेल मे रहने-सहने का इतजाम पूरा कर आपका ध्यान पढने-लिखने की ओर गया। यहा पढने की एक अजीब बीमारी फैली हुई थी, और वह बीमारी सक्रामक थी। उन्हे भी लगनी थी, लगी। फिर, वह अपने को किसी बात मे किसी से पीछे क्यो रखे ? सब पढ रहे ह, वह भी पढेगे। कुछ पढक्कू साथियो से मिलकर उन्होने किताबो की एक लिस्ट तैयार की और थोडे ही दिनो मे उनका सेल्फ सुनहली जिल्दो से जगमगा उठा।

यो पढने मे कॉलेज के दिनो मे भी उनका मन कम लगता था, जब से अपने घर के बडे कारबार और ज़मीदारी की देख-भाल का बोझ इनपर पडा था, किताबो की ओर नजर उठाने की फुरसत भी कहाँ थी ? किंतु, इस बार जो किताबो पर टूटे, तो क्या कहना ? मानो बहुत दिनो के भूखे के सामने सुस्वादु भोजन से भरा थाल रखा गया हो। दिन-रात किताबो के पन्ने उलटते, नोट के नाम पर कापियो पर-कापिया रँगे जाते। चाय के समय, टहलने के वक्त, साथियो से किताबो के विषयो पर बहसे भी करते। रात मे बहुत देर तक उनकी लालटेन जला करती— जेल के दो छटॉक किरासिन से काम नही चलता, तो 'तिकडम" भी— सिफ इसी काम के लिए—करते।

जेल मे यो तो हर विषय के अध्ययन की ओर लोगो का ध्यान था— रेशम के कीडे पालने के शास्त्र से लेकर आइन्स्टीन की 'रिलेटिविटी' के जटिल सिद्धात तक के पारायण होते, किंतु, वहाँ सबसे ज्यादा प्रचलित विषय था समाजवाद। लक्ष्मी बाबू अपने को इससे वचित क्यो रखते ? उन्होने ज़ोरो से इसका अध्ययन और मनन शुरु किया। हाँ, सिर्फ अध्ययन ही नही, मनन भी। और, इस मनन ने उन्हे बताया कि समाज के कल्याण के लिए, ससार मे शाति

और सुख की स्थापना के लिए, समाजवाद की अत्यत आवश्यकता है। पर, सवाल है, समाजवाद की स्थापना कैसे हो ? यही जाकरतो झगडा शुरू होता है। लक्ष्मी बाबू ने अपने लिए इस झगडे का निबटारा कर लिया। बहुत ही सरल निबटारा ! काल-माक्स को रद्द कर उन्होने अपने लिये रॉबट ओवन को आदश बनाया।

रॉबट ओवेन !– कैसा सरल, सत पुरुष ! धनी होकर भी उसने गरीबो की भलाई मे अपने को उत्सग कर दिया। माक्स की तरह उसने झगडे नही लगाये, वग-युद्ध के नाम पर इस अशात ससार की रही-सही शाति को भग नही किया, बल्कि उसने त्याग और प्रेम के द्वारा नया ससार बसाने की कोशिश की। उसकी वह 'न्यू लारनाक कालोनी' ! कैसा आदश ! पृथ्वी पर स्वग कायम करने की इसानी कोशिश ! अगर ओवेन के तरह के कुछ सत पुरुष हर देश मे जन्म ले, तो सारे ससार का बेडा पार। लक्ष्मी बाबू मनन करते-करते ऐसा अनुभव करते कि वह खुद ओवेन है और अपनी जमीदारी के एक गॉव मे उन्होने भी एक ऐसी ही कालोनी बसा रखी है, जिसे देखने को हिदुस्थान के कोने-कोने से लोग पहुँच रहे ह। सबकी जबान पर उनकी प्रशसा है, अखबारो के कॉलम के कॉलम उनकी विरुदावली से रँगे जा रहे ह।

कालोनी, जिसे वह 'आश्रम' का सुदर भारतीय नाम देगे, पीछे खुलेगी। इस जेल मे भी इस सम्बन्ध मे कुछ किया जा सकता है या नही, इस पर विचार करके, 'शुभस्य शीघ्रम्' के आदश वाक्य के अनुसार, उन्होने कारवाई शुरू कर दी। उनका प्रयोग दो व्यक्तियो को लेकर शुरू हुआ –एक उनका 'बावर्ची' और दूसरा उनका 'बेरा'। लोगो ने आश्चय से सुना, अपने 'बेरा' को वह 'लालू भाई' के नाम से 'आप' कहकर पुकार रहे हैं, और बावर्ची भी रमजान भाई बन चुका है। 'लालू भाई' जरा तौलिया लाइए। 'रमजान भाई, खाने कितनी देर है ?' इन पुकारो को सुनकर रमजान और लालू को चाहे जितना आश्चय होता हो, उनके कुछ साथी उन्हे ढोगी भी समझते हो, कितु लक्ष्मी बाबू को इसमे आत्मिक शाति मिलती। आत्मिक शाति–हार्दिक आह्लाद।

लालू और रमजान के खान-पान मे भी इजाफा हुआ। अब जो कुछ बनता, तीन के लिए। कभी-कभी लालू का सी-क्लासी भोजन भी लक्ष्मी बाबू चखते, गरीबो की गरीबी अनुभव करने के लिए। यही

नही, इन दोनो के जीवन मे भी घुसने की कोशिश वह करते। लालू चोरी मे आया है, रमजान रेपकेस मे। रेपकेस के नाम से ही वह घबरा उठते, उस घिनोनी हरकत के भीतर जाने की कल्पना से भी वह काप जाते-- यद्यपि वह मानते कि यह भी एक सामाजिक अभिशाप ही है, व्यक्ति तो इसमे फॅस जाता है, फॅसा लिया जाता है। रमजान दिन-भर रसोई घर के ही प्रपचो मे रहता, अत उस बेचारे को फुरसत भी कहॉ थी कि उससे कुछ पूछ-ताछ की जाय ? किंतु, लालू तो दिन-भर उन-के निकट रहता, अत उन्होने यह तय किया कि लालू की जिदगी मे घुसकर वह देखेगे कि आखिर आदमी चोरी क्यो करता हे ?

हा, दवा के पहले निदान जरूरी है। किताबो मे उन्होने निदान पढा था। किंतु, व्यक्तिगत जानकारी भी तो आवश्यक है। फिर, जब कि इस जेल मे फुरसत की कमी नही, ओर लालू के रूप मे एक व्यक्ति भी है जिस पर जाच-पडताल मजे मे की जा सकती है, तब तो इस मौके को छोडना भूल होगी।

(२)

लालू अपने तीन भाइयो मे सबसे छोटा है। उसका बाप देहात का एक खेत-मजदूर था। शादी के बाद वह अपने बाप के गॉव को छोडकर लालू के ननिहाल मे ही आ बसा था। लालू की मा सुन्दरी थी। अपनी सुन्दरी पत्नी की जवानी के आग्रह को वह नही टाल सका था, ससुराल मे ही आ गया था।

वह काफी हट्टा-कट्टा और कमाऊ आदमी था। अपनी गिरस्ती उसने अच्छी निभाई। बाबू के खेत मे काम करता। मजदूरी इतनी मिल जाती, जिसमे बीवी सहित अपनी गुजर वह कर ले। कुछ बटाई खेती भी कर लेता। एक गाय और कुछ बकरिया भी उसने पाल रखी थी। धीरे-धीरे उसके तीन बेटे और एक बेटी हुई। अपनी मज-दूरी, बटाई, गाय और बकरियो की आमदनी से उसने इन बाल-बच्चो की अच्छी परवरिश ही नही की, उनकी शादियॉ भी अच्छे ढग से कराई।

लालू की भी शादी हो चुकी है। उसकी शादी के बाद ही घर में वैमनस्य पैदा हो गया। दोनो बडे भाई बाप से जुदा हो गये। उनका कहना था, बुढऊ छोटे बेटे पर ज्यादा स्नेह रखते है, उसका पक्ष लेते है। लालू अपने बाप पर नही पडा था, उसका रूप-रग ही

नही, शरीर का गठन भी उसकी सुन्दरी माँ से मिला था। इसलिए शुरू से ही वह ज्यादा परिश्रम कर नही पाता। धूप तेज हुई, उसके शरीर से पसीना चूने लगा, माघ मे पछेया हवा बही, उसके दात कटकट करने लगे। बुढऊ उससे कम काम लेता। भाई जब इस पक्षपात पर चिढता, तो इसके काम को वह खुद ही पूरा करने की कोशिश करता। उस बुढापे मे भी उसकी शक्ति का क्या कहना ?— दो जवान के बराबर अकेला काम कर लेता। जिस समय लालू अपने बाप की चर्चा लक्ष्मी बाबू से कर रहा था, उसकी याद कर उसकी आखो से ढल-ढल आँसू गिरते जाते थे।

लालू की बीवी भी काफी सुदरी है। जब बीवी आई, लालू उसपर मँडराता रहता। काम-काज मे बिलकुल मन नही देता। भाइयो के लिए यह असह्य हो गया ! आखिर आपस मे जुदायगी हो गई— दोना भाइयो ने अलग-अलग गिरस्ती सँभाली, बाप ने लालू का बोझा अपने ऊपर लिया। जब तक बुढऊ रहे, लालू को मालूम नही हुआ कि किसे दिन और किसे रात कहते है। किंतु, बूढा आदमी तो पका आम है। एक दिन आम गिर गया, डाली सूनी हो गई। लालू की समझ मे नही आता, अब वह कैसे जिदा रह सकेगा।

आदमी—परिस्थिति का पुतला ! अब लालू को दीन-दुनिया देखने को मजबूर होना ही पडा। इसमे उसकी पत्नी ने उसे खूब प्रोत्साहित किया। वह सबेरे लालू को उठाकर, रात की बची कुछ बासी चीजे—रोटी, गुड या पानी मे रखा भात और अँचार—खिला-कर मजदूरी के लिए बिदा करती। मजदूरी मे जो अन्न मिलता, उसे अच्छी तरह कूट-पीसकर वह खाना बनाती, छीटी मे रोटियाँ और पानी रख कर खेत मे ही उसे खिला आती। लौटती बार कुछ घास भी छील लाती, जिससे गाय और बकरियो को पालती। शाम को जब लालू पहुँचता, बडे प्रेम से उसके पैर धोती और रात मे सरसो का तेल लगा कर उसके शरीर की अच्छी मालिश किये बिना क्या वह वह कभी सोती ?

लालू की बीवी का सुन्दर मुखडा इस मेहनत मशक्कत से दिन-दिन मलीन होता जाता था। इस बात से लालू को बडा दुख होता। किंतु क्या करे बेचारा ? उसके अपने चेहरे का पुराना रग भी तो नही। जहा वह रोज माँग सँवारता, अब आईने मे मुँह भी

नही देखता। एक दिन बाबू के दालान मे उसके बडे आईने के सामने जब वह खडा था, अपनी पूरी आकृति उस आईने मे देखकर वह चौक उठा था। अरे, वह क्या हो गया ? काला रग, धँसे गाल, बिखरे बाल—वह वहा खडा नही रह सका !

तो भी उसे सतोष था, किसी तरह उसकी जिदगी कट तो रही है। न तो उसे भाइयो के निकट हाथ पसारने की जिल्लते उठानी पडती, न बीवी की गोतनी के व्यग्य सहने पडते, बल्कि पति-पत्नी की तारीफे होती— आखिर अपने पर पडा, तब कैसे सँभले गये ह दोनो। बाप की जिदगी मे कुछ छैलापन रहा, तो क्या हुआ ? बाप की जिदगी मे कुछ मौज न करता, तो फिर करता कब ?

लेकिन, यह सतोष ज्यादा दिन तक नही टिका। गिरस्ती बढने लगी। पहला बच्चा होने पर तो आनन्द ही आनन्द रहा। जब लालू की बीवी अपनी पहलौठी बिटिया को गोद मे लेकर प्रसूति-गृह से निकली, लालू के आनन्द की सीमा न रही। दूसरा बेटा हुआ— यहाँ तक आनन्द अपनी जगह पर टिका रहा। लेकिन, जब लगातार हर वष एक बच्चा आकर माँ की गोद भरने लगा, और छ वर्षो के अदर उसका छोटा-सा आगन पाँच बच्चो से भर चुका, तब तो आनन्द की जगह चिता ने ले ली। जब बच्चो की ही अच्छी तरह परवरिश नही हो पाती, तो उसकी माँ के बारे मे क्या पूछना ? वह बेचारी छीजती जाती। धीरे-धीरे बकरियाँ, बछवे और अत मे गाय भी बिक गई। उसके बूढे बाप ने बडे शोक से जो चाँदी और गिलट के गहने अपनी पतोहू को दिये थे वे भी एक एक कर बिक गये ! बच्चे घर मे अनाहार के कारण बन गये। हाँ वे ही बच्चे जो धनियो के घर मे आनन्द के स्रोत समझे जाते है, लालू की कुटिया मे अनाहार के कारण बन गये !

लालू दिन-रात परिश्रम करके भी अपनी गिरस्ती के छकडे को आगे घसीटने मे असमर्थ साबित होने लगा। अनाहार ने पूरी मेहनत की ताकत उसमे कहाँ छोडी थी ? वह अथाह सागर मे पडा था— न नाव, न पतवार। तैरने के नाम पर हाथ पैर हिलाने की ताकत भी जब उसमे नही रह गई तो अचानक उसे एक सडा मुर्दा बहता हुआ मिल गया। वह उस मुर्दे को पकड कर आगे बढने लगा !

सडा मुर्दा— चोरी का पेशा ! सडा मुर्दा—बदबू, उकवाई ! कलेजा मुँह को आता ! लेकिन, दूसरा चारा क्या था ? या अथाह सागर मे

डूबो, या इस सडे मुर्दे को पकडो। अकेले रहता तो लालू यह पेशा कभी न करता– मर जाना पसद करता। किंतु ये बच्चे, यह बीवी– कभी की उसकी सुन्दरी, प्यारी स्त्री ! सडे मुर्दे को पकड कर उसने भव-सागर पार करने का निश्चय किया !

अगहन का महीना था। खेतो मे पके धान के सुनहले बाल लहरा रहे थे। किसानो के खलिहानो मे बोझो के अबार लगे थे। जहाँ नज़र दौडाइए, अन्न-ही-अन्न—पके, पुष्ट, सुनहले अन्न ! और, अन्न की इस भरमार के बीच लालू के घर का अनाहार ! एक रात को उसे नीद नही आई। भूखे बच्चे किल-बिल कर रहे थे, माँ चुप करने से ऊबकर जब-तब उन्हे चपते लगा देती। लालू के पेट मे भी अँतडियाँ चिग्घार रही थी। वह उठा, घर के बाहर आया। साफ आसमान मे तारे चमक रहे थे– डडी-तराजू के पक्तिवद्ध तीनो तारे पश्चिम की ओर झुक चले थे। हवा सन-सन कर रही थी। उस अध-रात्रि की निस्तब्धता मे हवा के झोके से खेत के पके धान की बालियाँ रह-रहकर झिर-झिर कर उठती थी। धान की बालिया खेतो मे, और आँगन मे अन्न के अभाव मे यह कुलबुलाहट ! क्या करे ? उसका दिमाग काम कहाँ कर रहा था ? पैर उठे, हाथो ने हँसिया ली, और कापते हुए वह सीधे एक खेत मे पहुँचा। चारो ओर देखा, कोई नही, लेकिन उसके हाथ मे जैसे लकवा मार गया हो। हँसिया ठीक से पकडी नही जाती। किसी तरह बाएँ हाथ से एक मुट्ठी बालिया पकड उसने हँसिया चलाई– सूखी डाँट की खडखडाहट से वह खुद चौक पडा। पर, धीरे-धीरे भ्रम दूर होता गया, झिझक भी दूर होती गई। हाथ काम करने लगे, हँसिया काम करने लगी। धान की बालियो को उसकी हँसिया इस निस्तब्धता मे सर-सर काटने लगी। थोडी देर मे एक बोझ बालिया लिये वह आगन मे आया और उन्हे पटक अधसोई बीबी को जगाया। उसे आगन मे लाकर बोला– "इसी समय इन्हे मीसकर धान निकाल ले।" "यह कहा से आया ? तुमने चोरी की है !" उसकी बीवी पूछने या चिल्लाने जा ही रही थी कि लालू ने उसके मुँह पर हाथ रख कहा–"अब चिल्लायगी, तो मै फँसूगा, पीटा जाऊँगा, जेल होगी। चुपचाप मीसकर धान रख ले, पुआल जलाकर ताप जा।"

वही हुआ, आखो मे आँसू भरे उसकी बीवी ने धान घर मे रखा। पुआल मे जब उसने आग लगाई, लालू ने देखा, उसकी आँखो से आँसू की धारा बह रही है। लालू भी कम शरमिदा न था। लेकिन,

लालू की शरम और उसकी बीवी के आँसू उस समय हँसी मे बदल गये, जब दिन मे उसने भर-पेट खाये अपने बच्चो को किलकारियाँ भरते देखा।

चोरी ! कितना घिनौना काम ? जब कोई निश्चित सोता हो, प्रकृति की अपूव देन इस नीद का नाजायज फायदा उठाकर चुपचाप किसी का खेत काट लेना, किसी के खलिहान से अन्न उठा लेना, किसी की बखारी मे छेद कर बोरे-के-बोरे ले आना, किसी के घर मे सेंध दे गहने या नकद पर छापा मारना ! उफ्, कितना जघन्य काम किंतु आसान भी कितना ! न मेहनत, न मशक्कत—थोडी हिम्मत की जरूरत। एक बार हाथ साफ करो, हफ्तो, महीनो बाल-बच्चो के साथ निश्चित आराम से रहो ! न हल्दी लगी, न फिटकरी और रग चोखा !

लालू धीरे-धीरे पक्का चोर हो गया। खेत से खलिहान मे—खलिहान से दरवाजे पर, दरवाजे से जनानखाने मे। सब जगह उसकी पैठ हुई। जहाँ पहले पैर काँपते थे, शरीर थरथराता था, साँस जोरो से चलने लगती, खून सूखता मालूम होता, वहाँ अब अपने करतब पर, हाथ की सफाई पर, उसे नाज होता, फख्र होता। धीरे-धीरे पुराने चोरो से उसकी जान-पहचान हुई। कुछ नये लोगो को उसने तालीम दी। अब उसका अपना पूरा गिरोह था। बडे-बडे हाथ मारे जाते। गाँव का जमीदार ही उसका 'गुइयाँ' बना—चोरी का माल वही रखता, बेचता, और जितनी उसकी इच्छा होती, उन्हे देता। चौकीदार से लेकर थानेदार तक से साँठ-गाँठ शुरू हुई ! फिर एक बार लालू की बीवी की देह पर चूनर चमकने लगी, उसके बच्चे रग-बिरंग कपडे पहने किलोल करने लगे, वह ताडी से शुरू कर गाँजा तक फूकने लगा ! बचपन मे एक बार उसने भग पी थी, हँसते-हँसते वह बेहोश हो गया था। उसके पिता ने उसे बडी डाँट बताई थी। उसने भी उस दिन से कसम खा ली थी, नशा नही करेगा। लेकिन अब वह क्या करे ? चोर के देवता बिना इन मादक पदार्थों के चढावे के खुश ही नही होते। और, उनकी नाराजी के बाद कोई चोर एक दिन भी बच सकता है ? नशा खाओ, चोरी करो, मस्त रहो।

गाँव के लोग समझते थे, लालू की इस मौज का क्या मानी है ? लेकिन कौन बोले ? जमीदार उसकी पीठ पर, चौकीदार उसका साझीदार। उल्टे अब उससे सब डरते—कही इसने किसी दिन हमी पर हाथ साफ किये, तो ?

लेकिन लालू कह रहा था— ˘

बाबू, पाप छिपाये नही छिपता, कुमम का फल भुगतना ही होता है, अच्छे दिन के सभी साथी, बुरे मे कोई पूछता तक नही। एक बार जरा पैर नीचे पड गया, पकड गया– फिर, किसी ने सुध भी नही ली। दारोगाजी ने पीटा, चौकीदार ने गवाही दी, जमीदार थाती पचाकर यो बैठ गया कि क्या कहिए। बेचारी औरत ने उसमे मिन्नत की–"थोडी मदद कीजिए, मुकदमा लडकर उन्हे छुडा लाती हूँ।" वह दौडी-दौडी अदालत आती जाती रही। जो कुछ घर मे था, उसने खच भी किया, किंतु मेरी तकदीर फूटी थी–यह, तीन बरस से चक्की चला रहा हूँ।

लक्ष्मी बाबू ने देखा, लालू की आखो के आसू पश्चात्ताप के आसू है। परिस्थिति ने उसे इस गदगी मे ढकेला। अब भी इसका सुधार सम्भव है। आदमी के हृदय मे देवता और शैतान दोना बसते है। शैतान देवता पर प्रबल सिद्ध हुआ है जरूर, लेकिन देवता अमर है। वही देवता उसके आसुओ के रूप मे चमक रहा है। इस देवत्व को विजयी बनने, विकसित होने मे लक्ष्मी बाबू बेचारे लालू की मदद करेगे। वह दिखला देगे, एक चोर भी साधु की जिदगी बिता सकता है।

लक्ष्मी बाबू ने लालू के लिए कुछ कम नही किया। जब गाँधी-इर्विन-सुलह मे, समय के पहले ही, वह रिहा होकर घर चले, लालू के नाम से वह कुछ रुपये जेल-गेट पर जमा करते गये। लालू से उसके घर का पता भी उन्होने ले लिया था। जब लालू की पत्नी ने जेल मे ख़त भेजवाया कि किसी ने उसके बच्चे के नाम से २५) भेज दिये ह, तब लालू को यह कल्पना करते देर न लगी कि यह लक्ष्मी बाबू की महाकृपा है।

चलते समय लक्ष्मी बाबू लालू से कह गये थे– "छूटकर मेरे घर आना, मै तुम्हे अपने साथ रखूगा।" कई बार बीच मे उनके खत भी आते रहे। पहले पखवारे-पखवारे, फिर देर होना शुरू हुआ। आख़िरी चिट्ठी तो तीन महीने बाद उसे मिली। किंतु, लालू के लिए क्या इतना कम था कि वह उसे भूले नही ? पहले तो उसने तय किया था, सजा पूरी कर वह पहले बाबू के दशन कर आयगा, फिर बाल-बच्चो से मिलेगा, किंतु सजा पूरी होने पर ममता उसे पहले घर

घसीटकर ले गई। वहा एक मप्ताह गवाकर वह लक्ष्मी बाबू के घर पहुँचा।

(३)

लक्ष्मी बाबू फिर अपनी घर-गिरस्ती मे लग चुके थे। ओवेन का नाम और समाजवाद की चर्चा वह मित्रो से बातचीत करते समय बार-बार लेते-करते, लेकिन ओवेन का काम और समाजवाद का आदश उनके सासारिक कम कलाप मे लोप हो चुका था। जिस गॉव मे उन्होने आश्रम बनाने का सकल्प किया था, वहा अब भी उनकी कचहरी कायम थी, जिसमे बैठकर उनके अमले किसानो को तरह-तरह से तग करते। हॉ, मानो इसकी क्षति-पूर्ति के लिए, अब साल मे एक बार वहॉ लक्ष्मी बाबू पहुँचते, सभी किसानो को बुलाकर उनके बच्चो मे मिठाइया बॅटवा आते और उनसे हॅस-हँसकर बतियाने की कीमत मे मोटी रकम नजराने मे वसूल कर लाते। यह उनका 'जन-सपक' था। वह अपने हमपेशे जमीदारो पर रोब जमाते हुए उनसे भी इस उदारता का अनुकरण करने का आग्रह करते।

लालू को देखकर उन्हे वह आनद नही हुआ, जिसकी कल्पना उन्होने जेल मे की थी। क्योकि अब लालू पर प्रयोग करने की बात ही नही रह गई थी। हा, जहॉ वह लालू को आश्रमवासी बनाना चाहते थे, वहॉ अब लालू एक नोकर की तरह उनकी शरण मे रहने लगा। लालू के लिए उनकी इतनी कृपा ही काफी थी। उनकी पिछली कृपाओ को भी वह नही भूल सकता था। वह एक अनुगृहीत दास की तरह तन-मन से उनकी सेवा मे जुट पडा।

जेल की दुनिया निराली होती है। वहॉ आदमी तरह-तरह की सुनहली कल्पनाएँ करता है, कल्पना के महल बनाता है। लेकिन, वास्तविक दुनिया की गरम हवा लगते ही वह कल्पना-महल ताश के घर की तरह भहरा पडता है। लक्ष्मी बाबू के सामने उनका अपना ही उदाहरण था। जेल मे वह त्याग-मूर्त्ति बनने को तय कर चुके थे, यहॉ फिर वही पुराना रईसी रग-ढग है। लालू की भी यही हालत हो सकती है, उन्होने यह सोचा। इसलिए जहा नोकर की हैसियत से रखा, वहाँ सशक भी रहते कि कही वह एक दिन कुछ मारकर चम्पत न हो जाय। इसीलिए जिसमे हमेशा वह उसपर निगरानी रख सके, उन्होने लालू को अपनी व्यक्तिगत सेवा मे ही मे ही रखा था। किंतु इस व्यक्तिगत सेवा का मौका पाकर लालू उनका स्नेह और कृपा अधिकाधिक प्राप्त करता गया। तरह-तरह से जॉचकर लक्ष्मी

बाबू ने देखा कि लालू सचमुच अपना पुराना जीवन बिलकुल भूल गया है और एक नया, पवित्र, सयमी जीवन व्यतीत करने की चेष्टा मे तत्पर है। थोडे ही दिनो मे लालू उनका परम विश्वास-पात्र सेवक बन गया।

एक दिन लालू के घर से एक पोस्टकाड आया। वह काड लक्ष्मी बाबू के हाथ मे पडा। उसकी स्त्री ने घर के कुशल-क्षेम लिखवाने के बाद, नये मालिक को उनकी पूव और वतमान कृपाओ के लिए अनेक दुआएँ दी थी, और अत मे लालू को लिखा था कि वह जो मुशाहरे के सात रुपये हर महीने भेजता है, उनसे उसके घर की गुजर नही हो पाती। उसके दो बच्चे मर चुके थे। खुद वह लालू के जेल के बाद से ही एक बाबू के घर कुटान-पिसान कर कुछ कमा लेती थी। लेकिन जैसा ज़माना है, चार प्राणियो की गुजर नही हो पाती, अत वह अपने दयालु मालिक से अज करे, कुछ मुशाहरा वह बढा दे। इस खत के बाद लक्ष्मी बाबू ने लालू का मुशाहरा सात रुपये से दस रुपये कर दिया। उस रात कृतज्ञता के बोझ से दबे हुए लालू को जल्दी नीद नही आई थी।

लालू की ईमानदारी और सेवा-भावना दिन दिन-कुदन की तरह निखरती गई। लक्ष्मीबाबू की कृपा भी अधिकाधिक फलवती होती गई। जब अगले फागुन मे वह पद्रह दिनो की छुट्टी मे घर जाने लगा, लक्ष्मी बाबू ने उसकी स्त्री के लिये एक अच्छी कोरदार साडी और उसके बच्चो के लिए छीट के कुरते सिलवाकर दिये। लालू ने मन-ही-मन कहा—सचमुच, लक्ष्मी बाबू मनुष्यरूप मे देवता ह !

अब लालू सिफ लक्ष्मी बाबू का परम विश्वासपात्र नौकर ही नही था—उनके सूटकेस की कुजी उसके पास रहती, उनका पस वही रखता, बैक से वही रुपये निकासी कराता। बल्कि वह उनकी उदारता की प्रदशन-मूर्ति भी था। जब कोई नये खयाल के सुधार-प्रेमी सज्जन उनके यहाँ आते—प्राय आते ही रहते, झट लालू को बुलाकर वह उसकी तारीफ-पर-तारीफ किये जाते, मानो उन पर धौस जमाते कि किस तरह एक पतित जीवन को उन्होने सुमाग पर लगा दिया है ! सचमुच अगर हर धनी आदमी इस ओर ध्यान दे, तो दुनिया मे चोरी-डकैती क्यो हो, क्यो जेले भरे, क्यो यह दुनिया नरक बने ? ईसा ने जमीन पर स्वग बसाने की जो बात कही, उसके कथन का तथ्य यही है। लक्ष्मी बाबू सोचते, ओवेन के ऐसा आश्रम नही बना सके, तो क्या

हुआ, एक जिदगी को सुधार देना ही क्या कम हे? 'मॉडल'' ओर 'तस्वीर मे फक होता ही है। इँगलड की बात हिदुस्थान मे आते-आते अपना जोर ओर फैलाव खो दे, तो आश्चय क्या?

एक दिन लक्ष्मी बाबू के पास एक माक्सवादी समाजवाद के नेता पहुँचे। उनसे बाते करते समय लक्ष्मी बाबू ने सुधारवाद पर एक खासा लेक्चर दे डाला। आप लोग सिफ हल्ला मचाते है, झगडे खडे करते है, विध्वसात्मक कामो मे ही उलझे रहते है। आप आग लगाना जानते ह, घर बनाना नही। समूह के शोर मे व्यक्ति पर आप ध्यान ही नही देते। यदि हममे से हर आदमी कम-से-कम एक आदमी का जिम्मा अपने उपर ले ले, तो बहुत कुछ हो जाय। कुछ रचनात्मक काम कीजिए। देखिए, हमारे इस लालू को। यह चोर था, बुरी जिदगी थी इसकी। अब यह एक ईमानदार आदमी है। मुझसे और कुछ न हो सका—एक जिदगी को बरबाद होने से बचाने, एक घर को उजडने से बसाने का फख् तो मुझे हासिल है ही!

यो ही लक्ष्मी बाबू बोलते गये। नेता थोडी देर चुप रहे। फिर उन्होने इस तरह के प्रयोग की व्यथता बताते हुए, अत मे कहा—

सवाल समूह और व्यक्ति का तो है ही। देखना यह भी है कि एक व्यक्ति की जिदगी भी किस हद तक इस समाज मे अच्छी की जा सकती है। आप समझते है, लालू आपके यहा खुश है, उसे अपनी जिदगी पर सतोष है। अपनी मूढता और प्रचलित धारणा के कारण उसने सतोष मान भी लिया हो। लेकिन माफ कीजिए, उसकी जिदगी मे ऐसे क्षण भी आते होगे, जब आपके पस के नोटो के गड्डे, आपके हाथ की खूबसूरत घडी, आपके चमचम कपडे, आपकी बीवी-बच्चो के पहनावे और जेवर उसके दिल मे एक कसक, एक हूक, एक व्याकुलता, एक आतुरता पैदा करते होगे। लालू इन पर क्षणिक विजय प्राप्त कर लेता हो, इसके लिए आप—हम उसकी तारीफ भी करे। लेकिन लक्ष्मी बाबू, एक दिन ऐसा भी आ सकता है, जब सयम का बाँध टूट जाय, और फिर बेचारे को किसी कैदखाने मे चक्की चलाने को जाना पडे। और मान लीजिए, एक लालू ने ज़िदगी निबाह भी दी, लेकिन ससार मे जो करोडो लालू है, उनकी अतृप्त लालसाएँ पुजीभूत हो रही है और वे एक दिन विस्फोट करेगी ही! इस लिए ज़रूरी है कि समाज की नीव

लेकिन, लक्ष्मी बाबू पर ऐसी दलीलो का क्या असर होने वाला था ?—वह अपनी ही हाँकते गये, अपनी ही हाँकते रहे। उनका अपना जीवन सतोषप्रद था—सबकी ज़िदगी मे वह सतोष ही देखे या देखना चाहे, तो आश्चय क्या ?

नेता चले गये, उनकी बात भी चली गई। लक्ष्मी बाबू और लालू की जिदगी अपनी धारा मे बहती चली।

लेकिन, एक दिन जब एक बीमा कम्पनी का डायरेक्टर लक्ष्मी बाबू के पास आया और स्वभावत लक्ष्मी बाबू ने लालू की तारीफे शुरू की, तो उसने जो कुछ कहा, उससे थोडी देर के लिए लक्ष्मी बाबू काफी चचल हुए। उसने बताया, लालू ऐसे आदमियो से हमेशा होशियार रहना चाहिए। ऐसे लोग बडे घाघ होते है। विश्वास जमाने के लिए काफी अर्से तक ये ऐमे सुधुआ बन जाते है कि इनके नज़दीक जडभरत की सिधाई भी मात। लेकिन पीछे तो ये इस तरह हाथ साफ करते है कि हाथ मलकर रह जाना पडता है। इनका सुधार हो नही सकता—"सूरदास कारी कामरि पर चढत न दूजो रग।" सिफ कहकर ही नही, उसने कई उदाहरण देकर लक्ष्मी बाबू पर यह सिद्ध कर दिया कि लालू पर उनका विश्वास गलत है। वह जरा चौकन्ने रहे। कही ऐसा न हो कि एक दिन उन्हे पछताना हो, और "फिर पछताए होत क्या, जब चिडिया चुग गई खेत ?"

लक्ष्मी बाबू ने उसे काफी फटकारा। उसके जाने के बाद भी सोचते रहे, अजीब होते है ये लोग। हमेशा सदेह ही इनके दिल मे बना रहता है। सबको सदेह की ही नजर से देखते ह ये। विश्वास का कही नाम-निशान नही। और, कही बिना विश्वास के ससार चलता है ? अगर विश्वास न हो, तो क्यो कोई इनकी बीमा-कपनी के जाल मे फँसे ? दूसरो मे कहेगे, विश्वास कीजिए, और खुद सबको सदेह की नजर से देखेगे। क्या कहने है ? एक बार परिस्थिति-वश ग़लती हो गई, तो उसे ढोये जाने को कह रहे ह। जैसे मानव जीवन मे सुधार का स्थान ही नही।

कुछ ऐसी ठेस इस बात से उन्हे लगी कि वह लालू को और भी प्यार करने लगे। एक दिन उससे पूछा, तुम्हारे बडे बच्चे की क्या उम्र है लालू ? और, जब लालू ने बताया, वह बारह वर्ष

से मिलकर रहना चाहता था, मालिक के परिवारवालो को खुश रखना चाहता था। लेकिन, वह करे, तो क्या करे ? लक्ष्मी बाबू की इच्छा और आराम उसके लिए सर्वोपरि चीज थी। और दोनो मे मामजस्य की कोई गुजायश ही उसे नही दीख पडती थी।

तो भी, उसे प्रसन्नता इस बात की थी कि लक्ष्मी बाबू को सदा प्रसन्न रखने मे वह समथ हो सका था। ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाने थे, वह लक्ष्मी बाबू की ज़िदगी का अश बनता जाता था। हा, वह अब सिफ उनका नौकर नही था — उनके जीवन का अग और अश हो चला था। जिस तरह उसे पाकर अब लक्ष्मी बाबू व्यक्तिगत सेवाओ से निश्चित रहते, लालू भी निश्चित हो चला था कि अब उसकी जिदगी एक किनारे लग चुकी है। अब दोनो बेटो को वह लायेगा, उनमे से एक पढेगा, दूसरा उसके कामो मे मदद करेगा— इसकी कल्पना कर वह आनद-मग्न हो जाया करता था। उसने अपनी स्त्री को जो हाल मे खत भेजा था, उसमे इस बात की चर्चा भी कर दी थी। इतनी बडी खुशखबरी मे अपनी प्यारी पत्नी को कैसे महरूम रखता ?

(४)

इसी तरह हँसी-खुशी मे लालू के दिन कट रहे थे कि—

हाँ, इसी तरह उसकी जिदगी हँसी-खुशी मे कट रही थी कि अचानक कुछ अप्रत्याशित घटनाये घटकर लालू और लक्ष्मी बाबू दोनो को परेशान करने लगी।

एक दिन लक्ष्मी बाबू शाम को टहलकर लौटे। बडी गरमी थी। उन्होने अपनी बडी उतारकर लालू को रखने को दी। लालू ने कमरे मे ले जाकर उसे खूटी पर टॉग दिया। बडी की जेब मे वह अपना फाउटेनपेन रखते थे। बढिया 'पारकर' था। रात को वह अमूमन् देर तक पढते रहते थे—यह चाट जेल से ही वह ले आये थे। हाँ, जहाँ जेल मे गभीर विषयो का अध्ययन होता, वहाँ अब रेलवे-स्टालो पर बिकनेवाले, सस्ते उपन्यासो के ही पन्ने उलटे जाते। उस रात जब सब लोग सो गये थे, पढते-पढते उन्हे कोई चीज नोट करने की जरूरत महसूस हुई, तो उन्होने पेन की तलाश की। पेन जेब मे नही था। क्या हो गया ? इधर-उधर ढूढा। फिर सोचा, कही लालू ने रख दिया होगा। वह झल्लाये तो, लेकिन उन्हे कोई दूसरी आशका नही हुई। भोर मे लालू से पूछा। उसने कहा, मैंने न रखा, न देखा। फाउन्टेनपेन क्या

हुआ ? उनके घर मे कोई दूसरा तो आता नही। शायद मोटर पर गिर गया हो। उसपर तलाश की गई। वहा न मिलने पर लक्ष्मी बाबू ने मान लिया, जब वह नदी के पुल पर टहल रहे थे, कही जेब से खिसक गया होगा। लालू पर तो वह सदेह कर ही नही सकते थे।

फिर कुछ दिनो बाद उनकी एक सोने की घडी गायब हो गई। बाहर से आये। स्नान-घर मे जाने के पहले जल्दी मे घडी उतारकर उन्होने मेज पर रख दी थी। लालू उस समय स्नान-घर मे उनके कपडे, तौलिया आदि रखने गया था। स्नान करके वह जल-पान आदि मे लगे। फिर अलसाकर सो गये। जब नीद टूटी, कलाई पर नज़र की। घडी नही। याद हुआ, मेज पर रख दी थी, लेकिन वहाँ घडी नही थी। और, इस बार भी पूछने पर लालू ने नाही कर दी।

जिस समय पेन चोरी गया था, उन्होने किसी से नही कहा था। शाम को बाजार गये और उसी मेल का दूसरा पेन ले आये। किसी को पता भी नही चला कि उनका फाउन्टेनपेन गायब हुआ है। ऐसा उन्होने इसलिए भी किया था कि कही किसी को लालू पर अनुचित शक न पैदा हो जाय। लेकिन, घडी की चोरी छिपाना मुश्किल था। काफी कीमती घडी थी—फिर, ससुराल मे मिली। पद्रह वर्षा से उसे अपनी कलाई पर दिन-रात बाँधते आ रहे थे। उसे न देखकर लोग पूछेगे ही। क्या कह दू, मरम्मत करने को बाहर भेज दी है ? लेकिन, यह झूठ क्यो बोलू ? आत्मप्रवचना तो ठीक नही। तब घडी हो क्या गई! मेज पर रखी—यह अच्छी तरह याद है। घर मे यो कोई नही आता, और न आया, यह भी सही है। तब ? इसके आगे सोचने की जैसे उनमे हिम्मत नही थी। मन दूसरी ओर ले जाने के लिए उन्होने किताब के पन्ने उल्टे, कपडे की अलमारी खोली, बैठकखाने मे जाकर मुशीजी से जमीदारी का हिसाब-किताब पूछने लगे, सबेरे टहलने गये, सबेरे खाया, सबेरे सो गये।

लेकिन, सोने की चेष्टा करने पर भी उन्हे नीद कहाँ आई ? उन्हे रह-रहकर उस बीमा-कम्पनी के डायरेक्टर की बात याद आने लगी—ऐसे लोग बडे घाघ होते है, विश्वास जमाने के लिए सुधुआ बने रहते है, लेकिन पीछे तो ऐसा हाथ मारते है कि हाथ मलकर

रह जाना पडता है। क्या लालू ने भी ऐसा ही किया है ? जाने दीजिए इस बीमा-कपनीवाले की बात। ये लोग कुछ जबादराज और लफ्फाज भी होते ह। लेकिन, वह समाजवादी नेता ? वह तो गरीबो का हिमायती था। उसने भी तो कहा था—आप समझते हैं, लालू खुश है, लेकिन ऐसे वक्त भी आते होगे, जब आपके पर्स के नोटो के गड्डे, आप के हाथ की खूबसूरत घडी ! बस, बस, हो-न-हो, वही वक्त था, जब कि उसने ! लेकिन, इससे आगे फिर वह नही सोच सके। दूसरे पहलू से देखने की कोशिश की। क्या यह सम्भव नही कि कोई दूसरा नौकर ही अचानक उस ओर मे गुजरा हो, और उसी ने तो क्यो नही, कल जरा सब नौकरो की जाच-पडताल की जाय ? परतु, ज्यो ही मने ऐसा किया, फिर तो घर-भर मे हल्ला मचेगा। घर मे ही क्यो, बाहर तक। और, सबका सदेह लालू पर ही जायगा, और वे कहेगे, चोर नौकर रखने का यही नतीजा होता है। कहेगे, हँसेगे, मुझे बुद्धू समझेगे। धन गया, बेवकूफ भी क्यो कहलाऊँ ? कही झूठ न बोलना पडे, इसके लिए दूसरे ही दिन उन्होने किसी जमीदारी की तरफ जाने का तय किया। लौटने पर लोग पूछेगे, तो देखा जायगा। हा, इस निश्चय के साथ उन्होने यह भी तय किया कि अब जरा लालू पर निगरानी भी रखेगे।

जमीदारी से लौटे। लोगो के पूछने पर यह भी कह दिया कि घडी गायब हो गई। लेकिन, कहाँ, कब की चर्चा होते ही बाते बदल दिया करते। धीरे-धीरे लालू पर फिर उनका विश्वास जमता जा रहा था।

इसी समय, ऊँट की पीठ पर के आखिरी तिनके की तरह, एक घटना और घट गई। एक दिन उन्होने अपना पर्स भी गायब पाया। पर्स अब वह हमेशा अपने ही पास रखा करते थे। उस दिन सिर्फ दस-दस रुपए के दो नोट ही उसमे थे। लेकिन, अब तो उन्होने मान लिया कि लालू फिर चोर हो चला है। समाजवादी नेता की बात सच निकली—ये कमबख्त सचमुच कलजुगी पैगम्बर होते ह, लेकिन उन्हे भय तो हुआ बीमा-कम्पनी के डायरेक्टर की बात को याद कर। अरे, अब यह निश्चय ही गहरा हाथ मारेगा, और मुझे हाथ मल-मलकर रह जाना पडेगा ! नही, इससे पिंड छुडाना ही अच्छा। तो क्या पुलिस को दे दूँ ? ऐसे चोट्टो की यही

गति होनी चाहिए। जायँ साले जेल, पीसे फिर चक्की। किंतु, इसी समय उन्हें या५ आई समाजवादी नेता की बात—शायद फिर कही न इस बेचारे को उसी कैदखाने मे चक्की चलाना पडे ! यह तो उसने ताना दिया था। नही, हम उसे भी बता देंगे, हम ऐसे नीच जीव नही ह।

शाम हो रही थी। लक्ष्मी बाबू का रुख देख, लटका चेहरा लिये लालू उनके टेबुल का बडा लैम्प जलाने का उपक्रम कर रहा था कि उन्होने उसे पास बुलाया। कुछ पूछ-ताछ किये बगैर, दस-दस रुपए के दस नोट उसके हाथ मे रख कर कहा—"लालू, ये रुपए लो, अब घर जाओ। तुम्हारे लिए मेरे यहाँ अब जगह नही। इन्ही रुपयो से कुछ या ।" वह बोल न सके। "बाबू"—लालू ने भरे गले से कुछ कहना चाहा। "नही, जाओ, जाओ।"—उनके मुख की मुद्रा कठोर थी। हाथ मे वह हटने का इशारा कर रहे थे।

थोडी देर मे, जब वह अकेले थे, गुनगुना रहे थे—

"सूरदास कारी कामरि पर चढत न दूजो रग।"

(५)

जिस दिन लक्ष्मी बाबू का फाउटेनपेन गुम हो गया, लालू उसी दिन से गमगीन रहता। यद्यपि उन्होने उससे इस बारे मे एक बात नही कही, उल्टे उसे उत्साहित करने के लिए अब उससे इधर-उधर की ज्यादा बाते किया करते, उस पर ज्यादा विश्वास और प्रेम दिखलाते, तो भी लालू को कोई चीज खटकती-सी रहती। कुछ इस तरह उसे मालूम होता कि उसके अच्छे दिन बीत गये, कोई सकट उस पर आनेवाला ही है। दिखाने के लिए वह अपना व्यवहार पूव-सा ही रखता, अपने मे फुर्ती और चुस्ती पहले-सी दिखलाता, लक्ष्मी बाबू के सामने अपने चेहरे मे पहले की तरह ही मुस्कुराहट और उमग लाने की कोशिश करता, लेकिन उसके दिल की कली मे कोई कीट घुस चुका था, जो धीरे-धीरे उसे खाये जा रहा था।

जब घडी गायब हुई—उसने मान लिया, अब उसकी खैर नही। उसने लक्ष्मी बाबू के बदले हुए रुख को भी भाँपा। दूसरे दिन ही जब वह ज़मीदारी की ओर चले, उसे समझते देर न लगी, यह असामयिक यात्रा उसी के लिए हुई है। फिर जब देखा, लक्ष्मी

बाबू की आँखे सदा उसकी ओर लगी रहती ह—सामने होने पर वे आखे सन्देह बरसाती है, पीछे खुफिया-सी दौडती ह—तब से उसे निश्चय हो गया, लक्ष्मी बाबू को उसी पर शक है। अब कोशिश करके भी वह अपनी पुरानी फुर्नी, उमग, मुस्कुराहट अपने मे नही ला पाता। दिन मे खोया-खोया सा रहता, रात मे प्रग्य रोता। हाय रे उसके वे सपने! कहाँ वह दोनो बेटो को यहाँ लानेवाला था, अब उसके अपने रहने का भी ठिकाना नही मालूम होता!

एक रात लगातार उसकी आँखो से आँसू आते रहे—उसने आसू रोकने की कोशिश की, सोने की कोशिश की, किन्तु यह हो न सका। भोर मे बिछावन छोडने के पहले ही उसने तय किया—आज बाबू से खुलकर कहूँगा, उनके पैर पकडूगा, अपनी निर्दोषिता उनपर सिद्ध करूँगा और अगर उन्हे विश्वास न हो तो उनसे माफी लेकर घर चल दूँगा। तकदीर मे जैसा लिखा है, होगा। गाव में बहुत से लोग गुज़र कर रहे हैं, मेरी भी गुजर हो ही जायगी। किंतु, इस तरह का निश्चय करके जब वह लक्ष्मी बाबू के सामने आया, उसकी जबान न खुली, पैर छूने को हाथ न बढे। मानो लक्ष्मी बाबू उसकी मन स्थिति को समझ गये हो—उन्होने झट उसे कई ऐसे कामो मे लगा दिया की दिन-भर उमे फुरसत ही नही मिल सकी। सोने के पहले जब वह उन्हे दूध पिलाने गया था, उसने सोचा था, इस वक्त कहूँगा, पर उसके हाथ से दूध लेकर लक्ष्मी बाबू उसके घर का हाल-चाल यो पूछने लगे, जैसे उनके दिल मे कोई शक-शुबहा रह नही गया था। लालू ने इस बार भी चुप लगा ली—भरे घाव को खोदने में उसने कोई भलाई नही देखी।

और, आज यह पसवाली घटना! सिफ एक बार लक्ष्मी बाबू ने उससे पूछा—"तुमने पस देखा?" पस की बात सुनते ही लालू काँप उठा। उसे लकवा-सा मार गया। उसकी जबान न खुली। जब तक वह होश मे आये, लक्ष्मी बाबू वहाँ से टल चुके थे। तब से वह एकात मे जाकर रोता ही रह गया था, किमी काम से लक्ष्मी बाबू ने उसे बुलाया तक नही। जैसे वह उसका मुह देखना नही चाहते हो, और शाम को बुलाया, तो बिदा देने के लिए!

झुटपुटा हो चला था। कही कोई दूसरा नौकर या लक्ष्मी बाबू के घर के लोग उसे देख न ले, इस आशका से वह वहाँ से तीर-सा

नकला। वह किसी को क्या मुह दिखाये ? उसके कुछ निजी सामान और कपडे थे, उनकी ओर ध्यान तक नही दिया। जल्द-जल्द पैर उठाता, वह आगे बढता गया। रास्ते मे कोलाहल था। मडको पर आवा-जाही लगी थी। वह इस तरह जा रहा था कि कई आदमियो से धक्के लगे। आखे थी, लेकिन उनसे दिखाई नही देता था, कान थे, लेकिन कुछ सुनाई नही पडता था। दिमाग सूना था। पैर अभ्यास-वश आगे बढ रहे थे। जिनसे धक्के लगे, उन्होने डाटा। एक बार एक घोडा-गाडी से दबते-दबते बचा, लेकिन उसे कुछ मालूम नही होता था। वह अनुभूति खो चुका था। भीड-भाड से निकल कर जब वह कुछ दूर निकल आया, उसने पाया, वह नदी के किनारे है। सामने पुल है, पुल पर कुछ लोग टहल रहे है। इसी समय, एक भिखारिन वहा उसके सामने, आ खडी हुई। "बाबू एक पैसा"। उसने कहा।—चोक कर उसने अपने हाथ मे देखा कि दस-दस रुपये के दस नोट चुटकियो से अभी दबे ह। दसो नोट बुढिया के हाथ मे रख दिये। बुढिया भोचक ! लालू ने कहा—"जा, जा इन्ही रुपयो से कुछ या ।"

यह कह कर वह वहा से बढा। अधकार घना हो चला था। जब वह पुल पर पहुँचा, वह सूना हो चला था। हॉ दूर के घाट पर कोई बशी बजा रहा था, उसका दर्दीला स्वर सुनाई पडता था। एक क्षण वह ठहर गया। आसमान की ओर देखा, नदी मे एक मछली उछली और छप-सा शब्द हुआ। "या गगा मैया, अब तुम्हारी ही शरण ।"

वह पुल पर से उछला। छप-सा शब्द ! फिर लहरो की वही कलकल-कलकल। पश्चिम क्षितिज पर मगल तारा मुस्कुरा रहा था !

भिखारिन की थाती

(१)

अपने एक नवागतुक मित्र के साथ, गोलघर पर चढकर हाई-कोट और सेक्रेटेरियट के परे डूबते हुए सूरज की रगीनियाँ, उत्तर ओर बाढ से उफनाई गगा की धूमिल तरगे, उससे आगे सोन-पुर के पुल पर गाडी का धुआँ उगलते आना और पूरब ओर, कदम-कुआ से कुम्हरार तक, लबा लेटे पटना-शहर का अभी स ऊँघना देख कर, व्रजेश लान के मैदान मे आया। वहा टहलने के साथ ही राज-नीतिक विषय पर कुछ बाते होने लगी। बाते हो ही रही थी कि एक भिखमगा आकर 'बाबू, एक पसा' की रट लगाने लगा। बस, फिर क्या था, व्रजेश बरस पडा। अपने किंचित राजभक्त मित्र को लक्ष्य करके कहने लगा—

"यही है आपका अँगरेजी राज्य, जिसकी यशोगाथा आप गाते है ! ऐसे हट्टे-कट्टे लोग भीख मागने पर जहा लाचार होते है ! इनसे क्या काम नही लिया जा सकता था ? आप कहेगे, ये कामचोर होते है। तो, ऐसे आदमियो को जेल मे रखिए, उनकी आदत छुडाइए, उन्हे काम सिखाइए। लेकिन, आज तो यह सरकार जेल का उपयोग देश-भक्त युवको को वहा सडाने के लिए करती ह। यहा की पुलिस होनहार नौजवानो के पीछे तो हाथ धोकर पडी रहती है, उसे फुरसत कहाँ कि ऐसे लोगो की ओर वह ध्यान भी दे ! ये नागरिको को तग करते है, तो करे !"

मित्र जवाब मे कुछ बोलते, लेकिन उनकी एक दूसरे जान-पह-चानवाले से भेट हो गई। वह उनसे मिलने-जुलने लगे। व्रजेश ने कहा

"माफ कीजिए, आज मुझे रात मे भी ऑफिस जाना है, इसलिए फुरसत लेता हूँ।" वह वहाँ से तेज़ी से कदम उठाता हुआ चला। लॉन पार कर जब वह एक्जिबिशन रोड की तिमुहानी पर पहुँचा, बडे पीपल के पेड की ओर, बिजली के खभे से सटी, एक सूरत दिखाई दी, और उसके मुँह से भी वही– 'बाबू, एक पैसा' सुनाई पडा। व्रजेश यह आवाज सुनते ही झल्ला उठा। "ये कमबख्त कही जान न छोडेगे।" और, उसकी ओर से मुँह मोड तेजी से बढने को सोच ही रहा था कि उसने देखा, वह एक स्त्री है, और उसकी गोद मे एक बच्चा हे!

बच्चो से व्रजेश को स्वाभाविक स्नेह था। कही बच्चा देखा, उसे चुमकार दिया, चुटकी बजा दी, और हो सका, तो चूम भी लिया। बच्चे को देखते ही उसका दिल उमड आया। झट उसने पॉकेट मे हाथ डाला और रेजगारी का जो टुकडा पहले उसके हाथ मे पडा, उसे निकालकर भिखारिन के हाथ पर रख दिया। हाथ पर रखे जाते ही, बिजली की रोशनी मे, वह टुकडा चमक उठा—एक अठन्नी थी! भिखारिन का हाथ काप गया, उसने समझा, शायद देने मे भूल हुई है। लेकिन, व्रजेश पर उसका कुछ असर न हुआ। उसने हँसते हुए कहा – "कोई बात नही, बच्चे के लिए लाल शरबत खरीद देना। यह इसी के भाग्य से निकल आई है।" और, वहाँ से चल दिया।

(२)

व्रजेश एक भावुक युवक हे। पढने मे खूब तेज था। अगरेजी मे ऑनस लेकर बी० ए० पास किया। युनिवर्सिटी भर में फस्ट आया। कुछ लोगो ने आगे पढने की सलाह दी, किसी ने डिपटीगिरी के लिए कोशिश करने की ओर झुकाना चाहा। किंतु उसने कुछ न सुना। वह पहले ही तय कर चुका था, ग्रेजुएट होकर सपादन-कला मे अपना वक्त लगायगा, उसने वही किया। वह एक हिंदी दैनिक का सहकारी सपादक है।

अपने कार्यालय मे उसे लॉन के ही रास्ते से जाना होता था। कल होकर ऑफिस जाते समय, दस बजे, वह उस तिमुहानी के नजदीक पहुँचा, उसकी आँखो ने अनायास ही रात की उस भिखारिन की तलाश की। वह नही थी। उसने इस पर ज्यादा ध्यान भी नही दिया। इस जमाने में भिखमगो और भिखारिनो की क्या कमी ? कहाँ तक किस पर ध्यान दिया जाय ? हाँ, बात बच्चे की थी। और,

जेब से सयोग-वश अठन्नी ने निकलकर उस प्रसग मे थोडी नवीनता ज़रूर ला दी थी।

किंतु, शाम को पाँच बजे, ऑफिस से लौटते समय, उसने देखा, भिखारिन पीपल की छाया मे खडी है और जब कोई भद्र पुरुष या स्त्री को दूर से आते देखती है, सरककर सडक के किनारे आ जाती और पैसे माँगती है। नि स्सदेह बच्चे का असर लोगो पर पडता है, उसे औसत से ज्यादा ही पैसे मिलते ह। "बच्चा न हुआ, पेट पालने का साधन बन गया—कैसी करुण स्थिति !" यह सोचते व्रजेश वहा पहुँचा। उसे देखते ही भिखारिन छाया से सडक की ओर बढी। जब तक उसके मुँह से कुछ निकले, व्रजेश का हाथ उसकी जेब मे था। एक इकन्नी उसके हाथ मे फेक, बच्चे की ओर सतृष्ण आँखो से देखता, वह बढ गया।

अब प्राय आफिस से लौटते वह भिखारिन और उसके बच्चे को देखता, उसे पैसे देता। उसे मालूम हुआ, वह बच्चा बच्ची है। अब कभी-कभी वह भिखारिन के पास ज़रा-सा रुककर बच्ची को चुमकार भी दिया करता। एक दिन तो उसकी उँगली बच्ची के गाल की ओर बढी भी, लेकिन फिर सहमकर उसने उसे खीच लिया। कही कोई देखेगा, तो क्या कहेगा ?

बच्ची के स्नेह ने उसकी माँ की ओर भी उसका ध्यान खीचा। उसने यह अनुभव किया कि भिखारिन की ओर नजर पडते ही उसे आभास होता है कि भिखारिन उसके चेहरे को पढने की जैसे कोशिश करती है। उसकी आँखो मे अजनबीयत नही दिखाई देती, मालूम होता, किसी पुराने परिचित की ओर वह घूर रही है। उसकी भेष-भूषा मे भी कुछ निरालापन था। उसकी साडी फटी थी, गदी थी, कितने पेबद लगे थे उसमे। लेकिन, उसकी किनारी बताती, वह कभी एक नफीस कीमती साडी रही होगी। साडी के भीतर जो चोली वह पहने थी, उसमे से सुनहले काम के कुछ बूटे जहाँ-तहाँ अब भी चमक जाते थे। दाहिनी कलाई खाली थी, किंतु बाइ मे एक लाल चूडी थी, जो, जब वह हाथ नीचे करती, तो पहुँचे से निकलने की कोशिश करती, अगर ऊपर उठाती, तो कलाई के बहुत ही नीचे, कुहनी और कलाई के बीच के हिस्से तक, जा पहुँचती, और हाथ सीधा रहने पर वह बेडौल-सी झूलती होती। चेहरे पर फुसियो की भरमार थी, जिससे उस ओर गौर से देखने की इच्छा भी नही होती।

हाँ, उसकी आखो मे एक अजीब शर्मीलापन टपकता, जो भिखारिन के पेशे के प्रतिकूल मालूम होता था। उसके आगे के दो दाँत टूटे हुए थे, जो उसके चेहरे को ही सिफ भद्दा नही बनाए हुए थे, उसकी उम्र के बारे मे भी काफी भ्रम फैलाते थे।

खुद फटेहाली मे रहती हुई भी अपनी बच्ची को वह सँभाल से रखती। रोज बच्ची के बालो मे कघी की हुई दिखाई देती, उसकी आँखो मे काजल भी रहता, एक-आध झुनझुने या गुड्डे उसके हाथ मे होते, उसके कपडे भी अच्छे होते। कभी-कभी तो शक होता, किसी शरीफ की बच्ची को यह चुरा लाई है। लेकिन जिस लाड से वह उसे लिये रहती और जिस निश्चितता से बच्ची उससे चिपकी रहती, जरा भी गौर करने पर ऐसा शक तुरत काफूर हो जाता।

"अजीब है यह भिखारिन ! क्या इसके पीछे कोई इतिहास है ?" उसके भावुक हृदय मे ऐसे सवाल उठते ओर अखबार नवीसी की पता लगाने की प्रवृति उसे उत्साहित करती कि जरा जाच पड-ताल करे। लेकिन, वह लोक-निदा से डरता—"बदशकल हुई तो क्या, माँ बनी तो क्या हुआ, आखिर जवान तो है ! जमाना बुरा है—बुराई ही की ओर तो सबकी नजर रहती है। दिल कौन देखता है, मशा का पता कौन लगाता है ? यहाँ तो गढा-सँवारा इल्जाम धरा है, जिसपर चाहा, थोप दिया।" यो सोचकर वह रह जाता। फिर, काम की भीड भी बनी ही रहती थी। लेकिन, इस भीड-भडक्के के बीच भी जब-तब भिखारिन और उसकी बच्ची की याद उसके दिल मे चमक उठती। कभी-कभी उसे ऐसा लगता कि उसने ऐसी सूरत कभी देखी हे। तब वह उन लडकियो की याद करता, जिन्हे उसने निकट से देखा है, या जिन्होने उसके दिल पर कभी असर किया था। ऐसी एक-एक सूरत को याद कर उनके चेहरे से उसके चेहरे का मिलान करने की कोशिश वह करता। लेकिन, वह ज्यादा देर तक ऐसा नही कर पाता, क्योकि भिखारिन के चेहरे पर की फुसियाँ उसके दिल मे अजीब घिन-सी पैदा कर देती। "गोली मारो इस भिखारिन को ! मै भी अजीब झक्की आदमी हूँ, छोटीछोटी बातों को तूल देकर लम्बा बना लेता हूँ, और फिर उसी की भूल-भुलैया मे चक्कर खाता रहता हूँ। दुनिया मे बडी-बडी बाते है, राज-नीति, साहित्य, कला, क्या-क्या न ! फिर इस नाचीज़ के ... " व्या-कुल होकर वह सिगरेट जलाता और उसी की फूँक मे उसे उडा देता।

चिता के फूल

जाडे की रात थी। उसके अखबार का विशेषाक निकलने जा रहा था, जिसके चलते उसे रात मे भी बहुत देर तक काम करना पडता था। आज तो दो बजने जा रहे थे। जाडे से उँगलियाँ सिकुड रही थी, रह-रहकर पछवा हवा डोल जाती, जो खिडकियो से आकर उसके कलेजे को कँपा देती। नीद के मारे उसकी आखे भी बोझिल हो रही थी। लेकिन चाय और सिगरेट के जोर पर उसकी कलम दनादन चल रही थी। आखिरी मैटर देकर, आखिरी प्रूफ पढकर, मन ही मन अपने पेशे और अपने को कोसता वह घर की ओर चला। सडक पर सन्नाटा था। कुहासे के कारण सडक की रोशनी खभे के नीचे मुश्किल से उतर पाती थी। मुँह से सिगरेट का धुआ छोडता, तेज कदम वह आ रहा था। कब घर पहुँचू, रजाई ओढकर, गरमाकर सो जाऊँ– इसी की आतुरता थी।

इसी आतुरता मे वह लॉन की उस तिमुहानी पर पहुँचा। इधर कई दिनो तक रात मे देर से आने के कारण उसने भिखारिन को नही देखा था। उसे धक-से याद आया, आह ! इस जाडे मे वह और उसकी बच्ची कहा और कैसी होगी ? वह गुडिया सी खूबसूरत, छोटी, तुनुक लडकी ! इस याद को मानो धुएँ मे उडाने को ही उसने सिगरेट मे जोर का कश दिया कि उसके कानो मे अचानक एक कराह की आवाज आई– आह ! आह ! आह ! और उस आह की आखिरी कडी की तरह बच्चे की चीख सुनाई पडी ! सुनते ही व्रजेश मुड गया—मानो, वह आदमी नही, कल हो। मुडकर उसने अपने टॉर्च की रोशनी उस ओर, पीपल के पेड की जडे जहाँ थी, फेकी। कोई चीज दिखाई नही पडी। वह कुछ सोचने ही जा रहा था कि फिर कराह ! हाँ, जडो के ही नजदीक से तो ! वह, फिर कल के पुतले ही की तरह, उस ओर खिचता हुआ-सा, बढा। देखा, जडो की उस ओर, शायद इसलिए कि सडक पर चलनेवालो की नजर न पडे, दो मोटी-मोटी उभरी जडो के बीच, एक फटा टाट ओढे एक स्त्री पडी है, और बगल मे ही बच्चा है। हा, वही बच्ची, जो टाट से बाहर हो गई है, और जाडा लगने से चीख पडी थी। टॉर्च की रोशनी पडते ही बच्ची ने आखे खोल दी, और फिर चीख उठी। चीख सुन भिखारिन टाट के अदर मुगबुगाई, और फिर आह-आह करने लगी।

व्रजेश बडे असमजस मे पड गया। बच्ची चीख रही है। भिखारिन कराह रही है। वह खडा है। वह क्या करे ? कोई देखे, तो तो क्या सोचे ! कुछ सोचे, लेकिन वह क्या करे — यह भी तो वह नही सोच पाता ! बच्ची को उठा ले ? भिखारिन को देह पकडकर जगा दे ? इसे क्या हुआ है, जो इस तरह बच्ची को छोड बेहोश-सी कराह रही है ? जो दिन मे उसको हमेशा कलेजे से चिपकाये रहती, वही इस रात मे बच्ची को यो अनाथ छोडे हुई है ! कोई जानवर ही उठा ले जाय ! जब होश मे आयगी, जिदा बचेगी ? इसी तरह व्रजेश सोच ही रहा था और बच्ची चीखे जा रही थी कि उसने देखा, भिखारिन फिर सुगबुगाई, उसका एक हाथ टाट से बाहर निकला, टटोलने-सा लगा, किंतु कुछ न पाकर फिर जड सा, निर्जीव-सा हो रहा ! 'आह, आह' भी बढने लगी !

व्रजेश से देखा नही गया, उसने बच्ची को उसके हाथ के नजदीक ला दिया। झट उसे टाट के नीचे घसीटकर भिखारिन ने छाती से लगा लिया। बच्ची चुप हो रही। अब व्रजेश क्या करे ? क्या चल दे ? किंतु, भिखारिन की यह कराह ! हिम्मत करके उसने भिखारिन के मुँह पर से टाट हटाया। टॉर्च की रोशनी मे उसने एक बार आँखे खोलने की कोशिश की। पपनियाँ हिली, पलको मे सुगबुगाहट देखी गई, किंतु आँखे नही खुल सकी। क्या खुले ? उसके समूचे चेहरे पर बडे-बडे फफोले है। जो फुन्सियाँ थी, वे फफोले बन गये है। समूचा चेहरा लाल अगारा बन रहा है, और नाक से जोरो की साँस चल रही है। विस्मय-विमुग्ध व्रजेश घूर-घूरकर देख ही रहा था कि भिखारिन के होठ हिल उठे, और बडी मुश्किल से एक क्षीण शब्द-मात्र निकला — "पानी !"

पानी ? पानी इस दो बजे रात को कहाँ से लाया जाय ? सडक के किनारे के नल मे तो पानी नही होगा। निकट के किसी घर से उसका परिचय नही। वह बेतहाशा अपने ऑफिस की ओर दौडा। ऑफिस के चपरासी को जगाया, उससे एक लौटा पानी लेकर आप तो तिमुहानी की ओर लौटा, और उससे कहा, स्टेशन जाओ, एक फिटन,टमटम, रिक्शा, जो कुछ मिले, लेकर लॉन की उस तिमुहानी पर आ जाओ।

उसी दो बजे रात को भिखारिन और उसके बच्ची को लिये वह बडे अस्पताल मे पहुँचा। ड्यूटी पर का डॉक्टर आराम-कुरसी

पर ऊँघ रहा था। व्रजेश ने अपने परिचय का काड उसे दिखलाया। अपने जिस पेशे को उसने थोडी देर पहले कोसा था, उसका प्रभाव देखा। अखबारवालो से कौन नही डरता ? डॉक्टर ने बडी तवज्जह से रोगी को देखा, लेकिन देखते ही उसके मुख की भाव-भगिमा बदल गई। फिर उसके कपडे-लत्ते को गोर से देख उसने व्रजेश से कहा — "माफ कीजिए, मै पूछू, यह कौन है ?"

"क्यो, क्या बात है ?"

डॉक्टर ने जरा सिर खुजलाया, फिर कहा "यही, शरीफ घर मे , हॉ, शरीफ घर मे मैने कहा, यह बडे बुरे टाइप की बीमारी क्या कही सडक पर थी ?"

"नही-नही, यह मेरी नौकरानी हॉ, उसकी गोतिन लगती है।"

"कमबख्त कहॉ से यह जबाल लगा लाई ?" कहकर डॉक्टर नस को बुलाने का आयोजन करने लगा। "धन्यवाद ! फिर कल मिलूगा।"—कहकर व्रजेश वहॉ से घर की ओर चला। अखबार का चपरासी मन-ही-मन यह सोचता कि व्रजेश बाबू भी क्या सनकी है, दफ्तर की ओर उसी फिटन पर चला। दोनो तरफ का किराया व्रजेश दे चुका था।

(३)

नीद का माता होने पर भी व्रजेश को घर पर जल्द नीद नही आई। फलत वह देर से जगा। ऑफिस का वक्त हो रहा था, जल्द-जल्द नहा, धो, कुछ जलपान कर, वह घर से चला। किंतु उसके पैर ऑफिस की ओर नही बढे। रास्ते मे उसने एक डब्बा बिस्कुट खरीदा, एक रबर का खिलौना लिया और अस्पताल के ज़नाना वाड मे पहुँचा। बच्ची से ही उसने भिखारिन को पहचाना, जो लाल कम्बल से सिर से पैर तक ढँकी थी। सिफ कराह और उसॉस सुनाई पडती थी। उसके सिरहाने टँगे चाट को पढने लगा। बुख़ार की रेखा १०५ तक खिची हुई देखकर वह कॉप उठा। व्रजेश इस समय साहबी लिबास मे था—फिर, नौजवान। छोकडी नस उसे देखते ही उसके नज़दीक आ गई। जब तक वह कुछ बोले, उसके हाथ मे बिस्कुट का डब्बा देते हुए व्रजेश ने कहा—"यह बच्ची के लिए है।" और, खिलौना बच्ची के हाथ मे दे, पहली बार उसकी उँगली पकडकर उसने नज़दीक

से पुचकारा। बच्ची ललक पडी, व्रजेश के होठ बरबस उसके गालो से जा लगे ! बच्ची के गालो की गरमी और चिकनापन का एहसास अपने होठो पर ओर भिखारिन की बुखार की ज्वाला अपने दिमाग मे लिये वह जल्द अपने ऑफिस को भागा।

ऑफिस से छुट्टी पाते ही व्रजेश अस्पताल आ जाता। भिखारिन की सेवा-शुश्रूषा करता, बच्ची को दुलारता, चुमकारता। उसकी इस प्रकार देख-भाल के कारण डॉक्टर भी भिखारिन पर ज्यादा ध्यान देते। वह धीरे-धीरे अच्छी हो रही है, ऐसा लगता था। भिखारिन वहाँ व्रजेश की मेडसर्वेट करके प्रसिद्ध थी। इस मेडसर्वेट पर इतनी मेहरबानी, उसके लिए इतनी जॉफिसानी देखकर मनचली नर्सो ने कुछ अपनी ही कहानियाँ बना ली थी। वे जब-तब वज्रेश से चुहले भी कर देती। व्रजेश कभी झुझलाता, कभी मुस्कुरा देता। एक दिन एक नस ने कहा—"व्रजेश बाबू, यह बच्ची ठीक आप ही–सी लगती हे !" व्रजेश ने पहले इसका मम नही समझा, बोला, "हॉ— खूबसूरत तो बहुन हे !" लेकिन, जब उसने बात को आगे बढाते हुए कहा —"लेकिन हरजाई निकली यह, या आपकी ही मेहरबानी है !" तब वह क्रोध स आग-बबूला हो चला और उसे डॉटा कि ज्यादा बढोगी, तो मै स्टाफ से रिपोट कर दूगा। इसपर कनखियो से ही हँसती वह चलती बनी, मानो यह ताना देती—"सच्ची बात इसी तरह खलती है, म तुम नौजवानो की रग-रग पहचानती हूँ, बहुतो को देखा हे मने !"

कुछ दिन बीते। उस दिन भिखारिन की हालत अच्छी थी। फफोले सूखते-से दिखाई देते थे, बुखार भी कम था। नस ने स्पज करके उसे नये धुले कपडे पहना दिये थे, जिन्हे व्रजेश ने ही खरीद-कर ला दिया था। बालो मे कघी कर दी गई थी। इन फोडो के बावजूद, वह आज जैसी खूबसूरत मालूम होती थी, व्रजेश ने उसे वैसी कभी नही पाया था। जब वह उसके निकट खडा था, उसने व्रजेश से बैठने का इशारा किया। यह पहली बार थी, जब उसने इस तरह आग्रह दिखलाया था। उसके बैठने के बाद वह थोडी देर चुप रही, फिर बोली—

"बिजू बाबू !"

'बिजू बाबू' इस नाम से तो उसे पटना मे कोई नही पुकारता, 'बिरजी बाबू,' 'बिरज बाबू' यहाँ ये ही अपभ्रश नाम थे उसके। यह

तो उसका बिलकुल घरेलू पुकार का नाम है। इस प्रकार के नाम मे सम्बोधित होने से वह आश्चर्यचकित हुआ। भिखारिन की ओर उसने आखे गडाकर देखना शुरू किया।

"बिजू बाबू, आप मुझे भूल गये ? म सुगिया हूँ।"

झट उसके सामने एक तस्वीर खिच गई, अपनी बहन की ससुराल मे देखी उनकी नोकरानी की बेटी की तस्वीर! बचपन से जब उसने बहन के यहाँ जाना शुरू किया, यह लडकी उसकी आखो के सामने आने लगी। व्रजेश भी बढा, वह भी बढी। आखिरी बार जब उसने देखा था, वह किशोरी हो चली थी। नोकरानी के बेटी, किंतु सुन्दरी, जैसे राजरानी हो! यो तो उसके अग-अग मे सौदर्य कूट-कूटकर भरा था, किनु उसकी नाक तो अपूव मनोहर थी। देहात की सौदय-पारखी आखो ने इसी नाक को लक्ष्य कर, मानो उसका नाम सुगिया रख दिया था। सुगिया—सुग्गे-सी उभरी, पतली, नुकीली, रगीन, सुन्दर हो नासिका जिसकी।

उसकी विधवा मा अपनी इकलौती बेटी को खूब सज-धज कर रखती। जब व्रजेश की बहन की ननद पढने लगी, यह लडकी भी उसके साथ उसका बस्ता लिये स्कूल जाने लगी। किंतु कुछ ही दिनो मे इसने पढने मे उसे मात किया। उसने गॉव के अपर स्कूल की पढाई खत्म की। "नौकरानी की इस पढी लिखी बेटी के लिए दूल्हा कहा मिलेगा ?"—एक बार व्रजेश ने हँसते हुए अपनी बहन से पूछा था। जब तक वह बोले, यह प्रगल्भ किशोरी बोल उठी—"आप ही ले चलिए, बिजू बाबू, कम-से कम सेवा तो अच्छी कर सकूगी, दासी की बेटी ठहरी।" अपने पर की गई इस दिल्लगी से व्रजेश की बोलती बद हो गई थी।

लेकिन, आज इस सुगिया ओर उस सुगिया मे कितना अन्तर है! समूचे चेहरे पर फोडे, नाक इन फोडो से चिपटी-सी हो चली है। अगले दो दातो ने टूटकर सौदय मे ही नही, स्वर मे भी अन्तर ला दिया हे। उफ्, आदमी कितना बदल सकता हे!

कुछ देर भिखारिन चुप रही, व्रजेश भी दिमागी उलझन मे पडा था। उसने फिर कहना शुरू किया—

"मै बचूँगी नही बिजू बाबू! मेरा भाग्य, आखिरी वक्त आप मिल गये, नही तो यह बोझ कलेजे पर लेकर ही मरती!"—इस

छोटी भूमिका के साथ उसने अपनी कहानी व्रजेश से कही। सक्षेप मे वह यो है—

उसी गॉव मे एक नोजवान था। मा-बाप का इकलौता। बडा सुशील, बडा नेक। जहॉ गाव के दूसरे नोजवान सुगिया—इस दासी-पुत्री—पर डोरे डालते, फँसाने की कोशिशे करते, ललचाते, डराते, वहॉ वह सुगिया की ओर आखे भी उठाता, तो सकुचाते, शरमाते। वह हिंदू-युनिवर्सिटी मे पढता था। उस साल बी० ए० का इम्तिहान देकर वह होली के पहले ही गॉव मे आ गया और गरमियो तक तक रहा। सुगिया ने पाया, यो तो वह उसके सामने झेपता है, किंतु कभी अचानक ऑखे चार होती है, वह उसकी ओर ललचाई ऑखो से देखता ही रह जाता है। कुछ दिनो के बाद सुगिया ने अपने मन मे भी कुछ अजीव कशिश महसूस की। पहले इस आकषण को मोडने की उसने कोशिश की, कितु नाकामयाब रही। वे दिन भी आये, जब एक बार किसी-न-किसी बहाने, विना उसे देखे, उसे चैन नही पडता। उसे क्या हो गया है, वह कहॉ फिसली जा रही हे, वह समझ नही पाती। खिचाव दोनो ओर से था। अब वह नौजवान भी जब-तब व्रजेशजी की बहन के घर की ओर आता और अपनी स्वाभाविक शरमाई, सकुचाई ऑखो से उसे देख जाता। एक दिन एक लडकी सुगिया को एक खत दे गई—वह उस नौजवान का था। अब, मानो प्रेम को जबान मिल गई। दोनो ओर से हृदय का उडेलना शुरू हुआ, जो अत मे आत्मसमपण तक जा पहुँचा।

हाँ, आत्मसमपण ! युवक ने प्रस्ताव किया कि अगर सुगिया राजी हो, तो वह उसे अर्द्धांगिनी बनाने को तैयार है। अर्द्धागिनी—दासी-पुत्री और बाबू की अर्द्धांगिनी ? लेकिन, वह दुनिया को दिखा देना चाहता है कि यह असम्भव नही है। प्रेम क्यो कोई बधन माने ? फिर, पुराना जमाना लद गया। माना, उसके बाबूजी सिर पीटेंगे, मॉ चिल्ल-पो मचायगी और समाज के लोग जमीन-आसमान एक करेंगे। वह उस समाज की परवा नही करता, जो चुप-चोरी किसी गरीब लडकी का सतीत्व लूटना तो बरदाश्त कर लेता है, लेकिन खुले आम उसके पाणिग्रहण पर हाय-तोबा मचाने लगता है। इस सडे, दुर्गंध और गदगी-भरे समाज के सिर पर ठोकर लगाना वह अपना कतव्य समझता है। रह गये मॉ-बाप। सो, वह इकलौता बेटा ठहरा—कुछ दिनो तक नाराज रहकर फिर वे मान ही जायँगे। युवक के इस उच्च

आदश पर सुगिया कैसे न हामी भरती। हाँ, उसे भी अपनी माँ की चिता थी, सो, सयोग-वश छुट्टी के बाद कॉलेज जाकर फिर जब विजया की छुट्टी मे वह युवक लौटा, तब तक उसकी माँ चल बसी थी—मानो, अपनी प्यारी बेटी के लिए रास्ता साफ करने के लिए ही !

विजया की छुट्टी पूरी होते-न-होते गाँव मे शोर मच गया, सुकुमार ने (हाँ, उस नौजवान का यही नाम था) सुगिया को उडा लिया, दोनो एक रात कही निकल गये। कहाँ निकल गये, इसमे भी ज्यादा सरपच्ची नही करनी पडी। काशी जाकर सुकुमार ने वहाँ के आर्यसमाज-भवन मे सुगिया से बाजाब्ता शादी की। अखबारो मे एक छोटा-सा प्रशसात्मक सम्वाद छपा। सुकुमार ने अपने बाप को उस सम्वाद की कटिग के साथ खत भेज दिया। बाप आग-बबूला। उन्होने लिख दिया— "मैने मान लिया, मै निपूता हूँ। तुमने मेरी नाक काट ली। तुम मेरे कोई नही होते हो।" सुकुमार इसके लिए तैयार ही था। इस बार काफी पैसे माँ से झटक लाया था। इन्ही पैसो से युनिवर्सिटी के नजदीक के सुन्दरपुर मे एक मकान लेकर रहने लगा। पढाई भी चलने लगी।

सुगिया किस आस्था से सुकुमार की सेवा करती ! छोटा-सा मकान था। मकान को साफ-सुथरा, सजा-धजा कर, वह रखती। अपने हाथ से जल-पान तैयार करती, अपने हाथ से रसोई तैयार कर परोसती, अपने हाथ से पान लगाकर देती। जब वह कॉलेज जाने लगता, खिडकी से वह तब तक देखती रहती, जब तक वह आखो से ओझल नही हो जाता। लौटने के वक्त फिर उसकी आँखे खिडकी से झाँकती होती। दोनो जब शाम को एक साथ टहलने निकलते या सिनेमा जाते, तो सुगिया अनुभव करती, उसके पख निकल आये है, वह स्वर्ग की ओर उडी जा रही है, उसका जीवन सार्थक हो गया !

सुकुमार के पिताजी का सत्याग्रह सगीन निकला। खुद तो खत तक लिखना छोड ही दिया, सुकुमार की मा से भी उन्होने कह दिया, बेटे से नाता रखोगी, तो मै आत्महत्या कर लूगा ! वह बेचारी क्या करे ? कई रिश्तेमद सुकुमार के पास पहुँचे, तुमने यह क्या किया ? खैर, बाबुओ के लिए खानगी रखना नई बात नही। यह भी रहेगी, लेकिन दूसरी शादी कर लो। बाप को सतोष हो जायगा। किन्तु उसने किसी की नही सुनी। वे प्रेम के ज्वार के दिन थे।

जब बाप के आर्थिक असहयोग के चलते खर्च का चलना मुश्किल हुआ, सुकुमार ने कहा, कहीं टयूशन कर लेता हूँ। लेकिन, सुगिया ने तब अपनी माँ की धरोहर से काम लेना शुरू किया। रुपये थे, गहने थे। "आप पढना जारी रखिए, मै इन्ही से काम चलाऊँगी।" उसने दाई से पार्ट-टाइम काम लेना शुरू किया, वह सिर्फ बाजार से सौदा ला देती, गंगा से पानी ला देती। बर्तन माजना, रसोई बनाना, झाडू देना—सब काम वह खुद कर लेती। उसकी यह सेवा-भावना सुकुमार के हृदय पर भी गहरी छाप डालती। वह उसे इस तरह खटते देख उसाँसे भरता, कहता— "कहा से मैंने तुम्हे दलदल मे घसीटा!" सुगिया सब अपराध अपने पर लेकर, हसकर, बात टाल देती और कहती, आप पढ लीजिए, हमारे भी अच्छे दिन आयेंगे।

यह तो हुई ज्वार की बात। भाटे के दिन भी आये। सुगिया का वह गुलाबी चेहरा शहर की धूल-धुआ-भरी आब-हवा मे पहले तो पीला पडा, अब चूल्हे की गरमी उस पर स्याही पोत रही थी। एक दिन धडकते हुए हृदय से उसने सुकुमार से यह भी बताया कि उसे लगता है, शायद वह गर्भवती हो चली है। वह धीरे-धीरे देख रही थी, इन बातो का असर सुकुमार पर अजीब पड रहा है। क्या वह सौदर्य का ही लोभी था? क्या वह बाप बनने की जिम्मेवारी से घबराता है? सुगिया इस तरह तर्क-वितर्क करती। इधर उसने यह भी देखा कि सुकुमार ने कुछ नये दोस्त कर लिये है। वे कॉलेज के ही लडके थे, लेकिन उनके चेहरे किस तरह शोहदे के-से थे। अब कॉलेज से ही वह बाहर ही बाहर रह जाता और रात को बडी देर मे लौटता। एक बार उसने उसके मुह मे अजीब गध पाई।—"यह सब क्या हो रहा है? आप कहाँ इतनी देर रह जाते है? क्या पढिए-लिखिएगा नही? मुझ पर कलक लगाइएगा? मेरी जिदगी क्या हमेशा दुखमय ही कटेगी?"—इस तरह कहती-कहती वह रो पडी। मालूम हुआ, सुकुमार का हृदय भी थोडी देर के लिए पसीज गया। बोला, अब कल से ऐसा नही होगा। लेकिन, हर कल नये कल की ही बात बताता।

एक दिन सुगिया शाम को खाना तैयार कर हाथ-मुह धोने जा रही थी कि देखा, तीन-चार साथियो के साथ सुकुमार घर मे घुस रहा है। सब हल्ला कर रहे है, सबके पैर लडखडा रहे है, सबके

चेहरे फक और आँखे लाल है। सुगिया घबराई। यह क्या हो गया ? क्या कुछ खुराफात करेगे ?

हाँ, खुराफात के ही लिए तो ये आये थे। इस मडली का जो सरगना था, वह लडखडाता सुगिया की ओर बढा। सुगिया ज़रा सख्त हुई। सुकुमार को डाँटा –"किन आवारो को घर मे ले आये है आप ?"

"हम आवारेगद , तू तू सती-शिरोमणि सीता-सावित्री— हा-हा-हा— नौकरानी की छोकडी हमारे दोस्त से घर छुडाया, माँ-बाप छुडाया बदजात, कुलटा "

"यह क्या हो रहा है, आप क्या चाहते ह ?"—सुगिया सुकुमार की ओर कडक्कर बोली।

लेकिन, तब तक वह आवारो का सरताज तो उसके नजदीक आ चुका था। उसने हाथ बढाया, सब ठठाकर हँस पडे। सुगिया से यह बदाश्त नही हो मका। रोटी का बेलन वही पडा हुआ था। उठा लिया, ओर उत्तेजना मे उसके सिर पर दे मारा। वह गिर पडा, सिर फट गया, खून बह रहा था ! "खून"–एक चिल्ला उठा। उसी समय दूमरे ने पीछे से उसे धक्का दिया। वह मुँह के बल गिर पडी।

ब्रजेश ने देखा, कहानी के इस अश तक आते-आते भिखारिन की आखो मे आँसू आ चले है। हिचकियाँ बँध गई है। उसके बाद उसने अपने अगले दो दाँतो की ओर इशारा किया !–"उसी दिन के वरदान है ये, बिजू बाबू ! अब आगे न पूछिए। किस तरह होश आने पर गगा मे डूबने चली, किस तरह पेट के भीतर की एक आत्मा चीख उठी कि डूब भी नही सकी, किम तरह अपने चेहरे को अपने हाथ से खसोट-खसोटकर बदरूप बनाया, जिसमे फिर किसी मनचले के फेर मे न पड जाऊँ, किस तरह भीख माँगती हुई चली, किसी तरह थोडे दिनो के बाद उस कमबख्त की ये दो थातियाँ प्रकट हुई— एक, यह बीमारी, दूसरी, यह बच्ची, इन बातो को न सुनिए, सो ही अच्छा। एक को तो साथ लिये जा रही हूँ, उसकी अनुपम देन को कैसे छोड ? किंतु एक के लिए चिता थी। अब म उससे भी निश्चित हूँ। याद हे, एक बार मैंने आपसे कहा था, मुझे ले चलिए, सेवा तो करूँगी ! मुझसे आपकी सेवा न बन पडी। हाँ, सेवा ली ओर एक थाती दिये जा रही हूँ ! यह भी बदा था ।" बच्ची

की ओर देख कर वह सहसा रो उठी। हिचकियो का ताँता बँध गया। उसने कम्बल मे मुँह छिपा लिया। व्रजेश की आँखे भी नम थी। उधर नर्स मुस्कुरा रही थी ! वह शोख, चचल नर्स ! उसने समझा, यह प्रेम का मान-मनावन हो रहा है !

(३)

भिखारिन की बात सच निकली। एक सप्ताह के अदर-अदर वह चल बसी। आखिरी दिनो मे वह एक अजीब इच्छा प्रकट करती। वह चाहती कि सुकुमार को वह एक बार देख ले। –"भूल जाओ उसे, उसे उलाहना देकर भी क्या करोगी ?"—एक बार व्रजेश ने बडे मुलायम शब्दो मे कहा। वह फूट-फूटकर रो पडी—'बिजू बाबू, उलाहना देकर क्या करूँगी ? इसकी इच्छा अब इस चलते वक्त नही रह गई। लेकिन न जाने क्यो, हृदय हाहाकार करता है, मन होता है, एक बार उन्हे भरनजर देख लेती और आँखे सदा के लिए मुँद जाती।"

एक दिन एक घटना हो गई। वह बहुत ही दुबली हो चली थी। उसके हाथ-पैर सूखकर काँटे हो चले थे। वह किसी काम से हाथ इधर-उधर कर रही थी कि अचानक उसके बाएँ हाथ की अकेली लाल चूडी खिसककर ज़मीन पर गिर पडी। पलँग से उसके गिरते ही एक चन्न-सी आवाज हुई, फिर वह टूक-टूक हो गई। चूडी गिरते ही वह अजीब अप्रतिहत हो गई। फूटने की आवाज़ सुनकर तो वह फूट-फूटकर रोने लगी, और उसके आँसू तब तक नही सूखे, जब तक व्रजेश ने शाम को एक दूसरी चूडी नही ला दी। वह तब तक खा-पी भी नही सकी थी। नर्सो ने बहुत समझाया, लेकिन वह तो रोये जा रही थी। जब ऑफिस से शाम को व्रजेश आया, उसे सब बाते मालूम हुईं और एक नई, उसी रग की चूडी वह खरीद लाया।

चूडी पहनकर जैसे वह निहाल हो गई। चेहरे पर प्रसन्नता की आभा लिये, किंतु आँखो से आँसू की नई निर्झरिणी बहाती, उसने व्रजेश से कहा—"मै दासी-पुत्री ठहरी, बिजू बाबू ! मेरी कौम मे सधवा-विधवा दोनो ही नई शादी कर सकती है । लेकिन, न-जाने क्यो, शुरू से ही मेरे मन मे इन बातो से घृणा रही। खासकर आपकी बहन की पति-परायणता ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया। उनके श्रीचरणो मे मेरा प्रणाम बोलकर कह दीजिएगा, सुगिया निकल गई, कलकिनी बनी, लेकिन उसने अपनी टेक न छोडी !" फिर कुछ देर ठहरकर उसने कहा –"बिजू बाबू, मेरी एक बिनती है। मरने पर भी इस

चूडी के साथ ही मुझे जला दीजिएगा ! मेरे लिए यह सिफ काँच की मेखला नही, धमबधन है। यह साथ ही जाय !" कहते-कहते उसका गला रुँध गया।

अब व्रजेश से भी नही रहा गया। उसकी आँखो की अश्रुधारा उसके रूमाल को भिगोने लगी। वह सोचता—हाय रे नारी का हृदय ! जिसने इतनी तकलीफ दी, इस तरह घुला-घुलाकर मारा, उसके लिए भी इतना प्रेम सचित है ! सुकुमार, सुकुमार ! आज तुम यहाँ होते ! देखते, तुमने किस रत्न की उपेक्षा की ! हाथ आया रत्न घूरे पर फेक दिया –आह !

जिस दिन मरी, उस दिन कहा– "उनसे कभी भेट हो, तो कहिएगा, मेरी गत की, अच्छा किया, भगवान आपका भला करे। लेकिन, अपनी इस बच्ची को तो । हाय, मेरी बिटिया !"

व्रजेश ने अश्रु-सिक्त नेत्रो से ही उसे विश्वास दिलाया, वह बच्ची के लिए चिता न करे । इसे लालन-पालन के लिए किसी सुकुमार की शरण लेने की ज़रूरत नही होगी। "इसका जिम्मा मेरा—दुनिया मे वादेवाले भी मद होते ह, सुगिया !"—व्रजेश के शब्दो मे दृढता थी।

मरते समय तक सुगिया का चेहरा अजीब विकृत हो चला था। समूचे चेहरे पर अजीब सूजन आ गई थी। आँखे नही खुलती थी। मुश्किल से साँस ले पाती थी। निस्सदेह वह मर्मातक पीडा मे थी, लेकिन वह मुश्किल से कभी कराहती, मानो अपनी इद्रियो पर उसने कब्जा कर लिया हो। आखिर-आखिर तक उसे होश रहा। व्रजेश को उसकी इस शाति पर आश्चय होता, ऐसे दृढ मनोबल के लिए काफी उच्च आत्मा चाहिए। भिखारिन ने मानो मरते समय दिखला दिया, 'गुदडी मे लाल' सिफ कहावत की बात नही है।

अपने चद युवा समथको को लेकर, अपने कधे पर उसकी अरथी ढोकर, व्रजेश ने गगा के उस पार, साफ-सफेद रेती पर, उसका अतिम सस्कार किया –मानो, वह उसकी कोई निकट की सबधिनी रही हो।

और, जिस कधे पर एक दिन उसकी अरथी थी, अब हर दिन उस कधे पर, शाम-की-शाम, लोग एक बच्ची को देखते हैं। वह अपने ऑफिस से लौटकर आता, जल-पान करता, फिर बच्ची को सज-सजाकर अपने कधे पर रखता, और लॉन की ओर चल देता है।

वहा वह कभी उसे उँगली धरकर चलना सिखाता, कभी गोद मे मे लेता, कभी हाथो पर हवा मे उछालता हे। जब कोई जान-पहचानी पूछते—"यह आपकी कोन होती है व्रजेश बाबू ?" तो व्रजेश जवाब देता—थाती !"

"थाती ? यानी "

"यानी, धरोहर !"

"यह तो आप पहेली बुझा रहे हैं !"

"हाँ, पहेली ही है, और समझनेवाले की मोत !"

पूछनेवाला उसका मुँह ताकते रह जाता है, वह उनपर मुस्कुराता रहता है !

व्रजेश ने उसका नाम रखा हे—नीलिमा !

एक दिन एक मित्र ने कहा—"ऐसी खूबसूरत, गोरी-चिट्टी लडकी का नाम आपने 'नीलिमा' क्या रख दिया, व्रजेश बाबू ? कम-से-कम 'नीलम' ही रखे होते !"

"नीलिमा—मैं तो उसका नाम कालिमा रखन जा रहा था, किंतु जरा इस लडकी पर मुरौवत आ गई ! हा, कालिमा— क्योकि यह बताती है, आपके समाज के चदन से धोये मुख-चद्र पर कलक की कालिमा कहाँ है ? गोरी लडकी ? यह गोरी लडकी नही हैं, आपके समाज की काली पताका है। ओर, पताका जितनी ऊँची फहरे, उतना ही अच्छा।"

इतना कह उसने उसे कधे पर बिठा लिया ओर शान से घर की ओर चल पडा !

जीवन-
तरु

(१)

यह मेरे ननिहाल की बात है।

यह गाँव बागमती नदी के किनारे बसा हुआ है।

भले ही इसमे बडी-बडी बाढे आती हो, हर साल खूब कटाव करती, खेतो को ढहाती, गाँवो को उजाडती, लोगो को तग करती हो, लेकिन तो भी हर आदमी चाहता है, बागमती नदी हमारे गाँव होकर बहे। क्यो ? लोग कहते है, बागमती के पानी मे सोना है—

वह सोना नही, जो स्वण-रेखा नदी की तरह बालू को छानकर, धो कर प्राप्त किया जा सके, वरन जो धान, मकई, कउनी आदि के बालो पर झलकता है। किसाना के लिए यही सोना काफी होना है न ?

यह गाँव किसानो का है। छोटे-छोटे किसान, लेकिन सम्पन्न। खेती मे थोडी मेहनत, ज्यादा उपज। फिर, लोगो के जीवन मे मस्तानापन क्यो न दिखे ?—लेकिन वह मस्तानापन नही, जो शहरो मे भडकीली पोशाक, सिर पर झबरीले बाल, चेहरे पर नजाक्त और नफासत एव मधुशाला और मधुबाला की चसक आदि के रूप मे दीख पडता है। गाँवा के मस्तानेपन का रूप है कुश्ती लडना, भग छानना, घोडे और मेढे पालना, बास की लाल लाठियाँ लेकर झूमते हुए मेले-ठेले मे जाना या ढोलक-मँजीरे लेकर दरवाजे पर ही रागो की टाँग तोडना ! यहा के किसानो की मस्ती भी इसी कोटि की थी।

इन्ही मस्त किसानो मे एक थे हाकिम सिह। सुनते है, इनके रोबीली चेहरे को देखकर ही इनके दादाजी ने, जो जवार-भर मे एक ही कचहरिया थे, इनका नाम हाकिम सिह रखा था। गोरा रग,

चौडा ललाट, भरे गाल, उठी हुई भवे, सुर्खी लिये आखे, तनी हुई मूछे और दुहरी ठुड्डी । शरीर भी वैसा ही गठा हुआ। जब लँगोट कसकर खडे होते, मालूम होता, पौरुष प्रतिमा बनकर खडा है। चौडी छाती, मासल बाहे, गोल जाँघे—नख-शिख सँवारा हुआ। इन हिस्सो के गॉव मे हाकिम मामा (मै उन्हे मामा ही कहता) की मस्ती सबसे बढी चढी थी। कुश्ती मे आपसे कोई पार नही पाता, भग का तो अखाडा ही आपके यहाँ जुटता, आपके घोडे से तेज चलनेवाला घोडा उस जवार-भर मे नही था, आपका मेढा एक ही टक्कर मे कितने मेढो को सुला चुका था। हाकिम मामा ने एक भैस भी रख छोडी थी, जिसके गुजराती सीग और पजाबी देह देखने ही लायक थी। खुद गाते-बजाते तो नही थे, सुनने का शौक जरूर रखते थे। उनके दरवाजे पर गवैये आया ही जाया करते, लेकिन सबसे बडा शौक हाकिम मामा को था बगीचे लगाने का। कई किते बगीचे थे, जिनमे तरह-तरह के अजूबा पेड थे, और इन पेडो की सिचाई, जन-मजदूरे पर ही न छोडकर, हाकिम मामा ने अपने हाथो की थी।

यो, हाकिम मामा की जिदगी हँसी-खुशी की, मस्ती-मशरत की जिदगी थी। लेकिन इन सबके बावजूद एक अभाव था, जिसकी याद ही सबको उदास कर देती। हाकिम मामा तो इस सम्बध मे अपनी मनोभावना को प्रकट नही होने देते, लेकिन और लोग तो उसाँसे भरकर जब-तब इसकी चर्चा कर ही देते, और हमारी मामी (हाकिम मामा की गुणवती पत्नी) को तो इसका सबसे बडा दुख था। कितने व्रत किये, कितनी मन्नतें मानी, कितने साधु-सत और गुणीजन की सेवा की, पर सब व्यथ। उनकी गोद न भरी, न भरी। यह भरा-पूरा घर एक सतान के विना सूना, बिलकुल सूना—लगता। लोगो का धैर्य अब उस सीमा पर पहुँच गया था कि कभी-कभी, दबी जबान, हाकिम मामा से दूसरी शादी करने की चर्चा भी कर दी जाती। हाकिम मामा झिडककर, कभी हँसकर, इसको टाल देते, लेकिन जब इस चर्चा की खबर मामी को मिलती, वह मर्माहत हो जाती—एक तो विधना ने कोख मे राख भर दी, दूसरे अब सिर पर सौत आयगी। पर मामी की यह आशका व्यथ थी। हाकिम मामा वैसे आदमी नही थे, जिनका निश्चय पल-पल मे बदलता है। यहाँ तो रजपूती शान थी— "हाँ करी ता हा करी औ ना करी तो ना करी।"

और, एक ज़माना वह भी आया, जब मामी ने खुद हाकिम मामा से अनुरोध किया— "शादी कर लीजिए, यह सूना घर मुझे

नही सुहाता।" और, "जब सौत कलेजे पर मूग दलेगी तब ?" —हाकिम मामा ने बिगडकर कहा। "आप निश्चिंत रहे, मै सब बरदाश्त कर लूँगी।" —मामी ने मुँह-लगे जवाब दिया। लेकिन इस बात का प्रभाव भी उनके दिल पर कुछ नही पडनेवाला था। हाकिम मामा निर्द्वंद्व हो अपने दैनिक कार्य-क्रम मे व्यस्त रहे —खेती-गिरस्ती से जो समय बचा, उसमे वही कुश्ती, वही भग, वही घुडदौड, वही मेढा-लडाना, वही गाना-बजाना, वही बागबानी ! जैसा कि ऐसे लोगो के पास होता है, अलमस्तो का एक जमघट उनके अगल-बगल मँडराता फिरता। हा-हा-ही-ही- के इस तूफान मे सतान की कामना कहाँ सिसकियाँ ले रही है, पता भी नही चलता।

हाँ, उस दिन से अपनी पत्नी के लिए उनके दिल मे बहुत आदर और स्नेह बढ गया ।

(२)

पूजा की छुट्टी मे, जब मै एक बार स्कूल से लौटा, सुबह-सुबह शहनाई की आवाज सुनकर हैरत मे पड गया। देशी-विदेशी नाना तरह के बाजो के युग मे म शहनाई का भक्त हूँ, यह कहकर अपनी दिल्लगी कराने से क्या फायदा ? लेकिन फिर भी कहता हूँ, सुबह की शहनाई, अगर उसकी आवाज कुछ दूर से और कुछ ऊँचे से आती हो, तब वह, मेरे ख्याल से, ऐसा समाँ पैदा कर देती है कि उसका मुकाबला शायद ही कोई बाजा करे—खासकर हृदय मे एक विशेष प्रकार की विह्वलता पैदा कर देने मे ! मै विह्वल था, लेकिन उससे भी ज्यादा आश्चय-चकित, वह बेवक्त की शहनाई तो हर्गिज़ नही थी, लेकिन बेमौसम की शहनाई तो थी ही। यह आश्विन का महीना, लगन-वगन है नही, फिर शहनाई कैसी ? सो भी भोर-भोर। शहनाई की आवाज हाकिम मामा के घर की ओर से आ रही थी। क्या मामा को ही यह शौक चर्राया है ? जरा चलकर देखे तो, क्या माजरा है ? उनके दरवाजे पर जाकर देखा—यहाँ तो आनद और उल्लास की बाढ-सी आ गई है। केले के थम्भ गाडकर मेहराबे बनाई गई है, जिनमे रगीन गेदो की मालाये सिलसिलेवार टँगी है। एक ऊँचा मचान बना है, जिस पर शहनाई बज रही है। इधर-उधर कई पीली धोतिया, साडियाँ सूख रही है। एक आता, एक जाता है—सबके चेहरे पर उत्साह-ही-उत्साह है। आँगन से औरतो

के गाने और बीच-बीच मे हँसने की आवाज़ आ रही है, दरवाज़े पर ढोलक गमकती और मँजीरे खनकते हैं।

हाकिम मामा के घर मे, उन्ही के शब्दो मे, लक्ष्मीजी ने पदा-पण किया था ! इसी की बधैया थी।

यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि जैसा उत्सव हाकिम मामा ने इस बेटी के जन्म के उपलक्ष्य मे किया, वैसा किसी के बेटे के जन्म मे भी नही देखा गया होगा। हाकिम मामा कहते — "अरे, निस्सतान का कलक तो छूटा, बेटा न सही, बेटी ही !" मामी भी यही मानकर हष मे डूबती-उतराती। बरही तक —बारह दिनो तक —मामा का घर भोज-भात, गाने-बजाने का अड्डा बना रहा। बरही को जब अपने आगन मे मामा ने पीली साडी पहने, मुक्त-कुतला, एक स्त्री को एक छोटे-से प्राणी को गोद मे लिये देखा, वह उछल-से पडे। वही मामी थी, लेकिन वह न थी, उनका चेहरा पीला पड गया था, आँखे कुछ धँस गई थी—लेकिन उस पीले चेहरे मे जो रूप-छटा थी, उन धँसी आँखो मे जो अजीब आकषण था, वैसा मामा ने कभी नही देखा था। फिर, उनकी गोद की वह बच्ची —ताजे मास की एक लोथडी-सी, लेकिन वह कितनी प्यारी थी ! मामा अपनी पत्नी पर आज जितने आकृष्ट थे, शायद कोहबर की रात के बाद कभी ऐसे नही हुए थे ! उत्फुल्लता से उफना कर उन्होने सबको मुँह मागी चीजे दी। गाव-भर मे हाकिम मामा का जय-जयकार हो गया।

मामी ने अपनी इस बेटी का नाम रखा इँजोरिया—इँजोरिया, जिसे हम लोग अपनी सभ्य भाषा मे चादनी कहते है। उनके अँधियारे घर मे यह शीतल प्रकाश लाई थी— इँजोरिया नाम तो साथक था ही !

इँजोरिया दूज के चाँद की तरह बढने लगी।

कहने को तो इँजोरिया बेटी थी, लेकिन लाड-प्यार बेटो से भी बढकर। यही नही, हाकिम मामा इँजोरिया को बेटे की तरह ही अपने साथ दरवाजे पर रखते, टहलाने को बगीचे ले जाते, घोडे पर चढाकर लगाम थामना सिखलाते, उसे बेटे की पोशाक पहनाकर बेटा बना लेते, बेटो-से ही उसके बाल सँभालते, धोती-कुर्ता पहनाते, चदन लगा देते। एक बार तो उसके बालो को काबुलनुमा कतरवाकर

पूरा-पूरा बेटा बना लेना चाहते थे, लेकिन मामी बिगडी। बेटी के बाल कतरना महा कुलच्छन ! मामा सिटपिटा रहे। यो ही मामी को यह देखकर एक दिन महान् अचरज हुआ कि मामा इँजोरिया को लँगोट पहनाकर कसरते करना सिखला रहे है। मामी ने बडी डॉट बताई —"इसे पहलवान बनाओगे ? मालूम होता है, इसका शादी-ब्याह भी तुम बद करोगे।" मामा सहम गये—अपराधी की तरह हँसने की चेष्टा करते हुए रह गये। मामी ने उन्हे डॉटा तो, किंतु घर मे आकर बहुत रोई — आह ! यह बेटा क्यो न हुई — उनके कितने मनोरथ यो ही रह जायँगे।

जब इँजोरिया खाने-पीने लायक हुई, हाकिम मामा एक काम बिला नागा करते—हर 'पेठिया' जरूर जाते। घोडा कस, सवार हो, फुदकाते-उडाते पेठिया पहुँचते, और जो नई या अच्छी चीज खाने-पीने की मिलती, उसे मुँहमाँगे दाम मे खरीदकर घर लाते, और अपने हाथो इँजोरिया को खिलाकर अपूव आनद अनुभव करते। खाने-पीने की नई चीजा के खरीदने का यह शोक मिठाई के दूकानदार, खोचे-वाले और कुँजडे-कवारी तक पर शोहरत पा चुका था। "यह नई मिठाई, यह नये किस्म का नमकीन, यह नया फल, यह ताजा मेवा, हाकिम बाबू, आपके ही लिए मने सँजोगकर रखा है"—वे मामा को देखते ही बोल उठते। मामा क्या कभी उन्हे निराश होने देते ?

एक दिन मामा 'पेठिया' से लौटे। उनके हाथ मे लीची के लाल-लाल गुच्छे थे। इँजोरिया उनकी प्रतीक्षा मे थी ही। ज्यो ही वह घोडे से उतरे, वह दौडकर उनके निकट पहुँची और इन प्यारे-प्यारे गुच्छो को उनके हाथो से छीन लिया। गोल-गोल लाल फल ! देखा, कितना सुन्दर ! चखा, कितना मीठा, कितना रसीला ! "बाबूजी, इसका क्या नाम है, कहा से लाये हो, रोज लाना बाबूजी !" किंतु क्या यह कहने की जरूरत थी ? इँजोरिया को पसद पडे, और वह चीज न आये ? एक दिन इँजोरिया ने कहा — "बाबूजी, अपने बगीचे मे क्यो नही लीची लगाते ?" बागवानी के शौकीन हमारे हाकिम मामा ने बगीचे मे लीची नही लगाई हो, यह बात नही। किंतु, यह फल कुछ विचित्र है। पेड तो हर कही लग भी जाय, किंतु वैसे फल नही लगते। एक तो आते ही कम, आते भी, तो छोटे, खट्टे, गुठली मे भरे। हारकर हाकिम मामा ने छोड दिया था।

किंतु, इँजोरिया के इस आग्रह ने मानो उन्हे असम्भव को सम्भव करने के लिए तैयार कर दिया। उनके घर से सात-आठ कोस की दूरी पर लीची खूब होती थी। शायद मिट्टी के फर्क से यहा लीची नही होती थी, ऐसा सोचकर उन्होने वही से मिट्टी मँगाने का निश्चय किया। गल्ले के लिए बैलगाडियो का ताँता इधर-उधर जाते-आते लोगो ने प्राय देखा था, किंतु मिट्टी लाने के लिए जिस दिन गाँव से गाडियो का काफला चला, वह अजीब दिन था। जब वे गाडियाँ मिट्टी लेकर लौट रही थी, बीच के गावो मे कौतूहल-सा मच गया। यह कौन पगला है, जो आठ कोस से मिट्टी मँगवा रहा है ?

आषाढ की एक अच्छी तिथि को, हाकिम मामा के घर से सटी हुई बारी मे, शाम के समय, एक अनोखी चहल-पहल मची हुई थी। एक गड्ढा खोदकर उसमे गाडियो पर की मिट्टी भर दी गई थी। आज उसी भरन पर लीची का एक बिरवा रोपा जा रहा था। बिरवा को अच्छी तरह रोप हाकिम मामा मुस्कुराते हुए बोले—'बेटी, इसमे सबसे पहला पानी तुम्हारे हाथो ही पडे—शायद तुम्हारे हाथ मे बरकत हो !" सुनते ही अपनी छोटी-सी लुटिया मे इँजोरिया पानी लाई और हर्षित-पुलकित हो बिरवा की जड मे पानी डालने लगी। मामी भी वही थी, इँजोरिया की चपलता और मामा की वत्सलता देखकर उनके दोनो कटोरे लबालब हो गये।

आज से यह लीची मानो हाकिम मामा की दूसरी पुत्री हुई। सुबह, शाम, दोपहर क्या, जब जरा-सी फुरसत पाते, उसे देखते। अपने हाथो पानी डालते। उनका कहना था, जिस तरह आदमी एक खास परिमाण मे ही पानी पीता है, ज्यादा पानी उसे बीमार कर सकता, उसे मार डाल सकता है, वही हालत पौधो की भी होती है, अत पौधो मे पानी डालने मे बहुत ही होशियारी करनी चाहिए। अपने हाथो ही उसका थाला बनाते—खुर्पी की एक हल्की नोक ही ही पौधो की रग काट डाल सकती है, इसे हमे भूलना नही चाहिए, वह गम्भीरता से कहते। जब लीची मे नया पत्ता निकलता, मामा का का रोम-रोम हरा-भरा हो जाता, और जिस दिन उन्होने उसमे नई शाख फूटने देखी, वह तो आनद-प्रमत्त हो गये। दौडकर मामी को बुला लाये, शाख दिखलाई, बोले—"कहा न था, इँजोरिया की अम्मा, इँजोरिया के हाथ मे बरकत है—कितनी जल्द शाख निकल आई ?

देखना, देखना इसमे फल भी खूब लगेगे, और अच्छे, रसीले !" इँजोरिया भी वही थी—मामा की बाते सुनकर अपने पर फूली नही सभाई।

मामा का सबसे बुरा दिन वह था, जिस दिन दोपहर को इँजो-रिया हाँफती हुई आई, और बोली—"बाबूजी, लीची मुरझा रही है" मामा दौडे हुए बारी मे गये। देखा, जैसे कोई बच्चा बीमार पडा हो और अपने हाल पूछनेवाले की ओर करुण नेत्रो से देख रहा हो। मामा की आँखे डबडबा आईं। सबसे पहले उन्होने दो-चार मन्नते मान दी—यदि लीची बच गई, तो सत्यनारायण की कथा कराऊँगा, गगा-मैया को अँचरा चढाऊँगा, देवउठान एकादशी करूँगा,—यो क्या-क्या न। फिर, दो-चार बागवानी के शौकीनो को बुलाया। किसी ने सेवार की खाद, तो किसी ने झीगा मछली की खाद डालने की सलाह दी। किसी ने कहा, नजदीक मे दो-तीन केले के पेड लगा दीजिए, जो इसे ठढा रखेगे। गरमी से शायद मुरझाई है। एक ने कहा—कुछ नही है, किसी ने शायद झकझोर डाला है, चारो ओर काटो का घेरा कर दीजिए। यह 'किसी ने' कौन हो सकता है ? —इस बारी मे कोई पराया आ नही सकता। इँजोरिया ने इसे अपने पर तुहमत समझी। वह बहुत रोई। मामा ने बहुत कोशिशो से उसे प्रबोधा। फिर उप-चारो मे लगे। मन्नतो के जोर से या उपचारो के बल से—लीची फिर कभी नही मुरझाई, तेजी से बढने लगी।

लीची बढने लगी, और बढ़ने लगी इँजोरिया। मामा ने सोच रखा था, यह लीची जिस साल फलेगी उसी साल इँजोरिया की शादी करूँगा और इसका पहला फल उसके दूल्हे को ही चखाऊँगा। किंतु, यह इच्छा क्या पूरी होनेवाली थी ? एक तो इँजोरिया ने बढने मे लीची को कही पीछे छोड दिया, और दूसरे मामी जोर देने लगी कि जल्द-से-जल्द इँजोरिया की शादी हो जाय। जिदगी का क्या ठिकाना—शुभ कम जल्दी ही कर लेना चाहिए। फिर पुरोहितजी का 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी, दशवर्षा तु रोहणी' वाला श्लोक था ही। हाकिम मामा इँजोरिया की शादी की धुन मे लगे—

इँजोरिया की शादी—यह कल्पना भी उनके लिए क्या कम मधुर थी ?

(३)

आज तक भी लोग कहते है, जिस ठाठ-बाट से बाबू हाकिम सिह ने अपनी लडकी की शादी की, वैसी न पहले देखी गई और उम्मीद नही कि पीछे देखी जायगी। फिर नही देखी जायगी, इस कथन में एक रहस्य ह। इस शादी और इसके ददनाक नतीजे से लोगो ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि ऐसे अवसरो पर भी अपने पर काबू रखना कितना जरूरी हे। हाकिम मामा ने इस तरह हाथ खोलकर खच किया कि वह अपने को पूरा बरबाद ही कर बैठे।

पर इसमे पूरा दोष हाकिम मामा का ही समझा जाय, यह तो उनपर अत्याचार होगा। पूरा क्या, दोष का एक अधूरा हिस्सा भी उन पर लादते आज आत्मा कापती है। गर्चे हाकिम मामा मस्ताना तबीयत के लोग थे, लेकिन उनके चरित, सचाई, प्रण-पालकता, परोपकारशीलता की धूम गाव मे ही नही, जवार मे मची थी। यही नही, पहलवान, गवैये, अतिथि आदि के रोजाना सत्कार और घोडे-मेढे पालने के खच के बावजूद, उनकी गिरस्ती का प्रबध कुछ ऐसा होता कि कभी किसी ने हाकिमसिह को किसी के निकट हाथ पसारते नही देखा। पेटिया भी जाते, तो घोडे पर, लेकिन खेती-बारी के दिनो मे मूसलाधार वर्षा मे भी कधे पर कुदाल लिये हाकिम मामा अपने खेतो की मेड पर टहलते दीखते और जेठ की जलती दुपहरी मे भी मजदूरो को लिये खेत की तमनी-कोडनी मे लीन होते। 'खेत मे जौ-जौ, खलिहान मे सौ-सौ' —इस कथन का रहस्य वह समझते थे। उनकी खेती के मुकाबिले गाँव भर मे किसकी खेती होती ? हाँ, हाकिम मामा मे दोष था, तो यही कि उदार थे, जो पैदा होता, खच कर देते। जमा करके जमीन मे गाडना—इसे वह सप-वृत्ति समझते थे —मैं न खाऊँगा, न खाने दूगा। और, सूद पर देना जोक-वृत्ति—दूसरे के खून पर अपना पेट पालना। इन दोनो से उन्हे घृणा—घोर घृणा थी। यही कारण था कि इँजोरिया की शादी जब हुई, तो उनके पास नकद पैसे उतने नही थे, जितने वह अपनी प्यारी सतान, एकमात्र सतान पर खच करना चाहते थे। उन्हे जिदगी मे पहली बार कज लेना पडा।

लेकिन इस कज का भी उन्होने पूरा हिसाब कर लिया था। पाँच वर्षो मे इस कर्जे को पटा दूँगा, यह उनका तखमीना था। धान

की बिक्री से इतने रुपए, मकई से इतने रुपए, गेहूँ से इतन रुपऐ, तेलहन-तीसी से इतने रुपए, बगीचो के फलो से इतने रुपए—यो हर साल, इतने के हिसाव से, चार वर्षो मे पूरा चुक जायगा। एक वष और रख लो। पॉच वर्ष मे बाकी बेबाक। शादी-ब्याह मे कौन खुलकर नही खर्च करता ? कितने सौभाग्यशाली है, जिन्हे कुछ हाथ-हथफेर नही करना पडता ? फिर, जब जिदगी-भर मे एक ही बेटी हो, तब क्या कहना ? अत मामा को क्यो दोष दिया जाय, समझ मे नही आता। हॉ, दोष उनका था तो यही कि वह न तो दुनिया की हालत से परिचित थे, और न दैव की।

शादी के बाद से ही मामा कज चुकाने मे जुट गये, किन्तु सबसे पहले दव ने विद्रोह शुरू किया। मकई एक वर्षा के विना खडी-की-खडी रह गई, तो धान बाढ से दह गया, और गेहूँ तैयार हुआ न था कि ओले गिरे। यो दैव ने उनसे ऑख-मिचौनी शुरू ही की थी कि ससार-व्यापी मदी उनके दरवाजे पर भी आकर पैर तोडकर बैट गई। जो उपज भी हो, उसके दाम कहा मिलते ? जहॉ एक मन अनाज मे चार-चार रुपए तक टन-टन बजते, वहॉ एक के बाद कुछ तॉबे के सिक्के ही आते ! और, जैसे इतने ही से कसर नही पूरी होती थी, तो वह प्रलयकर भूकम्प आया, जिसने अच्छे-अच्छे गिरस्तो की भी कमर तोड दी। भूकम्प के बाद बाढो की भरमार, फिर मलेरिया का दौरदोरा। जो बागमती स्वर्णाचला समझी जाती थी, वह विपत्ति और बीमारी की जननी बन गई। कहिए, बेचारे हाकिम मामा करे, तो क्या करे ?

जले पर नमक छिडकने की तरह एक बात और हुई। हाकिम मामा की गुणवती पत्नी चल बसी। मामा के ही शब्दो मे, मामी उनके घर की लक्ष्मी थी—लक्ष्मी चल दी, सस कहॉ ? हा, इस लक्ष्मी के श्राद्ध ने उनके कज के बोझ को कुछ और भारी बना दिया।

इन सब बातो के बावजूद मामा ने तीन-चार वर्षो तक बडी कोशिशे की, किंतु पीछे वह उदासीन-से हो चले। बार बार की असफलता और मामी के अभाव ने ही नही, एक ओर भावना ने भी उनके उत्साह को खत्म कर दिया। वह सोचते—यह हैरानी-परेशानी किसलिए ? किसके लिए ? इँजोरिया को राजगद्दी पर बिठा ही चुका हूँ, खुद भी इतनी औज-मौज कर ली, अब काहे को यह हगामा ? धमपत्नी के प्रति अपने कत्तव्य का पालन हो ही चुका ,

सारी मनो-कामनाये पूरी हो चली, हहराती-घहराती नदी की धारा समुद्र के निकट पहुँचकर शात हो चली है—फिर इसे तेज करने की क्या सार्थकता ? अब इस बुढापे मे थोडा भजन-भाव न क्यो हो—लोक बनाया, अब परलोक क्यो न बनाया जाय ? कर्ज है, तो जमीन भी कम नही है ? अकेले के लिए इतनी जमीन क्या होगी ? महाजन ले ले। लेकिन इसी समय उनके मन मे यह भावना उठती, बाप-दादो की जमीन कर्ज मे दे डालना क्या मेरे लिये शोभनीय होगा ? क्या यह मेरे लिए नामर्दी नही होगी कि मै अपना किया कर्ज भी नही सधा सका ? बूढी हड्डी मे जवानी का खून दौड जाता। लेकिन जो जवानी चली जा चुकी थी, वह क्यो लौट आती ? हाँ, इस दुबिधा मे कुछ नही हो पाता था—माया मिली न राम।

लेकिन हाकिम मामा भले ही दुबिधा मे हो, महाजनो के रुपयो को तो कोई दुबिधा नही थी। न तो सूखा उन्हे सुखा सकता, न बाढ बहा सकती, न ओले गला सकते, न भूकम्प हिला सकता, और न मदी उनकी चाल मद कर सकती थी। कर्ज अपनी स्वाभाविक गति से बढता जा रहा था। शिकायत के मारे रजिस्टड तमुस्सक नही किया था, हडनोट थे—तीन-तीन बरस पर सूद-मूल मिलकर मोटे होते और फिर आगे बढते। वे बढते गये, बढते गये, बढते गये !

इस बढा-बढी मे एक नई बात सामने आई। अब तक ज़िदगी मे हाकिम मामा ने कभी किसी का तकाजा नही सहा था। अब उसका दौरदौरा शुरू हुआ। जिस दिन कोई महाजन या उसका आदमी उन्हे टोक देता, उन्हे मालूम होता, जैसे किसी ने पके बरतोर को छू दिया हो। वह सिहर उठते, उन्हे खाना-पीना अच्छा नही लगता। सोचते, फिजूल मै यह मानसिक अशाति लिये बैठा हूँ। दो-एक बार उन्होने जमीन बेचने की बात चलाई, लेकिन मदी ने जमीन की कीमत को इतना कम कर दिया था कि भाव-साव सुनकर ही वह दग रह जाते। सोचते—जमीन की कीमत एक-न-एक दिन लौटेगी ही, तब तक खेपते चलो।

उन्होंने अपने खर्च कम कर दिये थे, मुट्ठी कस ली थी, लेकिन जो बचत होती, वह दाल मे नमक के बराबर भी नही थी।

सूद बढता गया, तकाजा बढता गया, बेचैनी बढती गई, और एक दिन वह भी आया कि उन्हे एक 'समन' मिला। यह हाकिम मामा के लिए अति थी।

नालिश करनेवाला महाजन उनके गाव का ही था। हाकिम मामा को अच्छी तरह याद है, यह आदमी अपनी जिदगी के प्रारम्भिक काल मे उनके खेतो मे मजदूरी करता फिरता था। मामा यह भी नही भूले थे कि उसकी मेहनत-पसदी देखकर वह खुश रहते थे, और मजदूरी देने मे या अँटिया-मुठिया देने में उसके प्रति उदार भाव दिखाते थे। इस आदमी ने मेहनत के साथ कजूमी को अपनाया था, और उसके बाद सूद को। ताक-ताककर जरूरतमदो को कडे-से-कडे सूद मे देता और सख्ती से-सख्ती करके उनसे वसूल करता। सूद की भी क्या महिमा है ! —फिर वह सूद जो देहातो मे चलता है। कुछ ही दिनो मे वह भिखरिया से भिखारी बाबू हो गया था और महाजनजी के नाम से पुकारा जाता था। गॉव का वह सबसे बडा धनी था। कल यही भिखरिया मेरे सामने गिडगिडाता चलता था, आज यह मुझे अदालत मे घसीटना चाहता है। माना, सब महाजनो की तरह उसने भी तकाजे किये थे, यह भी ठीक है कि वादे पर रुपए नही चुका सका, लेकिन अदालत मे घसीटना—यह भी क्या इसानियत है ? तमादी लग रही थी ? —तो, नया कागज करा लेता। खैर, बाबा, मै ऐसा उपाय किये देता हूँ कि तुम सब लोग तमादी से छुटकारा पा जाओ। मामा ने इस बुराई मे भी भलाई देखी।

उस दिन लोगो के आश्चय का कोई ठिकाना न रहा, जब हाकिम मामा ने सभी महाजनो को बुलाया और घर के नजदीक की कई बीघे जमीन, एक अमराई, घर और उसकी बारी, जिसमे लीची लगी थी, इतना अपने लिए रख कर बाकी कुल जायदाद उन्हे लिख दी। एक तो सूद कही-से-कही चला गया था, दूसरे जमीन कौडी के भाव थी, तो भी यदि वह अडते, झझटे करते, तो कुछ और जायदाद बचा लेते। कुछ लोगो ने सलाह दी—यह आप क्या कर रहे है, अलग-अलग टुकडे करके बेचिए तो भी इतनी जायदाद न जाय, नही तो नालिशे होने दीजिए, देखिए तो ये कैसे दखलदिहानी हासिल करते है, लेकिन हाकिम मामा ने एक न सुनी। इस उम्र मे यह झझट, किसलिए ? एक ही दिन अपनी जायदाद को खतम कर इस तरह सोये, जैसे कोई घोडा बेचकर सोये।

अब वह साबिक हाकिम मामा नही है। घोडे, मेढे, भैसे, उनके दरवाजे के ये सिगार नही रह गये। कुश्ती की तालठोक और गाने-बजाने के मधुर स्वर उनके दरवाजे पर नही सुनाई पडते। लोगो की धमाचौकडी और हाहा-हूहू भी बद हो चुका है। दरवाजे पर सिवा दो गायो के कोई जानवर नही। खेत बॅटाई दे चुके है—अच्छे खेत। जो उपजता, उनके लिए वही काफी होता। सेवा करते, तो इन गायो की— वह उन्हे अमृत-रस देकर इस बुढापे मे जवान-सा रखने की कोशिश करती। दोनो समय बागमती-स्नान, मदिर मे पूजा-पाठ, दरवाजे पर गोसेवा और इँजोरिया की लगाई लीची के पेड के नीचे एक खाट डालकर पडे रहना—यह थी उनकी दिनचर्या। इस लीची की छाया मे उन्हे इँजोरिया की शीतलता और स्निग्धता प्राप्त होती। सवस्व-हीन-सा होकर भी उनके हृदय मे आत्मिक आनद की लहरे लहराया करती। कसक थी, तो बस एक ही। यह लीची इतनी बडी और घनी हो चली थी, किंतु अभी तक इसमे मजरी तक नही निकली ! जब कोई कह देता, यह बाझ है—तब तो वह कट-से जाते। उनकी नजरो मे यह लीची नही थी, यह तो इँजोरिया थी। फिर यह अपशकुन की बात !

(४)

अचानक उस साल लीची को मजरियो से लदी देखकर जैसे हाकिम मामा के हर रोम-कूप से मजरिया निकल आई। लीची के रूप मे उन्होने अपनी प्यारी बेटी को मजरियो से मडित देखा। विटपी की यही तो साथकता है, किसी भी नारी की यही तो चरम आकाक्षा है—मजरियो से डालिया लदे, फूलो से गोद भरे।

जब मजरियो से फल निकलने लगे, मामा की खुशी की कोई सीमा नही रही।

साथ ही उनकी जिम्मेदारी भी जैसे बढ गई।

अब वह इस चेष्टा मे लगे कि यथासम्भव एक भी टिकोरा गिरने न पावे—पूरे-का-पूरा बढे, पके। थाले मे लगातार पानी पटाने से ही उन्हे सतोष नही था। उन्होने नई-नई खादे डालनी शुरू कर दी, पर कुछ टिकोरे तो गिरने के लिए ही होते है। यदि न गिरे, तो बेचारी सुकुमार डाली एक-एक कर टूट न पडे ! मामा के सभी उपायो के बाद भी कुछ टिकोरे गिरते ही। किंतु उनमे से एक-एक

का गिरना मामा को ऐसा मालूम होता, मानो कोई पेड पर बैठ कर उनके कलेजे पर ढेले फेक रहा हो। ममता ऐसी कि उन टिकोरो को भी चुनकर रखते, गिनते—उफ्, आज इतने गिरे ! उनका कोई उपयोग नही था, आम के टिकोरे की तरह वे काम के — किसी भी काम के—नही थे, किंतु ममता मे उपयोगिता का कहाँ स्थान है ? उन्हे खूब सजोग कर इकट्ठे करते जाते।

जिस दिन फलो के गुच्छो मे ललाई आई—बूढे हाकिम मामा के चेहरे पर भी ललाई की एक हल्की छाया दौड गई। उन्हे एक बहुत ही पुरानी बात याद आई — लीची का पहला फल इँजोरिया के दूल्हे को खिलाऊँगा।

इस ललाई पर कौन नही मोह जाता ? और, ललाई चाहे लीची के गुच्छो मे हो, या सेदुरिया आम के डटल के निकट के हिस्से मे या किसी के उभरे जवान गालो पर—जरूरी हो जाता है कि उसकी रक्षा की जाय। लीची की इस ललाई को आदमियो से, जानवरो से तो बचाना आसान था, किंतु उन पखेरुओ का क्या हो, जिनके पख हवा से बाते करते है। लीची के सबसे बडे दो दुश्मन तो इन्ही मे से है—कितने घिनौने दुश्मन—दिन मे कौवे रात मे चमगादड ! लीची खाने का किसी को हक हो सकता है, तो सुग्गे को, जिसके हरे पख और लाल ओठ लीची के पत्तो और लाल फलो मे बिलकुल खप जाते है। यदि केवल सुग्गे की बात होती, तो मामा हाहा-हूहू पर ही सतोष कर जाते, पर उपर्युक्त दोनो दुष्टाधिराज ! इन्हे लीची छूने का भी क्या अधिकार ? मामा ने तय किया, समूची लीची पर जाल डाल दे, जिससे एक फल भी ये बरबाद न कर सके। पर इस साध की लीची के लिए जाल भी तो असाधारण चाहिए। रग-बिरगे तागे खरीद लाये और उनसे एक बडा-सा जाल बुनवाया। जाल बुननेवाले कारीगर तो काम करते ही, आप भी लगे रहते। जिस दिन हरी-हरी डालियो मे झूमते हुए उन लाल-लाल गुच्छो पर यह रग-बिरगा जाल डाला गया, मालूम पडता, किसी सुहाग-भरी दुलहिन को जाली-दार दुपट्टा उढा दिया गया ! रसीली लीची की जवानी इस सुहानी साज-सज्जा मे जैसे निखर पडी।

लीची के नीचे, मचान पर, दरी डालकर लेटे हुए हाकिम मामा डबडबाई आँखो से उसकी डाली-डाली, पत्ती-पत्ती, गुच्छे-गुच्छे को को निहारते।

लोग उनकी इस तन्मयता पर वारे जाते। कहते, उफ् ! किसी पेड से भी ऐसी मुहब्बत हो सकती है ?

ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, फलो मे लाली बढती गई, वे बडे भी होते गये। फल काफी अच्छे बढे। सब कहते, अजी, इसने तो मुजफ्फरपुर की लीची के भी कान काट डाले। मामा कहते—"अभी बहुत देर है बबुआ ! अभी क्या आँखे गडाते हो—मुझे क्या खाना है ? तुम्ही खाओगे न ? हाँ, पहले इँजोरिया के दूल्हे को थोडा भेज लूँगा।"

"आप क्यो नही खाइएगा"—कोई पूछता।

"मैने यही मन्नत मानी, तब तो यह फली है"—मामा जवाब देते। वह कैसे यह कहते कि यह मेरी बेटी है—बेटी की कोई चीज कैसे ग्रहण की जाय ?

इसी समय किसी ने मामा से एक दिन कहा—"आप इतना इँजोरिया-इँजोरिया करते है, तो जरा इँजोरिया को बुला ही क्यो न लेते ? फल भेजिएगा, माना। किंतु इँजोरिया को जो आनद इस लीची के फले पेड को देखकर होगा, वह टोकरियो लीची से भी कहाँ हो सकता है ? मामा इस बात पर उछल-से पडे। इधर इँजोरिया को देखे भी कितने दिन हो गये थे ! एक पथ—दो काज। उन्होने झट ब्राह्मण बुलवाया, एक अच्छी तिथि गुनवाई और एक पत्री लिखकर तुरत इँजोरिया की ससुराल आदमी भिजवाया कि अमुक-न-अमुक तिथि को मेरी बेटी की बिदागरी का दिन है—मजूर किया जाय। अत मे मामा ने यह भी निवेदन किया था कि यहा से मैं किसको भेजूगा—सिवा इँजोरिया के मेरा दुनिया मे दूसरा है ही कौन, अत उसका दूल्हा ही उसे यहाँ पहुँचा जाय।

कहना व्यर्थ होगा—उनकी दोनो ही प्रार्थनाये स्वीकृत हुईं। मामा दिन-रात इँजोरिया और उसके दूल्हे का सपना देखने लगे।

(५)

हाकिम मामा सपना देख रहे थे, लेकिन उनके सपने को सदा के लिए सपना ही बनाये रखने को जिस सत्य की—ठोस सत्य की सृष्टि हो रही थी, उसकी क्या खबर थी उन्हे ?

मामा ने जिस दिन इँजोरिया के पास उसकी बिदागरी का दिन मजूर करवाने को आदमी भजा, ठीक उसी दिन उनके पास महाजनजी का एक आदमी लीची माँगने आया था। लेकिन मामा ने लीची नही दी थी—हाँ, मुलायमियत से सब बाते समझा जरूर दी थी। लेकिन, न तो उस आदमी को उनकी मुलायमियत से कोई वास्ता, न महाजनजी को। उन्हे लीची चाहिए थी, लीची नही मिली, और नही दी किसने ? हाकिमसिह ने, और किसके लिए नही दी ?

बारूद मे आग लग गई !

बात यो है कि महाजनजी के छोटे साहबजादे उस समय कॉलेज मे पढ रहे थे। पूरे साहबजादे—बन-ठन, तडक भडक का क्या कहना ? भले ही बाप ने न कभी अच्छा कपडा पहना हो, न अच्छा खाना खाया हो—आज भी वह इन दोनो चीजो मे भागता हो—लेकिन साहबजादे साहब पूरे साहबजादा थे। अँगरेजी कपडे पहनते, टेबुल पर खाना खाते। गरमियो की छुट्टी मे कई जगहो की सैर कर आखिरी दौर मे वह घर तशरीफ लाये थे। आपके साथ आपके कई अन्य घनिष्ट मित्र भी आये थे। शहर मे मोटर कर ली थी। मोटर की की सडक हाकिम मामा के दरवाजे पर होकर ही गुजरती थी। जब वहाँ से मोटर निकली, उनकी नजर लीची पर पडने को ही थी। इस लाल-हरे पेड को देखकर मित्रगण मुग्ध हो गये—"यह क्या है भाइ !"

'नही जानते, यही तिरहुत की मशहूर लीची है।"

मोटर दन से निकल गई, किंतु यारो के मन से लीची नही निकली। दरवाजे पर पहुँचते ही आग्रह शुरू हुआ, चलो, जरा उस पेड को देख आयें। पर साहबजादे ने शखी मे आकर कहा—"उँह, जिस-तिस के दरवाजे पर मै नही जाता। लीची मँगा देता हूँ, देख लो चख लो—चख क्या लो, पेट-भर ठूँस लो।" फिर अपने नौकर से कहा—"जाओ, हाकिमसिह से कहो, मेरे दोस्त आये है, कुछ लीची के गुच्छे पत्ते-सहित तोडकर दे जायँ। समझा ? —पत्ते-सहित, जिसमे ये लोग अच्छी तरह देख ले। और, काफी लाने को कहना, समझा न ?"

जब नौकर आया था, मामा ने बहुत मुलायम होकर कहा—"जाओ, अपने बबुआ से कह देना, अभी लीची नही पकी। फिर,

उन्हे देखते ही गाव के लोगो का एक दल उनके निकट आ जुटा। यह बात सबको खली। एक ने कहा—"उफ्, देवता आदमी के साथ यह शैतानी !" एक बूढे सज्जन उसास लेकर बोल उठे—"मैने पूछा है, महाजन, तुमने यह क्या किया ?" तैश मे आकर बोला—"कब की न डिग्री थी, म तो भलमनसाहत कग्के उमे गेके हुए था। जब वह मेरे बच्चे को एक गुच्छा लीची का नही दे सकते, तो अब चखे लीची !" किसी ने कहा—"हाकिम दादा ने उसकी कौडी-कौडी सधा दी थी, यह माफ बेईमानी हे।" एक नौजवान छूटते बोला—"क्या विना बेईमानी के ही देखते-देखते यह अम्बार लग गया हे ? कितनो ही पर यो ही झूठी नालिशे करके, एकतरफा डिग्री कराके तो आज बादशाह का बेटा बना फिग्ता हे।" दूमरे नौजवान ने मानो नवयुवको की पूरी टोली का प्रतिनिधित्व करने हुए कहा—"धन की मस्ती चढी है, तो आज ही वह मम्नी झाड दी जाती हे। देखने क्या हो—चलो, मबसे पहले उस साहब के जने का ही खात्मा कर दिया जाय।"

मामा सुन्न-से हो ग्हे थे। जब जो बोलता, उसका मुँह देख्ते, जबान हिल नही रही थी। लेकिन क्या उनके दिमाग को जबान की ही तरह काठ माग गया था ? नही, वहा कितनी ही बाते आ-जा रही थी। लीची, इँजोरिया, उसका दून्हा, वह शादी, वह बधैया, वह रगरेलियॉ, वह जवानी की देह, वह उनका अलमस्त गिरोह ! फिर, भिखारी, उसका बेटा, उमकी नालिश, सवस्व-हीनता, यह दखलदिहानी ! बवडर, के वीच-बीच बिजली कौध जाती। बिजली—वह पुरानी शान ! उनका चेहरा रह-रहकर दिप उठता। अतत वाणी फूट निकली—

"भैया ! अपने-अपने घर जाओ। मार-पीट किससे ? भिखारी और उनके छोटे साहब तो अपने कोठे मे बद होगे। इन भाडे के टट्टुओ से लटकर क्या करोगे ? जाने दो, सब तकदीर का खेल है। मै क्या था, क्या हो गया हूँ, और आगे न-जाने क्या "

उनकी आँखो मे आसू भर आये, गला रूँध गया, सबके चेहरे उदास हो गये। मामा ने आरजू-मिन्नत करके सबको बिदा किया। चलते समय एक बूढे ने ऊपर की आर देखकर कहा—

"भिखारी, तुम्हारा भला न होगा। तुमने गाय के रोये नोचे है।"

न-जाने कैसे मामा कडक उठे—"दादा, भिखारी ने गाय के रोये नही नोचे ह, सिह की मूछ उखाडी है। बूढा हूँ, लेकिन हूँ छत्री !" तैश मे आकर वह दरवाजे से आँगन की ओर चल पडे।

(६)

दुनिया मे साध की चीजो की क्या यही गत बदी होती है ?

बेचारी लीची, लाड प्यार की लीची, उसकी यह दुगत !!

यदि उसके जबान होती, तो उसका रुदन-क्रदन सुनकर न सिर्फ गाव, वरन् समूचा जवार पानी-पानी हो जाता !

पाँच-सात लठबद उस जगह पडे रहते। इसलिए नही कि पछियो से या आदमियो से उसकी रक्षा करे। वे वहा थे कि हाकिम-सिह यहाँ फटकने न पावे। महाजनजी के साहबजादे का हुक्म था, यदि वह आते है, साफ खून कर दो— अपनी चीज की रक्षा मे फासी नही हुआ करती।

वे लठबद और उनके यार-दोस्त निदयता से लीची नोचते। जिसकी एक पत्ती कभी गिरे, तो हाकिम मामा को हूक होती, उसकी टहनियाँ-डालिया नोडी जाती, और वे टहनियाँ, वे डालियाँ मामा के दरवाजे से होकर ही महाजनजी की ड्योढी मे ले जाई जाती। क्यो ? उन्हे हाकिमसिंह को बता देना था कि महाजनजी वह पुराने भिखारी नही ह, जो उनके खेत मे मजदूरी करते थे! और हाकिम-सिह को तडपाना भी था !! गाँव क्या, जवार जानता था, हाकिम सिह इस लीची पर जान देते ह। यह लीची नही, उनकी प्यारी बेटी है। बेटी के हाथ-पाव टुकडे-टुकडे कर उन्ही के सामने से ले आओ, तब उन्हे मालूम हो, बडे से बैर करने का क्या फल होता है ? समूची लीची के फल एक दिन ही तोड लिये जा सकते थे, लेकिन नही, तिल-तिल कर तडपाओ ! तडपाओ !!

गाँव के लोग इस बेरहमी पर मरे जाते। कितने लोग उसाँसे भरते, कितने लोग दाँत किटकिटाते। लेकिन किया क्या जाय, जब कि हाकिम मामा ने स्वय ही यह सब होने दिया, और होने दे रहे है। कई दिन उनके हितेच्छुओ का डेपुटेशन उनके निकट गया, लेकिन उन्होने सबको टाल दिया।

इधर हाकिम मामा घर से भी नही निकलने। बस, शाम को ठाकुरबाडी मे जाकर आरती लेने और भोर ही जाकर बागमती मे स्नान कर आते। गायो के खूटे आँगन मे गाड दिये थे वही उन्हे खिलाते-पिलाते।

लीची की इस दुगत ने उनके शरीर और मस्तिष्क की क्या हालत कर दी थी, यह कहने की बात नही। लेकिन, उन्हे सबसे तो बडी चिता थी इँजोरिया की। इँजोरिया आयगी, कितनी उमगो को, हौसलो को लेकर। लीची इस साल फली है, यह सुनकर वह किस तरह खिल उठी थी– उन्हे उस आदमी ने बताया था, जो बिदागरी का दिन लेकर गया था। वह मन-ही मन कल्पना करती आयगी–इस तरह लीची फली होगी, उस तरह उसकी रखवाली करूँगी, इस तरह खाऊँगी। मै खाऊँगी, और खाएँगे 'वे'। 'वे'–एक अच्छर का यह शब्द, कितना भाव-पूर्ण, सरस ! बाबूजी की सूझ की बलिहारी—सचमच, यदि 'वे' नही चलते, तो मजा आधा ही रहता ! यो न-जाने कौन-कौन से आकाश-कुसुम को हाथो उछालते इँजोरिया आयगी और यहा देखेगी, लीची बाबूजी की नही रह गई। खैर, इँजोरिया अपने घर की है, समझा बुझा ले सकता था, लेकिन उसका दूल्हा ! यह बुलाहट लीची के लिए ही है, वह भी जान चुका है। जब वह आकर यह देखेगा—क्या सोचेगा ? क्या अपने इस ससुर की कृपात्रता पर उसे लाज नही आयगी, रोष नही होगा ? जवानी का खून–यह सरासर अन्याय क्योकर सिर झुकाकर कबूल कर पायगा वह ?

तो सम्वाद क्यो न भेज दूँ कि मत आइयो। लेकिन मना करने के लिए भी तो कोई कारण चाहिए ! लीची की इस बेदखली की खबर समधियाने मे भेजने से तो मर जाना अच्छा ! मर जाना अच्छा !–ठीक तो, मर जाना अच्छा ! लेकिन, कैसे मरा जाय ? म मर जाऊँ, इँजोरिया आकर रोये ओर भिखारी और उसका बेटा तालियाँ पीटे।

उनकी आँखे जल उठती।

आँखे जल उठती। सूखे चेहरे पर खून नाचने लगता, नसे झन-झना उठती। मालूम होता, सिर चक्कर देने लगा। लेट जाते–जब उठते, तकिया भीगा हुआ पाते।

न जाने कितने दिन, दिन मे कितनी बार ये बाते होती।

और, कल भोर मे इँजोरिया ससुराल से चलेगी, शाम को या थोडी रात बीतते यहाँ पहुँचेगी। तेरह-चौदह कोस आना ठहरा। आगे-आगे दूल्हा होगा, घोडे पर, किस शान से आवेगा? पीछे-पीछे खरखरिया मे इँजोरिया होगी! किस उत्साह से आवेगी! थोडी-थोडी दूर आगे जाकर दूल्हा अपने घोडे को रोककर पीछे देखगा, सवारी कितनी दूर पीछे रह गई? आस-पास लोगो की भनक न पा सुनसान जानकर, इँजोरिया ओहार हटाकर झाँकेगी 'वे' कितनी दूर आगे बढ गये हैं? मामा की आखो मे अपनी जवानी के ऐसे ही दृश्य घूमने लगे। यो ही वह घोडे पर, मामी खरखरिया मे!

आह!—मामी कहाँ है?

मामा को मालूम हुआ, मामी आकाश के उस तारे मे उनको बुला रही है। कहती है—क्यो नही आते, बहुत दिन हुए, अब आ जाओ, अकेले अब नही रहा जाता!

(७)

मामा को उस रात नीद नही आई।

दिमाग मे बवडर, देह मे ज्वाला। आँगन मे लम्बे डग से टहलते-टहलते थक जाते, तो लेटते। लेटते-लेटते उकता जाते, तो फिर टहलते। कसमस!

कई बार पानी से सिर धोया। कई बार रामायण निकालकर पढने चले। कई बार माला लेकर खटखटाई। लेकिन चैन नही, कल नही। उफ्—क्या मै पागल हो जाऊँगा?

लीची-लीची! इँजोरिया-इँजोरिया। दूल्हा-दूल्हा! वह दुष्ट भिखारी! दुष्टाधिराज उसका बेटा!

उफ्, मै पागल हो जाऊँगा क्या?

मन मे एक भीषण सकल्प!

नही-नही-नही, हरगिज नही! नही!—नही!

इतने जोर से चिल्लाने लगे कि पडोसी जग जाय।

क्या सचमुच मै पागल होने जा रहा हूँ?

नही, मै सोऊँगा, जरा तन-मन को ठढा कर लूँ !

मामा उसी समय दरवाजे के कुएँ पर आये, स्नान करने लगे। पडोस का एक आदमी पेशाब करने के लिए उठा था। इस बेमौके नहाने से उसे अचरज हुआ। "कौन ? हाकिम दादा ? आज क्या है दादा ? हा, गरमी आज सचमुच ज्यादा है।"

"कितनी रात होगी बबुआ ?"

"पहर से नीची ही दादा !"

स्नान करके मामा घर आये। आँगन मे बिछावन ले आये। सो गये ! हाँ, सो गये !

एक झपक–

इँजोरिया आई है। ओह ! बिलकुल जवान हो चली है। पैर पकडकर रोती है ! फिर उठने ही बारी की ओर बढती है–बाबूजी चलिए, लीची देखू।

दरवाज़े पर दूल्हा कह रहा है–"छि, बिना रोक-टोक के ही दखलदिहानी दे दी ! क्षत्रियो की शान "

मामा चौककर उठे। सीधे देवता के घर मे पहुँचे। वहाँ दो तलवारे रखी हुई थी। मामा पाँच-छ दिनो से घर से बिलकुल नही निकले थे। अत घर की एक-एक चीज को, शगल के लिए ही, उन्होने सँभाला-सुधारा था। इन दिनो तलवारो की धार भी ताज़ा की थी। खानदानी तलवारे थी–उस जमाने की, जब तलवारो मे ही सब शक्ति-सम्पत्ति निहित थी। उसकी धार का क्या कहना ? जरा शान देनी थी, चमक उठी थी ! मामा ने गहदेवता को प्रणाम किया। दोनो तलवारो को उठाया। घर से बाहर गये। एक बार घर को नजर भरकर देखा–फिर चल पडे। कहा ?

× × ×

भोर ही खून-खून का शोर होने लगा। वह आवाज़ महाजनजी के दरवाज़े से आ रही थी।

महाजनजी और उनके साहबज़ादा गरमी से परेशान दरवाज़े की अँगनई मे सोये हुए थे। किसी ने–शायद दो आदमी रहे होगे–

दोनो पर इस ज़ोर से तलवार चलाई थी कि एक का तो सिर धड से अलग था और दूसरे का आधा कधा और आधी गदन कट चुकी थी। यदि एक आदमी रहा होगा, तो पहले वार मे महाजनजी के साहबजादे का सिर काटा होगा, और दूसरे वार मे वह जरा-सा चूक गया होगा, लेकिन यह चूकना क्या था ? जरा-सी साँस आ रही थी, जो एकआध घटे मे बद ही होनेवाली थी। हुई भी !

जब लाशे तडपने लगी थी, लोग जागे थे। किसी ने एक आदमी को भागते भी देखा था, लेकिन किसकी हिम्मत जो मौत का पीछा करे !

एक ने कहा–

"शायद हाकिम सिह ने यह किया होगा।"

कुछ लोग हथियारो से लैस हाकिमसिह के घर आये। दरवाजा बाहर से बद। समझा, कही भाग गया है। पडोसी ने कहा–"वह बागमती स्नान करने गये होगे। समझ-बूझकर तुहमत लगाओ।"

लेकिन जाँच-बूझ ऐसे अवसरो पर ? घर का ताला तोडकर कुछ लोग भीतर घुसे। खून के आतक से सभी दहशत मे थे। नही तो पडोसी इसको बरदाश्त नही करते ! लेकिन इस समय चुप रहने मे ही कल्याण था।

घर की रत्ती-रत्ती छानकर कुछ लोग पागल-से बागमती की ओर दौडे।

समूचे गाव मे हलचल थी ! दो-दो खून ! उफ्, ऐसा तो कभी नही हुआ !

और, हाकिमसिह नही मिल रहे है ! क्या कही भाग गये ?

खून-खून की आवाज सुनते ही लीची के सभी रखवाले भी अपनी लाठियाँ-बर्छियाँ सँभालकर महाजनजी के घर की ओर दौडे थे। जब बहुत दिन चढे तक हाकिम सिंह का कोई पता नही चला, लाशे थाने की ओर ले जाई गई, और समूचा गाँव थर्रा उठा, रखवाले लीची के निकट आये।

उनमे से एक रखवाला मचान पर—हाकिम मामा के ही गाडे हुए मचान पर—जाकर विश्राम के लिए जब चित्त लेटा, अपने ऊपर लीची की डाल मे एक विचित्र दृश्य देख चिल्लाता हुआ भागा।

उसका भागना था कि सब उसके पीछे भागे।

"भूत! भूत! भूत!" –थोडी देर के बाद घिघिआते हुए वह बोला।

लोगो ने पेड के निकट जाकर देखा–अजीब दृश्य!

दोनो तरफ दो तलवारे लटक रही है। बीच मे एक आदमी एक दोकनिया पर बठा बीच के तने को पकड हुए-सा है। वह कौन है? अरे हाकिम सिह! हाकिम सिह!

वह आदमी, इतना शोर होने पर भी, जरा भी हिल डुल नही रहा है। क्या बात है? क्या हाकिम सिह छल किये हुए बैठे ह कि दो खून कर चुका, एकआध का और सही!

मोत की ओर कोन बढे?

दुर्भाग्य से जिम दिन यह दुघटना हुई, मैं ननिहाल मे ही था। हल्ला सुनकर म भी वहाँ जा पहुँचा था। म हाकिम मामा की रग-रग से परिचित था। किसी निरपराध पर उनका हाथ उठ नही सकता था। फिर मैं तो उनके प्यारे लडको मे से था। मैंने सोचा, चलकर उनसे उतरने को कहूँ, और अब जो होना है उसे सामना करने को उन्हे धैर्य दूँ। लेकिन यह क्या? यह तो हाकिम मामा नही, यह तो उनकी लाश है!

शरीर पर कोई घाव नही, कोई दूसरा मारक चिन्ह नही, फाँसी तो लगाई ही नही, फिर यह क्या हुआ, कैसे हुआ?

हाकिम मामा की लाश नीचे लाई गई। उनके सिर मे लहू का चदन था। बस, एक यही विशेष चिन्ह!

आज तक भी यह रहस्य ही है कि हाकिम मामा ने प्राण कैसे छोडे।

कोई कोई कहते ह, उन्होने योग सीखा था। योगी लोग जब चाहे, प्राण को शरीर से निकाल सकते है।

किंतु म विज्ञान का उपासक, इसे क्यो मानू? और, फिर इस लीची की डाल पर ही योग की यह मरण-साधना क्यो?

तब बात क्या थी?

उस दिन झोपड़ी रोई

(१)

रमेश बाबू और राघो एक ही गाँव के थे।

राघो के पूवज बेवकूफ थे—क्योकि न तो उन्होने लाठी के जोर पर किसी का हक छीना, न सूद के नाम पर किसी का गला घोटा, न किन्ही दो काठ के पुतलो को लडाकर अपना उल्लू सीधा किया, न किन्ही भोले-भाले भावुको को फँसाकर मीठी छुरी से जबह किया। सक्षेप मे, अन्याय, अत्याचार, उत्पीडन, धोखा, जाल, मक्कारी आदि की शरण नही ली। अत वह सदा गरीब रहे, गरीब मरे, और राघो को भी गरीब बनने को बाध्य किया।

किंतु, रमेश बाबू के पूवज चतुर थे—खासकर उनके पिता तो चतुर-शिरोमणि थे। उन्होने सपत्ति के त्रिदेव—लगान, सूद और मुनाफा—की ही आराधना नही की, इनके साथ-साथ उन भूत-प्रेतो की भी पूजा की, जिनके विना इन त्रिदेवो की महिमा अक्षुण्ण रह ही नही सकती। कितने घर उनके नाम पर धूल चाट रहे है, कितनी ही आँखे उनके काम पर आँसू का तपण किया करती है। कितनी ही बरबादी का इतिहास उनके शुभ नाम के साथ जुडा हुआ है, कितनी ही दगाबाजी और शैतानी की कहानियाँ उनकी उज्ज्वल कीर्त्ति को बढा रही है। आखिर चतुराई का दूसरा अथ ही क्या है ?

—दूसरो को लूट-खसोटकर अपना घर भरो। लोग कहेगे, यह अँगरेजी राज्य है, इसमे लूट कहाँ, कैसे ? इसका जवाब हम नही देना चाहते। लोगो से केवल यही सुना है कि गाव के चौकीदार से लेकर जिला के अफसर तक उनकी मुट्ठी मे रहे, तभी तो कितने खून के मामलो को भी वह पचा गये थे। खैर, जनश्रुति पर हमे जाना नही है, सक्षेप मे केवल यही कहना है कि वह चतुर-शिरोमणि थे, फलत धनी बने, धनी रहे, धनी मरे, और मरकर भी धनी बना गये रमेश बाबू को।

इस चतुराई को केवल हमी नही स्वीकार करते, दुनिया भी स्वीकृत कर चुकी है। तभी तो वह रमेशप्रसाद सिह को रमेश बाबू कहती और राघोप्रसादसिह को राघो नाम से पुकारती है। हाय री दुनिया ! आह री उसकी विवेचना-शक्ति !

रमेश और राघो दोनो स्कूल गये। रमेश फेल होते रहे, राघो वजीफे पाता रहा। जिस समय राघो बी० ए० ऑनस की तैयारी कर रहा था, रमेश का छकडा मैट्रिक के दरवाजे पर ही अटका पडा था। इतने ही मे गाँधी की आधी उठी। राघो ने देश की पुकार पर अपने भविष्य पर लात मार दी। रमेश अपने छकडे को घसीटते ही रहे। आखिर, प्रोफेसरो के मुँह मे रसगुल्ले भरकर और परीक्षको की अक्ल पर चाँदी का परदा डालकर एम० ए० पास कर ही गये। खरगोश पीछे पड गया, कछुए की विजय रही।

राघो कई बार जेल काट आये। आदोलन धीमा पडने पर एक राष्ट्रीय विद्यालय मे भर्ती हो गये। क्या करते ? जिसने अपनी सुन्दरी लडकी निधन राघो को, वजीफा पाते देखकर भविष्य की आशा पर, पढते समय ही सौप दी थी, उसकी आशावादिता को चरिताथ करने के लिए नही, तो कम-से-कम अपनी इस सुशीला पत्नी के भरण-पोषण के ख्याल से उन्हे कुछ पैसे कमाने थे ही। किंतु राष्टीय विद्यालय मे जितने पैसे मिलते है, वह सभी जानते ह। पर-साल जब फिर सत्याग्रह-युद्ध छिडा और राघो ने दो वष के लिए जेल-यात्रा की, तब उनकी पत्नी के पास कितने सामान थे, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है, वणन नही हो सकता। पत्नी भी अकेली न थी—बाल-बच्चोवाली थी।

इधर रमेश बाबू एम० ए० की डिग्री लेकर जब बाहर हुए, तो अपर कौसिल और बोर्ड मे जाने की धुन सवार हुई। लेकिन,

उन्होने देखा, इन स्थानो पर अब राष्टीयता आ बैठी हे। समय को पहचाननेवाले जीव थे। जिस पतृक चतुराई ने विश्व-विद्यालय को मात किया था, उसी ने उनके शरीर पर खादी का कुरता, सिर पर गाँधी टोपी और पर मे मदरासी चप्पल पहना दिये। राष्ट्रीयता ने उनका लोहा मान लिया। वह स्वराज्य-पार्टी के प्रमुख सदस्य बने, एम० एल्० सी० हुए, लोकल बोड के चेयरमैन (कुरसी-पुरुष) भी। अब चारो ओर रमेश बाबू की धूम थी। रमेश बाबू देश-भक्त थे, नेता थे। रमेश बाबू के महल ओर मोटर ने वह कर दिखाया जो राघो की तपस्या और त्याग न कर सके थे।

फिर सग्राम छिडा। अब रमेश बाबू घबराये। उतनी जल्दी यह क्राइसिस (सक्ट) आ जायगा, इसकी कल्पना तक उन्होने नही की थी। बगले झाकने लगे। किंतु कोई चारा नही था—एक तरफ खाई, दूसरी ओर कुआ था। इसी पशोपेश मे ही थे कि खबर उडी, रमेश बाबू पर वारट कट चुका है—काग्रेस गैर-कानूनी घोषित कर दी गई, फिर नेता बचते कसे ? तो परवा क्या ? जिस यतीद्रनाथ दास और उसके साथियो को वह जी भर गाली देते रहे, उसके चलते ही हजारीबाग का स्वास्थ्य-भवन उनके लिए सुरक्षित था। 'ए' डिवीजन के कैदी नही, तो 'बी' कहाँ जानेवाला हे। हलवा, दूध, अडे, पावरोटी, गद्दा, तकिया, मशहरी—सब कुछ। जो कमी होगी, वह जेल के 'पिछले दरवाज़े' से। पसे से क्या नही हो सकता ? सरकार जेल मे एक ही दरवाजा बनवाती हे, किंतु पसे की महिमा देखिए, वह पीछे से भी एक दरवाज़ा खुलवा देता हे। धन्य पैसा, धन्य पैसा-पति !

तो पहले एक प्रदशन हो जाय ! मोटर लेकर रमेश बाबू उडे। अपने हलके भर मे घूम आये। उनके दूत आगे-आगे दौड रहे थे। सब जगह पहले से ही मालाये गुथी थी, चदन घिसा था, आरती सजी थी। रमेश बाबू के जय-जयकार से हलका-भर गूज उठा।

राघो भी जेल गये थे—कई बार। किंतु, यह प्रदशन की बुद्धि उनमे कहाँ ? शायद वह इससे घृणा भी करते थे। किंतु, करते रहे घृणा वह। रमेश बाबू इसकी उपयोगिता जानते थे। और, इसीलिए तो वह इस क्षेत्र मे आये भी थ।

खैर, रमेश बाबू को सज़ा हो गई और मैजिस्ट्रेट ने दो वष की कडी कैद कस दी। और, सबसे बडी ज्यादती तो यह की गई

कि उन्हे 'सी' क्लास मे झोक दिया गया। 'सी' क्लास सुनते ही रमेश बाबू के होश उड गये थे। किंतु, क्या करे ? इतनी मालाये, चदन और आरती के बाद अब माफी भी तो नही माँग सकते थे।

(२)

कैप-जेल के दक्षिण-पश्चिम कोने पर चार फूस की झोपडियाँ बनी है। छूत की बीमारीवाले रोगी उन्ही मे रखे जाते है।

उन्ही झोपडियो मे से एक मे एक बीमार खाट पर पडा कराह रहा है। उसे वह बीमारी है, जो कैप-जेल मे गलफुल्ली के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे कनपटी से लेकर कठ तक सूज जाता है—ऐसा कि खाना कौन कहे, कुछ पीना भी मुश्किल हो जाता है। बुखार तो और गजब ढाना है। सबसे बढकर हे पीडा और टीस। बीमार छटपटाता और कराहता रहता है।

बीमार खाट पर पडा कराह रहा है—बहुत ही धीरे-धीरे, बहुत ही सयत भाव से। मालूम होता है, वह पीडा को चुपचाप पी जाना चाहता है, टीस को निगल जाना चाहता है। किंतु, बहुत कोशिश करने पर भी वह ऐसा नही कर पाता। एक बर्छी-सी कनपटी मे घुसती ओर गले से आर-पार निकल जाती है—एक जलती सलाई-सी उसकी नस-नस मे दौडने लगती है। मालूम होता है, छाती दरक गई, दिमाग फट पडा। रह-रहकर उसकी आँखे सजल हो जाती, नाक से उसाँसे निकलने लगती, और मुँह से अकस्मात 'आह' निकल पडती। वह छटपटा रहा है, कराह रहा है।

आज सोलह महीने से वह जेल मे है। जब से आया, वह कभी बीमार नही पडा। वह हँसकर कहा करता—"बीमार पडने की मुझे फुरसत कहा ?" सचमुच उसे फुरसत कहाँ थी ! सुबह चार बजे मे रात के आठ बजे तक—उसका समय एक निश्चित कार्यक्रम मे बँधा था। वाड-बदी के आठ घटे ही उसका विश्राम-काल था।

जेल की चहल-पहल का वह केद्र था। रोगियो की देख-भाल करना, सभाये और जलसे कराना, अनेक तरह की कसरते सिखाना, खेल-कूद को प्रोत्साहन देना, उसका दैनिक काम था। और, सबसे मुख्य काम था लोगो को पढाना-लिखाना। उसी के उद्योग से जेल मे एक बाजाब्ता राजबदी-विद्यालय और कई अध्ययन-केद्र चल रहे है।

किंतु, न-जाने क्यो, वह अचानक बीमार पडा। और, बीमार पडा ऐसा कि लोग भौचक्के रह गये। 'गलफुल्ली' तो हुई थी बहुत लोगो को, यह यहाँ की आम बीमारी हो गई है, किंतु इसका ऐसा भीषण रूप तो कभी नही देखा गया। उसकी पीडा देखकर किसी को धैर्य नही है। बहुत-से दीवाने युवक उसको घेरे हुए सब प्रकार सेवा कर रहे है—किंतु तो भी वह छटपटा रहा है, कराह रहा है। जो दूसरो को धैर्य देता, जिसके माथे पर कभी शिकन नही देखी गई, जो विनोद और हास्य की साक्षात् प्रतिमा था, वही छटपटा रहा है, कराह रहा है !

इसकी पीडा देखकर लोगो ने चाहा कि जेल-अधिकारी इसके लिए कोई खास प्रबंध करे—अपने इस सेवक पर उन लोगो की ऐसी ही ममता थी, ऐसा ही स्नेह था ! किंतु जेल-अधिकारियो को फुर-सत कहाँ थी ? वे लोग तो एक दूसरे कैदी के लिए व्यस्त थे, जो हॉस्पिटल न० २ मे पडा था।

और, वह दूसरा कैदी सख्त बीमार था। जरूर सख्त बीमार था, नही तो जेल-सुपरिटेंडेंट उसको देखने के लिए सबेरे-शाम, बिला नागा, क्यो आता ? क्यो डॉक्टर उसकी देख-रेख मे इतना, इस कदर, व्यस्त रहते ?

वह सख्त बीमार था। वह टहलता था, फिरता था, खाता था, सोता था, खेलता और हँसता भी था—तो भी वह सख्त बीमार था। हाँ, खेलता था शतरंज की दो-चार बाजियाँ, ताश के दो-चार हाथ, और, खाता था केवल अंगूर के 'कुछ' गुच्छे, नारंगी का 'थोडा' रस, लोफ के 'दो' स्लाइस, गरम-गरम, मक्खन से लिपटे। 'थोडा' दूध भी लेता था, किंतु साधारण दूध उसे रुचता न था, माल्टेड का जमा हुआ दूध। तो भी वह सख्त बीमार था। आप कहेगे, भला, यह कैसी सख्त बीमारी है, बाबा ! आप ही-ऐसे बहुत -से बेवकूफ लोग है, जो ऐसा ही प्रश्न किया करते है, किंतु इससे क्या ? विलायत से डॉक्टरी पास करके आये हुए सुपरिंटेंडेंट ने भी मान लिया है कि वह सख्त बीमार है।

वह सख्त बीमार है, क्योकि वह एम्० एल्० सी० था, वह एक बडे जमीदार का बेटा है और स्वराज्य-सरकार मे शायद मिनिस्टर होगा !

कैंप-जेल के कैदियो ने भी मान लिया है कि यह सख्त बीमार है, किंतु इस बीमारी का कारण वह कुछ अजीब बतलाते है। उनका कहना है कि जब से यह जमीदार का सपूत जेल आया, तभी से बेचारे को बेहद परेशानी उठानी पडी है। सुपरिटेडेट के साथ इसको दौडना, जेलर के साथ इसे घूमना, डाक्टरो के साथ इसको बैठना, जमादार की सगत इसको निभानी। बेचारा क्या करे, परेशान रहता। खासकर उस दिन तो उसकी परेशानी और जॉफिसानी की हद हो गई, जिस दिन राजबदियो ने, अपनी कई शिकायतो को दूर न होते देख, वाड मे बद होने से इनकार कर दिया था। अजीब समॉ था। दिन-भर कलक्टर, पुलिस-सुपरिटेडेट, आई० जी० आदि का आना-जाना लगा रहा। शाम को एक ओर पॉच सौ पुलिस के जवान सगीने सीधी किये खडे थे, दूसरी ओर कैंप-जेल के दो हजार कैदी, प्रहार की प्रतीक्षा मे थे। उस समय यह सपूत, न-जाने किसके इशारे पर, उठा, और लगा गिडगिडा-गिडगिडाकर, पैरो पर नमकर, लोगो से वाड मे बद होने को कहने। कुछ भोले-भाले, खासकर उसके हलके के वे लोग, जिनपर उसके धन का रोब जमा था, उसके चकमे मे आ गये और उन लोगो को लेकर वह अपने वाड मे बद हो गया ! एक ओर तो लोग प्राणो की बाजी लगाये बाहर खडे थे, दूसरी ओर इसकी यह करतूत ! कैंप-जेल के राजबदी कहते है कि चूकि उस दिन उसने इस 'सुकम' मे बडी मेहनत की थी, अत वह सख्त बीमार है। किंतु, मालूम होता है, कैदियो का यह कथन द्वेष-वश है—बडो के विरोधी बहुत होते ह !

जो कुछ हो, इतना निश्चित है कि इस कैदी को लेकर जेल-अधिकारी इतने परेशान है कि किसी दूसरे की ओर खास ध्यान देना मुश्किल हो रहा है। क्या करे—बेचारे लाचार है ! और, लाचार को विचार क्या ?

(२)

खैर, जेल-अधिकारी अपने कतव्य से भले ही चूके, भले ही द्वैध भाव रखे, किंतु प्रकृति न तो कतव्य से चूकेगी, न द्वैध रखेगी। आज आषाढ के लगते ही उसने ससार को जल-दान दिया, तो वह कैंप-जेल को भी नही भूल सकी। चैत, बैसाख, जेठ—तीन महीने तक भट्ठी मे तपने के बाद आकाश को बादलो से घिरा देख कैंप-जेल के प्राणी आनद-विह्वल हो रहे ह। बूढे चहक रहे है, बच्चे

उछल रहे हैं। और, जब रिमझिम वर्षा होने लगी, कई वार्डों से बारहमासे की तान सुन पडी। मनोभाव न रुक सका—गीत के रूप मे फूट पडा !

पानी की कुछ बूदे, फूस की उस झोपडी के छप्पर को छेदकर, हमारे पहले बीमार के कपाल पर आ गिरी। वह आखे मूदे अध-मूर्च्छित दशा मे पडा था। चौका। ऊपर देखा। एक के बाद एक, ताँता बाँधे, बूदे आ रही थी। निकट के परिचारक से इशारा किया। वह झटपट एक हाथ मे लोहे की 'बाटी' उठाकर ऊपर से आनेवाली बूदो को रोकने लगा, और दूसरे हाथ से कपाल पर की बूदे पोछ दी, और बडबडा उठा—"बदमाश ने झोपडी को छवाया भी नही, दम नही था, तो कैद काहे किया।"

ये सहज भाव से निकले सीधे-सादे शब्द बीमार के कानो मे पडे। किंतु, पडते ही उसके मस्तिष्क मे, उसके हृदय मे, उसकी नस-नस मे उन्होने कैसी आँधी की सृष्टि कर दी !

बीमारी मे भावुकता बढ जाती हे, विचार-शक्ति दब जाती है। मनोवैज्ञानिक इसकी क्या व्याख्या करेगे, हम नही जानते । हम तो केवल यही कहेगे कि भावुकता हमारी जन्मगत प्रवृत्ति है, अत अपनी चीज है, दुख-सुख मे यह हमे नही छोडती। विचार-शक्ति 'प्राप्त' की गई चीज हे, अत पराई चीज है। विषेश अवसर आते ही अपनी चीज पास रह जाती है पराई चीज भाग जाती है। उसकी अवधि जितनी लम्बी होती जायगी, विचार-शक्ति उतनी ही दूर और भावना-शक्ति उतनी ही निकट आती जायगी। यदि लोग हमारी इस व्याख्या को मान ले, तो उन बेचारो को लोग न कोसे, जो सुख की अधिकाई मे ठट्ठा मारकर हँसते और दुख मे फूटकर रोते ह।

यहाँ भी भावना-शक्ति ने विचार-शक्ति पर विजय पाई। विवेक भाग पडा, भावुकता ने रग बाँधने शुरू किये।

बीमार की आँखो के सामने उसकी अपनी, अपने गाँव की, फूस की झोपडी नाचने लगी, और, नाचने लगी उसके साथ ही उसके अन्दर पलनेवाली तीन निरीह आत्माओ की असख्य यत्रणाये। उसकी झोपडी भी तो परसाल से नही छाई गई है ! वहाँ भी इस समय बूँदो की झडी लग गई होगी। उसमे कैसे होगी उसकी रानी, उसकी मुनिया, उसका कुमार। रानी, मुन्नी, कुमार—कैसे होगे वे ?

"बदमाश ने झोपडी को छवाया भी नही, जब दम नही था, तब कैद काहे किया।"

क्यो कैद किया उसने इन तीन निरीह प्राणियो को–रानी, मुन्नी, कुमार को। सरकार यदि दोषी है, तो वह क्या है ?

उसकी रानी–उसकी टूटी कुटिया की रानी–उसकी रूठी दुनिया की रानी। फटे वस्त्रो मे रखकर भी जिसको उसने 'रानी' की उपाधि दी थी, अकिंचन जानते हुए भी जिसने उसे 'राजा' कहकर पुकारा था। कितने प्यार से रखता था वह अपनी रानी को, कितने दुलार से से रखती थी उसकी रानी उसे ! उसके सारे अभावो को जो अपनी एक सरल मुस्कुराहट से भर देती थी, उसके सारे अवसाद को जो अपनी बाँकी चितवन से दूर कर देती थी—कैसे होगी उसकी रानी इस समय—इस समय, जब उसकी झोपडी चू रही होगी, उसका छप्पर रो रहा होगा। रानी–रानी

"झोपडी को छवाया भी नही, जब दम नही था "

बेहोशी। फिर सज्ञा। फिर भावुकता–

उसकी मुनिया बेटी—छोटी, चचल, फुदकती हुई—ठीक मुनिया चिडिया की तरह। चहचहाती रहती, फुदकती फिरती। राष्ट्रीय विद्यालय के छोटे वेतन मे से जो कुछ बचता, उसमे से कुछ आने निकालकर जिसके लिए वह किशमिश और मिहीदाने खरीदना नही भूलता, ! वही मुनिया, मुन्नी रानी, कैसे होगी ? किस तरह रहती होगी, क्या खाती होगी, क्या खा

"जब दम नही था, तब "

शून्य दृष्टि छप्पर की ओर। फिर आँखे मूदी—फिर चेतना, फिर भावना –

कुमार ! कुमार ! वह बच्चा, जिसका मुँह भी उसने नही देखा, जिसका जन्म उसके जेल आने के बाद हुआ। वह कैसा होगा ? खबर सुनकर जिसका नामकरण उसने मन-ही-मन 'कुमार' कर रखा है, कैसा होगा उसका वह कुमार ? आह रे कुमार, आह री उसकी माँ—रानी–

"जब तब

और देश मे आज एक उसकी रानी, उसकी मुनिया, उसका कुमार ही तो ऐसी हालत मे नही होगे। आषाढ की इस पहली सध्या को, जब कि ससार मे अजस्र आनद की धारा-वृष्टि होनी चाहिए, कितनी ही रानियाँ, कितने ही कुमार, कितनी ही मुनियाँ ! ! उसकी आँखो के सामने सैकडो, हजारो, लाखो, अबलाओ, बच्चो, गरीबो, मासूमो के अश्रु-पूण चेहरे नाचने लगे—

झमाझम वर्षा होने लगी थी। उसको मालूम हुआ, सारा ससार आज रो रहा है—आकाश रो रहा हे, बादल हाहाकार कर रहे है, पवन चीख रहा है, दिशाये उसॉसे भर रही है, पृथ्वी आँसू से भीगी हुई है।

रुदन ! हाहाकार ! चीख ! उसॉस ! आसू !

उसकी आँखो और झोपडी मे प्रतिद्वद्विता मच गई है—कौन अधिक रोती है, कौन अधिक पानी बरसाती हे ?

पानी–आँसू। आँसू–पानी।

और उसी समय वाड न० २ मे ताश चल रहा था और चाय की जगह गरम काफी से कलेजे को गरमी और दिमाग को मशर्रत पहुँचाई जा रही थी !

झोपडी रो रही है—वह सदा रोती आई है !

और, महल कब तक हँसता रहेगा ?

क़ैदी की पत्नी

अपनी रानी को

जिसके सुख-दुख की तस्वीरें
अंकित करने की चेष्टा
है इसमें ।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

क्यो ?

राजनीतिक पुरुषो के गले में जयमाला पडती है, उनका जय-जयकार होता है। इस रूप में उनकी जेल-यात्रा या त्याग-तपस्या की क्षतिपूत्ति होती जाती है।

किन्तु, उनकी पत्नियो की क्या दशा होती है, उन्हें किन तक-लीफो और परीशानियो में जिन्दगी गुजारनी होती है—क्या इस ओर कभी ध्यान दिया गया है ?

शरीर के कष्ट तो सह भी लिये जाते है, किन्तु मानसिक चिन्तायें और वेदनायें—बिच्छू के डक भी क्या खाकर मुकाबला करेंगे उनका !

'कदी की पत्नी' में मैंने उन्ही वेदनाओ को साकार करने की चेष्टा की है। और, स्पष्ट कहूँ, उसमें सफल नही हो सका हूँ, क्योकि कष्टो का द्रष्टा मात्र ही तो रहा हूँ।

तो भी, इसे लिख कर मुझे सन्तोष हुआ था कि मने देश की हजार-हजार ऐसी पत्नियो के आँसुओ की उज्वलता से अपनी लेखनी की स्याही को विमल-धवल करने का एक तुच्छ प्रयास तो कर दिया।

इसकी रचना आज से बारह वष पहले हुई, इसकी सारी पृष्ठभूमि उसी समय की है !

१-११-५३ श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

क स्वतिश्री

हडहड करती गाडी स्टेशन पर आ लगी।

कुलियो की दोडधूप, यात्रियो के रेल-पेल, फेरीवालो के शोर-गुल के बीच ड्योढे दर्जे के डब्बे से एक नोजवान गाँधी-टोपी पहने उतरा और उसके बाद एक लडका और एक बच्चा और अत मे गोद मे बच्ची लिये एक स्त्री उतरी। स्त्री खादी की मुफेद साडी पहने थी, जिसकी किनारी गहरे नीले रग की, ओर बदन मे खादी की ही हलके रग की छीट की चोली। पैरो मे चप्पल। गोरे चेहरे पर बाल की जो कई लटे बिखर पडी थी, उनमे कुछ धूप-छाँह के रग। कुछ ऐसी रेखाये भवो के ऊपर, जो मानसिक चिन्ता का निश्चित सकेत करती। गोद मे जो बच्ची है, वह कोलाहल से त्रस्त माँ का मुँह देख रही। बच्ची का एक हाथ माँ की छाती पर, एक ठुड्डी पर। बच्चा, जो पाँच-छ वष का होगा, भीडभाड देख, नौजवान के पास से दौडकर स्त्री के पास चला आया और उसकी अँगुली पकड कर उसके पैरो से चिपक-सा रहा। बडे लडके की उम्र ग्यारह-बारह वष से ज्यादा की क्या होगी, किन्तु, वह काफी होशियार और दुनियादार मालूम होता था। कभी वह सामान गिनता और कुलियो पर हुकूमत करता, तो कभी 'काकाजी, टिकट निकाल कर रिटन की अधकटी रख लीजिए'---का तकाजा नौजवान से करता और बच्चे के नज़दीक पहुँचकर, 'बबुआ, माँ की अँगुली पकडे रहना'---का आदेश करता। स्त्री उसके मुँह की ओर देखकर गव अनुभव करती। नौजवान का चेहरा बताता, उसने जिन्दगी देहातो मे गुजारी है, लेकिन वह शहर के तोरतरीके से भी अपरिचित नही है।

"कैसा शहर है यह, न एक फिटन, न एक घोडागाडी—टमटम पर कही भलेमानस जाते ह ।"—नौजवान झल्लाता हुआ स्टेशन के बाहर खडा हे और दोनो कुली "न हो, तो टैक्सी कर लीजिए बाबू"—कह कर अपने भारी बोझ की परीशानी और जल्दीबाजी की सूचना दे रहे ह। उसी समय, छोटा बच्चा, स्त्री की अँगुली छोड नौजवान के निकट पहुँचा और बोला—"काका, बाबूजी आज मिलेगे न ?"

"बाबूजी की तुम्हे बडी फिक्र—अगर बाबूजी को भी तुम्हारे ऐसी फिक्र होती तब न ?" –स्त्री ने बच्चे की ओर मुखातिब होकर कहा। बच्चा फिर स्त्री की अँगुली से आ रहा और बोला—"क्या बाबूजी नही मिलेगे, मैया ?" उसकी आँखा मे करुणा थी।

"मिलेगे, मिलेगे–बाबूजी हमसे जरूर मिलेगे बबुआ", कहकर बडे लडके ने उसे गोद मे उठा लिया।

कई मुँह से बाबूजी-बाबूजी की आवाज सुन गोद की बच्ची किलक पडी—"बाबूजी !"

"हाँ, कसर तुम्हारी ही थी"—कह कर स्त्री उत्कठित आँखो से बच्ची के मुँह की ओर देखने लगी। उसकी आखो मे गगा-जमुना उमड आई। नौजवान ने कुलियो से कहा, सामान टैक्सी पर रखो और खुद स्त्री के निकट जाकर बोला—"स्टेशन पर यो नही किया जाता भौजी ! यह भैया की शान के खिलाफ है कि लोग आपके आँसू देखे !"

स्त्री के मुँह से शब्द नही निकले। कुली जिस ओर सामान लिये जा रहे थे, वह चुपके, धीरे, उस ओर बढी। नौजवान ने आगे बढकर टैक्सी का दरवाजा खोल दिया। सब बैठे, भो-भो की आवाज देकर टैक्सी बढी—कितने अरमानो को ढोती !

× × ×

दूसरा दिन। वही स्टेशन, वही पूरा झुड–वही स्त्री, वही नौजवान, वही लडका, वही बच्चा, वही बच्ची ! किन्तु, किसी के मुँह से कोई शब्द नही। सबके चेहरे उतरे। कुलियो ने ड्योढे दर्जे मे सामान रखे। लडके ने मन-ही-मन उनकी गिनती की। नौजवान ने चुपचाप कुलियो के हाथ मे पैसे रख दिये। छोटा बच्चा भी चुप। मानो इन्हे शब्दो से घृणा हो गई हो, या ये शब्द से डरते हो।

किन्तु, यह छोटी बच्ची। यह क्या जाने डर क्या चीज ? घृणा का इसे अहसास कहाँ ? ज्यो ही गाडी चली, सीटी की चीख कमी, स्टेशन का होहल्ला दूर हुआ, वह स्त्री की ठुड्डी पकड कर बोल उठी—"बाबूजी !"

कल से ही इतनी बार वह अपने दो भाइयों के मुह से—'बाबूजी, बाबूजी' सुन चुकी थी कि उसकी जिह्वा पर यह शब्द चढ चुका था। वह उसे दुहरा-मात्र रही थी। उसे क्या मालूम, उसका यह शब्द उसकी माँ के लिए क्या काम कर रहा था ? नौजवान दुखी था, भैया से भेट नही हो सकी—किन्तु, वह जानता था, उसके भैया शान के आदमी है, कैद हुए तो क्या ? राजबदी की प्रतिष्ठा के लिए वह सब कुछ कर सकते है। यह भी कोई बात है कि पत्नी से मुलाकात होने वक्त भी बगल मे सी० आई० डी० बैठे ! ऐसा नियम बनानेवाले पर तुफ, और धिक्कार है उन्हे जो ऐसा नियम मानते हो। भैया कैसे मानते भला इसे ? भेट न हुई, न हो। बडे लडके का चेहरा भी उतरा था, लेकिन अपने तेजस्वी पिता के स्वभाव से वह भी अपरिचित न था–'टूट तो सकते है हम, लेकिन लचक सकते नही' का नमूना ! छोटा बच्चा भी गमगीन था, किन्तु सिफ अपने गम से नही। सबकी गमगीनी की परिछाई उसके भावना-प्रवण हृदय पर पडी थी। किन्तु वह स्त्री !

उफ, कितने अरमान लेकर आई थी ! कितने दिन हो गये, आज उन्हे देखूगी, उनसे दो-दो बाते करूँगी। उन्हे उलहना क्या दूगी, विना मुँह खोले ही वह सब बाते जान जायँगे। ये बच्चे उन्हे देखेगे, खुश होगे ! वे भी बच्चो को देखकर क्या कम खुश होगे ? बच्चो से उनको कितना स्नेह है ! किन्तु, हाय, भेट नही हो सकी ! क्यो न हो सकी, इसके फेर मे पडने की उसे सुध कहाँ थी ? उफ, ये बच्चे कैसे उदास लौट रहे है ? अपना दुख वह भूल भी जाती, पी भी जाती ,इसकी वह आदी हो चली थी , लेकिन, इन बच्चो के मुँह देख-देखकर उसकी छाती फटी जा रही है ! और, इतने मे बच्ची का यह 'बाबूजी !—उससे सामने देखा नही गया, जहाँ सामने के बेच पर कई सभ्य सहयात्री बैठे थे। वह मुँह मोड कर खिडकी से बाहर देखने लगी ! देखने लगी ? उसकी आँखो से अजस्र अश्रुधारा चली जा रही है और इन आँसुओ के बीच उसकी पूरी जिन्दगी आज तस्वीरे बन-बनकर सिनेमा की चित्रावली की तरह एक-एक कर आ-जा रही है !

१. गुड़िया

कभी इस गोद की बच्ची की तरह वह भी बच्ची रही होगी, लेकिन इन आँसुओ के हजूम मे उसे अपनी वह सूरत याद नही आ रही। हाँ, वह आज स्पष्ट देख रही है, वह एक छोटी-सी लडकी के रूप मे अपने नैहर के आगन मे घूम रही है। उसका नैहर, वह छोटा-सा गाँव, जिसे दो ओर से एक पतली नदी गाढालिगन-सी करती, कलकल-छलछल स्वर मे, बही जा रही और दो ओर आम की सघन अमराइया ओर बाँस की झुरमुटे जिसे घेरे खडी। कभी इस नदी मे वह नहाती, चुभकती, फुरेरियाँ लेती, कभी इन अमराइयो की छाया मे टिकोरे चुनती, आख-मिचौनी खेलती। बाँसो की फुनगियाँ जब थोडी हवा मे भी मस्ती से सिर हिलाने लगती, वह किन विस्मय-विमुग्ध दृष्टियो से उन्हे देखती !

और, उसका वह आँगन। मिट्टी की दीवाल के छोटे-छोटे घर, खपरैल से छाये। घर से लगे ओसारे, जिनमे लकडी के खम्भे लगे। इन खम्भो से लगाकर जब मथानी से दही मथा जाता, वह किस तरह दौडकर कूडे के निकट पहुँचती और दादी के हाहा करते रहने पर भी न्यूनी मे हाथ लगा ही देती ! ओसारे के नीचे वह फैला हुआ आँगन—जो गोबर से लगातार लीपे जाने के कारण गद-गुबार से रहित, चिकना, ढुर-ढुर। इस आँगन मे वह कितने खेल रचाती ? उससे बडी एक बहन थी, उससे छोटा एक भाई था। भाई-बहन के बीच मे अपने को करके कभी वह चिल्ला उठती—'किनारे-किनारे ताड, बीच मे सरदार !' बडी बहन खीझ उठती, मारने दौडती। वह दौडकर दादी की गोद मे जा छिपती। दादी ! दादी कितना मानती उसे ? उनकी गोद वह किला था, जिसके अन्दर पहुँचते ही वह अपने को सब प्रकार सुरक्षित समझती। वहाँ पहुँच कर वह बहन को चिढाने लगती ! बहन झल्ला कर चली जाती और रूठ कर एक ओर बैठ जाती। तब वह दबे पाव बढती और अचानक जाकर बहन के गले से लिपट जाती ! बहन तो इसकी प्रतीक्षा मे ही रहती। सब मामला तय और नया खेल प्रारम्भ !

गुडिये बनाती, उन्हे रग-बिरगे कपडो से सजाती, फिर उनके ब्याह रचाती। गीत गाती, कोहबर पुजाती। कभी बाहर से गद लाकर आँगन मे घर उठाती—'नया घर उठे, पुराना घर टूटे !' यह

घर मेरा, यह घर बबुआ का, यह घर बहन का। दादी , माँ, काकी सब बडे दालान मे ही रहेगे। "और बाबूजी, उन्हे कहाँ रखोगी पगली ?"—बहन पूछती। घर से अलग एक बैठका बन जाता। इतने मे भाई के मन मे न जाने क्या भाव उठता ? वह लात से पूरी इमारत को चूर-चार कर देता। बहन हँस पडती, वह झल्लाती, फिर, गुस्सा शान्त कर पानी लाती और धूल को सान कर गीली मिट्टी बनाती। यह गूधा गया आटा, यह पक रही है पूडियाँ। यह पूडी बाबूजी के लिए, यह पूडी दादी के लिए, यह पूडी बहन के लिए, यह पूडी बबुआ के लिए। यो ही घर के हर आदमी के लिए पूडियाँ बन जाती। लेकिन, सिफ पूडियाँ कैसे खाई जायँगी ? बची धूल मे काफी पानी मिलाकर खीर बनी और घर से लगी बारी से कुछ सेम की फलियाँ लाकर उसकी तरकारी भी बन गई ! खा बबुआ, खा बहन ! और अपना मुँह भी चला रहा है—जीभ से चुभर-चुभर आवाज ! सब खाने का स्वाग कर रहे।

खाना खतम भी नही हुआ कि बाबूजी आ पहुँचे। बाबूजी को देखते ही वह घर मे भागी। वह बाबूजी से बहुत डरती—क्यो डरती ? और बाबूजी उसे बहन और भाई से भी ज्यादा मानते है, उस उम्र मे भी वह जानती थी। वह उनसे भागती, वह उसे नजदीक लाने की तरकीबे करते। कभी खिलोने लाते, कभी मिठाइयाँ लाते। भाई और बहन के हिस्से तो दादी के हाथ भी मिल जाते, लेकिन, अपना हिस्सा पाने के लिए उसे उनके निकट पहुँचना ही पडता। ये खिलौने—कितने सुन्दर है ! क्या वह उनसे वचित रहे ? उसका बाल-हृदय अकुला उठता। वह सहमती, डरती उस ओर धीरे-धीरे बढती। धीरे-धीरे बढ, नजदीक जा, एक ही झपट्टे मे वह खिलौने लेकर भागना चाहती कि बाबूजी की विशाल बाहे उसे लपेट लेती। "अरी, तू डरती है क्यो मुझसे ?" वह उसे उठा लेते और ओसार के छप्पर से भी ऊँचा करके कहते—"डरती है, तो ले, मै पटक देता हूँ।" वह उस ऊँचाई से नीचे की ओर देखते ही भयभीत होकर दादी-दादी चिल्लाने लगती। दादी दौडकर आती, बेटे के हाथ से पोती को छीन लेती, फिर चूमती, दुलराती, हलराती !

दादी कितना प्यार करती उसे ? जब से उसे होश हुआ, वह दादी की ही गोद मे सोई। पीछे उसे मालूम हुआ, इन तीन भाई-बहनो का पहले ही बँटवारा हो चुका था। बहन काकी के हिस्से पडी

थी, बबुआ माँ के हिस्से और वह दादी के हिस्से। लोग कहते, रग को छोडकर सूरत-शक्ल, चाल-ढाल उसका सब-कुछ दादी पर ही पडा था। क्या दादी उसके बहाने अपने को प्यार करती ? अपने को, नही, अपने बचपन को !

धीरे-धीरे वह बढी। उसका बचपन अब उस छोटे से आँगन म समाता नही था। लेकिन, पर्दानशीन दादी का कधा तो उसे आँगन से बाहर ले नही जा सकता। लाचार उसे बाबूजी का प्रेमाग्रह कबूल करना पडा। जिस दिन उनकी अँगुली पकड कर वह आँगन से, बैठके से, गाँव से बाहर निकली, उस दिन उसके नन्हें-से दिल मे कौन कौन-सी तरगे न उठी थी ? ये आम के बगीचे, ये हरे-भरे खेत, यह नदी का कछार, यह कछार मे उपजा सरपत का जगल। दुनिया इतनी रग-बिरगी है, उसकी छोटी सी आँखे इस शोभा-समूह को अपने मे कहाँ तक स्थान दे सके ?

कुछ दिनो के बाद 'अपने' घर की तरह, उसे यह भी ज्ञात हो गया, यह 'अपना' बगीचा है, यह 'अपनी' बँसबारी है, ये 'अपने' खेत है, यह 'अपना' खलिहान हे। इन सबमे उसे प्रिय था अपना बगीचा। कितने आम के पेड ! उसे गिनना कहाँ आता ? कुछ लीचियाँ भी, कुछ कटहल और एक अमरूद। अमरूद बारहमासी। वह जब कभी रूठती या जिद करती, बाबूजी अमरूद से ही फुसलाते थे न उसे ?

जिद—हाँ, एक चहेती बेटी की हेसियत से वह जिद भी कम नही करती। उसकी उस दिन की ज़िद ! बैसाख का महीना था। लीचियो मे ललाई आ गई थी। आम मे कोसे हो गये थे और सिन्दु-रिया पर रग भी चढने लगा था। वह बाबूजी के साथ प्राय दिन भर बगीचे मे ही रहती। उस दिन दोपहर को वह बगीचे मे ही थी। बाबूजी लीचियो पर बैठनेवाले पछियो को उडाने के लिए कमठा बना रहे थे, वह नदी की गीली मिट्टी से कमठे पर चलाने के लिए गोलियाँ गढ रही थी। उसी समय एक पडुक दाने चुगता-चुगता उसके निकट आया। पडुक को उसने प्राय देखा था, लेकिन इतने निकट से नही। उसका धूसर रग, उस धूसर पर काले-काले बुदे। सुडौल गले पर बुदे और भी सघन हो गये थे, जिनके बीच मे एक पतली काली घेर—मानो, उसने नीलम की हँसली पहन ली हो।

उसकी पतली, सुन्दर चोच और उस चोच से ताबडतोड दाना चुगना। वह उसपर मुग्ध हो गई और गीली मिट्टी छोड उसे पकडने दौडी। पहले एक दो छोटी उडान ले पडुक कुछ दूर पर बैठ जाता रहा, पीछे लगातार पीछा किया जाता देख वह उड चला। पडुक उडा और वह रोई। "क्यो, क्या हुआ, काहे रोती है?"— बाबूजी ने पूछा। उसने कहा, "मै पडुक लूँगी।"

"पगली, कही उडन्त पडुक पकडा जाता है!"—बाबूजी ने हँस कर कहा, जैसे हँसी मे वह बात उडा देना चाहते हो। लेकिन, बेटी इतने सस्ते पिड छोडनेवाली थोडे ही थी। जिद कर बैठी, पडुक लूगी और कितने बगीचो की छानबीन, कितनी डालो के चढाव-उतार, कितने खोतो की खोज-ढूढ के बाद उसी शाम को पडुक के एक जोडे बच्चे कमाची के ताज़ा बने पिजडे मे उसकी आँखो के सामने टँग कर रहे। जिस काठी का कमठा बन रहा था, उसी से पिजरा तैयार हुआ। पडुक के उन बच्चो को उसने किस तरह पाला। धीरे-धीरे उनके पख निकले, वे पूरे पडुके के रूप मे आ गये। वैसी ही चोचे, वसी ही गदने, वे ही चितक्बरे धूसर पख, वैसी ही शानदार पूछे। उनके सीने और पेट के हिस्से को हरे रग मे रगकर उनकी शोभा और बढा दी थी उसने। वे कुछ दिनो मे गुट्र-गू भी करने लगे। दिन भर उनका पिजडा उसकी आँखो के सामने, रात मे पिजडे को सामने टँगवाकर सोती।

एक दिन वह पिजडे को नीचे रखकर पडुको को दाना दे रही थी कि उसके बबुआ ने बुद्धिमानी की। पिजडे के दरवाज़े की सीक खीच ली, दरवाज़ा खुल गया। वह दाना देने मे इतनी मस्त थी कि उसका ध्यान भी उस ओर नही गया। ध्यान गया तब, जब एक पडुक उस दरवाजे से सन्न-से निकला और वह हा-हा करती रही कि वह आसमान मे नौ-दो-ग्यारह हो गया। बदहवास-सी वह दौडकर आगन मे आई और जिस ओर वह उडा था, देखने लगी कि फिर सर-से दूसरा पडुक भी उडा और उसके पख भी आसमान मे फर्-फर् करने लगे। यो दोनो पडुको को एक बार ही खोकर वह कितनी दुखित, व्यथित, क्षुभित और चिन्तित हुई थी। बबुआ को तो वह उठाकर पटकने ही जा रही थी कि दादी ने उसे पकड लिया। हाँ, गुस्से मे उसने पिंजडे को चूर-चूर कर दिया और दिन भर रोती रही।

उसकी पीडा तुरत भर गई होती, लेकिन, दूसरे ही दिन से देखती क्या है, वे दोनो पछी एक साथ शान से मैदान मे दाने चुग रहे ह। उनके सीने का हल्का हरा रग उनका हुलिया खोल देता था। वे ही तो है ! क्या मुझे चिढाने आये है वे यहाँ ? वह गुस्से मे कॉपती। बाबूजी समझाते। पीछे उसे पता लगा, ये पछी अजीब होते ह। एक मादा, एक नर–माथ ही जनमते, एक साथ जिन्दगी बिताते और एक के वियोग मे दूसरा प्राण तक

प्राण तक !–वह एक बार ही सिहर पडी ! उसी समय उसने अपनी ठुड्डी पर कुछ गरम चीज का अनुभव किया। यह उसकी बच्ची का हाथ था। बच्ची को गौर से देखा, फिर किचित मुड कर अपने दोनो बच्चो को देखा। एक गरम साम के माथ, उसने खिडकी की ओर मुँह मोड लिया।

उसकी आखो मे झर-झर पानी झरता जा रहा है। गाडी हड-हड कर बढी जा रही हे। सामने हरे-भरे खेत वसत की मादकना मे शराबोर है। लेकिन, वह उन्हे क्या देख पाती हे ? आसू की वाढ थमी नही कि जिदगी की दूसरी तस्वीर उमके सामने आ खडी हुई !

२. पंख फूटे !

और, उसी बाबूजी ने उस दिन उसे डॉट कर कहा—"जा, भाग। देखती नही, कोई मेहमान आ रहे ह इधर !"

वह देखती क्यो नही थी ? सिर पर लाल पगडी दिये, देह मे मिरजई पहने, हाथ मे बाँस की मूठदार छडी लिये वह एक अपरिचित आदमी आ रहा है। लेकिन उसकी समझ मे यह बात उस दिन नही आई कि वह खदेडी क्यो जा रही है ? अगर उसे वह सज्जन देख लेगे, तो क्या होगा ? उनकी लाल छडी देखकर तो उसके मन मे उत्कठा जगी थी—यह छडी लू, उसे घोडा बनाऊँ, सवारी करूँ, दौडूँ। उसकी चाँदी से मढी टेढी मूठ तो ठीक घोडे के सिर की तरह थी। उफ, कैसा अच्छा घोडा बनता उसका—मन-ही-मन ऐसा सोचती, पछताती, बाबूजी का बिगडैल रुख देखकर चुपचाप घर की ओर रवाना हुई और गुस्से मे यहाँ तक ठान लिया कि अब बाबूजी के कहने पर भी बगीचा नही आवेगी।

सोचती बिसूरती घर पहुँची और दादी की गोद मे जाकर बिलख-बिलख रोने लगी। "क्या बाबूजी ने मारा है ?" दादी चकित होकर पूछने लगी। वह बोलती क्या, रोती गई। दादी सान्त्वना देने लगी। लेकिन जैसे-जैसे सात्वना देती, वैसे-ही-वैसे हिचकियाँ बढती। थोडी देर के बाद बाबूजी भी पहुँचे— उस आगत व्यक्ति को बिदा कर। उन्होने ठीक ही समझ लिया था, उनकी मानिनी बेटी ने उनकी बात मान तो ली है, किन्तु उसके दिल पर जो चोट लगी है, उसे वह तुरत भूल नही सकेगी। उन्हे देखते ही दादी ने फटकार बताई—"मेरी पोती को डाँटनेवाले होते हो तुम कौन ? जाओ, मेरे आँगन से निकल जाओ ! और, देख, मेरी दुलारी पोती, अब उसके साथ बगीचा मत जाना। नही जायगी न ?" बार-बार पूछे जाने पर उसने ऊँऊँ करती 'नही जाती' यह कह तो दिया, लेकिन मुँह से यह शब्द निकाल कर कितनी चौकी ? क्या सचमुच अब बाबूजी के साथ वह बगीचा नही जायगी ?

इस डाँट के लिए बाबूजी को दड भी देना पडा—कुछ मिठाइयाँ, कुछ खिलौने और एक जोडी बढिया चूडियाँ। लेकिन, दादी ने उसे समझाया, उसने भी स्थिति समझी, कि वह अब निरी बच्ची नही रह

गई है। अब वह बडी होती जा रही है। अब उसे अपरिचितो से थोडी लाज करनी चाहिए। उनके सामने कभी नही होना चाहिए। अगर अचानक वे सामने आ जावे, तो मुह पर यो घूघट करके झट-पट भाग आना चाहिए। 'यो घूँघट !'—दादी ने नई बचकानी साडी पहना कर उसे घूँघट करना सिखलाया। सिखलाया—गदन से होकर जो आचल आज तक अमूमन कधे पर पडा होता, उसे किस तरह सिर पर रखकर, एक तिकोन-सा बनाता हुआ, चेहरे पर ले आना चाहिए। सिखलाकर दादी ने कहा—"अच्छा, दुलारी, जरा घूघट करके दिखला तो दे !" दुलारी घूँघट कहा तक काढती, गदन से आँचल हटा उसे कमर मे लपेटती, भागी। दादी, मैया, काकी—सभी ठहाका मार कर हँसने लगी !

लेकिन, उम्र बीतने के साथ-साथ ये चीज़े भी उसे सीखने ही पडी। बाबूजी के साथ छाया-सी जो वह लगी फिरती, वह धीरे-धीरे कम होता गया। अब उसे नई-नई कारीगरी सिखलाई जाने लगी। कारीगरी के चक्कर मे उसे ज्यादातर आँगन मे ही रहना पडता। जिस सीक के सन्दूकचे मे पहले सिफ गुडिये और उनके साज-शृगार रहते, उसमे सूई, तागा, तरह-तरह के रगीन कपडे, ऊन के लच्छे, बुनने की कमाचियाँ और शानदार कैंची आदि चीजे ठसाठस भरी रहती। पहले उसमे सूई मे तागा देना मुश्किल होता। कई बार उसने कपडा सीने के बदले अपनी अँगुली मे सुई चुभो ली। कैंची से तो बहुत दिनो तक डरती रही, जब वह कैंची चलाती, उसे लगता, यह अपना मुँह खोलकर कपडे के साथ उसे भी निगल जायगी। लेकिन, धीरे-धीरे कैंची उसकी मर्जी पर कम-बेश मुँह खोलती, बन्द करती और सूई जादूगरनी-सी कटे-छँटे वस्त्र-खडो से सुन्दर पहनावा तैयार कर देती। साधारण बखिये से लेकर वह कटाव का काम करने लगी, फिर बेलबूटे काढने लगी। बुनने मे तो उसने सबसे जल्द व्युत्पन्नता हासिल की। थोडे ही अभ्यास के बाद कमा-चियाँ और लच्छे लेते ही उसकी अँगुलियाँ नट की तरह कला-बाजियाँ दिखाने लगती। उसकी कारीगरी पर प्रशसा के पुल बनने लगे। वह उस पुल पर झूमती, हिलकोरे लेती !

यही नही, रसोई बनाने की कला का प्रयोगात्मक ज्ञान भी उसे दिया जाने लगा। शुरू-शुरू इसमे भी उसे दिक्कतो का सामना करना पडा। कई बार जिसकी पानी की बूदें सूख नही पाई थी, वैसी

कडाह मे तेल डालकर उसकी भयानक चट्-चट् से वह भयभीत हो चुकी थी। कई बार घी इतना जल उठा था कि उसमे तरकारी डालते ही आग भभक उठी, वह घबरा कर भागी! कई बार कडाह या बटुलोही उतारते समय वह हाथ मे छाले ले चुकी थी। ठीक परि-माण मे नमक डालना तो उसे खूब परीशान करता। कभी इतना अधिक नमक, कि खाया नही जाय, कभी इतना कम कि पीछे से मिलाना पडे। वह प्राय नमक देना ही भूल जाती। लेकिन, इन विघ्न-बाधाओ को भी वह पार पा गई और उस श्रावणीपूजा के दिन जब उसी को बनाइ पूडियाँ, खीर, तरकारियॉ और बचके बाबूजी को खिलाये गये, तो उन्होने तारीफ की ही झडी नही लगा दी, आगामी भैयादूज को उसके लिए बढिया साडी, खुद शहर जाकर, खरीद लाये!

यो, धीरे-धीरे उसका नाता ऑगन से जुट रहा था और बाहर की दुनिया से टूटता जा रहा था। लेकिन, न जाने क्या बात थी, जब आम मे बौर आते, उसकी तबीयत बावली-सी बगीचे मे जा रमती और मिठुआ, मालदह के बाद भी जब तक एक भी राढी का फल लगा रहता, बगीचे मे ही चक्कर देती रहती। बाबूजी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, गॉव-घर मे ही नही, जर-जबार में भी उनकी इज्ज़त-प्रतिष्ठा थी, किन्तु अपनी इस बेटी का मन तोडना उनके लिए मुश्किल था। जहाँ तक हो सके, उसे निबन्ध विचरने देने मे वह कसर नही लाते। वह बहुत दिनो तक बगीचे में आती-जाती रही। हाँ, वह भी अपनी स्थिति समझ, इस तरह आती-जाती कि उनकी प्रतिष्ठा मे जरा भी बट्टा नही लगे। चुपके-चुपके बगीचे जाती, वहाँ पेडो की आड मे बैठती, बैठे-बैठे एक-एक बौर, एक-एक टिकोरे, एक-एक फल को देखती। कितने सुन्दर लगते थे वे। जब वह घर लौटती, उसका ऑचल फलो से भरा होता!

फलो से भरा ऑचल, उमगो से भरा हृदय। वह ज्यो-ज्यो बढने लगी, उसके हृदय मे उमगो की घटा भी घनघोर होती चली। हृदय मे उमग, नसो मे तरग। उसे कभी-कभी ऐसा लगता, उसकी बॉहो के नीचे, कॉख के निकट से, पख-से फूट रहे हैं। उसकी इच्छा होती, वह उडे! वह कभी-कभी पख फडफडाने के धोखे में हाथो को ही हवा मे तोलने लगती! अरे, उसे यह क्या होता जा रहा है?

क्या होता जा रहा है, यह भी उससे छिपा नही रहा।

सावन का महीना था। बगीचे के बचे-खुचे आम तोडकर घरो मे रख दिये गये थे। घनघोर वर्षा हो रही थी। खेतो मे धान की रोपनी की धूम थी। बाबूजी खाने-भर को घर आते, दिन-दिन भर खेतो पर ही रहते। घर-घर मे आर्द्रा मनाई जा रही थी। पूडियाँ पकती—कचरकूट होती। कभी इस घर, कभी उस घर। लगातार वर्षा के कारण आँगन मे निकलना तक मुश्किल था। घर-घर मे झूले पड गये थे। दिन-रात हमजोलियाँ झूले पर धूम मचाये रहती। पेगे लगती, गाने होते। हाहा-हीही से घर के छप्पर तक के उडने का अदेशा होता।

वह भी कई दिनो से झूल रही थी। कुछ हमजोलियाँ, कुछ बहने, कुछ भावजे। इस सावन ने तो काकी-मैया को भी अपने रग मे रग डाला था। मैया घर के कामो मे फँसी रहती, अत वह कम झूल पाती, काकी तो किशोरियो के कान काट रही थी। उम्र, नाता और दूसरी पाबन्दियो को भूल सब हिलमिल कर झूले जा रहे थे। एक दिन ऐसा सयोग कि झूले पर एक ओर वह थी, दूसरी ओर काकी। थोडी देर मे सरगर्मी आई। काकी कहती—"बबुई, जोर लगाओ, क्या धीरे-धीरे पेग दे रही हो।" लेकिन, बबुई की तो अजीब हालत थी। वह ज्योही पेग देती, झूले के दोनो रस्से उसके सीने से लग जाते और उनके लगते ही एक अजीब कनकनी, झिन-झिनी-सी बर जाती। अग-अग सिहर उठते, झनझना पडते, पेगे शिथिल पड जाती। काकी ने एक बार, दो बार टोका। वह शर्मिन्दा-सी होकर, बहाना करके, उस घर से निकल, दूसरे घर मे आई।

इधर, दादी का आग्रह था, हमेशा चोली पहने रहो। लाचार वह समूचे शरीर को कसे रहती। यह मेरे सीने मे क्या हुआ है? वह एकान्त मे जाकर देखना चाहती थी। उस घर मे घुसी, चोली निकाली। चोली निकालना और काकी का ठहाका, जो चुपचाप उसके पीछे आकर देख रही थी। वह चौकी, काकी ठहाके के बीच ही बोल उठी—"यह क्या हो रहा है बबुई?" शरम के मारे उससे सिर नीचा नही किया गया, उसने झटपट चोली पहन ली—"काकी, आपको मेरी कसम, किसी से कहियेगा नही ।"

× × ×

उसे ऐसा लगा, वह नैहर के उस घर मे खडी है—चोली उतारे, और काकी छिपकर झाँक रही और ठहका दे रही है। वह आज

भी चौंकी, पीछे मुडकर देखा। सामने के बेंच पर बैठे यात्री कुछ बाते करते और ठहाके लगा रहे थे। उसे तुरत स्थिति का भान हुआ, किन्तु उसी समय उसकी नज़र सामने की बेंच पर बैठे अपने बडे लडके पर गया। आह, इस ठहाके के बीच भी, उसके हँसमुख लडके का मुँह कैसा लटक रहा है !

फिर आँसुओ का प्रवाह। फिर खिडकी की तरफ मुँह। फिर वे ही तस्वीरे !

३. उड़नखटोला

वह जवान हो रही है—इस कल्पना ने उसे कितना चकित विस्मित, मुग्ध-मग्न कर दिया था।

उसकी नजर, जो पहले बाह्यजगत पर दौडी फिरती थी, अब अपने पर केन्द्रित होती गई। वह अब आईना लेकर बहुत-बहुत देर तक अपना चेहरा देखा करती। मेरी ये आखे—कोये कितने लम्बे, उजले, बीच की पुतलियाँ—कैसी गोल, कितनी काली। बडी-बडी आँखो को ढँकने के लिए मानो बरौनियाँ भी लम्बी-लम्बी चाहिए। और ये भवे—कितनी पतली, काजल की पतली रेख-सी। चौडा ललाट। उभडे गाल—जिनपर हँसने पर गड्ढे बन जाते। पतले लाल अधर, गोल चिबुक। चेहरे का गोरा-भूभूका रग काले बालो की पृष्ठभूमि मे दमक रहा। हाँ, हाँ, वह काफी खूबसूरत है!

जब वह बाहर निकलती, काफी चौकसी से। आँचल कितना बडा हो और कहा तक लटका रहे, इस रग की साडी पर यह चोली अच्छी लगती है या नही, वह पैर कैसे उठाती है, चलते समय उसके हाथ कैसे हिलते है! उफ, वह खुदी मे इतनी गक हो गई थी कि चलते समय अपनी छाया तक देखती! मेरी छाया—इसमे मैं कैसी लगती हूँ?

विचित्रता यह रही कि एक ओर जहाँ वह यो खुदी मे, अपने आप मे गक रहती, वहा बाहर की चीजे उसे प्रभावित भी बहुत करती। जो दृश्य या शब्द पहले उसके लिए सिर्फ दृश्य या शब्द मात्र थे, अब उनमे वह भिन्नता ही नही, अलग-अलग पैगाम भी सुनती और वे उसके मन मे तरह-तरह की अजीबोगरीब भावनाये सृष्टि करते। कोयल की बोली पहले भी मीठी थी। किन्तु अब जब भोर-भोर वह कोयल की बोली सुनती, उसे नीद नही आती, मालूम होता—कानो के रस्ते एक अजीब सनसनी उसके अन्दर घुस कर नस-नस मे एक नाव-सी खे रही है। श्यामल घटाये पहले सिफ वर्षा की सूचना देती थी, अब वे घटाये आसमान से उतर कर उसके हृदयाकाश मे छा जाती और रस की अजस्र बूदे बरसा देती। अब बिजली सिफ आसमान मे ही चमक कर एक क्षण मे गुम नही हो जाती, थोडी देर के लिए उसका समूचा शरीर जैसे बिजली से छू जाता! वसत पहले भी फूलो का जामा पहने आता था, शरद पहले

भी चाँदनी मे मुस्काता था। लेकिन वसत के वे फूल अब सिफ नेत्र-रजक रगो का झलमल मेला मात्र न थे और न शरद की चाँदनी शीतल ज्योत्स्ना की झकझक आरसी मात्र। अब वे आखो के देखने के उपादान-मात्र नही रहकर, हृदय की अनुभूतियो की आँखमिचौनी के साधन बन चुके थे।

छोटी-सी चीज यह आम का बौर। बचपन से ही वह बगीचे की सगिनी रही है। न जाने कितने मधुमास मे वह आम मे मजरी आना देखती आई है। न सिफ हर फुनगी पर उनका निकलना, लटकना उसने देखा है, डाल छेद-छेदकर भी मजरी को निकलते उसने निहारा है। जब मजरी को देखती, खुश होती! खूब फल लगेगे इस साल—खूब खाऊँगी, खिलाऊँगी। जब कभी लगातार पुरबा हवा के कारण बौर मे 'मधुआ' लग जाता, वे नुकशान हो जाते, या फागुन की वर्षा मे बिजली का एक बार चमक उठना भी उन्हे झुलसा देता, निष्फल बना देता, वह उदास हो जाती—आह! मजरियाँ बरबाद गइ, इस साल अब आम नही मिलेगे। लेकिन, इन्ही मजरियो को उस साल देखकर वह किस तरह चौक उठी! इन मजरियो मे उसने आम की साथकता ही नही, अपनी तदात्मता भी पाई और जब उनकी झुरमुट मे बैठकर कोयल कूकी और उनके ऊपर मँडरा कर भौरो ने गुनगुनाना शुरू किया—उसने बगीचा जाना छोड दिया!

उसे एक और विचित्र अनुभव हुआ! अब उसे ऐसा लगता, जब कही वह बाहर-भीतर जाती-आती है, लोग उसकी ओर घूर-घूर कर ताकते है। दादी, काकी, सब एक विचित्र नजर से उसकी ओर देखते है। उसकी सखी-सहेलियो की नजरे भी उसकी ओर कुछ और ही रुख अख्तियार कर बैठी है। खैर, ये तो स्त्रियो ठहरी, वे घूर-घूर कर देखे, तो सिवा थोडी खिजलाहट अनुभव करने के, वह उसे सानन्द बर्दाश्त कर सकती थी। लेकिन, मर्दो की नजरो मे एक ही बार दो विरोधी रुख देखकर वह घबरा जाती। एक ओर थे बाबूजी और कुछ गुरुजन—जिन्होने उसे गोद मे खेलाया था, जो उसे देखते ही पकड लेते, तरह-तरह से गुदगुदाते, हँसाते थे। अरे, जिन्होने कितनी ही बार उसे नहलाया हे, कपडे पहनाये है, वही बाबूजी और वे ही गुरुजन अब उसे देखते ही सिर नीचा कर लेते!—सिर नीचा कर लेते, उसकी ओर आँख उठाकर देखते भी नही! क्यो? किन्तु यह 'क्यो' उसे इतना चिन्तित न करता, जितना कुछ दूसरे लोगो का

उसकी ओर अजीब वहशियाना नजर से देखना !—खासकर अपरिचितो से तो वह तग थी । उस साल वह मेले के दिन शिवजी पर जल चढाने गई थी। उफ लोगो ने, खासकर नौजवानो ने, उसकी ओर कैसे देखना शुरू किया, जैसे वे उसे जिदा निगल जाने के दॉव खोज रहे हो।

इसी चित्र-विचित्र अनुभवो ओर अनुभूतियो के बीच एक दिन उसने दादी और बाबूजी को एक विचित्र चर्चा करते सुना। दादी कहती थी—दुलारी की शादी कर दो, इस साल लगन भी अच्छी है, फसल भी अच्छी आई है, जवान बेटी जितनी जल्द घर से जाय, उतना ही अच्छा। इधर बाबूजी कहते—तीसरे ही साल तो बडी लडकी की शादी की, कुछ हाथ-हथफेर अभी चुकाने को रह ही गये ह, एक साल और ठहरो, अभी तो बच्ची ह, क्या हडबडी लगी हे ? लेकिन, दादी के निकट बाबूजी की क्या बिसात ? एक दिन उसने देखा, पुरोहितजी सिर पर पगड दिये, त्रिपुड किये, नगे बदन पर मोटी जनऊ लटकाये, कधे पर चादर रखे—जिसकी खूट मे पत्रा बँधा था—उसके ऑगन मे आ धमके और दादी के कानो मे कुछ फुस-फुस बाते कर रवाना हो गये। लोगो ने कहा, वर ढूढने गये हैं !

वर ढूढने ! वर किसे कहते है, क्या वह नही जानती ? जानती क्यो नही, बचपन से वह गुडिये का ब्याह रचाती आई है। उसने कितने वर देखे ह, कितने ब्याह देखे है। तीसरे साल अपने ही ऑगन मे बहन की भॉवरे पडती देख चुकी है। ब्याह उसे कितना मजेदार लगता रहा है ! नई साडिया पहनने को मिले, नये-नये गहने अगो को जगमगाये। सब लोग गाने गाये। हँसी के फब्बारे छूटे। भोज हो, कचरकूट मचे। अहा, ब्याह कितना अच्छा उत्सव !

लेकिन, उस दिन जब उसने सुना, उसके लिए वर ढूढने पुरोहितजी जा रहे है, तो न जाने क्यो, वह अजीब उलझन मे पड गई, विषण्ण बन गई। वर ढूढने ! वर ! वर क्या ? एक ऐसा पुरुष, जिसके साथ उसे जिन्दगी गुजार देना है।

पुरुष ! पुरुष की कल्पना से उस दिन सचमुच, वह कॉप उठी। अब तक वह स्त्रियो के बीच ही रही। बचपन के कुछ दिन उसने बाबूजी के साथ जरूर गुजारे है। लेकिन, अब तक की उसकी सारी

राते तो स्त्रियो—खास कर दादी—के साथ ही कटी। उसकी ज़िन्दगी के अधिकाश दिन भी स्त्रियो के ही बीच कटे। लेकिन, अब एक पुरुष उसकी ज़िन्दगी मे प्रवेश करेगा, जो सारी रात, सारे दिन उससे तलब करेगा। हाँ, सारी रात, सारे दिन! उसने यही सुन रखा है, उसने ऐसा ही देखा भी है। उफ, सारी रात, सारे दिन एक पुरुष के हाथ दे देना, जिससे उसका आज तक का कोई सम्बन्ध नही रहा है, जिसके व्यक्तित्व से उसका कोई परिचय नही—उसी एक पुरुष के हाथ अपनी सारी राते, सारे दिन दे देना!

लेकिन, उसने देखा हे, पुरुषो को पाकर उसकी सहेलियाँ बहुत प्रसन्न हुई है, उनमे से कुछ ने अपने उस जीवन की अट-सट कथाये भी हँसती-हुलसती उसे सुनाई है। अभी-अभी पडोस की वह भौजाई आकर हँसते-हँसते उसके गालो मे हुदक्का देकर कह गई है,—"बबुई, अब क्या है, वस कुछ दिन और, और गुलछर्रे उडाइए!"

वाह रे गुलछर्रे? 'जान न पहचान, बडी बी सलाम!' लेकिन, जान-पहचान करनी ही होगी, बीवी बनकर सलामी लेनी ही होगी। तो अब उसके लिए वह तैयारी क्यो न करे?

अब पुरुष मे एक नये किस्म की दिलचस्पी उसमे जगी! पहले कोई नोजवान उसकी ओर घूरता तो वह अकुला उठती, बेचैन हो जाती। उसकी इच्छा होती, कही दौडकर अपने को वह छिपाती। कभी-कभी सोचती, सँडसी हो, तो उसकी आँखे निकाल लू। लेकिन, अब उसके खयाल मे आता, ऐसा ही कोई नौजवान तो मुझे दिन-रात घूरा करेगा और उस सहेली की कथा के अनुसार, गुदुगुदा कर मुझे जगायगा, थपथपा कर मुझे सुलायगा। फलत अब झल्ला उठने की जगह वह उसकी आँखो मे कुछ पढने की चेष्टा करती। यद्यपि यह चेष्टा बहुत क्षणिक होती, तुरत सकोच उसकी आँखे झिपा देता, तथापि उस एक क्षण मे ही देखती, नौजवानो की भाव-भगिमा मे अजीब परिवतन आ जाता। उनकी पलके स्थिर हो जाती, आँखो मे चमक आ जाती, होठ कुछ हिल जाते। कभी-कभी उसने उनके ललाट पर पसीने की बूदे भी देखी! इस नये अनुभव ने उसमे कुतूहल पैदा किया और कुतूहल मे वह रस अनुभव करने लगी!

एक दिन उसने सपना देखा—एक नौजवान के साथ वह मँडवे पर बैठी है, उसके मुँह पर घूघट है, लेकिन, उस घूघट से ही उसकी

ओर वह देख रही है और उसकी आँखो मे वैसी ही चमक है, उसके होठ वैसे ही हिल रहे ह, ललाट पर वैसी ही पसीने की बूदे

नही नही, यह बुरी बात। वह भॅसी जा रही है। यह क्या उलूल-जलूल कल्पना ! अपने मन को दूसरी ओर मोडने के लिए उसने सिलाई-बुनाई मे ज्यादा वक्त देना शुरू किया। रसोई-पानी मे भी वह ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी। दादी ने उँगली पकड-पकड कर उसे रामायण और सुखसागर पढना सिखाया था, उसके उपयोग का अथ उसे अब मालूम हुआ। उन्हे पढती, गुनती। घर से प्राय निकलती ही नही। रात मे सोने के पहले दादी से तब तक कहानी कहलवाती जब तक उसकी नीद नही आ जाती। दूसरे दिन वह फिर दादी से कहानी के लिए आग्रह करती, तो दादी कहती, बाज आई तुझे कहानी सुनाने से। मै कहानी कहूँ ओर तू सो जाय ! लेकिन, बार-बार आग्रह करने पर दादी को कहानी कहनी ही पडती—

"एक थे राजा, उनकी सात थी रानियाँ !"

"सात रानियाँ ?"

"हा, हा, सात रानिया।"

""सात रानियाँ क्यो दैया ?"

"चुप, कहानी सुनेगी, या बहस करेगी ?"

"एक थे राजा, उनकी "

"एक "

× × ×

उसकी आँखे झिपने-सी लगी। उसे ऐसा लगा, वह उस कहानी के उडनखटोले पर उडती जा रही है—जमीन से दूर, आसमान से दूर। हवा मे सर-सर, झर-झर करता उडनखटोला उडा जा रहा हे और उसपर बैठी वह कभी जमीन की किस्मत पर मुस्कुरा रही, कभी आसमान के सितारो से आँखमिचौनी कर रही। उडते-उडते, जैसे एक धक्का-सा लगा, उडनखटोला अचानक खडा हो गया। आँखे खुली तो पाया, एक स्टेशन पर गाडी खडी हो रही है। कुछ यात्रियो के उतरने और बहुत के चढने से थोडी हलचल। फिर, वायुवेग से रेल भागी जा रही है और उसके सामने चित्र-पर-चित्र आ-जा रहे है

४. कल्पना-पुरुष

कितनी जगहे ब्राह्मण और नाई गये। कुछ स्थानो मे उसके बाबूजी भी गये। लेकिन अनुरूप वर नही मिला। जब-जब ब्राह्मण-नाई लौटते, दादी से अपना भ्रमण-वृत्तान्त सुनाते। अमुक गाव मे हम गये, वर तो ठीक था—बस गॉव के अमुक नौजवान की तरह, लेकिन घर अच्छा नही। कभी सुनाते, घर बहुत अच्छा, लेकिन वर— हमे तो पसद नही आया, हूबहू गॉव के उस लडके की तरह। किसी-न-किसी तरह ये वृत्तान्त उसके कानो तक पहुँचते ही। ज्यो-ज्यो दिन टलते, उसे आनन्द ही मालूम होता। भविष्य की अनिश्चितता पर वत्तमान के सुख-दुख हमेशा तरजीह पाते रहे है। फिर, यहॉ दुख कहॉ था, सुख-ही-सुख। न कोई जिम्मेवारी, न कोई अभाव। आनन्द फिर क्यो न हो ?

लेकिन, एक विशेषता का उसने अपने मे अनुभव किया। जब-जब वह सुनती, अमुक नोजवान की तरह का वर उसके लिए देखा गया है, तब-तव उस नोजवान को गहरी नजर से देखने की उसमे उत्सुक्ता पैदा होती। वह उसे कभी आते-जाते देखती, तो अपने को छिपाकर, दूर-दूर से, उसे भलीभाति देखने की कोशिश करती। वर की तलाश के दौरान मे कितने ही नौजवानो की तुलना उसके भावी पति से की गई और हर की ओर उसकी वही उत्सुकता जगी। वही उत्सुकता, और उत्सुकता के फलस्वरूप निरीक्षण, पय्यवेक्षण और, विश्लेषण भी। इन नौजवानो की परस्पर तुलना भी वह करती। उसकी आँखे अच्छी है, उसकी छाती खूब चाडी है, वह खूब हँसमुख हे—यो ही उनके एक-एक अग की छानबीन वह करती। वह इसमे इस तरह गक रहती कि हमेशा पुरुष की कोई-न-कोई मूत्ति उसके सामने रहती। थोडे दिनो के बाद उसने महसूस किया, पुरुषो के प्रति जो रस की अनुभूति उसके हृदय मे जगी थी, वह मूत्तरूप धारण कर रही है। ओर, उस दिन उसके आश्चय की सीमा नही रही, जब किसी का चेहरा, किसी का शरीर, किसी का स्वभाव, किसी का रहन-सहन लेकर उसने एक कल्पना-पुरुष की सृष्टि कर ली। यही नही, उसने इस कल्पना-पुरुष को अपना पति मान लिया।

एक कल्पना-पुरुष, वह उसका पति और वह स्वय उसकी सौभाग्य-शालिनी पत्नी! पत्नी, उसे पत्नी बनना होगा। पत्नी क्या ? दूर

क्यो जाना, यही बाबूजी के लिए जो उसकी मैया है। उसकी मैया, उफ कितनी जिम्मेवारियाँ उठा रखी ह उन्होने। दादी तो घर की मालकिन हैं और काकी—जब से विधवा हुई—उन्हे घर से सिवा खाने-पीने या तीथ-व्रत करने का, दूसरा कौन वास्ता ? यथार्थत उसकी माँ ही वह धुरी है, जिसपर उसके घर का चक्र चला करता है ! क्या माँ की तरह ही उसे एक पूरी गृहस्थी का जिम्मा उठाना पडेगा ? उफ, वह किस तरह इतना बडा बोझ बर्दाश्त कर सकेगी ? लेकिन, क्या ऐसे सवाल की गुजायश भी हे ? साफ हे, उसे यह बोझ उठाना ही पडेगा। तो क्यो नही वह अपने को उस योग्य बनावे ?

आज तक भी वह घर-गृहस्थी मे दिलचस्पी लेती आई, तभी तो वह अपनी बडी बहन से भी ज्यादा इस घर की प्यारी रही, लेकिन अब तो उस ओर वह अधिकाधिक ध्यान देती। माँ का व्यवहार दादी से, काकी से, घर की दासियो से, पशुओ के चरवाहो और खेत के हलवाहो से कैसा होता है, पडोसियो से वह किस तरह पेश आती, घर के सारे काम वह किस तरह सँभालती,—उनकी एक-एक कार-वाई को वह गौर से देखती। गौर से देखती ही नही, उनके कामो मे हिस्सा भी बँटाती ! माँ कहती, दुलारी, तू तो अब चार दिनो की मेहमान है, क्यो, इन प्रपचो मे पडती हे ? लेकिन, दुलारी माने तो कैसे ? पडोसिने कहती, बेटी हो तो दुलारी-सी, चलती-चलाती भी मा का हाथ बँटाने से नही चूकती, वह जिस घर मे जायगी, नेहाल कर देगी !

यो, वह अपने को भावी पत्नी बनाने की तैयारी मे लगी रही और ब्राह्मण-नाई, पडोसी और बाबूजी वर को तलाश मे लगे रहे, कि धीरे-धीरे लगन के दिन भी टल गये ! माघ से होते-होते असाढ आया, और अब फिर अगले माघ मे ही तो शादी हो सकती है ! खैर, छ महीने और निश्चिन्तता के मिल गये। उसने कसी इत्मीनान की साँस ली ?

लेकिन, जिस तरह उसकी जिन्दगी के चौदह वष हँसते-खेलते बात-की-बात मे बीत गये थे, उसी तरह ये छ महीने भी पलक लगते बीत गये ! और, एक दिन उसने ब्राह्मण-देवता को बडे आनन्द से यह घोषित करते सुना—बबुई के लिए एक योग्य वर मिल गया !

घर-भर के आनन्द का क्या कहना ? दादी आनन्द से गद्गद हो उठी। माँ के पैर जमीन पर नही पडते। काकी तो फुदकने-सी लगी। बाबूजी के चेहरे पर प्रसन्नता की स्पष्ट झलक। छोटा भाई दौडा-दौडा गया और कई आगनो मे यह सम्वाद कह आया। घर-घर की बडो-बूढी आती और वर-घर के बारे मे विस्तृत रूप से, खोद-खोद कर, पूछती ओर चलते समय उसपर आशीर्वादो की वर्षा करती हुई जाती। उस रात मे उसके आँगन मे औरतो का विचित्र ठट्ट जमा और उनके गाने से घर-आँगन ही नही, समूचा गाँव गन-गना उठा। मानो, उसकी शादी की सावजनिक घोषणा कर दी गई!

अब वह चन्द दिनो की इस घर की मेहमान है, अत जिन्दगी भर मे जितना भी उसे प्यार दिया जा सकता था, उसपर इन चन्द दिनो मे ही उँडेलने की चेष्टा होती। अपने घर-भर के लोगो का ही प्यार नही, अडोस-पडोस का प्यार भी। आज इस घर का निमत्रण, कल उस घर का। तरह-तरह से उसका आगत-स्वागत होता, तरह-तरह के उसे खाने खिलाये जाते, तरह-तरह के उसे वस्त्राभूषण पहनाये जाते। जब कुटुम्बियो को इसकी खबर लगी, वहाँ से भी उसके लिए तरह-तरह की सौगाते आने लगी। एक अजीब तरह की विविधता और बहु-रजिता मे उसके दिन-रात किस तरह कटने लगे, जिसे वह समझ नही पाती।

तिलक चढने का दिन भी आ पहुँचा! उस दिन ब्राह्मण देवता नाई और कितने आदमियो को लेकर, सदल-बल, उसकी भावी ससुराल को चलने की तैयारी करने लगे। तरह-तरह के बतन, कपडे, सुपारी, पान, नारिकेल आगन मे सजा कर रखे गये। गाँव को स्त्रियो ने देखा, प्रशसा की। फिर ये चीज़े दरवाजे पर गइ, जहाँ गाँव के लोग जुटे थे, उन्होने भी सराहा और तरह-तरह के मगलोच्चार के साथ, ब्राह्मण देवता के नेतृत्व मे, ये चीज़े उसकी ससुराल को रवाना की गई। उस दिन से उसे पीली साडी पहनाई गई, सिर के बाल खोल दिये गये, देह मे रोज उबटन लगता, आँखो मे काजल की रेखा दी जाती! एक दिन अपने बाबूजी द्वारा खरीद कर लाये गये उस बडे आईने मे उसने अपनी यह मुक्तकेशिनी, पीतवसनधारिणी, प्रसाधन-पूर्णा, कज्जल-रजिता, वेश-भूषा देखी। देखकर वह खुद चौक गई! अरे, वह ऐसी है! यह जवानी, यह खूबसूरती और यह सादगी!—
'इस सादगी पे कौन न मर जाय, ये खुदा!'

इसी वेश मे उसे रोज़ स्नान करके शिवजी पर जल, अक्षत, फूल, बेलपत्र आदि चढाना पडता—दादी की यही आज्ञा थी। उसे कुछ शरम भी लगती, लेकिन, वह आज्ञा टाली भी तो नही जा सकती थी। ब्याह-यज्ञ की सफल समाप्ति के लिए शिवजी को प्रसन्न करना जरूरी था। फिर "पारवती-सम पति-प्रिय होहू" के लिए भी तो पावती-पति की पूजा एक अनिवाय आवश्यकता थी।

घर-बाहर का धूमधाम दिन-दिन बढता जाता। उसके काकी के जिम्मे था, उसके साथ जानेवाली चीजो का सँजोना। वह दिन-रात उसी मे व्यस्त रहती। इतनी साडियाँ, इतनी चोलियाँ, इतने तकिये के खोल, इतने आईने, इतनी कघियाँ—छोटी-बडी एक-एक चीज़ की फिह-रिस्त बनाकर वह उसकी पूर्त्ति मे लगी रहती। जिन चीजो की कमी होती, उसके लिए बाबूजी से तकाजे-पर-तकाजे करती। कई दिन तो इसको लेकर कहा-सुनी भी हो गई—काकी की जिद थी, अमुक चीज़े इतनी तायदाद मे जायँ ही, ओर बाबूजी ने जरा चूँ-चरा की, कि काकी उलझी। दादी तव बीच मे पडती और मामला सुलझता। माँ के जिम्मे लोगो के खिलाने-पिलाने की चीजो का भार था। वह तरह-तरह के अँचार, मुरब्बे, तरकारियाँ, मिठाइया आदि के जुगाड मे लगी रहती। इन चीजो की तैयारी मे गाँव की स्त्रियाँ उनका साथ देती। वे स्त्रिया काम करती और गाने गाती जाती। आँगन मे दिन-रात शोर-गुल और गाने-बजाने की धूम रहती।

दादी के सिर पर तो जैसे सभी बोझ हो। वह घर-बाहर दोनो के सूत्रो की सचालिका थी। कभी आँगन मे आकर वह माँ और काकी को सलाह-मशविरे देती, तो कभी दरवाजे पर जाकर बाबूजी पर हुकूमत करती। हाँ, हुकूमत ही समझिए। बाबूजी तो उनके खरीदे हुए गुलाम की तरह थे, उन्हीके इशारे पर सब काम-काज करते।

दरवाज़े पर की भीड-भाड का तो कुछ कहना ही नही। राज घरो की मरम्मत मे लगे है, लोहार जलावन चीर रहे है, बढई पलग आदि बना रहे ह। उनकी कढनी, कुल्हाडी और बसूले की आवाज़ आने-जानेवाले लोगो की बात-चीत के शब्द से मिलजुल कर अजीब कोलाहल की सृष्टि किये रहती।

और इन सब धूमधाम, शोरगुल, भीड-भाड और कोलाहल को अपनी धौंस से दबाती और सबपर छाती हुई एक दिन बरात भी

आ ही पहुँची ! बरात, बरात ! बाजा-गाजा, धूम-धडक्का, हाथी-घोडे, खडखडिया-पालकी !

बरात दरवाज़े लगी और वह सकुची, सिमटी घर मे, पलग पर, मुँह ढाँप, लेट गई। मुँह-ढाँपे, सकुची, सिमटी !—कही अपनी बरात कोई लडकी खुद देखती है ! किन्तु, उसके कान सुन रहे ह—बाजा-गाजा, धूम-धडक्का, घोडो की हिनहिनाहट—हाथियो के चिग्घार ! और उसके कल्पना के नेत्र—वे इस भीडभाड के बीच मे खोज रहे हैं—'वे' कौन है ? कहा है ? कैसे है ?

'वे' कौन है ? कहाँ है ? कैसे है ?

हाय री, बिहार की बेटियो की तकदीर—जिनके साथ तुम्हे जीवन की सारी राते, सारे दिन, कितने महीने, कितने साल गुजारने हैं, तुम्हे हक नही, कि उन्हे झाँक भी सको, जब तक कि उनके हाथ तुम्हारा पूरा आत्मार्पण न हो जाय ! तुम जूही की कली हो, चुप-चाप बढो, खिलो, सौरभ फैलाने के योग्य बनो, किन्तु, तुम किसके गले मे डाली जाओगी, यह जानने की कामना भी क्यो करो ? जिस माली ने तुम्हे बोया, सीचा, पल्लवित-पुष्पित किया, यह उसी का काम है, उसी का हक है कि वह तुम्हे जिस गले मे डाल दे ! चुप, बोलो मत कि वे कौन है, कैसे ह ?

किन्तु, उसे सन्तोष था, उसका माली ऐसा नही कि जिस-तिस के गले मे उसे डाल दे। वह सस्कृत रुचि का है, दीन-दुनिया का पारखी है—अपनी बडी बहन की शादी मे ही वह देख चुकी है !

पर, उत्कठा को वह क्या करे ? जब बरात दरवाज़ा लगते ही उसकी बूढी दाई दौडी-दौडी, उसे खोजती-ढूँढती आई और उसे पलग पर सकुची-सिमटी पडी देख, भहरा कर उसपर गिर गई और उसके माथे पर होले-हौले हाथ फेरती हुई, बोली—"बबुई, तुम्हारा सुहाग अचल हो, तुम्हारे ही योग्य दुलहा मालिक ढूढ लाये है"—तब तो यह उत्कठा और भी चरम सीमा तक पहुच गई। दाई दौडकर फिर बरात देखने चली गई, उसकी प्रबल इच्छा हुई, वह क्यो नही पिछले दरवाज़े से जाकर, जरा एक झाँकी देख आवे ? आखे जुडा ले—उमडते हुए हृदय-सागर की तरगो को थपकियाँ देकर सुला दे ! उफ—हृदय की ये तरगे ! उसने बहुत सी बाढे देखी ह, नावो को एक ही थपेडे मे डुबानेवाली तरगे देखी है, किन्तु, इनके मुकाबले

वे क्या थी ? ये तरगे उसे सिर्फ डुबो नही रही है, उसे खुद तरग बनाये जा रही ह !—समूचा ससार सागर-सागर है, वह तरग-सी उसपर नीची-ऊँची हो रही है !

मतवाली तरग-सी ही वह एकाएक उठ खडी हुई, आगे बढी, घर की चौखट एक ही छलाग मे लाघ कर, आगन मे पहुँची ! ऑगन सूना था। घर का बच्चा-बच्चा बरात देखने मे लगा था—काकी, दीदी, बहन, भाई, पुरजन-परिजन—जिनकी इधर ऑगन मे भरमार रहती थी—कोई नही ! किन्तु, इस शून्यता मे न जाने कहाँ से औचक आकर कोई उसके पैरो से लिपट गया। दो-एक बार उसने पैर झटके। किन्तु, यह क्या ? उसके पैर उठ नही रहे है ! यह कौन है ? क्या है ? हट, मुझे आगे बढने दे। मै तरग हूँ। तरग से न खेल। डूब जायगी ! किन्तु, हाय री यह जजीर—मर्यादा की जजीर ! दादी, काकी, मा ने चौदह वर्षो तक जिसे घुट्टी पिला कर पोसती रही, वही मर्यादा जजीर बनकर उसके पैरो मे पडी है, गडी है। वह जाये कहा ? अब उसकी आखो मे ही तरगो की लीला है। उसे कुछ सूझता ही नही। लौटकर वह धडाम से पलग पर आ रही !

जिस समय बाजे बज रहे थे, गाने गाये जा रहे थे, आनन्द-ध्वनिया हो रही थी, मगलाचरण पढे जा रहे थे, उसी समय उसकी आखो से गगा-जमुना बह रही थी ! क्यो ? दुख से ?—'नही, नही, ऐसा नही'—उसका रोम-रोम चिल्ला उठता ! यह दुख नही, अतप्त कामना थी, तृप्ति के पहले वह त्रिवेणी मे डुबकिया लेकर अपने को पवित्र बना रही थी !

बरात जनबासे गई। उसका ऑगन फिर कोलाहल का केन्द्र बन गया। काकी उसे खोजती घर मे पहुँची—"दुलारी, दुलारी, बेटी, तेरे ऐसी कोई भाग्यवती नही। तेरे ही लायक दुलहा मिला है तुझे—बस, राम-सीता की जोडी !"

× × ×

राम-सीता की जोडी ! हा, तभी तो यह वनवास, यह जगल-जगल दौडना—सीता के भाग्य मे तो यही बदा था न ? किन्तु, त्रेता की सीता को सन्तोष था, वह अपने राम के साथ है, न घर सही, चित्रकूट ही सही। किन्तु, यहाँ ? यहाँ, सीता अपने लव-कुश को लेकर अपनी कुटिया मे राम के वनवास के दिन गिना करती है और राम

कभी किष्किन्धा, कभी लका ! आग लगे उस सोने की लका मे, जिसने मेरी फूस की कुटिया मे आग लगाई है ! उसने रूमाल से अपने आँसू पोछे, एक बार अपने लव-कुश—दोनो लडको—को गहरी नजर से देखा फिर अपने लम्बे आचल के नीचे सुप्तप्राय बच्ची के मुह मे स्तन लगाती हुई, खिडकी के बाहर देखने लगी। बाहर अब सरसो के खेत-ही-खेत थे, फूलो से लदे। उसके वसन्ती रग की पृष्ठभूमि मे, उसने रगीन तस्वीरो की सिरीज़ देखी।

५. अनजान देश

जिस मर्यादा ने जजीर बनकर उसके पैर जकडे थे, उसी ने फिर उसकी आखो पर ताले जड दिये !

विवाह की लगन पहुँची। 'वे' बरात से बुलाये गये। घर की सभी स्त्रियाँ उनकी अगवानी मे दरवाजे तक गई—मधुर-मधुर शब्दो मे गीत गाती। गीत की ध्वनी मे 'वे' आगन की ओर बढे। वह ठीक सामने के घर मे थी। आगन मे रोशनी जगमग कर रही थी। उसने सोचा, बस यही तो मौका है, भर-नजर देख लू ! किन्तु, यह क्या ? उसकी ऑखे झिपने लगी। वह ऑख सामने नही रख सकी। उसका सिर झुक गया, जैसे किसी अदृश्य यत्र ने उसकी गदन मोड दी हो। वह उस रगीन शीतलपाटी पर आप-से-आप लेट गई जिसपर वह बैठी थी।

मडप की भॉवरे पडी। वह सखियो द्वारा घर से लिवाई जाकर मडप पर बिठलाई गई—बिल्कुल चादर से ढँकी। बिल्कुल चादर से ढँकी, किन्तु, उसने अनुभव किया, वह किसी की बगल मे बैठी है ! 'वे' !—उसके इतना निकट ह ! न जाने क्यो, माघ की उस आधी रात मे भी वह पसीने-पसीने हो रही थी ! हाँ, उसे आज भी अच्छी तरह याद है, उसकी चोली पानी-पानी हो चली थी। साया लथपथ हो गया था। माथे का पसीना पपनियो की राह गिर रहा था। वह रह-रह कर कॉप-सी जाती थी ! आह ! 'वे' उसके इतना निकट बैठे है !

और, जब मत्रोच्चार के बाद उसका हाथ 'उनके' हाथ मे रखा गया ! उसे कितना आश्चर्य हुआ, 'उनकी' हथेली की अजीब गरमी अनुभव करके ! उसका समूचा शरीर उस गरमी से झनझना उठा !

नीचे उनकी हथेली, उस हथेली पर उसकी हथेली। वे उसे विधि-वत् पकडे हुए। ब्राह्मण मत्र पढ रहे। सखियाँ गीत गा रही। वायुमडल मे सगीत, आनन्द और उल्लास की तरगे ! और, इधर 'हमारे' स्नायु-मडल मे एक अजीब सनसनी, झिनझिनी ! 'हमारे'—हाँ, वह दावे के साथ कह सकती थी, 'उनका' शरीर भी अपने आपे मे नही था। उनकी हथेली की यह गरमी और रह-रह कर उसका बार-बार हिल उठना, उसके सबूत थे। पीछे तो उनसे पूछा भी था और उन्होने हँसते-हँसते अपनी 'कमज़ोरी' कबूल की थी !

इसके बाद, सिदूर-दान उसके घने बालों की पाटियो के बीच उनकी अँगुलियो का सुखद-स्पश। सप्तपदी उनके पैर से पैर मिला कर चलने का वह प्रथम प्रयत्न। ध्रुवदशन दोना ध्रुव देख रहे थे। उसकी कैसी नादानी? उसने ध्रुव मे 'उनके' चेहरे को देखना चाहा—जैसे, ध्रुव कोई तारा न होकर, नजदीक रखा आईना हो!

लेकिन, उसके रोम-रोम तो खिल उठे थे तब, जब उसके पीछे खडे हो, उसे पूरा आलिगन मे लेते हुए, एक ही डलिया को दोनो पकडे, वे लावा बिखेरने लगे। स्त्रियाँ गा रही— वे बेहूदी गालियाँ! उसकी सखिया उन्हे हुदुक्का-पर-हुदुक्का दे रही, हँस रही, खिलखिला रही। इसी धक्कमधुक्की मे लावा आप-से-आप गिरता जा रहा और उसका हृदय? उस लावे के समान ही उसका स्वच्छ, पवित्र, उज्वल हृदय—मानो छोटे-छोटे टुकडो के रूप मे, उनके चरणो पर बलिहार होने को नीचे आ रहा!

आलिगन! जिन्दगी मे पहली बार वह पुरुष के आलिगन मे आई थी! उसके पीछे एक तरुण, बलिष्ठ 'पुरुष' खडा है, उसे अपनी विशाल भुजाओ मे बाँधे हुआ है! अब तुम कहाँ जाओगी, प्रियतमे! तुम मेरी हुई। इतने स्वजन, परिजन, पुरजन के बीच तुम मेरी बाहुओ मे आवद्ध हो—कोई लुका-छिपी नही, चोरा-चोरी नही, गुप-चुप, चुप-चुप नही! सरे आम, गाना गाकर, सौंपी गई हो, सरे बाजार डका बजा कर ग्रहण की गई हो! अब इन भुजाओ के बीच किलको, खिलो, फूलो, फलो—नारी-जीवन की यही साथकता है! नर की एकागिता की यही पूर्ति है!

अहा!—उस समय उसके हृदय मे कौन-कौन-सी भावनाये तरगे ले रही थी? उसके दिमाग मे किन सुनहले विचारो का ताना-बाना बुना जा रहा था? उसके पैर ज़मीन पर है, उसे इसका भान भी नही था। उसके सर के ऊपर आसमान नाम की कोई चीज़ है, इसका ज्ञान भी नही था। वह कल्पना के रगीन पख लगा कर न-जाने किस आनन्द-लोक मे उड रही थी। मस्ती के डैने दोनो बगल मे बाधे, चचल मछली-सी, वह किस उल्लास-सागर मे तैर रही थी! वह नारी नही, तितली थी—हल्की, फुलकी, हवा के दरिया मे अपनी नाव का झलमल, चकमक पाल उडाती, गाती बजाती, किसी अनजान देश को जा रही—जहाँ हमेशा बसत हो, पराग हो!

बसत, फूल और पराग लिये, विवाह के तीन दिनो के सगीत, हास्य, विनोद के बाद, वह ससुराल को चली—उस अनजान देश को। एक ओर उसे आनन्द था, वह 'उनके' साथ, 'उनके' घर जा रही है, जो घर अब उनका नही, उसका होगा। वह उस घर की मालकिन होगी, गृहिणी का पद उसे प्राप्त होगा। तो दूसरी ओर, जहा उसने जिन्दगी के पन्द्रह बसत बिताये थे, उस घर, उस गाव की चप्पा-चप्पा जमीन, एक-एक वस्तु, एक-एक व्यक्ति, जैसे ममता के हाथो से, उसे पकड रहे थे, रोक रहे थे, और इस रोकथाम मे उसकी छाती जैसे फटी जा रही थी। दादी, मा, काकी, बबुआ, बहन, सखिया इन्ही का वियोग नही हो रहा है, यह नदी जिसमे वह चुभक-चुभक कर नहाती थी, यह अमराई जहाँ उसने कितने टिकोले बीने थे, यह मौलसिरी की झुरमुट जिसके फूल के लिए वह तडके उठकर आखे मलती आती थी, ये हरे-भरे खेत जहा वह कुसुम का फूल चुनती, मटर की फलियाँ तोडती, सरसो मे खडी हो कर अपनी ऊँचाई नापती—ये सब के सब उससे छूट रहे है। उसकी छाती फटी जा रही थी, हृदय के टुकडे आखो की राह गिर रहे थे, हिचकिया बँध गई थी, अरे, वह तो फूट कर रो पडी थी। कैसे न रो पडे—जहाँ कुछ देर पहले हँसी के फव्वारे छूट रहे थे, वही अब सब के चेहरे उसके वियोग की कल्पना मे उतरे थे, सब की आँखो मे आँसू थ। मा तो उसके गले से लिपट कर रो उठी—मातृत्व दुनिया के बन्धनो को कब मानती रही है?

और उसके आसू अच्छी तरह सूखने भी नही पाये थे कि वह फिर हँसी ओर चहल-पहल की दुनिया मे आ पहुँची। अब वह ससुराल मे थी। उसकी आँखे घूघट और चादर के दोहरी जालो के भीतर थी, किन्तु उसके कान सुन रहे थे वहा के आनन्दोच्छ्वास! गीत हो रहे थे, बच्चे-बच्चियाँ कोलाहल कर रहे थे। बडी-बूढिया उन्हे डाँट-दबार रही थी। आगे-आगे 'वे' थे, पीछे-पीछे 'वह'। दोनो कोहबर-घर मे लाये गये। गृह-देव का अर्चन-पूजन। वे बाहर गये। दुलहिन की मुँह-दिखौनी शुरू हुई!

उसका सौभाग्य! लोगो को वह पसन्द आई!

किन्तु, जिनकी पसन्दगी पर उसकी जिन्दगी भर के सुख-दुख निर्भर है, क्या उन्होने उसे देखा है? शायद! उस दिन जब वह नैहर मे दुपहरिया को मडप पर खडी थी, उसे लगा, जैसे उनकी नज़र उसपर

पडी थी—उसकी एक शोख सखी ने उन्हे छल से उस ओर देखने को लाचार किया था, जो उस समय कोहबर-घर मे, दरवाजे के सामने, कुँवरकन्हैया की तरह गोपियो मे घिरे बैठे थे ! वह छलना का देखना—एक क्षण का ! सखी कहती थी, तुम्हे देखते ही उनकी नज़र नीची हो गई ! अरे, कैसे मद ह वे—शमाने मे औरतो के भी कान काट लिये ! ऐसा कह कर उसकी सखी वेतहासा हँसी थी, वह मन-ही-मन उनके शील-सकोच पर बलिहार हो गई थी। लेकिन, सखी की बातो का क्या ठिकाना ?

दुलहन देखने वालो और वालियो की भीड धीरे-धीरे छँटी। काफी रात बीत चुकी थी। 'वे' आये !

'वे' आये, उन्होने देखा, उनकी जीत हुई !

एक शून्य घर। साक्षी रूप मे सिफ एक दीपक। 'वे' और वह। वह, एक पत्नी के रूप मे। 'वे', एक पति के रूप मे। उफ री, प्रथम मिलन की मधुर स्मृतियाँ !

ज्योही उनकी पद-ध्वनि मालूम हुई, उसकी छाती धक धक करने लगी, सास जोर जोर से चलने लगी। वह क्या करे—क्या चुप-चाप बैठी रहे ? या उठ कर अगवानी करे ? या, मुँह ढाँप, सोने का बहाना करके, पलग पर पड जाय ? माँ ने कहा था—अगवानी करना, पैर छूना, पान देना। उस विवाहिता सखी ने कहा था—"ज़रा लेट रहना, दुलारी ! देखना, किस तरह तुम्हे जगाते ह, खुशामदे करते ह। वे जगावे, तुम ऊँ ऊँ करके, नीद के माते बच्चो की तरह, इस करवट से उस करवट होना और सिमट कर सो जाया करना। बडा मजा होगा, दुलारी, बडा मजा ! ये पुरुष—अपने गँव पर ये कौन-सी खुशामदे नही करते ? अरी, वे पैर पडेगे। और, अगर पहला दिन तुमने उनपर विजय प्राप्त की, फिर तो, वे हमेशा के तुम्हारे गुलाम बने रहेगे। खबरदार, अपने को सस्ती मत बनाना।" और, माँ ने कहा था, बेटी, अभिमान मत किया करना, कोई ऐसा काम न करना कि 'उनकी' मर्यादा टूटती हो। तुम उनकी मर्यादा तोडोगी, तुम्हारी मर्यादा आप-से-आप टूटेगी । वह क्या करे ? इनमे किसकी बात माने, किस पर चले ? आह, वे तो इतने नज़दीक आ गये !

इसी असमजस मे वे सचमुच आ पहुँचे। आ गये और वह सामने खडे हैं ! मा की सीख रह गई, सखी का सिखावन रह गया ! एक तीसरी ही बात हुई। ज्योही वह उठने का उपक्रम कर रही थी, उन्होने आगे बढकर उसके हाथ पकड लिये, उसे खीच कर बगल मे बिठा लिया, और जैसे, बहुत दिनो के परिचित हो, पूछ बैठे—मजे मे हो न ?

बहुत दिनो के परिचित ! —पूव परिचित, चिर परिचित ! हा, ऐसा ही लगा था उसे। कैसे एक अपरिचित पुरुष के सामने खडी होऊँगी ? उफ, लाज से गड जाऊँगी, गिर जाऊगी ! न जाने क्या हालत हो, न जाने मुह से क्या निकले ? कौन-सी गुस्ताखी हो जाय—हजार-हजार चिन्ताये एक मिनट पहले तक उमे सता रही थी। किन्तु, यह क्या ? वे चिन्ताये कहाँ कर्पूर-वर्त्तिका-सी आप-आप उड गई । हा, कर्पूर के उड जाने पर भी जैसे उसकी सुगन्ध रह जाती है, उसी तरह सकोच और लज्जा के रूप मे उनका अवशिष्टाश यहाँ छाया हुआ जरूर हे ! यही तो नारी का शृगार है। यह नो चाहिए ही।

उन्होने पान खिलाये, बाते पूछी, हँमे और हसाया। चुटकियो से सकोच दूर किया, गुदगुदियो से शरम भगाई। नारी और नर के बीच जो चिरकाल से एक कुहेलिका, प्रहेलिका रहती आई है, वह धीरे-धीरे दूर हुई। दूई दूर हुई, एकात्मा आई। एक साँस की डोर मे बँधे दोनो कब सो गये, कैसे सो गये—क्या इसकी सुध भी उसे रही ? जब उसकी आखे खुली, भोर हो गई थी। दीपक की जोत मद पड गई थी, एक भक-इँजोरी-सी घर मे छा रही थी। वे चलने का उपक्रम कर रहे थे। चलते-चलते उन्होने एक बार उसका गाढालिगन किया और पलग से नीचे होते-न-होते एक स्फीत चुम्बन दे, हँसी बिखरते, देखते-देखते, नौ-दो-ग्यारह हो गये !

× × ×

गाढालिगन, स्फीत चुम्बन !—अभी-अभी इस रेल के डब्बे मे भी वह अनुभव कर रही है, जैसे उसके शरीर मे झिनझिनी बर रही है। उसके गालो पर किसी की गरम साँस है, उसके अधरो पर किसी के उत्तप्त अधर है। उसने आँखे बन्द कर ली—बाहर की दुनिया कही उसके इस कल्पना-महल को चूर-चूर न कर दे। किन्तु, क्या इस तरह अपने को ज्यादा छला जा सकता है ? जिसके आलि-

गन और चुम्बन की वह कल्पना करके विभोर हुई जाती है, वह तो इस समय पत्थर की दीवारो के अन्दर, उन मोटी-मोटी आहनी सीकचो के भीतर पडे, शायद 'उसी' की कल्पना मे विभोर, लम्बी उसासे ले रहे होगे। हा, वे देशभक्त है, कट्टर सिद्धान्तवादी है, किन्तु वे मनुष्य है, हृदय रखते है, वैसा हृदय, जिसकी साक्षिणी वह स्वय है ! आह, उनकी मानसिक स्थिति कैसी होगी ? आँसुओ का फिर नया हुजूम, हुजूम मे फिर तस्वीरो का ताँता ! आह, वे दिन ! आह, वे राते !

६. 'वे'

मध्यवित्त गृहस्थ का घर—पर्दे की जडता से जकडी, वह, क्या दिन मे उन्हे भर नजर देख भी सकती थी ? हाँ, जब-तब उनकी बोली वह आँगन मे सुन पाती थी। एक ही रात मे, हाँ, एक ही रात मे, बोली मे भी कोई मिठास होती हे, उसने अनुभव किया। जब वे आगन मे बोलते, उसके दिल की डाली पर कोई कोयल-सा, जैसे, कूक जाता ! कई बार वह किवाड के नज़दीक चली जाती, जिसमे वह उस काकली को और भी स्पष्ट सुन सके, ओर, शायद देख सके उस कोकिल के सुन्दर मुखडे को, जिसके अन्दर ऐसी अच्छी जबान हे। किन्तु, लज्जा, नही, मर्यादा उसे झट खीच कर बीच घर मे ले आती।

और, ऐसा मौका भी तो बहुत कम मिलता, जब उसका घर खाली हो, वह किवाट तक भी जा सके। दिन-भर अडोस-पडोस की स्त्रियाँ आती रहती, दुलहन देखने। स्त्रियो का ताँता तो कई दिना मे टूटा भी, किन्तु बच्चो का हगामा तो बना ही रहता। नई बहू को देखने से ही उन्हे सन्तोष नही था, वे उससे बोलना चाहते थे, खेलना चाहते थे ! हा, नई बहू से बढकर दुनिया मे खेलवाड की चीज़ और क्या हो सकती हे ? इन बच्चो मे, उनके सरल विनोद ओर निष्कपट व्यवहार मे, वह भी मजा पाती। शायद ये नही होते, तो अपने नैहर के वातावरण से एक-ब-एक विलग हो जाने का दुख उसे और भी सताता। यो तो, नैहर की याद जब-तब आ ही जाती, आती, रुलाती ! आह, कब दादी को देख सकूगी, माँ से रूठ सकूगी, काकी से बतिया सकूगी, बाबूजी को देख कब शरमा कर भागूगी, और अपने उस दुष्ट छोटे भाई को झिडकूगी, उसके गालो पर मीठी चपत दूगी ! अपना वह गाँव, वे पेड, वे खेत—फिर कब देखने को मिलेगे ?

रात मे कुछ देर से 'वे' पहुँचते। पहुँचते अपने साथ हँसी, विनोद, आमोद-प्रमोद सब कुछ लिये-दिये। वह ऐसी हरिणी है, जो अपने गोल से, अपने जगल से तुरत-तुरत बिलगाकर यहाँ लाई गई है, अत ज़रूरी है, उसका मन बहलाया जाय, उसे भुलाया जाय, फुसलाया जाय—'उनका' पारखी हृदय यह अच्छी तरह समझना। अत , रोज कुछ नये-नये शिगूफे छोडते। नई बाते, नई कहानियाँ, नई चुटकले, नई सौगाते !

नई सौगाते ! जिन्हे वह अपने घरवालो की नजर बचाकर लाते। लोग क्या कहेगे, कलजुगहा है, अभी शादी हुए दिन भी न बीते, और बीवी की फरमाइशे पूरी करने लगा ! अत यह चोरी-छिपी। लेकिन, वह उनसे क्या फरमाइश करती भला ? क्या उसके लिए सिफ वे ही काफी न थे, जो दूसरी चीजो की वह ख्वाहिश करे ! देहात की वह लडकी—उसके दिमाग का दायरा ही कितना बडा कि वह नई-नई चीजे माँगे ? और, जो चीजे चाहिए, उसके नैहर वालो ने एक-एक कर दी थी उसे। उसकी काकी ने एक भी ऐसी चीज़ नही छोडी थी, जो उसे पसद हो। कीमती, रग-बिरगी, शराबोर साडियो से न जाने क्यो, शुरू से ही उसे उदासीनता रही हे और गहनो की ओर भी उसका मन कभी गुड चीटा नही बना। अत, उसकी इच्छा की पूर्त्ति के लिए नैहरवालो को ज्यादा खच भी नही करना पडा था। यो, वह सब तरह सन्तुष्ट थी, किन्तु, 'उनको' जो सतोष हो।

किन्तु, सौगातो से भी प्यारी थी उनकी बाते। वे आते, आते ही बाते शुरू हो जाती। कुछ उससे पूछते, कुछ आप कहते। इसी पूछ-कह मे रात न जाने कैसे बीत जाती। जब ऊपर के जगले से घर मे उषाकालीन प्रकाश घुसता, हम प्राय ही कह उठते—ओहो, दिन हो गया ? रात बीत गई ? कितनी छोटी होती हे रात आज-कल ! क्या सचमुच उन दिनो राते छोटी होती थी ? या, हमी राते छोटी कर लेते थे ? यह प्रकाश देख, जब वे जाने को तैयार होते, उसे कितना अखरता ! विधाता दिन को भी रात ही क्यो नही बना देता ? दिन के बिना भला क्या बनता-बिगडता है—वह अपने भोलेपन मे सोचा करती !

इस रात्रि-जागरण के फल-स्वरूप दिन मे वह, थोडा-सा भी सुअवसर पाते ही, सो जाती। एक दिन दुपहरिया मे वह सोई थी। घरवाले भी खा-पीकर निश्चिन्त थे। शादी की भीड-भाड से फुसत पाकर वे लोग अब निश्चिन्त, अलसाये पडे थे। न-जाने, किस तरह उनकी आँख बचाकर 'वे' झट घर मे घुस आये। वह सोई हुई थी—आते ही उन्होने उसके गालो पर अपने अधर रख दिये ! यह कौन ? दिन मे यह कौन ? क्या किसी दुष्ट देवर ने यह खेलवाड किया है ? या किसी शोख़ ननद ने ? वह चीखने ही जा रही थी, कि उसने पाया उसके मुँह पर किसी की हथेली है और सामने किसी का हँसता-

दमकता चेहरा। वह उठना चाहती थी कि वह किसी के भुजपाश मे थी। वह चिर-परिचित भुजपाश ! अटूट, अछेद्य,—स्नेह-पाश, प्रेमपाश !

रात तो 'उनके' कौतुको की क्रीडास्थली ही थी। कभी कहते, बाल को यो सम्हालो, कभी यो। कभी यह साडी पहनने को कहते, कभी वह। उसे यह जानने मे ज्यादा देर न लगी कि उन्हे हल्के हरे रग से कुछ खास दिलचस्पी है। शायद दुनिया को वह हमेशा हरा-भरा देखना पसद करते ! हरी साडी पर चोली किस रग की जमती है, इसको लेकर तर्क-वितर्क होता। हरी किनारी वाली साडी को किस रग मे रँगाना चाहिये, यह भी विचार का विषय होता ! गहने ?—यह कानो मे क्या लटक रहा है ? यह नाक मे क्या गडा रखा है ? यह सीपी-सी गदन शृ गार क्यो चाहे ? आर, छाती पर हार रखना तो दो हृदयो के मिलन मे बाधा पहुँचाना है। कमर मे झुम-झन, पैरो मे रुन-झुन—उहँ, तू पूरी गँवारी है ! एक रात एक-एक कर सभी गहने हटा दिये। जरा देख तो आईने मे कसी लगती है अब ? और, हॉ, हॉ, यह चोली ही क्यो रहे !—वह हा-हा खाने लगी, वे चिपक पडे, नही उतारना ही होगा। क्या यह आचल ही शरीर ढँकने को काफी नही ? भला यह भी कोई तक था ? किन्तु जबद-स्ती तो दुनिया मे खुद सब से बडी दलील है। उन्होने जबदस्ती की। 'वह' शरम से गडी जा रही थी और 'वे'

यह आईना। आईने के सामने खडे होकर या हाथ मे बडा आईना लेकर, कितना समय न उन्होने बर्बाद किया होगा ? दोनो के मुँह का प्रतिविम्ब आईने मे पडता था। वे उसके मुँह के एक-एक अवयव का विश्लेषण करते। देख, तेरा यह मुखडा। काली पाटियो के बीच यह सिन्दूर-विन्दु—मानो, काली घटा मे अचल विद्युत रेखा ! चाद-से ललाट के नीचे भँवा की लचीली कमान—काम ने आज क्या चन्द्रमा को ही अपना निशाना बनाया है ? नीचे दो चचल मछलियाँ खेल रही—रस-सागर मे डूबती-उतराती ! अरी, पगली, तेरी ये पलके—कितनी लम्बी-लम्बी ह ये ? कौन ऐसा पत्थर का कलेजा है, जिसमे ये साफ घुस न जायँ ? दोनो ओर गुलाब खिले है, बीच मे चम्पे की कली—यह थी उसकी नाक और गालो की उपमा। ये दो अधर—ज़रा मुस्कुरा दो न ? नये आम्र-पल्लवो के बीच दाडिम के दाने बिखर पडे, निखर पडे ! और, सब रस का निचोड तो उस

खड्डु मे आकर जमा हो गया है—उसके चिबुक को पकड कर वह कह उठते ! वह चुपचाप सुना करती। कभी-कभी उसे अपने पर नाज भी होता। इस तरह अपने को उसने कभी देखा नही था—इस तरह, विलग-विलग करके, अपने को अपने से अलग करके। किन्तु ज्यादातर उसे शरम ही आती। "उहँ—यह क्या बक रहे है आप, आपने अपने चेहरे को, अपने को गोर से देखा है ? आप ही क्या कम है ?"

"हा हॉ, देखा है, कैसा हूँ मै—सोने की अगूठी का नीला नग ?"

"नीलम का नग क्यो नही कहते !"

"कभी देखा भी है नीलम ?"

उसने आईने मे ही उनके चेहरे की ओर हँसते हुए इशारा किया। उन्होने उसे छाती से लगा लिया। बेचारा आईना ! टुकुर-टुकुर देखा किया वह।

एक रात, न-जाने क्या धुन मे आई, बोले—"तुम्हारा नाम क्या है जी !"

"आप नही जानते क्या ?"

"सुना तो है, किन्तु जानता नही।"

"वाह, क्या खूब ? जो सुना है, वही मेरा नाम।"

"दुलारी न ?"

"जी हॉ,।"

"लेकिन, दुलारी नाम तो बाप का होता है, बाप का कहो या नैहर का कहो।"

"तो पतिदेव का, या, यो कहिए, ससुराल का नाम क्या होना चाहिए, आप ही बतलायँ ?"

"मैने तो पहले से ही एक नाम चुन रखा है ?"

"वह क्या है ?"

"रानी !—और "मेरी कुटिया की रानी हो, मेरे दिल की रानी !"—

वे गुनगुनाने लगे, गाने लगे ! मुह से गाते और एक हाथ से उसे अपने हृदय से लगाये दूसरे से उसके बालो को सहलाते ! वह उनका स्वर, वह उनके हृदय का मधुर कम्पन, वह उनका कोमल कर-स्पर्श ! उसकी आँखे बन्द हो गईं। उसने अनुभव किया, वह ऊपर उठी जा रही है, वही नही, वह और वे दोनो ही — इसी मुद्रा मे, इसी आसन मे ! नीचे पलग छूट गया है, घर छूट गया है, जमीन छूट गई है। हम आसमान मे है, गगनमडल मे ह, चारो ओर चकमक तारे है, दूर पर चॉद हँस रहा है, वायुमडल मे सौरभ और सगीत छा रहा है, वह उड़ी जा रही है—वे उडे जा रहे है—'वह' और "वे' दोनो—दोनो—दोनो

× × ×

ऐ, यह गाडी अचानक रुकी क्यो ? हाय री तकदीर, तुम्हे इतना भी पसद नही कि वह कुछ देर तक कल्पना की दुनिया मे विचरण कर ले! बीच मे पुल खराब हो गया था, उसी की मरम्मत हो रही थी। किन्तु, क्या उसे यह जानने की फुर्सत थी कि वह कई स्टेशन बीच मे छोड आई है ! वह तो अपनी तस्वीरो मे मस्त थी, तस्वीरो की वह निराली दुनिया !

७. सौगात !

"देखो रानी, आज तुम्हारे लिए एक बिल्कुल नायाब सौगात लाया हूँ"—यह कहते हुए, किस मधुर मुस्कान मे उस रात उन्होने घर मे प्रवेश किया !

वह उछली, उनकी बगल से पोटली छीन ली। एक रेशमी रूमाल मे लिपटी हुई उस सौगात को जब उसने खोला, देखा — उसमे पाँच बढिया, सुन्दर जिल्द वाली, बहुत-सी तस्वीरो वाली पुस्तके ह ! वह एक-एक किताब को देखती, उनके भीतर की तस्वीरो को देखती। वह उन किताबो और तस्वीरो को देखती हुई मन-ही-मन, इस बहु-मूल्य उपहार के लिए उन्हे बधाई देने का सोच ही रही थी कि वे फिर बोले—

"म कल शहर जा रहा हूँ—छुट्टी पूरी हो गई। पढाई मे ज्यादा हर्ज करना ठीक नही, समझी ?"

पढाई मे जरा भी हर्ज करना ठीक नही, क्या वह नही जानती ? क्या नही समझती ? नैहर मे ही उसने सुन रखा था, वे पढ रहे है—बहुत पढ गये है, पढने मे बडे तेज है, सरकार से स्कालरशिप पाते है। इस चर्चा के साथ उसने वही यह भी सुना था, लडके शादी होने पर पढना-लिखना छोड देते है। उनकी बवकूफ बीवियाँ उन्हे अपने सामने रखने की धुन मे उन्हे छोडती नही। वे भी प्रेम के प्रथम आवेग मे किताब के पन्ने उलटने की अपेक्षा बीवी की घूँघट उलटना ज्यादा जरूरी और कीमती मानते है। नतीजा यह, कि कितने होनहार नौजवान बर्बाद हो गये, बर्बाद हो गया उनका भविष्य, उनके घर। उसकी एक भावज ने उस दिन जैसे उसे ताना देते हुए कहा था—"मेहमानजी पढ रहे है, लेकिन देखना हे, दुलारी बबुई के चेहरे और कोस की किताब दोनो मे आखिर जीत किसकी होती है ?" उसी दिन दुलारी ने मन-ही-मन इसका उत्तर ठीक कर लिया था—वह उस चेहरे पर तेजाब छिडक लेगी, जो चेहरा उन्हे किताब से विमुख करे।

किन्तु, यह क्या ? वही दुलारी उनके अकस्मात जाने की यह खबर सुन कर स्तब्ध रह गई ! किताबे पाने का जो आनन्द अभी अकुर ले पाया था, मानो, उसपर गरम पानी का छीटा पड गया।

उसके मुख की उत्फुल्लता देखते-देखते परिछाईं मे बदल गई। हृदय मे प्रसन्नता की जो हल्की लहर अभी-अभी उठ पाई थी, वह उच्छ्वास मे परिणत होती देख पडी। उसकी आँखो ने तो मानो उस बेभरम ही कर डाला। उसकी सजल आँखो मे अपनी विनोदी आँखे गडा कर उन्होने मुस्कराते हुए कहा—

"रानीजी, यह रवैया तो ठीक नही !"

वह जैसे चौक उठी। इसमे उसकी होशियारी से अपील ही नही थी, उसकी बेवकूफी पर ज़बदस्त ठोकर भी। यह प्रेम नही, मोह है। मोह, विलास, वासना ! वह प्रेम क्या प्रेम हे, जो परिणाम न देखे, भविष्य न देखे ? जो क्षणिक सुख के लिए जीवन भर के आनन्द को लॅगडा बना दे, लुज कर दे, उसकी अकाल हत्या कर दे ! वह सजग हो गई। हृदय के आवेग को रोका, चेहरे पर सुर्खी लाने की कोशिश की। उनकी आखो मे आखे डाल कर ही बोल उठी—

"तो क्या मै आपको रोकना चाहती हूँ ?"

"यदि ऐसा करो, तो मेरी रानी कैसी ? मेरी रानी ऐसी गलती कर नही सकती।"—कह कर उन्होने प्रेम का एक ताजा चिन्ह उसके गालो पर जड दिया। फिर कहने लगे—"घबराना नही, रानी। छुट्टी होते ही मै चला आया करूँगा। इसके बाद ही गर्मियो की बडी छुट्टी होती है। बहुत दिन तक साथ रहने का मौका मिलेगा। तब तक ये किताबे है, जब जी न लगे, इन्हे ही पढना। इन्हे किताब नही, अपनी सखी समझना।"

"सखी, या सौत ?"

वह बीच ही मे बोल उठी—एक विनोद जो उसे सूझ गया ! किन्तु, तुरत उसे लज्जा हुई, यह क्या बोल चुकी वह ? वे मुस्कुरा कर रह गये, सिर्फ इतना कहा—"तू अभी बिल्कुल बच्ची है ?" और, किताबो को उलट-पुलट कर दिखाने लगे। पहले एक-एक तस्वीर दिखाई, उनकी बारीकियाँ बतलाईं। फिर कहने लगे—जरा पढो न, सूनू। "क्या मेरा इम्तिहान होगा ?"—उसने कहा ! "ओहो, तुम तो वकील होने लायक थी।" "मै न सही, मेरे राजा सही ?"—इस प्रत्युत्तर से वे खूब ही प्रसन्न हुए। उसने कहा—"आपने किताबे पहले क्यो न दी ? ज़रा, आपसे भी पढती।"

—"मै खुद जो एक किताब पढने मे मस्त था।" और, वह किताब क्या थी, क्या वह नही समझ सकी थी ?

"तो आपने मुझे किताब मान लिया है ?"—उसने व्यग से कहा।

"रानी, हर आदमी एक किताब है। जिस तरह किताब मे दोनो ओर जिल्द होती है, फिर पृष्ठ होते है, तस्वीरे होती ह, प्रारम्भ मे भूमिका होती है, अन्त मे परिशिष्ट होता है, उसी तरह आदमी के जीवन मे भी वाह्य आवरण, अन्त प्रदेश, बचपन और बुढापा और उनके बीच जीवन के भिन्न-भिन्न विभाग होते है। किसी किताब की जिल्द तो अच्छी होती है, भीतर का विषय खराब, किसी की तस्वीरे तो सुन्दर होती है, लेकिन बणन वीभत्स—मक्षेप मे, कोई किताब अच्छी, कोई किताब बुरी, कोई किताब सिफ एक एक बार पढ लेने की होती है और कोई बार-बार मनन करने की —यो ही, आदमी-आदमी मे भी फक है। पुस्तको के चुनाव की तरह आदमी का भी चुनाव करना चाहिए। पिछले कुछ दिन हम दोनो ने भावना की दुनिया मे गॅवाये ह। जिन्दगी मे इनके लिए भी जगह होनी चाहिए, है। किन्तु, धीरे धीरे हमे ठोम जमीन पर पैर रखना होगा और लम्बी जिन्दगी इस ज़मीन पर ही गुजारनी पडेगी। उसमे सफलता प्राप्त करने के लिए हमे आदमी की पहचान करनी होगी। अगर इसमे हमने भूल की, हम रोते जीयेगे, पछताते मरेगे। अगर हम सही-सही पहचान कर सके, तब फिर आनन्द-ही-आनन्द मे दिन कट जायँगे, हम खुद ही आनन्द से नही रहेगे, जहाँ रहेगे, आनन्द का वातावरण बनाये रखेगे "

वे यो कहते जा रह थे, वह सुनती जा रही थी। इसके बाद फिर उन्होने अपने घर के बारे मे कहना शुरू किया। जिनके मुह से कल तक वह सिफ प्रेम, हास्य, विनोद और विलास की बाते सुनती आ रही थी, इस समय वे ही ज्ञान, व्यवहार, लोकाचार की बाते इस तरह कर रहे थे कि उमे शक होता, क्या ये वही आदमी है ? वह रह-रह कर उनका मुँह देखती ! वे वडे ही गम्भीर भाव से कहे जाते। मानो ये शब्द नही थे, उनका हृदय शब्द रूप मे निकल रहा था। वह भी भाव-मग्न हो उनके एक-एक अक्षर को सुनती रही— सुनती रही, कान के रास्ते हृदय मे उतारती रही। उनकी वे बाते ? क्या

यह सच नही हे कि उस दिन का उनका वह उपदेश-कथन परवर्ती जीवन मे उनके लिए दृढ सम्बल बना, नही तो, न-जाने वह कहा रह गई होती, बह गई होती। उस दिन उसे अनुभव हुआ, जिन हाथो को उसने पकडा हे, वे सिफ प्रेम सरोवर की थपकियाँ ही नही ले सकते ह, अपार ससार-सागर के पार करने मे भी समथ ह। उसने ऐसे पति पाने पर गव भी अनुभव किया !

जिस समय उनकी बाते खतम हुई, घर भर मे एक अजीब सन्नाटा छा गया था। इस सन्नाटेपन को उन्होने भी महसूस किया। उनके चेहरे की ही तरह उसका चेहरा भी गम्भीर हो चला था।

इस सन्नाटे, इस गम्भीरता को कम करने के लिए उन्होने फिर विनोद का प्रसग छेडा। पाचो किताबे पडी हुई थी। उनकी कुछ तस्वीरे निकाल कर उनकी व्यगपूण व्याख्या करने लगे। देखो, यह बेचारी हे शूपनखा, कितनी सुन्दर ! देखो, यह सुन्दर चेहरा ! ओर इतने पर भी लक्ष्मण महाराज नही रीझे, नाक-कान काट लिये ! कुछ मद ऐसे ही होते ह ! कितना भी रिझाओ, रीझते नही ! और, यह है हमारे अर्जुन—जहाँ गये, वही एक प्रेयसी कर ली। अपने गुरुदेव के घर को भी अछूता नही छोडा ! देखो, सुभद्रा को रथ पर चढाये भागे जा रहे ह। रानी, बताओ, तुम्हे किस तरह के मद पसद है। क्या कहा—'लक्ष्मण' ? तब तो, एक दिन तेरी भी नाक कटेगी ?

"उसकी नाक कट कर रहेगी, जो यो दर-दर दिल का सौदा करती फिरे !'—वह तमक कर बोली। उन्होने हुलस कर उसे हृदय से लगा लिया !

दूसरी रात बिदाई की रात थी ! किन्तु, उस समूची रात को उन्होने इस तरह बिता दिया कि उसे यह महसूस करने का मौका भी नही मिला, कि कल वे जायँगे। जोरो से हँसते थे, बात-बात पर चुट-कले कसते थे ! एकाध बार उसने कल जाने की चर्चा करनी चाही, उन्होने अनखा कर रोक दिया और झट कोई सरस प्रसग खडा कर दिया। हाँ, जब भोर हुई, वह घर से जाने को तैयार हुए, उसकी आँखे सजल ही गईं, बोली—'फिर कब दशन होगे ?

"बस, यही थोडी देर बाद, तुमसे मिलकर जाऊँगा न ? इन्त-ज़ाम कर लिया है, घबराओ मत।"

और, कुछ दिन उठे, जब वह उदास, विषण्ण अपने घर मे बैठी थी, अपनी किताबे खोजते, वह पहुँच गये। किताब तो बहाना थी, असल बात थी, उससे मिलना। ससुराल से जो कपडे मिले थे, बडी सजधज से उसे पहने थे। घर मे घुस कर किवाड भिडका दिये और नजदीक आकर हँसते हुए बोले—"रानी, अच्छा लगता हे न ? देख तो। देख पगली, देख ! लोग ससुराल की चीजो की शिकायत तो न करेगे ? यह शिकायत तेरी शिकायत होगी ? लोग कहेगे, जहाँ के कपडे ऐसे, वहाँ की दुलहन कैसी ? बोल, तू तो चुप हे। क्या आज से ही मौन व्रत शुरू हुआ ? तो ले, मै व्रत को भग किये देता हूँ !"—यो कहते-कहते उसे आलिगन मे ले लिया और सारे चेहरे को चुम्बनो से भर दिया ! "अब तो वृत-भग हुआ, बोल न ?"

वह तो नही बोल सकी, उसकी आँखे बूदे गिरा-गिरा कर जरूर अपनी विनय सुनाने लगी ! उसने देखा, उनका विनोदी स्वभाव भी उदासी मे डूबा हुआ है। गला रुँधा हुआ है, चेहरा भारी हो गया है। अरे, उनकी आखे ? क्या वे भी सजल नही हो उठी है ? किन्तु, तो भी, वे मद थे, मद का हृदय था। उन्होने अपने को ज़ब्त किया, कहा—"घबराना मत, गर्मियो की छुट्टी नजदीक ही हे। मै जल्दी ही आया। पहुँचते ही चिट्ठी लिखूगा—हाँ, जैसा परसो समझाया, उसके मुताबिक चलने की कोशिश करना। समझी ? समझी मेरी रानी ? ओहो, तू बडी नटखट है ! भोली, बच्ची, नादान—और नादान को तो चाँटे लगाते ह न ?" चलते-चलते एक मीठी चपत उन्होने उसके गाल पर जड दी !

× × ×

मीठी चपत ?—ऐ, सचमुच मीठी चपत ! उसकी भोली बिटिया नीद से जगकर उसके मुँह की ओर देख रही थी और उसे अपनी ओर मुखातिब नही होती देख कर उसने अपनी गुलाबी हथेली मे उसके गाल पर आखिर एक चपत जड दी थी। चौक कर उसने उसकी ओर देखा। सामने की बेच पर जो एक भले मानस बैठे थे, वे बच्ची की शोखी पर मुस्कुरा रहे थे। वह भी मुस्कुरा पडी। बच्ची को समेट कर छाती से लगा लिया और बडे लडके से लेमनचूस लेकर उसके हाथो मे दे दिया। बच्ची लपक कर भाई की गोद मे जा रही। दोनो भाई उसे खेलाने, या उससे खुद खेलने लगे। और वह फिर अपनी तस्वीरो की दुनिया मे जाना ही चाहती थी कि गाडी धीमी हुई, कुलियो का कोलाहल बढा

ख· विराम

कुलियो के कोलाहल के बीच चढने और उतरने वालो मे रेल-पेल। कई तरफ से गाडियाँ आती थी। यात्रियो मे धक्कमधुक्की-सी हो रही थी। खोमचे वालो ने और कुहराम मचा रखा था। मुस्तडा-पन गरज रहा था, भलमनसाहत सिमटी जा रही थी। जैसे-तैसे रानी का यह काफला भी उतरा। पता चला, अभी जिस गाडी से वह जायगी, उसके आने मे देर है, वह थोडी लेट है। देवर ने कहा—वेटिग रूम मे चलकर ठहरा जाय। बडे लडके ने ताईद की। उसे तो अनुसरण-मात्र करना था। बच्ची को गोद मे लिये, छोटे लडके की अँगुली पकडे, वह चली।

वह वेटिग रूम मे बैठी। देवर और बडा लडका स्टेशन की सैर मे निकले। छोटा लडका झट बाहर निकल एक खोमचे वाले को बुला लाया। एक खोमचेवाले की बिक्री ने दूसरे खोमचेवालो को प्रोत्साहित किया। कुछ देर मे उस वेटिग रूम मे मिठाइया, फल और खिलौनो की एक छोटी प्रदर्शनी लगी थी। खरीदना ही पडा उसे—बच्चे की जिद और बच्ची की ललक। एक के तीन देने पडे। बच्ची कचकडे का झुनझुना बजा रही थी। बच्चा एक हाथ मे रबर की रगीन गेद पकडे, दूसरे से अगूर खा रहा था और माँ से कह रहा था, तुम मिठाइया खाओ। उधर देवर और लडके ने रिफ्रेश-मेट रूम मे नाश्ता किया, चाय पी। पान खाकर, स्टाल पर से कुछ फल खरीद वे वेटिग रूम मे पहुँचे—वे जानते थे, वह स्टेशन पर की कच्ची-पक्की चीजे खाती नही है। थोडा फलाहार ही सही—देवर का आग्रह था। वह टाल न सकी।

गाडी मे बैठी-बैठी, फिर वेटिंग रूम मे इतनी देर तक बैठी रहने के कारण, दिल और दिमाग के साथ जिस्म मे भी काफी हरारत वह अनुभव कर रही थी। बच्ची और छोटे बच्चे को उनके काका के साथ खेलने को छोड कर, बडे लडके के साथ वह वेटिग रूम से बाहर हुई। स्टेशन पर खूब ही भीडभाड थी। शादी-ब्याह का मौसम होने के कारण तरह-तरह के, रग-बिरगे लोगो से स्टेशन की चप्पा-चप्पा जमीन भरी थी। कितने दुलहे अजीब पोशाक, अजीब पग्गड, अजीब ढग का चन्दन और काजल लगाये, बिला जरूरत मुँह मे रूमाल ठूसे, बैठे हुए थे। जगह-जगह दुलहने साडी-चादर मे

लिपटी अजीबोगरीब गठरी-सी बनी थी। उनकी दाइयाँ उनके पर्दे की बेपर्दगी को ढँकने मे बेहद मुस्तैद। कुछ नये-नवेले दुलहे और कुछ नई रोशनी की दुलहने भी उसने देखी। इतनी भीडभाड मे भी जैसे उन्हे दुनिया को देखने की फुसत न हो—एक दूसरे के देखने-निहारने मे ही मस्त। उस पर्दे की बेपदगी और इस बेपर्दगी के पर्दे मे उसे कुछ ज्यादा फक नही मालूम हुआ। जगह-जगह बाजे बज रहे थे। बरातियो की तरह-तरह की पोशाको मे रगीनी और भद्दैपन की अजब पुट थी। लोग शिवजी की बरात का मजाक व्यथ मे उडाते है, यहाँ तो हमारी हर बरात शिवजी की बरात होती है—'कोउ मुख-हीन, विपुल मुख काहू' आदि का प्रत्यक्ष प्रमाण !

इन दृश्यो ने उसके मन के बोझ को हलका किया। वह धीरे-धीरे प्लेटफाम के आखिर छोर तक चली आई, जहाँ से पश्चिम रुख होते ही, उसका ध्यान डूबते हुए सूरज की ओर गया। इस बसत मे जो वरदान की तरह ही कभी-कभी दीख पडता है, बादल का एक हल्का टुकडा मानो सूरज की राह रोके खडा था। सूरज-देवता उसकी शोखी पर हँस रहे थे और उनकी हँसी का गुलाबी रग उस भरे बादल को लाल-भभूका बना रहा था। नजदीक ही जो लोहे की बेच पडी थी, वह उसपर बैठ गई और डूबते हुए सूरज का बादल के साथ की यह आख-मिचौनी देखने लगी !

आखिर सूरज डूब गया। बादल का गुलाबी रग जाता रहा, उसका अपना भूरा रग भी नही रहा—धीरे-धीरे काला होता, वह तमिस्र क्षितिज मे कहाँ लीन हो गया, पता तक नही ! क्या आदमी के भाग्य की उपमा इस बादल के टुकडे से नही दी जा सकती ? –अपने जीवन-पथ पर चलते-चलते कभी-कभी वह योही अचानक घटना-वश, अकस्मात रगीन बन जाता, अपने क्षणिक सौन्दय और ऐश्वय से लोक-लोचनो को तृप्त करता, धन्य-धन्य कहलाता है, फिर अनन्त-अतरिक्ष मे न-जाने कहाँ लुप्त हो जाता है। बडा सौभाग्य हुआ, तो किसी चित्रकार की कूची, किसी कलाकार की कलम से इतिहास-पट पर थोडी-सी जगह वह पा सका, नही तो

इसी समय उसके लडके ने कहा, घटी हो रही है, शायद ट्रेन आने वाली है। वह हडबडा कर उठी। समूचा स्टेशन बिजली की रोशनी से जगमग हो रही थी। लोगो मे एक अजीब हलचल—हलचल क्या

भगदड, मची हुई थी। वह लपकते पैर वेटिग रूम मे आई। वहाँ उसकी बच्ची उसके लिए रो रही थी, बच्चा अपने चाचा को बेचैन किये था। झट बेटी को गोद मे लिया, बेटे को बगल से सटाकर उसे पुचकारने लगी। तब तक कुली भी आ पहुँचा। सब प्लेटफाम पर आ खडे हुए।

गाडी आई। सब चढे। भीड ज्यादा थी। इन्टर क्लास मे भी धक्कमधुक्की। किन्तु, किसी तरह जगह मिली। सब बैठ गये। हरी रोशनी के इशारे पर गाडी चली। प्लेटफाम तक तो बाहर रोशनी-ही-रोशनी थी। बाद मे, जब उसने बाहर देखा, अधकार-ही-अधकार। डब्बे की रोशनी को बाहर का अधकार मानो चारो ओर से दबा रहा। उसके दबाव से सिसकियाँ लेता, आकुल-व्याकुल, डब्बा वेग से भागा जा रहा!

प्रकाश और अधकार के इस सघष ने उसके जीवन के उन तस्वीरो को दिखाना शुरू किया, जहाँ अब ज्यादा अधकार-ही-अधकार था। हाँ, चारो ओर के निविड अधकार मे प्रकाश का एक छोटा-सा घेरा, जो उसे जिला रहा, बढा रहा, रास्ता बता रहा! कई बार ऐसा लगा था, अब प्रकाश बुझा, बुता, गया! शाश्वत अधकार की कल्पना से ही उसका दम घुटने लगता। किन्तु, हर बार अधकार असमथ सिद्ध हुआ, प्रकाश फिर प्रकाश मे आया। प्रकाश और अधकार का यह सघष कब तक चलता रहेगा? क्या ऐसे दिन न आयँगे, जब प्रकाश ही प्रकाश हो? जीवन मे प्रकाश, जगत मे प्रकाश! किन्तु, क्या वह प्रकाश हमारी आँखो मे चकाचौध न लगा देगा? हमारे मन को बेचैन, हृदय को उद्वेलित न कर देगा? छाया आदमी के अस्तित्व का एक प्रमाण है। अधकार ही प्रकाश को प्रकाश नाम देता है। अधकार और प्रकाश के सघष का नाम ही जीवन है! जब तक छाया और प्रकाश—लाइट ऐड शेड—का सम्मिश्रण न हो, तस्वीरे बन नही सकती—एक दिन 'उन्होने' ही तो उससे हँसते-हँसते कहा था। आज प्रत्यक्षत वह देखती है—अधकार और प्रकाश की यह आखमिचौनी उसके सम्पूण जीवन को तस्वीर-ही-तस्वीर बना रही है!

गाडी भागी जा रही है, तस्वीरे बनती जा रही हैं। तस्वीरे

८. वियोग

वे अपने अध्ययन की धुन मे शहर चले गये। समझाकर गये, बुझा कर गये, हँसा कर गये, चपतिया कर गये। उसे विनोद मे छोडने, प्रमोद मे रखने के लिए उन्होने एक कोशिश नही छोडी। घर वालो से भी शायद इशारतन कुछ कह गये। उन लोगो ने भी उसे बहलायें रखने की पूरी कोशिश की। ननदे घेरे रहती, देवर गुदगुदाते रहते। बडी, बूढी सब जैसे उसे हाथ पर लिये फिरती। किन्तु, इन सब के बावजूद, उसके दिल मे एक अजीब उदासी छाई रहती, उसके दिमाग मे उचाट बसी होती। रह-रह कर तबीयत घबराती। मालूम होता, उसके हृदय का एक हिस्सा निकाल लिया गया है, हृदय की वह खाली जगह सॉय-सॉय किये रहती। कभी-कभी वहाँ एक अजीब पीडा, दद, टीस का वह अनुभव करती। ऐसा तो कभी नही हुआ था, उसे क्या होने जा रहा है ?

इस एक पखवाडे मे हीं वे उसकी जिन्दगी मे इतना बस गये, रस गये, घुलमिल गये, एक हो गये थे कि उनका वियोग उसे इतना अपूण फलत विह्वल-विकल बनाये हुआ है, इसकी कल्पना पर उसे खुद आश्चय होता। नई दुलहने क्यो अपने 'पढक्कू' पति को अपने आँचल का 'पालतू' तोता बना डालती है, अब उसकी समझ मे आ रहा है। बैठती हे, तो लेटने की इच्छा होती है, लेटती है, तो अकस्मात खडी हो कर टहलने लगती है। खाने बैठती है, तो ग्रास कठ के नीचे नही उतरते, पानी उसके जीवन का आधार हो रहा है। उसके अधर मरूभूमि बन गये है, आँखो मे सावन समा गया है। एक ओर हूहू-धूधू, दूसरी ओर रिमझिम, झिर-झिर। दिन तो जैसे-तैसे कट भी जाते है, किन्तु, रात तो उमको काटने दौडती हे। यह सब क्या हे, क्यो है ?

प्रथम वियोग। उसने 'प्रेम सागर' मे पढा था, कृष्ण के वियोग मे गोपियाँ दिन रात रोया करती थी। पहले वह सोचती, यह क्या बात कि मद बाहर जायँ, तो औरते छाती कूटे, पीटे। यह पागलपन है जी, इसी का नाम है 'तिरिया चरित्तर', जिसके लिए स्त्रियाँ बदनाम है। कोई जाता है, जाये, फिर आवेगा ही। अगर न भी आये, तो अपना क्या वश ? फिर, रोना-धोना क्यो ? वह जाता है, वह नही आता—तो साफ है, उसके दिल मे हमारे लिए पीडा नही है, दद

नही है। फिर, हमी क्यो दिल-दिल, दद-दद चिल्लाते रहे। जिस हाड, मास, मज्जा का पुरुषो का हृदय बना है, उसी का स्त्रियो का। पुरुष हँसते-हँसते जायँ, जाते ही भूल जायँ, अपने लिए नई दुनिया बसाये और स्त्रियाँ आसू से बिदाई दे, उनके नाम की माला जपा करे, अपनी बसी-बसाई दुनिया को उसाँसो की आँधी मे उजाड दे, आसुओ की बाढ मे डूबो दे ! छी-छी ! यह स्त्रियो के लिए शरम की बात है। किन्तु, जब अपने सिर पर आया, ये सारे ज्ञान, तक कहा हवा हो गये ? चलते समय उसकी आँखो ने उसे बेभरम किया, अब उसका समूचा शरीर, शरीर का एक एक अवयव उसे तबाह और बर्वाद करने पर तुला है ! प्रथम वियोग !—उफ, अजीब शै है यह, जिसे वह समझ नही पाती, और, नासमझी का उपचार ही क्या और किस काम का ?

कुछ दिन इसी बेचैनी मे बीते। एक दिन उसने आईने मे अपने चेहरे पर गौर किया। अरे, यह क्या ? उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड रही ह। कहा गई वह ललाई, कहाँ उडा वह रग, अब तो जैसे हल्दी मल दी गई हो। बालो मे लट, ललाट पर बल। भौहो की कमान—जिसका 'गुन' उतार लिया गया हो। आँखो के कोये सुख, पुतलियो पर जैस छाँव पडी हो। गालो के गुलाब—मुरझाये, सिकुडे, सिमटे। क्या हो गई अधरो की वह हास्य-लालिमा ! अरे, यह क्या हो रहा है, हुआ जाता है ? चेहरे की यह हालत, और दिल की मत पूछिए ? मानो, एक दुनिया उजडी जा रही है। जहाँ बगीचा था, वहाँ बबूल का बन बनने जा रहा हे ? बबूल का बन—जहाँ भौरो के बदले भेम का राज—जहाँ फूल के बदले काँटो का दौरदौरा !

नही, नही, गलत चीज। उन्होने जिस चीज से सावधान किया, वह उसी के चक्कर मे पड गई। उनका समझाना-बुझाना, सब जैसे व्यर्थ हुआ, बर्बाद गया। वह भावना के ससार मे भटक रही है, तडप रही है। मृगमरीचिका की एक सृष्टि उसे दौडा-दौडा कर उसकी जान लेने पर तुली है। नही, नही, यह गलत चीज। अब उसे ठोस ज़मीन पर पैर रखना चाहिए, उसे ज़मीन को देखने, समझने और तदनुसार जीवन की धारा को परिवर्तित करने की कोशिश करनी चाहिए। प्रेम और वियोग का भी जीवन मे स्थान है, किन्तु जीवन सिफ प्रेम और वियोग का नाम नही है, जीवन के साथ और भी कितने कर्त्तव्य बँधे है, जिनका कौशल के साथ सम्पन्न करना ही मानव जीवन की

सफलता और साथकता है—ऐसा उन्होने उस दिन बताया था। लेकिन, वह कैसी मूरख निकली कि उनके जाते ही उनकी बात भूल गई। उनकी याद मे तो वह घुली जा रही है, किन्तु उनकी बाते वह भूली जा रही है—यह कैसा अजीब तमाशा ?

ठोस ज़मीन पर पैर रखना—यह उनकी आज्ञा थी, उनकी आज्ञा उसने सिर-आँखो पर ली। किन्तु, कुछ ही दिनो मे जब उसे मालूम हुआ कि उसके पैर के नीचे जो ज़मीन है, वह कैसी पोली है, तब वह बहुत ही घबराई।

मध्यवित्त गृहस्थ परिवार के सभी वरदान और अभिशाप उसके इस नये ससार को घेरे हुए है। एक ऐसा घर—जो चूने से बाहर से पुता हुआ, चकमक करता, किन्तु, उस चूने के भीतर जो दीवारे है, उसमे नोनी ने घर कर लिया है, वे भीतर-ही-भीतर खोखली हुई जा रही ह। घर की यह छत, यह किवाड, ओसारे के ये खम्भे—सभी सुघड और सुकाठ के। इन्हे रँगा गया है, इन्हे नया दिखाने की कोशिशे हुई है, किन्तु, भीतर से जो घुन इन्हे खाये जा रहा है, वह छिपाने से भी तो नही छिप पाता। जो इमारत की हालत, वही घर की सारी चीजो की। दरवाजे पर पशु है, चरवाहे ह, नौकर ह, अन्न रखने की बखारियाँ है, पुआल के बडे-बडे टाल है, बडे-बडे भुस-खार है। किन्तु, क्या यह सच नही कि साल लगते-न-लगते पशुओ को चारे की दिक्कत सताती हे, नौकर मुशाहरा न मिलने से खिन्न और अन्यमनस्क रहते है, बखारियो की शून्यता को भरने के लिए लाख कोशिशे होती है, तो भी मफलता नही मिलती। सफलता हो तो कैसे ?—खलिहान से ही तो अन्न का प्रवाह चारो ओर तीव्र वेग से बहने लगता है ! जिस टकी मे छेद है उमे भरने के लिए आप लाख पम्प लगाये, वह रीता-का-रीता रहेगा।

टकी मे छेद—गृहस्थी मे कज। दोनो एक बात। हो सकता ह, कभी आप का पम्प बिगड जाय, कभी आप पानी न दे सके, भूल ही जायँ। किन्तु, वह छेद तो अपना काम भूलेगा नही ? वह तो तब तक अपना काम जारी रखेगा, जब तक एक-एक बूँद पानी निकाल बाहर न कर दे। यही कज की हालत हे। आप सोये हुए है, और सूद आप के बिछावन के चारो ओर चक्कर दे रहा है ! आपकी खेती खराब हो सकती है, घर मे कोई यज्ञ-प्रयोजन पड जा सकता है, आपकी आमदनी मारी जा सकती है, आपका खच बढ सकता

है। आपके पारिवारिक जीवन मे, तरह-तरह के कारणो से, ज्वार-भाटे आ सकते है। किन्तु, कज पर इनका कोई प्रभाव नही पडने का—वह तो अपनी निश्चित गति से बढा जा रहा है। सूद-दर-सूद—एक के दो, दो के चार, चार के सोलह, सोलह के एक सौ चौवालीस,—यह तो सिफ इसकी चार ही छलाग हुई, आगे की गणना कीजिए !

उसके पितामह—हाँ, 'उनके' पितामह भी तो 'उसके' पितामह ही हुए, अब तो 'उनका' एक-एक रिश्ता 'उसका' रिश्ता है—बडे अच्छे गृहस्थ थे, किन्तु, बडे उदार, दरियादिल। किसी की तकलीफ देखी नही जाती, किसी का कष्ट देख नही सकते। मुसीबतजदा जो माँगे, पावे। अपनी हैसियत का रयाल नही रखते। कँडे के मद—मूछ की शान पर जान भी देने को तैयार। कोई उन्हे आँख दिखा नही सकता। जिसके हाथ पकड लिये, कोई उसपर उँगुली उठा नही सकता। जिसने उनसे गुस्ताखी की, वह उसका कडवा फल चखा। अपनी शान के सामने वे किसी को लगाते नही ! पुराने जमाने के सामान्तो के सभी गुण। लेकिन, यह सामती का तो युग तो रह नही गया था ! जो कभी का गुण था, वही इस जमाने का अवगुण हुआ। अपनी जिन्दगी मे उन्होने बडा नाम कमाया, घर का रुतबा बढाया, शान बढाई, किन्तु, जिस घर को छोडकर वे स्वग सिधारे, वह घर ऐसा था, जो उनकी सन्तानो के लिए एक बोझ ही साबित हुआ।

उनके बडे लडके—'उसके' पिताजी ने घर को सम्हालने की कोशिशे की, वे बहुत कुछ सफल भी हो रहे थे, किन्तु, विधाता से देखा नही गया। सिफ एक बच्चा छोड कर, भरी जवानी मे, वह अचानक ही चल बसे। घर मे जो अब चाचा वगैरह है, वे सिफ लकीर पीटने वाले। वे इस दुबह बोझ को जैसे-तैसे ढोये जा रहे है, ढोये जा रहे है ! किस उम्मीद पर ? किस आशा मे ?

हाँ, इधर आशा की एक झलक दीख पडी है—उस झलक के मूत्त रूप है, उसके 'वे' ! लोग कहते है, उनकी सूरत-शकल, चेहरा-मोहरा, चाल-ढाल, शील-स्वभाव, बात-चीत सब कुछ उनके पितामह से मिलता-जुलता है। होनहार बिरवा के चिकने पात की तरह, बचपन से ही उनकी प्रतिभा देखकर लोग मुग्ध है। इधर पढने-लिखने मे उनकी तेजी और तरक्की देखकर लोग कहने लगे है, उनके पितामह ने ही मानो घर की गिरती हालत देखकर उसके उद्धार के लिए, यह अव-

तार लिया है। इस घर का रोब फिर बढेगा, इसके आसमान पर फिर शान-मान का सूरज चमकेगा! बाल-किरणे ही साबित करती है, दिन कैसा होने जा रहा हे?

एक ओर जहाँ इस घर की हालत देख कर वह घबराई, वहाँ उसे इस कल्पना ने आनन्द भी कम नही दिया कि वह उनकी सौभाग्य-शालिनी पत्नी है, जो इस नाव के पतवार होगे, जिनके ऊपर घर-भर का भविष्य निभर है। वह अपने को उनकी योग्य अर्द्धांगिनी सिद्ध करेगी, उनके प्रयत्नो मे अपना योग्य हिस्सा लेगी और अगर इतनी योग्यता अपने मे न ला सकी, तो कम-से-कम उनके पथ के काँटो को चुनेगी, उसपर अपने स्नेह ओर भक्ति के फूल बिखरेगी। प्राचीन वीरागनाओ की-सी उसमे योग्यता कहा, जो पति के साथ-साथ, कदम-ब-कदम चलती, बढती थी—रणक्षेत्र मे उनकी ढाल और शिरस्त्राण बनती थी, कमक्षेत्र मे उनकी प्रेरिका और सचालिका मानी जाती थी। यह नही सही, वह अपने को एक सच्ची गृहिणी तो बना सकती हे, ओर यदि उसने इतना भी कर लिया, तो उसके सौभाग्य के लिए इतना ही कम नही। गहिणी—क्या गृहिणी का पद ही न्यून है? क्या गृहस्थी की धुरी गृहिणी ही नही हे? आप बाहर कितना भी कर-धर आइए, किन्तु, अगर घर मे सुघड गृहिणी नही हुई, तो आप का सारा किया-कराया चौपट! उसके सामने कितने उदाहरण है कि अच्छी गृहिणी के अभाव मे कितने घर चौपट हो गये! वह ऐसा नही होने देगी!

× × ×

"ऐसा नही होने देगी!"—उसके कानो मे भी यह आवाज आई। वह चकित हुई—उफ, क्या तस्वीर के बदले वह तकरीर पर उतर आई है? लेकिन, नही, उसने मुँडकर देखा, तो पता चला, डब्बे के दो यात्री, इस भीडभाड मे भी बहस छेडे हुए है! बहस का विषय है, शिक्षिता स्त्रियाँ! एक सज्जन पढी-लिखी स्त्रियो पर अपने दिल का बुखार उतार रहे ह। दूसरे सज्जन बडे जोश से उनकी बातो को काट रहे है—"आपने जो कुछ कहा, वह मूख नारियो के करतूत है। आप क्यो भूल जाते है कि जिस तरह पढे-लिखे मद मूख होते है, उसी तरह शिक्षिता नारियाँ भी मूख हो सकती है। किन्तु जो यथाथ शिक्षिता स्त्रियाँ है, वे ऐसा नही करेगी, ऐसा नही होने देगी!" किन्तु, उसे बहस सुनने की फुर्सत कहाँ थी? वह अपनी तस्वीरो की दुनिया मे फिर जा पहुँची।

६. बिजली !

वे आया करते, जाया करते। जब वे आते, उसकी जिन्दगी मे एक ताज़गी, उत्फुल्लता, प्रफुल्लता आ जाती। जब वे जाने लगते, एक उदासी, अन्यमनस्कता, विह्वलता उसके हृदय को ढँप लेती। किन्तु इस ताजगी और उदासी,उत्फुल्लता और अन्यमनस्कता, प्रफु-ल्लता और विह्वलता के बीच भी वह सतुलन को नही खोने देती। वह निश्चय कर चुकी थी, कि उसे एक योग्य पति की कायशीला गृहिणी का पद प्राप्त करना है। धीरे-धीरे वे दिन मे भी उससे प्राय मिला करते, रात तो प्रेमी-प्रेमिका की होती ही है! जब दोनो एक साथ होते, वैसे ही विनोद की कलिया खिलती, आनन्द की चिडिये चहकती। रगरलियो की सरिता मे बाढ आती, सारा जीवन, सारा जगत रसमय हो जाता। लेकिन, इस बाढ के बीच भी उसे सीमा का ज्ञान रहता, मर्यादा का खयाल होता। ज्वार के बाद जब भाटा आता, उस समय वह मर्यादा का और भी खयाल रखती।

वह थोडी-सी पढी-लिखी थी, किन्तु, उन्हे इतना ही से कहाँ सन्तोष ? जो 'उनकी' छुट्टिया होती, वे अब 'उसकी' पढाई की सीज़न होती। बाजाप्ता क्लास ही समझिए। वह किताब-कापी लेकर बैठी है, वे अध्यापक की तरह उसे पढा रहे है, लिखा रहे है। गलतियाँ दुरुस्त कराई जा रही है, सही पर शाबासियाँ मिल रही ह। लेकिन, अगर एक ही गलती को बार-बार दुहराया जाता है, तो झिडकियाँ तक सहनी पडती है। कभी-कभी दो एक मीठी चपत भी !

"और, रानी, अगर फिर भी गलती हुई, तो कनेठी मिलेगी" —हँस कर बोलते।

"मास्टर साहब, गाल से कान ज्यादा सुकुमार नही होते"—वह चुनौती देती।

"अच्छा, तो अब मज़ा चखोगी ?"

"क्या आज तक के मज़े से भी ज्यादा मज़ेदार होगा वह ?"

"खैर, वकालत पीछे होगी, अभी पाठ की ओर ध्यान दो।"

"कोई सामने बैठकर जो बार-बार ध्यान तोडे देता है !"

यो ही कभी-कभी काफी चुहले हो जाती।

नही कर सके। वे आये, उनका अपूव आगत-स्वागत हुआ। कई दिन रहे, उसे और उसके घरवाला को कृतकृत्य करते रहे और चलते दिन उसके घरवालो से वचन लेकर गये कि हम दोनो को उनके यहाँ तुरत भेजा जायगा।

आज भी उसे रोमाच हो रहा हे, उन दिनो की याद मे, जब वह 'उनके' साथ नैहर गई थी। यो तो दो तीन बार वह नैहर से हो आई थी, किन्तु, इस बार की बात निराली थी। भाई बुलाने आया था। आगे-आगे हाथी पर अपने प्यारे साले के साथ वे थे, पीछे-पीछे खडखडिया मे आठ कहारो द्वारा ढो कर वह ले जाई जा रही थी। खडखडिया मे ओहार लगा था, वह बिल्कुल पर्दानशीन महिला की तरह जा रही थी। कुछ ही देर पहले दोनो मिलकर चले थे, कुछ ही देर बाद दोनो फिर मिलेगे, तो भी, न-जाने कौन-सा कुतूहल था कि जब उसे ऐसा लगता कि यह सुनसान और निजन स्थान है, जरा ओहार सरका कर वह देखने की कोशिश करती,—वे कहाँ है, कितनी दूर पर है ? कितनी दूर पर ह, कैसे लगते है ? उसे कुछ ऐसा अनुभव होता कि अभी-अभी, पहले-पहल, उसने उन्हे देखा था और पहली झलक के बाद ही वे जैसे उसकी आँखो के ओझल हो गये हो। अपनी शादी की बरातवाली शाम को जैसी व्याकुलता का अनुभव उसे अपने आँगन मे हुआ था, वही व्याकुलता आज वह इस भरी दुपहरिया मे, नैहर के रास्ते मे, इस ढाई हाथ की खडख-डिया मे अनुभव कर रही थी!

एक पखवारा वह नैहर मे रही। दादी, माँ, काकी गाव, की बडी-बूढी सब ने आशीर्वादो से उसे ढँप-सा दिया। जहाँ जाती, उसके सौभाग्य की प्रशसा होती। जिस भावज ने उस दिन उसकी दिल्लगी की थी, वह तो जैसे कट-सी गई। "दुलारी-बबुई, माफ करना, मैने तुम्हे साधारण दुलहन समझने की गलती की थी। तुम धन्य हो, तुम्हे पति भी वैसे ही मिले है। दोनो जीयो, जीयो, खुश रहो, फलो-फूलो।" 'उनकी' आवभगत का भी क्या पूछना ? एक तो दामाद—प्यारा दामाद! फिर, असाधारण दामाद—जो दामाद अब हाकिम बनेगा! हाकिम!

जिसका नाम लेकर हम इज्जत पायेगे, मुकदमे जीतेगे। "हाँ, कौन हाकिम होगा, जो इस हाकिम-दामाद का नाम सुनकर रियायत

न करे"—यह बाबूजी नही कहते, गाँव के साधारण लोग भी कहते। नामवर दामाद सबका दामाद होता है न ?

नैहर से लाटने के बाद अब यह चर्चा शुरू हुई कि वे करेगे क्या ? क्या डिप्टीगरी लेगे ? लोगो की, सब की यही राय थी। किन्तु, उन्होने नाही कर दी। उन्होने कहा—नही, अभी म और पढूगा, एम० ए० तो कर लू, उसके साथ ही बी० एल० भी। फिर देखा जायगा ! नौकरी क्या कही भागी जाती हे ? किन्तु पढाई छोडने पर फिर उसकी ओर ध्यान कहाँ जाता है ? लोगो को उनका यह तक पसद नही था। घरवाले और भी उकताये हुए थे। वे चाहते थे, जल्द नौकरी लगे, कुछ बाहरी आमदनी आये, कज से छुटकारा हो, कारबार बढे, बढाया जाय। जब उन लोगो की बात पर उन्होने नही कान किया, तब उसपर ज़ोर डाला गया कि वह उनसे कहे। घरवालो से छिपा नही था कि वे उसे किताना प्यार करते, कितना मानते। उमने उन लोगो से कह तो दिया कि वह कहेगी, किन्तु, क्या उसने कभी इसकी चर्चा उनसे की ? वह तो उनकी बुद्धिमानी पर इस तरह फ्दिा थी कि उनकी हर बात मे हाँ करना, उनकी हर राय मे स्वीकृति देना अपना कतव्य समझने लगी थी। वे जो कहते है बिल्कुल सही और दुरुस्त कहते है। नौकरी कहाँ भागी जा रही हे ? उनकी उम्र ही क्या हुई है ? घरवाले स्वाथ मे अधे हो रहे है—स्वाथ दूर तक कहा देख पाता हे ? नज़दीक की चीज़ भी क्या वह सही-सही देख पाता है ? नही, नही, अगर वे चाह रहे है, तो उन्हे पढना चाहिये। एक दिन, घर मे जाने के पहले उन्होने ही उससे पूछा—"तुमने नही बताया, रानी कि तुम्हारी क्या राय है ?" "जो आपकी राय, वही मेरी—" वह इतना कह कर ही पिड छुडाना चाहती थी, किन्तु, उन्होने माना नही। बात बढाई, और तक और युक्ति से उसके दिल मे बिठा दिया कि उसकी, अपनी और अपने घरवालो की भलाई की दृष्टि से भी उनके लिए यही उचित है कि वे पढाई जारी रखे।

हँसी-खुशी मे वे आगे अध्ययन के लिए घर से चले। घरवालो ने चातक की तरह उनकी ओर देखना शुरू किया। ईमान की बात है, वह भी उनके भविष्य को जल्द-से-जल्द सफल और सुफल देखने के लिए कम उत्सुक नही थी। किन्तु, उसके घरवाले क्या जानते थे कि जिस बादल की ओर वे पपीहा की तरह ध्यान लगाये हुए

ह, वहाँ स्वाती-बूद के बदले कुछ दूसरी ही चीज की सृष्टि हो रही है ? वह भी क्या जानती थी कि जिस वृक्ष की डाल की ओर फल का आशा मे वह एकटक आखे गडाये हुई हे, वहाँ नियति कुछ दूसरा ही फल रच रही हे ! वह चकित, स्तम्भित रह गई, घरवाले विह्वल, मूर्च्छित हो गये, सभी हित-कुटुम्ब, मित्र-बाधव भौचक-से रह गये—जब उन्होने सुना

× × ×

बाहर इस समय थोडी वर्षा होने लगी थी। जो थोडा-सा बादल उसने थोडी देर पहले क्षितिज पर देखा था, उसने समूचे आसमान को ढँप लिया था। बिजली चमकने लगी थी, हवा जोर से चल रही थी, पानी की बूदो के साथ-ही-साथ छोटे-छोटे ओले गिर कर डब्बे की छत और खिडकियो पर शब्द कर रहे थे। एक यात्री ने कहा, रब्बी चौपट हुई, दूसरे ने कहा, आम का सफाया हो गया—यह बिजली, अब तो बौर मे आम लग नही सकते ! क्या उस दिन भी इसी तरह की बाते उसके घर-बाहर नही कही गई थी ? उस दिन का वह दश्य—उफ कैसा करुण चित्र !

१०. तूफान

हाँ, वह तूफान ही था, जो अपने सभी साधनो से लैस होकर आया था,—बादल, बिजली, ओले, क्या-क्या नही ? वह तूफान जिसने उसकी हरी-भरी, लहलही खेती को रौद डाला, मसल डाला, कुचल डाला, जिसने उसकी बौर-भरी डाली को झकझोर डाला, मरोड डाला, तोड डाला, जिसने उसके प्राचीन प्रतिष्ठित घर की दीवाल दरका दी, छत उडा दी, घरवालो को बेभरम और बरबाद कर डाला, जिसने उसके आशाभरी, उल्लासमयी जिन्दगी को, किस बुरी घडी मे, जमीन से अलग कर दिया कि वह आज तक तुच्छ तिनके की तरह यहाँ-से-वहाँ इधर-से-उधर, मारी-मारी फिर रही है ! कई बार उसने कोशिश की, कई बार उन्होने कोशिश की, जरा ठोस जमीन पर उतरा जाय, घर बने, खेती हो, बगीचे लगे, किन्तु आज तक वह न हुआ, न हुआ ! बार-बार जमीन पैर के नीचे से खिसक जाती रही, हवा का महल हवा मे मिल जाता रहा ! क्या आसमान की खेती जमीन पर फूल बरसाती और फल टपकाती है ?

उसको अच्छी तरह याद हे उस दिन की एक-एक बात ! उनके चाचाजी आँगन मे आये, रोनी-सी सूरत बनाये और उन्होने जब उस दुस्सम्बाद की घोषणा की, समूचे घर पर मुर्दनी-सी छा गई। जितनी ही बडी आशा बँधी थी, उतनी ही बडी यह निराशा की खबर थी। मानो स्वर्ग पहुँचते-पहुँचते त्रिशकु जमीन पर ढकेल दिया गया हो और वह औधे सिर नीचे आ पडा हो। त्रिशकु के लिए कम-से-कम यह तो गनीमत हुई कि वह अधर मे ही लटका रह गया, इस पृथ्वी के लाछन, अपमान और अभिशाप देखने को नही लौटा। किन्तु, यहाँ तो स्वग से सिफ पृथ्वी तक ही रहने की बात नही रही, पैर के नीचे की जमीन भी धँसी जा रही थी—नरक की भट्टी मुँह खोले लीलने को तैयार थी ! अरे, यह क्या हुआ ? अभी कुछ दिन हुए, वे गये थे—क्या-क्या कह कर, क्या-क्या अरमान लिये हुए, लोगो को क्या-क्या सुख-स्वप्न दिखला कर ? और, अचानक उन्होने यह क्या कर लिया ? चाचाजी अपनी आँखो के आँसू तक नही रोक सके। जहाँ उनकी आँखो मे बूदे थी, वहाँ घर की औरते खारे पानी के झरने बहाते जा रही थी। हाँ, बोली किसीके मुँह से नही निकल रही ! भावनाओ का ज्वार जबान पर ताला डाल देता है न ?

और, उस समय उसकी अपनी हालत कैसी हो रही थी ? काटो तो खून नही। हृदय मे तूफान, दिमाग मे धुआ, नसो मे खून की जगह बिजली की धारा दौड रही। वह थोडी देर अपने घर के दरवाजे पर, किवाड की आड मे खडी, सब का मुँह देखती रही, फिर, जैसे उसके पैर आप-ही-आप उखड गये, वह धम्म से पलग पर आकर गिर पडी औधे मुँह, मुँह के बल। क्या वह रो रही थी ? क्या वह सो रही थी ? उसे मालूम नही, कब तक इसी तरह पडी रही कि, उसने पाया, उसका देवर—वही, जो सामने बैठा है, उस समय छोटा बच्चा, प्यारा, दुलारा, भला, भोलाभाला था—उसे जगाने, उठाने की कोशिश कर रहा है! और अपने प्रयत्न मे असफल होता, कुछ झुँझला रहा, झल्ला रहा, उकता रहा, बेचैन हो रहा—

"भौजी, ओ भौजी, उठती नही, सो रही हो, ओह, रो रही हो! रोओ नही, ऊँह, यह क्या, अरी, ओ उठो, लो लो, यह लो, भैया ने तुम्हारे लिए चिट्ठी भेजी है! भैया ने, तुम्हारे लिए, चिट्ठी, चिट्ठी !"

"चिट्ठी, चिट्ठी, भैया ने"—शायद वह चिल्ला उठी थी। झपट कर उठी, उस रुआ-से बच्चे से चिटठी ली और जब खोल-कर पढने बैठी

शायद तीन बरसो से जान धुन कर उसे इसी लिए पढाया जा रहा था, कि वह उनकी इस चिटठी को पढ सके, समझ सके—यह चिट्ठी थी, या जिन्दगी भर की तकलीफो का दमामी पट्टा था ! पढ पगली, पढ—एक बार पढ, दो बार पढ, फिर पढ, पढ ले, जब तक इसके एक-एक शब्द याद नही हो जाय—

"रानी, मेरी रानी, मेरी प्यारी रानी,

"तुम्हारे पास यह चिट्ठी भेजते मेरे हृदय और दिमाग की क्या हालत हो रही है, क्या तुम कुछ भी अनुभव कर सकती हो ? तुम्हे यह चिट्ठी लिखू या नही, लिखू तो क्या लिखूँ, कैसे लिखू ? लम्बे तर्क-वितर्क के बाद कागज-कलम लेकर बैठा भी हूँ, तो कागज ठीक से रख नही पाता, कलम ठीक से पकड मे नही आती, हाथ ठीक से काम नही करता, दिमाग जवाब देने लगता है, हृदय एक अज्ञात बोझ से दबा जाता है! भावनाओ की इस धमाचौकडी मे बेचारी बुद्धि काम कर नही पाती, ज्ञान कहाँ उडा जा रहा है ? जरूर ही इस

चिट्ठी के पहले तुमने खबर सुन ली होगी—खबर बेपर की चिडिया ! अपनी रफ्तार मे डाक, तार सब को पीछे छोड देती है। वह किसी-न-किसी तरह इस चिट्ठी से पहले पहुँच ही चुकी होगी। और, उस खबर के बाद जब कल्पना करता हूँ

"तुम्हारी क्या हालत हुई होगी ? मानो किसी ने आसमान से नीचे पटक दिया हो, मानो किसी ने पैर के नीचे की ज़मीन छीन ली हो ! तुम खडी हो—देख रहा हूँ, तुम खडी हो, विषण्ण बदन, आँचल नीचे खिसक पडा है, बाल की कुछ लटे आप-से-आप बिखर कर अकाल के बादल की तरह तुम्हारे चन्द्रमुख को ढँकने की कोशिश कर रही है, ललाट पर पसीने की बूदे, आँखो मे पानी का झरना ! होठ हिल रहे, मुह से आवाज़ नही आ रही ! खिले कमल-से चेहरे पर मानो अचानक तुषारपात् हुआ हो। और यह क्या ? तुम्हारा समूचा शरीर हिल रहा है—ज्वरग्रस्त कपिला गाय की तरह। तुम अपने को सम्हाल नही पाती, बेहोश हुई जाती हो, आखिर वही

"तुम बेहोश पडी हो, उस निजन, एकाकी गृह मे। क्योकि घर के और-और लोगो की भी मनोदशा ऐसी नही कि कोई किसी को धैर्य दे सके। समूचे घर मे शोक का राज्य है। बडे-बूढे, औरत, मद, बच्चे सब पर उदासी की घनघोर घटा छाई है। यह मैने क्या किया ? क्या मेरे लिए यही उचित था ? क्या यह धोखा नही है ?—घरवालो को धोखा, जिन्होने इतने रुपये खर्च कर के मुझे पढाया-लिखाया, मुझ पर इतनी उम्मीदे बाँधी। सब से बढ कर रानी—तुमको धोखा ! हाँ, ज़रूर तुम मुझे धोखेबाज़ समझती होगी। सोचती होगी, ऐसा निणय पर पहुँचने के पहले ज़रा मुझसे पूछ भी तो लिये होते

"सच कहता हूँ, रानी, जब-जब तुम्हारे चेहरे और घरवालो की मनोदशा की ओर ध्यान देता हूँ, मालूम होता है, मैने गलती की है, अपराध किया है। यह उचित नही था। शायद जल्दबाज़ी तो मुझ से नही हो गई

"किन्तु, जब-जब ऐसा सोचने लगता हूँ, उसी क्षण एक बुढिये का चेहरा मेरे मानस-नेत्रो के सामने आकर प्रतिबिम्बित हो जाता है। एक वृद्धा—जर्जर वृद्धा ! गलित पलित अग, झुर्रियो से भरे उसके चेहरे को आँखो की गगा-जमुना सिर्फ धोना नही चाहती, बहा ले जाना चाहती हो। अस्त-व्यस्त उज्वल बाल, गले मे हिचकियो

का ताता। किस करुण दृष्टि से वह मेरी ओर ताक रही है ! क्या उस दृष्टि मे सिर्फ करुणा ही है ? करुणा-मात्र रहती, तो सहानुभूति की दो बूदे बहाकर सन्तोष कर लिया जाता। इस दृष्टि मे तो उपालम्भ है, उलहना है, ताना है। बेटा, क्या मेरी यह गत तुमसे देखी जाती है ? तुम्हारे अछत मेरा यह हाल ? बेटे के सामने मा लूटी जा रही हो, अपमानित की जा रही हो, और बेटा टुकुर-टुकुर देखा करे ? क्या यह कभी सम्भव है ? अभी तक मेरी गत इसलिए थी कि शायद तुम्हारी नजर मेरी ओर नही थी। किन्तु, जब तुम सामने हो, तुम्हारे सामने यह सब हो ? नही नही, ऐसा हो नही सकता—मेरे बेटे !

"उफ, रानी, मेरी रानी, बताओ, म कैसे उसे इस दशा मे छोड़ू ? तुम्हारे सामने, तुम्हारी मैया पर ऐसी मुसीबत आये और वे आकर तुमसे विपदा सुनाये, तो, तुम स्त्री हुई तो क्या, मेरी तेजस्विनी रानी, मुझे यकीन है, तुम भी अपनी सारी स्थिति, मर्यादा भूलकर उनकी मदद मे जान पर खेल जाओ। मै तो पुरुष ठहरा। ऐसी पुकार पर भी जिसका हृदय न पसीजे, उद्वेलित न हो, मै समझता हूँ, वह पुरुष की क्या बात, मनुष्य भी नही ! उसे पुरुष या मनुष्य कहना मनुष्यता और पौरुष का अपमान करना है

"कहोगी, वृद्धा कौन है ? कहाँ से आकर मेरे सामने यह अचानक खडी हो गई ? बिना किसी बडी भूमिका के सुना दू। वह सिफ मेरी नही, हमारी-तुम्हारी सब की माता, हमारी देश-माता, भारत-माता है। कभी इसके भी दिन थे, कभी इसकी भी शान थी। जब इसके मस्तक के रत्न-किरीट के प्रकाश से ससार प्रकाशित था, जब इसके पद पर ससार रत्नाजलि अर्पित करता था। आज वह भिखारिणी है। सिर्फ भिखारिणी ही नही—बदिनी ! अब तक चेहरा ही देख रही थी तुम, अब ज़रा उसके पैर की ओर देखो, हाथ की ओर देखो। वे लोहे की ज़जीरे, वे वज्र-श्रृखलाये

"रानी, रानी, हमे धिक्कार है, जो अपनी माँ को इस स्थिति मे छोडकर हम स्वय आमोद-प्रमोद, सुख-चैन मे मस्त और व्यस्त रहे। अब तक हमारी ऑखो मे पट्टी बँधी थी, हम अपनी माँ को, उसकी दुर्दशा को देख नही पाते थे ! धन्य कहो, धन्य कहो, उस महात्मा को, जिसने हमारी यह पट्टी खोल दी है। और जब वह पट्टी खुल गई, तो फिर हम पट्टी-बँधे बैल की तरह अपने सुख-चैन के

कोल्हू मे चक्कर काटते हुए, इस अमूल्य मानव जीवन को बर्वाद कर नही सकते

"यह कहना भी फिजूल है कि तुम मुझे प्यारी हो! रानी, तुम्हारा हृदय ही साक्षी होगा, मै तुम्हे कितना प्यार करता हूँ! तुम्हारे सुख के लिए, तुम्हे आराम और चैन मे रखने के लिए, म सब कुछ कर सकता हूँ। किन्तु, मै समझता हूँ, जैसी स्थिति आ गई है, तुम भी चाहोगी कि पहले मै इस मातृ-ऋण से उऋण होलू। जब तक सिर पर ऋण का बोझ है, आदमी पनप नही सकता —हमारा अपना घर इसका उदाहरण है! क्या यह अच्छा नही कि मै इस ऋण से मुक्त हो लू? तुमने सुना ही होगा, सिफ एक वष की बात है? उस महात्मा ने कहा है—बस, मेरी बाते मानो, एक वष मे स्वराज्य ले कर दिखला देता हूँ सिफ एक वर्ष— फिर तो अपनी दुनिया — हमारी-तुम्हारी दुनिया है ही! माता बधनमुक्त होगी। देश आजाद होगा। एक नया समाँ होगा। एक नया ससार होगा। हम नये ससार मे रहेगे। फिर हमारा परिवार होगा, हम होगे, सानन्द रहेगे, स्वच्छद विचरेगे,—ओहो! कैसे वे दिन होगे, कैसी वे राते होगी—कल्पना करो, रानी

"मेरी रानी, घरवाले इस खबर से बहुत ही व्याकुल होगे। इन तीन साढे-तीन वर्षों मे तुमको तो ऐसा बना भी लिया है कि तुम्हे समझा सकू। किन्तु उन्हे!—उन्हे कैसे समझाऊँ, समझ मे नही आता! इसलिए, चाचाजी को सिफ एक छोटा-सा क्षमा का पत्र लिख दिया है। अब यह तुम्हारा काम है कि मेरी ओर से उन्हे सन्तोष और धैय दो। घर की स्त्रियो के मन को अगर तुमने ठीक कर लिया, तो फिर बाहर तो आप-आप सब दुरुस्त होगा। रानी, तुम्हे स्वय ही धैय नही रखना है, तुम्हे मेरी मदद भी करनी है, खास कर इस काम मे

"मै चाहता था, आऊँ, तुमसे मिलकर समझा दूँ, घरवालो को भी धैर्य दे लू, किन्तु, एक तो इस समय शायद सिर्फ समझाने-बुझाने से काम नही चलने का। नया घाव है, गहरा घाव है, ताज़ा चोट है, ममस्थल की चोट है। इसे समय का मरहम ही भर सकता है। अत कुछ दिन के बाद ही आने का सोच रहा हूँ। फिर, काम की जो भीड है, उसकी कल्पना भी तुम नही कर सकती। तुम यह न समझो, पढने-लिखने से फुसत पाकर मै सैर-सपाटे मे मस्त होऊँगा। ठीक इसके विपरीत बात है, रानी। समझो,

मैंने अपने को एक तूफान के बीच मे डाल दिया है—चारो ओर हूहू-हाहा, कही घर उजड रहे ह, कही पेड गिर रहे है, गर्द-गुबार से वायुमडल व्याप्त है, एक झोका उधर पटक देता हे, दूसरा झोका फिर इधर घसीट लाता है—और इन सब के बीच अपने रास्ते पर बढे चलना है ! हमारी सफलता इसी पर निभर करती हे कि इस हगामे मे भी हम कहाँ तक अपनी राह को अच्छी तरह देख सकते ह, उस-पर दृढता से बढ सकते ह

"अतएव, मेरी प्यारी रानी, तुम क्षमा करना। आने मे विलम्ब हो, तो घबराना नही। मेरे लिए चिन्ता तो बिल्कुल ही नही करना। तुम्हारा प्रेम मेरे लिए हमेशा ढाल का काम करेगा, उसकी छॉव मे मै हमेशा निश्चिन्त सोऊँगा। हा, मुझे घरवालो के लिए थोडी चिन्ता है। सो देखना—देखना, ओ मेरी प्राणो से प्यारी रानी "

हा, यो ही तो उनका वह पत्र था। उसकी आखो के सामने आज भी तो उस पत्र के अक्षर जगमगा रहे है। यह आश्वासन का एक अजीब तरीका था। जिसे सबसे ज्यादा आश्वासन की जरूरत थी, उसी पर यह बोझ डाला गया, कि वह दूसरा को आश्वासन दे। यह क्या कोई न्याय था ? किन्तु, क्या उसके लिए यह क्तव्य नही कि उनके वचन का पालन करे ? उसने धीरे-धीरे अपने मन को शान्त किया और वह धीरे-धीरे उनकी ओर से घर की स्त्रियो से वकालत भी करने लगी। समझाती, बुझाती, धैर्य देती, ढाढस बँधाती। उसने देखा, वह कुछ सफल भी हो रही है कि एक नई खबर आई—वे गिरफ्तार हो गये ! और तूफान का यह झोका इतना बडा, इतना प्रबल था कि अब उसके लिए भी सम्भव न था कि वह खडी रह सके। वह गिरी और उठी उसी दिन, जब उसने देखा, वे आकर उसे उठा रहे है

× × ×

तेजी से भागी जाने वाली गाडी, उसने पाया, अब एक स्टेशन पर खडी है। लोग उतर रहे है। अधिकाश लोग उतर गये। उसका देवर उसे ध्यानमग्न देख, उसके नजदीक आकर कह रहा है—"भौजी, उठिए न, बिस्तरा बिछा दू। जरा लेट जाइए। बडी भीड थी। जरा कमर तो सीधी कर लीजिए।" वह चौक कर उठी। बिस्तरा बिछाया गया। बच्ची को गोद मे चिपका कर वह लेट गई। ऑखे बद की। ऑख बन्द थी, किन्तु, वह देख रही थी

११. मान

वह पडी हुई है, वह उसे उठा रहे हैं, मना रहे है। न-जाने क्यो, उस दिन एक अजीब मान उसके दिल मे पैदा हुआ। जो मान पहली रात मे, पहली मुलाकात मे, न-जाने कहॉ सोया पडा था, इन तीन-चार वर्षो के विवाहित जीवन मे जिस मान की छाया भी उसने नही देखी थी, वही मान उसके हृदय पर अधिकार कर बैठा —उस दिन, जब कि एक वष की जुदाई के बाद वे उसके घर मे आकर खडे थे! वे, उन्ही के शब्दा मे, तपोभूमि से लौटे थे। घर वालो ने आसू के हार से स्वागत किया, परिजन-पुरजन ने आरती और माला से अभिनन्दन किया। उसके दरवाजे पर भीड लग गई। वे मानव होकर भी मानवोत्तर हो चुके थे। उनके त्याग और तपस्या की चर्चाये हो रही थी। एक कोलाहल-सा मचा था। इस भीडभाड से निबट कर, जब वह आगन मे आये और बडो-बूढियो से आशीर्वाद पाने लगे, उसके मन मे न जाने क्यो एक अजीब भावना पैदा हुई।— मै कौन होती हूँ उनकी ? उन्हे मेरी क्या परवाह ? मुझे अथाह सागर मे छोडकर कैसे वे तैरते बढ गये। आज लौटे है, देवता होकर! गले मे मालाये पड रही है, कपूर की आरतियॉ हो रही है। भगवान के नये-नये भक्त है, म कौन होती हूँ भला ? मेरे घर आ रहे है, एक लोकलाज निबाहने। अगर मेरी जरा भी चिन्ता होती, तो, यो मुझे भूलकर, तपस्या मे लीन हो जाते ! म अबला, मैं नारी। नारी तो तप-भग की सामग्री है न ? तपस्वियो को नारी से अलग ही रहना चाहिए। मै क्यो उनके तप मे आडे आऊँ ? मन, चल, दूर हट

यो ही अट-सट सोचती, वह पलग पर जा लेटी। ऑचल से मुह को ढँप लिया। ऑचल का छोर यो दाब दिया, कि चेष्टा करने पर ही मुँह उघाडा जाय। वे घर मे घुसे। उनकी पग-ध्वनि उसने सुनी, पहचानी। उन्हे कितना आश्चय हुआ होगा, यह देखकर ? शायद उन्होने सोचा होगा, रानी, किवाड की ओट मे खडी प्रतीक्षा कर रही होगी। ज्योही पहुँचूगा, या तो लिपट रहेगी, या पैरो पर लेट जायगी। किन्तु, यह क्या ? यह तो पलग पर पडी हुई है ! वह धीरे-धीरे पलग के निकट आये, पुकारा—रानी, रानी ! किन्तु, रानी सोई थी क्या, जो आवाज़ सुनकर जग जाय ? वे पलग से सट गये, एक पैर पलग के ऊपर रखा और हाथ ऑचल की ओर बढाया। हाथ बढाते

हुए बोले—"समझा, रानी, समझा ! तू नाराज है मुझपर। वाजिब ही है तेरी नाराजी। मैंने अपराध किया। किन्तु, इस समय माफी माँगने की भी सुध नही है, पगली। आ, उठ, पहले तुझे हृदय से लगा लूँ। देख तो, यह मेरा दिल, तुमसे मिलने को कसा अकुला रहा है—धडधड किये हुए है।" उन्होने उसका हाथ खींचा और उसे घसीट कर अपनी छाती पर ले गये। उसका हाथ उनकी छाती पर, उनका मुँह उसके आँचल पर ! उच्छ्वास की गरमी, चुम्बन की बिजली ! उसका मान पानी-पानी हो रहा। आचल न जाने कहा विलुप्त हो चला। उसने पाया, वह उठाई जाकर उनकी गोद मे है।

जब आँखो का ज्वार-भाटा खतम हुआ, उसने उनके मुँह की ओर देखा। अरे, यह क्या ? वे इतने दुबले ? ललाट पर शिकन, आँखो के गोलक धँसे, गाल पुचक गये, नाक कुछ अधिक उभड आई है,—अरे यह क्या ? वह आख फाड-फाड कर देख रही थी,—चकित, विस्मित, भयभीत ! और, वे वे मुस्कुरा रहे !

"क्यो रानी, क्यो ? मै दुबला हो गया हूँ यही न ? तो, यह कौन-सी बात है भला ? जहाँ चार दिन तुम्हारे हाथ से खाया, और चार दिन तुम्हारे पास रहा—फिर, वही मुटाई, वही ललाई ! रग रग भी तो देता है ? क्यो ?" वह चुप थी और वे आँखो से मुस्क-राते और होठो से अमृत की वर्षा किये जाते थे। जब कुछ देर के बाद वह कुछ आश्वस्त हुई, बोली—

"तपस्वी को नारी से अलग ही रहना चाहिए, तपभ्रष्ट मत हूजिए।"

उन्होने कहा—"ओहो, अब समझा ? यह मान नही था, मेरा कल्याण था, जो मेरी रानी को यो यहाँ सुलाये हुआ था ! वाह री मेरी रानी !" बात जारी रखते हुए उन्होने आगे कहा—"किन्तु, रानी, यह विश्वामित्र की तपोभूमि नही है, यह तो जानकी का केलि-मन्दिर है, जहाँ की ध्यान-धारणा, अशन-आसन सब कुछ दूसरा ही है !" और इसके बाद

उफ, उसका पिछला वर्ष कैसा बीता था। ध्रुवदेश मे छ महीने का दिन और छ महीने की रात होती है, सुनते है। किन्तु, यहाँ तो यह एक पूरा वष उसके लिए रात-ही-रात रहा है। रात—अमावस्या की रात, अमावस्या भादो की। चारो ओर अधकार ही अधकार—

जब बिजली कौधकर प्रकाश नही देती, अधकार की भयानकता को और बढाती है। आसमान मे एक तारा तक के दर्शन नही—तमाम बादल छाये हुए। रात भर टिप-टिप, टिप-टिप,—खुलके बरसे तो जी कुछ हलका भी हो जाय। अजीब उमस। उफ, री, वह काली, भयानक, भयावह रात। और, आज की रात—ऐसी रात सब सुहागिन की हो, दिन न हो, रात ही रात। इस एक ही रात मे जैसे उन्होने जादू फेर कर बारह महीने की अनगिनत रातो की व्यथा को, न जाने किस तरह, हवा कर दिया! दूसरे दिन जब वह उठी, उसकी आँखो मे नई रोशनी थी, उसके पैरो मे पुराना बल था, आईने मे देखा, गालो पर गुलाबी दौड गई थी, होठो पर इंगुर मुस्कुरा रहा था और आँखो की पुतली कठपुतली-सी ता-थेई नृत्य कर रही थी!

दिन मे उन्हे भी उसने गोर से देखा। वे दुबले हो गये थे ज़रूर—लेकिन, समूचे शरीर से एक ज्योति-सी निकलती। कभी-कभी उसे ऐसा लगता—जैसा कि उसने देवताओ के मुखडो के चित्रो मे देखा था—उनके चेहरे से ज्योति स्फलिग निकल कर एक वृत्त बनाये हुए है। वह वृत्त क्रमश फैलता जाता है। उस वृत्त के भीतर उनका चेहरा कैसा अपूव मालूम होता! वह कई बार उसे देखती ही रह जाती—आत्मविस्मृत, आत्मविभोर! उसे इस तरह निर्निमेष दृष्टि से देखत हुए पाकर उन्होने कई बार पूछा भी,—"यह क्या है रानी, यो घूर क्यो रही हो? मै दुबला हूँ, यही न?" कहकर मुस्कुरा पडते। वह बोलती क्या भला, होठो का जवाब होठो से ही देने की चेष्टा-भर करती।

थोडे ही दिन वे रह पाये थे कि एक दिन शहर से कुछ 'बडे-बडे' लोग उसके दरवाजे पर आ पहुँचे और उन्होने ख़बर की—वे उन्ही के साथ जा रहे है। जा रहे है? क्यो, कहाँ? क्या एक वर्ष की तपस्या पूरी नही हुई? अब तो फिर पढना है, घर देखना है। डिप्टगिरी न हुई, वकालत ही सही। वही पढिए, दो वष क्या चीज़ है? किन्तु, उन्होने इन बातो को हँसी मे उडाना चाहा। पर, उनकी मानिनी रानी माने तो। उसने जिद की—"म आपको नही जाने देती, मै नही जाने दूगी। पहले मुझे बता दीजिए, आप क्या करना चाहते है, कहाँ जाना चाहते ह? एक बार मै धोखा खा चुकी, मै अब आपको नही छोडती।" शब्द ही नही थे, एक-एक शब्द के साथ आँसुओ की शत-शत बूँदे भी थी। वे तैयार होकर उससे मिलने आये थे। सिर से टोपी उतार कर उसके हाथो मे रख दी और

कहा—"अच्छा, आज नही जाता। जब तेरी आज्ञा होगी, तभी जाऊँगा, जैसी तेरी मर्ज़ी।" दरवाज़े पर गये, उन लोगो को, न जाने क्या कहकर, बिदा किया और लौटे। तब तक वह खडी थी, उनकी उस उजली गाँधी-टोपी को हाथ मे रखे, उसे देखती, उसे अश्रुओ से अभिषिक्त करती! आते ही बोले—"हुआ न, म हारा, तू जोती।"

हाँ, सचमुच यह उसकी विजय थी। ऐसी विजय—जिसपर घरवालो को ही आश्चय नही हुआ, उसे स्वय भी आश्चर्य-चकित रह जाना पडा! किन्तु, उसकी यह विजय कितनी महँगी है, उसने तुरत अनुभव किया। उनका चेहरा लटक रहा—श्रीहीन, विषण्ण। कहाँ गया उनके मुँह का ज्योति-वृत्त? और आँखो मे यह क्या उमड-घुमड रहा है? उनमे पानी नही सही, उनसे बूदे न गिरे, सावन के सजल बादल तो वहा है ही। तो क्या, उससे कोई अपराध बन पडा? कोई ऐसा काम किया उसने, जिससे उनके हृदय को ठेस पहुँची है? वे चाहते तो उसकी अवज्ञा कर सकते थे? किन्तु, ऐसा नही किया। उन्होने, उसका मान रखा, जिद रखी। उन 'बडे लोगो' ने मन-ही-मन क्या कहा होगा? बडे देशभक्त बने थे, बीवी ने ज़रा टोक दिया, बस, सारी देशभक्ति हवा हो गई? शायद इस अपमान के बोध ने ही उनकी आँखो मे इन बादलो की सृष्टि की है? उहुँ, उसने गलती की है, नादानी की है, उससे अपराध हो पडा है, अक्षम्य अपराध! एक तरफ वे है, जो उसकी ज़िद की भी कदर करते ह, एक तरफ वह है, जो उनकी प्रतिष्ठा की ओर भी ध्यान नही रखती!

वे खडे थे, उनके हाथ उसके बालो से खेलवाड कर रहे थे। उसने उनके मुह की ओर देखा। सहसा उनके होठो पर एक मुस्कुराहट खेल गई! उसके समझने मे धोखा नही हुआ कि यह उत्फुल्ल-प्राय कलिका की चटक नही है, बल्कि अपने बोझ से व्याकुल बनी मेघ-माला की तडप है! मुस्कुराते हुए उन्होने कहा—"चलो, कुछ गप हो, खडी कब तक रहोगी?"

"क्या आपके साथी चले गये?"—उसने पूछा और जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही बोल उठी—"आप जाइए, जब वे बुलाने आये है, तो आपका नही जाना मुनासिब नही।" वे चकित होकर देख रहे थे। उसने फिर कहा—"मुझसे अपराध बन पडा था! मै नारी, गँवारी—यदि दूर तक नही देख सकूँ, तो मेरा क्या कुसूर? आपको क्षमा कर देना चाहिए।" इतना कहते-कहते, उसके हिचकियाँ आ गई

थी, उसे आज भी अच्छी तरह याद है। फिर क्या था, उनकी आँखो के बादल भी बरस पडे! किन्तु, यह उसके क्तव्य-ज्ञान पर बहे हुए प्रसन्नता के आँसू थे या उसकी अपार मानसिक पीडा पर बहे हुए सहानुभूति के आँसू—यह कौन बताये ?

उसे घसीट कर वह पलग पर ले गये। बिठाया, वह बैठी। बहुत कुछ कहना चाहते थे, कह न सके। कहा, रात तुम से दिल खोल कर बाते होगी। उन लोगो को कह दिया है—घर पर एक जरूरी काम छुटा जा रहा था, अभी-अभी याद आया, उसे सम्पन्न कर तुरत आऊँगा, आप लोग चलिए। वे चले गये है। अब तुमसे पूरी बाते करके, और तुमसे आज्ञा लेकर ही जाऊँगा। यो ही कितनी ही बाते कहकर, घर से बाहर गये।

और, उस रात मे! —मानो, उन्होने अपना कलेजा निकाल कर उसके सामने रख दिया—हाँ, एक वष की ही बात थी। कितु, आज स्पप्ट है कि चाहे जिसकी कमी से हो, जिसकी गल्ती से हो, तपस्या का फल नही मिला। अब क्या यह उचित है कि एक बार जिस काम मे हाथ डाल दिया गया, उसे सम्पन्न किये बगैर पीछे पैर दिया जाय ? घर की हालत खराब होती जा रही है, वे खुद भी देख रहे है। क्या उन्हे आखे नही, ज्ञान नही ? किन्तु, देश मे आज उन्ही का घर तो इस अबतर हालत मे नही। सारा देश ही ऊजड गाँव हो रहा हे। अगर उसमे एक घर सम्पन्न ही हुआ तो क्या ? अत एक घर को सम्पन्न करने की अपेक्षा, इस समूचे ऊजड गाँव को ही फिर से बसाने की क्यो न चेष्टा की जाय ? गाँव बसेगा, तो यह घर भी आप-आप बस जायगा। घरवालो को तो इतना ज्ञान नही, उन्हे तो अपनी ही हालत सूझती है, उन्हे समझाया जाय, तो कैसे ? किन्तु, उसे तो समझना ही चाहिए, वह सिफ सहचरी ही नही है, सहधर्मिणी है, अर्धागिनी है! उन्हे इस बात से आज प्रसन्नता हुई हे कि वह चीजो को समझने की चेष्टा कर रही है, वे अपने को धन्य समझ रहे है कि ऐसी पत्नी मिली। किन्तु, जो दिन आनेवाले है, वे शायद और भी अधिक परीक्षा के हो। अत, उसे पूरी तैयारी करनी चाहिए। अपने जीवन, अपनी भावना, अपनी बुद्धि सबको नये साँचे मे ढालने की कोशिश करनी चाहिए—आदि, आदि।

वे कहे जा रहे थे, वह सुनती जा रही थी। वह क्या बोलती भला ? यो बहुत देर तक दीन-दुनिया की बाते करते हुए, फिर उन्होने

विनोद की बाते छेडी,—अपने पूव-परिचित स्वभाव के अनुसार । कौन कह सकता था कि कुछ मिनट पहले इसी मुँह मे ज्ञान की वे अनमोल मुक्तायें झड रही थी—अब तो यहाँ सिफ फूल-ही-फूल बरस रहे थे ! फूल—रग, गध, देखो, सघो, खुश हो, मस्त हो। उसी मस्ती मे न जाने कब उसकी आँखे लग गई।

× × ×

और, सचमुच उसकी आँखे लग गई थी। दूसरे स्टेशन पर फिर एक बरात जब चढने का उपक्रम करने लगी, उस कमरे मे होहल्ला शुरु हुआ। उसने आँखे खोली। भीड देख बच्ची को सम्भाला। उस सोई हुई बच्ची को लेकर एक कोने मे सिमट कर बैठ गई। गाडी चली, दौडी, भागी। वह फिर अपनी पुरानी तस्वीरो की दुनिया मे जा पहुँची ।

१२. मातृत्व !

एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला गया था, उसके वे प्रधानाध्यापक थे। इस अध्यापन से पैसे तो कुछ इतने मिलते नही थे कि घर को सम्भाला जा सके। हाँ, घरवालो को, हित-कुटुम्ब को और उसको भी यह सन्तोष था कि आखिर उनकी जिन्दगी मे स्थिरता तो आई। विद्या है, योग्यता है, तो कभी-न-कभी उच्च स्थान प्राप्त करेगे ही। अभी यही सही। अध्यापक होने के बाद, उन्होने घर के काम-काज की ओर भी कुछ ध्यान देना शुरू किया। छुट्टियो मे आते, तो चाचाजी के बोझ को हल्का करने की कोशिश करते। कई पुराने कर्ज ऐसे थे, जो 'सइन' घाव की तरह, न-जाने कब से, बहते आ रहे थे। उनसे पीव ही नही निकलता था, जीवनी-शक्ति बही जा रही थी। ऐसे कर्जो को उन्होने हाथ मे लिया। घर के कुछ अनावश्यक खर्चो को कम कर, उपज की वृद्धि की ओर ध्यान देकर, को-अपरेटिव बक से कुछ उधार लेकर उन्होने उन कर्जो को सधा दिया। इस ऋण मुक्ति से घर मे थोडी पायदारी आई। लोगो की आशाये फिर पत्ते और कोपले लेने लगी।

और, अरे, वह कैसे कहे, कैसे बताये, कि उसके यौवन-तरु मे भी अचानक कोपल फूटी, मजरी निकली, बौर लगे ओर हाँ, टिकोरे के भी लक्षण स्पष्ट होने लगे ! ओहो, वह गभवती हो चली है !

गभ—मातृत्व का पावन प्रतीक, प्रेम का विजय-वैजयन्त ! जब नारी 'भोग' की दुनिया से हटकर 'साधना' की स्वभूमि मे पहुँच जाती है, जब 'काम' 'धम' मे परिणत हो जाता है, 'मोह' 'कतव्य' मे। जब आँखो का रस छाती मे घर करता है, जब होठो की ललाई दूध की उज्ज्वल धारा के रूप मे फूट पडती है। जब यौवन उन्माद के आवत्त से निकल कर मर्यादा की सीमा मे बँध जाता है। जब हाथ स्थिर हो जाते है, पैर भारी पड जाते ह। जब हवा मे तैरने-वाली नारी जमीन के लिए भी बोझीली बन जाती है, जब आसमान मे स्वच्छन्द विचरण करने की भावना घर की चहारदिवारी को भी बडा घेरा मानने लगती है। सक्षेप मे—जब 'पत्नी' 'माता' बन जाती है—बन्दनीय, अचनीय, नमस्य, प्रणम्य।

वह गभवती है—इस कल्पना ने उसमे एक साथ ही कितनी खुशी और कितनी जिम्मेवारी के भाव भर दिये । वह गभवती है—अब उसके एक शरीर मे दो प्राण बस रहे है। ! कितना आश्चर्य-

जनक ! और यह जो दूसरा प्राण है, वह कौन है ? क्या वह उनकी प्रतिमूर्त्ति नही है, जिस मूर्त्ति को वह इतने बरसो से—सुख मे, दुख मे, मिलन मे, बिछोह मे—अपनी आँखो मे बसाये हुई थी ! वही मूर्त्ति अब प्रत्यक्ष उसकी आँखो के सामने, मूर्त्तरूप मे, चलेगी, फिरेगी। उसके आनन्द का क्या कहना ? किन्तु, उस मूर्त्ति के पिड को नौ महीने तक अपने गर्भ मे लिये रहना, अपने प्राण-रस से उसका प्रतिपालन करना, कोई ऐसी हलचल न करना कि उस नन्हे-से मास-पिड को ज़रा भी सदमा पहुँचे और जब वह ससार का प्रकाश देखे, उसे मातृत्व की उन शत-सहस्र परिचर्याओं से पालना, पोसना, बढाना, अरे—वह किस तरह इन जिम्मेवारियो को निभा सकेगी, भला ?

वह विद्यालय मे थे। वह सोचने लगी, जब वे आवेगे, किस तरह यह सुसम्वाद उन्हे वह सुनायेगी ? क्या कहेगी, क्या कह कर बतला-येगी ? जब वे सुनेगे, उनके मन मे क्या भाव होगे ? जरूर ही आनन्द होगा उन्हे। किन्तु, जिम्मेवारियो के बोझ का उन्हे भी अनुभव होने लगेगा। अच्छा हाँ तो, अब वे घर की ओर ज्यादा ध्यान देगे ! घर-वाले को भुला सकते थे, उसकी उपेक्षा कर सकते थे। किन्तु, उसकी उपेक्षा कैसे करेगे, जो उन्ही की सृष्टि है, उन्ही की रचना है ? किन्तु, यह उपेक्षा का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? आज तक उन्होने क्या कभी किसी की उपेक्षा की है ? हाँ, कर्तव्य-बधन था। जहाँ दो कर्त्तव्य परस्पर टकराते थे, किसी एक ही का पालन तो कर सकते थे वे ? उन्होने यही किया। हाँ, यह बात जरूर है कि एक अबोध शिशु के साथ जो उनका कर्त्तव्य होगा, वह ज्यादा नाजुक होगा, अत, दो कर्त्तव्यो के चुनाव मे, इसकी ओर ही उन्हे पहले ध्यान देना होगा। दो कर्त्तव्यो का चुनाव !—तुरत उसका ध्यान अपनी ओर गया। अब उसके साथ भी तो यही सवाल होगा ! वह किसको तरजीह देगी—उन्हे, या इस आगन्तुक को ? उसने सुन रखा था, बाल-बच्चे वाली स्त्रियाँ पति के प्रति कुछ उदासीन हो जाती हैं। वे बच्चो मे इतनी तल्लीन हो जाती है कि पति को अपना पूरा प्रेम दे नही पाती। क्या उसपर भी यह बात लागू होगी ? नही, हर्गिज़ नही। वे बेवकूफ स्त्रियाँ होती है, जो इस तरह करती है। जिसका प्रेम सिर्फ हृदय की चीज़ न रहकर मूर्त्तरूप मे सामने नाचे, खेले, हँसे, तालियाँ दे, ता-थेई करे—उसके प्रति उपेक्षा या उदासीनता कहाँ से आयगी ? वहाँ तो प्रेम बढता ही जायगा—उसमे चार चाँद लग जायँगे !

अभी विद्यालय से उनके आने मे देर थी। इधर, उसका कुतूहल बढता ही जाता था। एक महीना तो उसने जैसे-तैसे काटा, किन्तु, दूसरा महीना आते ही, इस कुतूहल, उत्सुकता को उनसे छिपाये रखना उसके लिए असम्भव हो गया। आखिर, एक दिन एक चिट्ठी उसने उनके पास भेज ही दी — क्या किसी एतबार को, सिफ एक दिन के लिए, नही आ सकते ? एक जरूरी काम है। और, वह अगले एतबार को आ पहुँचे और आते ही पूछ बैठे—क्या है रानी ? क्यो बुलाया ? वह बोलने ही को थी कि फिर कहने लगे,—"म कहूँ, क्यो बुलाया है ? वाह री खुशखबरी—अपने को जप्त नही कर सकी ? तो, बधाई लो, खुश रहो"—कहते-कहते उन्होने उसे आलिगन मे आवद्ध कर लिया ! "मैंने सामुद्रिक पढा हे, रानी—किस तरह विना कहे ही सब बाते जान ली ?"

उसे सचमुच आश्चय हो रहा था, उन्होने यह जाना कैसे ? वे भी रहस्य को रहस्यमय बनाये जा रहे थे ? किन्तु, पीछे, उसकी समझ मे आया, यह चीज कैसे गुप्त रह सकती थी भला ? घर की औरतो से बच्चो के कान मे बात गई और उनकी जबान जहाँ जिसे न कह दे ? ननदे तो जसे बाट जोह रही थी। भया आये और उनके कानो मे बात पडी—मिठाई, गहने, और साडी की माँग के साथ।

इस शुभ सम्बाद ने उन्हे कितना हर्षित, पुलकित, आनन्दित किया ! हर महीने वे जरूर घर आने लगे—आखिरी दिनो मे तो हर रविवार को। जब आते, उसके शरीर का पूरा समाचार पूछते—खोद-खोदकर। जहाँ कुछ गडबडी मालूम होती, तुरत उपचार मे लग जाते। उन दिनो उसकी तबीयत भी अजीब हो रही थी। अवसाद का तो मानो उसके जीवन पर एकच्छत्र आधिपत्य हो गया था। जब खडी होती, बैठने की इच्छा होती, जब बैठी होती, तो लेटने की। नई-नई चीजो के खाने-पीने की लिप्सा तो होती, किन्तु, जब वे चीजे सामने आती, उकवाई आने लगती। जो वस्तुये उसे बहुत प्रिय थी, अब उनकी ओर आँख उठाने की इच्छा नही होती। चेहरे का रग उडा जा रहा, होठो पर पपडियाँ पर रही। जब कुछ दिन रह गये, हाथ-पाँव की क्या बात, उसकी पलको पर भी सूजन-सी आ गई थी। वे घर पर होते, तो ज्यादातर उसके निकट होते। हँसने-हँसाने की कोशिशे करते, बहलाने-टहलाने की चेष्टाये करते।

सयोग, जिस दिन प्रथम-प्रथम उसने इस पुत्ररत्न का प्रसव कर अपने को अतिसौभाग्य-शालिनी सिद्ध किया, उस दिन वे घर पर नही थे। यह घटित भी हुआ अचानक और अप्रयास। थोडी रात बीती थी। सबेरे कुछ खाकर—यो ही दो-चार कौर—वह आँख मूदे पलग पर पडी थी कि उसके पेड मे कुछ दद-सा मालूम हुआ। दद टीस मे बदला। वह उठकर बैठी। बैठा न गया। पलग के नीचे पैर खिसका कर वह खडा होना चाहती थी, कि उसे मूर्च्छा-सी मालूम हुई। पलग की पाटी पकड कर वह नीचे बैठ गई। एक जोर का वेग—उसके मुँह से चीख। उसके बाद—क्या हुआ, उसे पता नही। थोडी देर मे जब उसे होश हुआ, घर मे आनन्द-बधैया बज रहा था और उस कोलाहल मे एक मीठी-मीठी केहाँ-केहाँ की आवाज आ रही थी ! वह आवाज, और जैसे उसके समूचे शरीर मे जो भी जीवनीशक्ति थी, वह एकाएक उमड कर उसकी छाती मे आ गई और थोडी ही देर मे उज्ज्वल दुग्ध-धारा के रूप मे प्रवाहित होने लगी !

'बरही' का दिन—स्नानादि करा कर, पीली साडी पहना कर, उसे भोर की मीठी धूप मे आँगन मे बिठा दिया गया था। उसकी आँखो मे काजल की मोटी रेखा कर दी गई थी, उसकी माँग मे सिदूर की फैली फैली लकीर थी। उसने आईने मे अपने चेहरे को देखा, खुद नही पहचानी जाती थी। आँखे धँस गईं—गालो का रग क्या हुआ ? जब समूचे शरीर मे जर्दी-ही-जर्दी हो तो पीले रग की साडी से बढकर पहनावा क्या हो सकता था ? लेकिन, उस जर्दी के भीतर से जो आभा फूट रही ! इन धँसी आँखो मे जो उत्फुल्लता दीख रही है ! जरूर उसके शरीर मे खून की कमी हो गई है। किन्तु, उसकी गोद मे जो रक्त का एक सजीव पिड है, उसने तो मानो उसके सम्पूण जीवन को लाल बना रखा है। ऊपर जर्दी है, भीतर लालिमा खेल रही है। उसके बचे-खुचे खून मे नई रवानी है। उसके हृदय-सागर मे नई-नई तरगे अठखेलियाँ कर रही है। उसकी आँखे, उसका चेहरा, उसका शरीर, उसका सम्पूर्ण जीवन—आज हँस रहे है, विहँस रहे है ! उसी असीम हँसी के बीच 'वे' आँगन मे पहुँचे। वह शर्माई, घूँघट नीचे खीच ली, आँचल अच्छी तरह सम्भाला। उन्हे देखते ही ननदें किलक पडी, देवर उछल पडे। 'भैया इनाम लूँगी, भैया मिठाई दो'—का शोर मच गया। एक ननद ने बच्चे को उसकी गोद से ले लिया और बोली—पहले मुँह-देखाई, तब देखने दूँगी। वे भौचक

थे—आनन्द से या आश्चय से ? अपनी ही एक जीवित-जागरित प्रति-मूर्त्ति सामने देखकर किसे आश्चर्य नही होगा ?

उसकी गोद का लाल बढने लगा। उनकी ममता भी बढने लगी —कम-से-कम उसे तो ऐसा ही अनुभव होता। जब आते, बच्चे के लिए कुछ-न-कुछ लाते ही। बच्चे के साथ उसकी माँ को कभी नही भूलते। किसने कहा कि सन्तान होने के बाद दम्पती का प्रेम-बन्धन ढीला पडता है ? सन्तान तो एक मुहर है, जो प्रेम की बाजाप्तगी की ही नही, उसके अटूट, अचल और अकाट्य होने की भी सूचना देती है। दम्पती के प्रेम-वृत्त का सन्तान केन्द्र-विन्दु है। सन्तान धुरी हे, जिसपर स्त्री-पुरुष-रूपी दोनो पहिये चक्कर काटते है और इसी चक्कर के साथ-साथ जीवन-रथ को कतव्य-पथ पर बढाये चलते है। जब तक सन्तानरूपी धुरी मे न बँधे हो, ये पहिये कब, कहाँ ढुलक, गुडक जायँगे, कोई ठिकाना नही !

उसने अनुभव किया, सन्तान ने उन्हे और भी उसके निकट कर दिया है, दोनो के जीवन मे तारतम्य ला दिया है। आज भी वह देखती है, यह सन्तानो की ममता ही है कि उनका विद्रोही और वैरागी हृदय घर से सम्बन्ध जोडे हुए है। सन्तान होते ही, जब यशोधरा प्रसूति-गृह मे ही थी, बुद्ध घर छोडकर चल बसे। नही तो, शक है कि राहुल के दूध-भरे मुह की सोधी गन्ध सूघने के बाद वे जा भी पाते। यह सम्भव भी होता, तो जिस समय राहुल विना दाँत के मुँह से 'बा' कहकर उन्हे पुकार लेता, उसके बाद तो उनका जाना निस्सन्देह ही असम्भव पडता !

ज्यो-ज्यो बच्चे के अगो का विकास होने लगा, उसे लेकर कितनी रात क्या-क्या न बाते हुई। कभी उसके एक-एक अग का विश्लेषण होता—रानी, रग तो इसपर मेरा पडा हे, लेकिन, देखती हो, रग के भीतर बिल्कुल तुम-ही-तुम हो। ये आँखे—अरी, इसने तुम्हारी आँखो का किंचित भूरापन तक ले लिया है ! और यह नाक तो मेरी है नही। हाँ, होठ कुछ मेरे जरूर है, लेकिन इनकी ललाई भी तुम्हारी ही है। यो ही इस ललाट को मेरा कह सकती हो, किन्तु ये भवे और बाल—बताओ न तुम्हारे है कि मेरे। शरीर का गठन मेरा है, तो शौष्ठव तुम्हारा।

"लेकिन, माफ कीजिए, मेरे राजा, शरीर म मैं जहाँ भी होऊँ, न होऊँ, इसके भीतर जो आत्मा है, वह तो बिल्कुल आपकी है। शिशुता मे भी यह नटखटपन, यह जिद यह उहूँ, उहूँ, ये सब मेरे हो नही सकते।"—

"तो म नटखट हूँ—जिद्दी—क्यो ?" उन्होंने एक दिन हँस कर पूछा और उसने तुरत जवाब दिया—"इसी से पूछिए !" मुस्कुरा कर उन्होने एक मीठी चपत दी ! कितनी मीठी ! उसे मिठास मे मस्त देख उन्होने बच्चे को उठाकर किस तरह चूम लिया था ! वह चुम्बन किसके हिस्से का था, किसे दिया गया था ?

× × ×

वही बच्चा आज सामने बेंच पर बैठा है। उसने घूमकर उसकी ओर देखा। किस उत्सुकता और उत्कठा से वह उसके अग-प्रत्यग को देखने-परखने लगी। उसकी आखे, भवे, ललाट, नाक, होठ—किन-किन मे वे है ? वह यो घूर-घूर कर देखने लगी, कि उसे मालूम पडा, जैसे वे स्वय वहाँ बैठे हो। हाँ, वे ही तो है—कहाँ है फर्क ? बिल्कुल वे ही ! किन्तु, यह तो छलना है। इस समय तो वे उस पाषाण-पुरी मे होगे—किसी निर्जन, एकान्त कोठरी मे बैठे ! क्या उन्हे हमारी याद आती होगी ? नही आती होगी, यह वह मान नही सकती। तो, वह याद क्या उन्हे विकल नही बनाये होगी ? लेकिन हृदय, उनकी दुनिया मे जाकर अपने दुख को दूना नही बना ! चल, अपनी दुनिया देख—पुरानी, धुँधली, दर्दीली, तस्वीरो की दुनिया—

१३. तपस्या

जब उसने सोचा था, तूफान फट गया, आसमान साफ हो गया, उसमे वह आशा की सुनहरी रेखा भी देखने लगी थी, कि फिर यह अकस्मात क्या हुआ ?— यह अनभ्र वज्रपात !!

वह चौक पडी, चीख पडी, गिर पडी, बेहोश हुई। होश होने पर भी उसका दिमाग सॉय-सॉय कर रहा था—अरे, यह क्या ? षड्यत्र, खून, डकैती, बम, रिवाल्वर और वे ? वे और ये भयकर भयानक, भयावह चीजे ! नही, नही, ! हो नही सकता ? किसी ने यह दिल्लगी की है ! इन चीजो से उनका सरोकार ही कहॉ, जो इनमे वे गिरफ्तार किये जायेगे ? वे और खून ! जो मास तक नही खाते, वे आदमी का खून करेगे ? जिन्होने अपना घर लुटा दिया, मिटा दिया, वे दूसरे का घर लूटने जायँगे ? जिनका जीवन एक खुली हुई पोथी है, वह भला षड्यत्र, साजिश करेगे ? अपने कोमल हाथ की ओर देखकर जिन्होने कई बार कहा, रानी, ये सिफ कलम पकडने के लिए बनाये गये है, उसी हाथ मे बम, रिवाल्वर ! नही, बिल्कुल झूठ ! झूठ और झूठ !

किन्तु, यह बात सच थी कि इसी अभियोग मे वे गिरफ्तार कर लिये गये थे। उसकी अपनी परेशानी तो थी ही, घरवाले बदहवाश हो रहे थे। चाचाजी चादर से मुँह ढँककर जो सोये, तो तीन शाम तक बिस्तरे से उठे तक नही। घर मे खाना-पीना बन्द। एक ऐसी आग जल उठी थी जो घर के हर प्राणी के साथ समूचे घर को ही जलाने पर उतारू थी, फिर चूल्हा जलाने की किसे चिन्ता ? अडोस-पडोस के हित-कुटुम्ब दौडे-दौडे आये। उसके बाबूजी भी कई वर्षों पर पधारे ! भला, वे किस तरह इस जीवन-मरण के निणयात्मक अवसर पर अपनी प्यारी बेटी की सुध नही लेते ?

वह उनके पैर पकडकर फूट-फूट कर रोने लगी। यह पहली बार थी, जब उसने अपनी मम-व्यथा को ससार पर प्रगट होने दिया था। बाबूजी को भी धैय नही रहा—उनकी ऑखो से भी ऑसू बहे जा रहे थे। किन्तु, दूसरो मे और उनमे थोडा अन्तर था। जहॉ सभी धैर्य के साथ होश-हवास भी खो बैठे थे, वहाँ उन्होने हार्दिक व्यथा के बावजूद अपने मस्तिष्क का सतुलन ठीक रखा था। उन्होने चाचाजी को बिस्तरे से उठाया। घर मे रसोई का सिलसिला बँधवाया। फिर, सब

बातो को दरयाफ्त करने शहर की ओर चले। हमे समझाते गये—होनहार पर किसी का बस नही, किन्तु, हमे प्रयत्न तो करना ही चाहिए। मेरा यकीन है, वे निर्दोष है, किन्तु, आज के जमाने मे जिसपर जो आरोप न हो जाय! उनके ऐसे प्रसिद्ध और तेजस्वी व्यक्ति को फँसाने के लिए लाख चेष्टाये हो सकती है। किन्तु, हमे भी चेष्टा करनी चाहिए, कि उनकी निर्दोषिता प्रमाणित कर सके। अब सिर पीटने की जगह हमे थोडा हाथ-पैर चलाना होगा। मै देखता हूँ, असल बात क्या है ?

असल बात तो तह मे रह जाती है, नकल का बोलबाला होता है। दो वर्षों तक मुकदमा चलता रहा। अजीब सनसनीखेज चीजे सामने आई। जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती थी, वे ही बातें सत्य की तरह रखी गई। उस असत्य सत्य को असत्य सिद्ध करना कोई आसान काम नही था। बाबूजी प्राणपण से लगे हुए थे। रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा था। चाचाजी कज-पर-कज किये जाते। घर की हालत खराब हुई जाती। दो साल तक खेती-बारी की तरफ भी किसी का ध्यान न गया। उपज कम और खर्च ज्यादा, अत्यन्त कहिए। पहले से खोखला घर और भी खोखला हुआ जाता।

एक दिन बाबूजी आये, कुछ रुपये की तुरत जरूरत थी। चाचाजी ने कई जगह दौड-धूप की। रुपये मिलते नही थे। बाबूजी ने भी अपना हाथ खाली कर लिया था। क्या किया जाय—इसी चिन्ता मे वे थे। उसने उन्हे बुलाया और जब वे आये, उनके हाथ में एक पोटली रख दी। "यह क्या ? अरे, तुम्हारे गहने है ! नही दुलारी, नही। मुझसे यह नही होगा। मैं घर जाता हूँ, कोई उपाय करूँगा। कर्ज लूँगा। तुम्हारे गहने ?—मैं बेचूँ ? तू पागल हो गई है क्या ?"

"बाबूजी"—वह बोली—"मै कोई भोली बच्ची नही। बहुत देखा, बहुत सुना।" सब समझती हूँ। ये गहने नही है, मेरे पाप है। मुझे यकीन हो गया है मेरे पाप ही उन्हें इन सकटो में डाल रहा है। वे साधु है, पुण्यात्मा है। फिर भी वे जो इन झझटो मे फँस जाते हैं, मेरे चलते, मेरे पापो के चलते। मै अपने पापो को धोऊँगी, अपने अपने को जलाऊँगी, शुद्ध करूँगी ! जब तक मैं शुद्ध नही होती, उनका उद्धार नही होगा। मेरे पाप का बोझ उनकी धम की नैया को डूबाने पर तुली है। यह नही होने दूगी। ये गहने तो ऊपरी पाप है, मन मे जो लालसाये घुसी, छुपी है, उन्हें भी दूर करना होगा। आप पिता है,

मेरी मदद कीजिए। ले जाइए इन्हे, इन्हे बेचकर उनके काम मे लगा दीजिए। अगर आप न भी लीजिएगा, तो ये गहने मै रखूगी नही ! हॉ, यह मेरा निणय है। आप इस बाहरी पाप से मुझे मुक्त कीजिए, जिसमे भीतरी प्रायश्चित्त के लिए मै अपने को तैयार करूँ।'' वह यो ही बोलती जाती थी, और उसने देखा, उसके बाबूजी की ऑखो से ऑसू बहे जा रहे थे। उन्होने अन्तत पोटली उठा ली। जब वे चलने लगे, उसने कहा—देखिए, चाचाजी से यह मत कहिएगा!

उसके बाद उसने अपने को किन तपस्याओ मे जलाना शुरू किया ! नही, नही, सुकम को जिह्वा पर लाना नही चाहिए, उसका माहात्म्य समाप्त हो जाता है !

इन तपस्याओ के बीच उसके मन मे एक लालसा जगी। वह एक बार उनके दर्शन क्यो नही कर आती ? दर्शन करके अपने पापो को कम करेगी और साथ ही देखेगी कि दुनिया जिसे षड्यत्र, कत्ल और लूट कहती है, उनके चेहरे पर वे कहॉ छिपे है, किधर है ?

वह भी एक दिन था ! गोद मे बच्चे को लिये वह जेल मे पहुँची। जेल मे ही उनका मुकदमा चल रहा था। जज से हुक्म लेकर उसके बाबूजी उसे जेल के उस कमरे मे ले गये। जज अपने आसन पर बैठा था, सामने पेशकार कागज उलट-पुलट रहा था। दोनो तरफ के वकील पहुँच चुके थे ! किन्तु वे नही थे, जिनके लिए यह सब आयोजन था ! थोडी देर मे मधुर सगीत की एक स्वर-लहरी उस कमरे मे प्रवेश करने लगी, सगीत के साथ कुछ झन, झन, खन, खन भी। जज चौका। पेशकार चौकन्ना हुआ। वकीलो ने दरवाजे से बाहर देखना शुरू किया और थोडी ही देर मे बारह-तेरह नौजवान हाथ-पैर मे बेडी-कडी झनझनाते, गाते, कमरे मे दाखिल हुए !

और, वे वह है !—वह खडी थी, बरबस उसके पैर बढे और उनके चरणो मे वह गिरना ही चाहती थी कि बाबूजी ने बढ-कर उसे सजग किया ! यह क्या कर रही हो, यह कचहरी है ! वह खडी हो गई। ऑखो से अश्रुधारा फूट निकली ! गोद का बच्चा उसकी यह दशा देख, चीख पडा। वह चट बैठ गई और उसे ऑचल के नीचे करके उसके मुँह मे स्तन दे दिया। बच्चा चुप हो गया ! किन्तु, उसकी पापिनी ऑखे ! क्या वे ठीक से देखने भी नही देंगी ? आह रे उनका चेहरा !—दाढी-मूँछ और सिर के बाल बढ

गये है, काफी लम्बे—किन्तु उन काले बालो के बीच उनका शान्त सौम्य चेहरा और कितना उद्दीप्त हो चला है ! उसने पाया, उनके चेहरे का प्रकाश-वृत्त और भी बडा हो गया है ! उसकी ओर देखकर उनके होठो पर एक स्मित रेखा देखी गई, किन्तु, उनकी आँखे ? कुछ दूसरी ही बात उसने देखी, पढी ! और, उनके अगल-बगल मे ये जो नौजवान हैं—उनमे से कई को तो वह और भी कितनी ही बार देख चुकी है, वे उनके साथ उसके घर पर गये थे। उसने उन लोगो को खिलाया था, कई ने तो उससे दिल्लगिया भी की थी। वे सब कितने मस्त हैं। गप कर रहे, चिकोटियाँ काट रहे, मुस्कुरा रहे, हँस रह। क्या ये ही लोग खूनी है ? क्या इन्होने ही डकैतियाँ की है ? साजिश करनेवालो के चेहरे क्या ऐसे ही होते ह ? बम, रिवाल्वर से खेलन-वाले क्या इसी तरह खेलते ह ? नही, नही, सारा, इल्जाम गलत—सारी बात झूठ ?

टिफिन के वक्त जज से हुक्म लेकर उसने उनसे बाते की। वे उसके निकट आये। बाबूजी हट गये थे। आते ही उन्होन बच्चे की ओर हाथ बढाया। किन्तु, जब तक बच्चा उनके हाथो मे जाय, कि उनके साथियो मे से एक लडका—हाँ, वह लडका ही था—लपका और बच्चे को छीनकर ले गया। भाई-साहब, आप भौजी से बाते कीजिए, हम बच्चे से खेलते ह—एक न मुस्कुरा कर कहा। सब हँस पडे। बच्चे को हाथोहाथ लेकर वे खेलने-खेलाने लगे और वह उनके सामने चुपचाप खडी है। क्या बोले, क्या कहे ? उन्होने ही निस्तब्धता भग की—

"क्यो, घबरा गई हो ? ठीक, घबराने की बात ही है। सोचती होओगी, कैसा मैंने धोखा दिया। सच, धोखा तुम्हे शुरू से ही हुआ ! किन्तु, रानी, घबराने से क्या कुछ बन पडेगा ?—बिगडेगा ही। पर-स्पर आरोप लगाने से भी कुछ होने-जाने का नही। अब, तो चुपचाप देखना है, सहना है, भोगना है। सत्य प्रकाशित हो कर रहता है। किन्तु, सत्य को आच्छादित किया जा सकता है, कुछ देर के लिए ही सही ! अत, अवश्यम्भावी पर तर्क करना ही फिजूल है। कभी-कभी हमारी परीक्षा के लिए भी ऐसी चीजे आती हैं ? परीक्षा कडी भी हो सकती है। हो सकता है, हमारा सामूहिक पाप कुछ व्यक्तियो के निरपराध-रक्त से ही धोया जा सके ? दासत्व सबसे बडा पाप है, रानी !

तुम इतनी दुबली हो गई हो ? ठीक तो, दो परस्पर सलग्न आत्माये यो अचानक अलग कर दी जायँ और बीच मे ऐसी दीवाल खडी कर दी गई हो, जिसके ओर-छोर कुछ मालूम नही, तो, पीडा का होना लाजिमी है। और, हृदय की पीडा तो खून ही पीता है, मास ही खाता है। किन्तु, रानी, जव दो आत्माये तीसरी आत्मा के रूप मे अपने को स्वत परिणत कर ले, तब उनका यह भी कव्तय हो जाता है कि उसके लिए—कम से कम उस तीसरी आत्मा के लिए भी—अपने अस्तित्व को कायम रखने की कोशिश करे। तुम्हारा यह दुबला-पन बच्चे के लिए कितना हानिप्रद होता होगा, तुमने सोचा है ? मेरे लिए इतनी चिन्ता और उस अबोध के लिए ?

ओर, तुम लोगा ने यह क्या किया है ? चाचाजी तो पागल हो गये है, तुम्हे सोचना चाहिए। यो उजडे घर को दोनो हाथो से आप-आप उजाडना, यह क्या बात ? क्यो इतना खर्च ? किन्तु, तुम इस बारे मे सुनोगी नही ! अपने गहने तक बेच दिये ! बाबूजी कह रहे थे, रो रहे थे ! मै उन्हे क्या समझाता भला ?

सुना, मेरे लिए बडी-बडी साधनाये कर रही हो—व्रत, उप-वास, मन्नत, क्या-क्या न ? मै कैसे रोकू ! शायद तुम्हारी तपस्या घर को बचा ले ? मेरी तपस्या का फल तो यही है, जो मै भुगत रहा हूँ, भुगतूगा ? ! और यह तपस्या नही हे रानी, प्रायश्चित है ! कहोगी, मैने तो कोई अपराध नही किया, फिर प्रायश्चित कैसा ? अपना नही, अपने पूर्वजो का। और, प्रायश्चित्त जितना कडा होगा, पाप उतना जल्द कटेगा, पुण्य का उतना शीघ्र उदय होगा। घबराना नही, हमारी मुक्ति के दिन निकट आ रहे है। क्या तुम नही देखती ? मै तो देख रहा हूँ, उतना ही स्पष्ट, जितना यहाँ तुम खडी हो ”

वे बोले जा रहे थे। बोलते-बोलते और भी नज़दीक आ गये थे। उसके हाथो को अपने हाथ मे ले लिया था। वे चिर-परिचित हाथ—मालूम हुआ, वह फिर मँडवे पर बैठी है और उसका हाथ उनके हाथों मे है ! हाथो के स्पश ने ही जैसे उनके हृदय से उसके हृदय का सम्बन्ध जोड दिया। कान उनके शब्द पी रहे थे और हृदय उनके हृदय से सन्देशो का आदान-प्रदान कर रहा था। हृदय की भाषा के बाद जिह्वा का क्या काम ? वह चुपचाप खडी थी। वे शायद कुछ और कहते, किन्तु इसी समय टिफिन का वक्त पूरा हुआ। लोग कमरे मे आने लगे। उनकी ओर देख, जैसे उनकी आँख बचाते

हुए, एक बार उन्होने उसके चिबुक को पकड लिया और तुरत उसे छोड बोल उठे—अच्छा जाओ, मस्त रहना रानी। तब तक उनके साथी बच्चे को उनके नजदीक ले आये थे। बच्चे को हाथो मे लिया, एकाध बार चुमकारा ओर उसके हाथो मे देते हुए कहा—अपने लिए नही, इस बच्चे के लिए तो तन्दुरुस्ती पर ध्यान देना ! "भाई साहब, भौजी से थोडी हमारी बाते भी होन दीजिए"—उनके साथियो ने ठहाके के बीच कहा। किन्तु, तब तक जज अपने आसन पर आ चुका था और बाबूजी भी उसके नज़दीक आकर चलने का इशारा कर रहे थे। यद्यपि वह अपने को जप्त करना चाहती थी, किन्तु वह आप-से-आप झुक ही पडी उनके चरणो की ओर। ओर उसे लपक कर उठाते हुए, एक ही सेकड के लिए ही सही, उन्होंने उसे आलिगन मे ले लिया। वह आकस्मिक आलिगन—उसका समूचा शरीर कदम्ब-सा फूल उठा !

जब वह घर लौट रही थी !—क्या एक मिनट भी उसके आँसू रुक रहे थे ? इनमे से किसी को फॉसी हो सकती है, किसी को कालापानी ! ये हँसते-खेलते लोग ! इनमे से किसी को, सूत की मोटी डोर से गला कसकर, दम घुँट कर, मार डाला जायगा, किसी को सात समुन्दर पार घुल-घुल कर, तिल-तिल कर, मरने को लाचार किया जायगा ? ये हँसते-खेलते लोग !—क्या इनका परिणाम यही होना था। और, 'वे'—कौन कहे, उनका क्या हो ? फिर भेट हो या विधाता विधाता!

× × ×

उसने आँखे खोल दी। उसकी आँखो से अनवरत आँसू आ रहे रहे है और गाडी तेज़ी से भागी जा रही है। जिस तरह दु स्वप्न से घबरा कर आदमी, ऑखे खोलने पर भी स्वप्न से इस तरह अभि-भूत रहता है कि अपनी जाग्रत स्थिति पर भी उसे सन्देह होता है, वह कॉपता है, चीखता है, चिल्लाता है, ठीक वही हालत उसकी हो रही थी ! उसका हृदय इतना आन्दोलित था, उसका दिमाग इतना परेशान था, कि उसे भान नही था, वह कहाँ है ? झटपट उसने आचल से आँसू पोछे और डब्बे की रोशनी की ओर देखने लगी—ठीक उसी तरह, जिस तरह स्वप्नाभिभूत व्यक्ति रोशनी देखना चाहता है। डब्बे में कुछ नई सूरते थी, जो उसकी ओर न-जाने क्यो घूर-घूर कर देख रही थी। उसका स्वप्न-भग तो हुआ, किन्तु, वह उनकी इस बेहूदगी को बर्दाश्त नही कर सकी। फिर मुँह फेर कर डब्बे से बाहर देखने लगी और उधर देखना था कि

१४. भिखारिन

उसके सिंदूर का भाग्य—वे छूट गये, बेदाग छूट गये। हाँ, ऊपर की अदालत तक जाते-जाते इस परीक्षा मे ढाई वष से ऊपर लग गये।

वे लौटे, उसका सुहाग लौटा। और, अब उसका एकमात्र सहारा तो यह सुहाग ही था न ?

चाचाजी ने कुछ ऐसा शोक धर लिया कि वे चल बसे ! उनका चलना कि घर का रहा-सहा शीराजा भी बिखर गया। घर की यह हालत देखकर उन्हे सदमा नही हुआ, यह नही। किन्तु, एक दिन चर्चा चलने पर बोले—

"रानी, हम वैसे माँझी है, जिसने अपनी नाव जला डाली हो। नाव जल गई, सामने समुद्र लहरा रहा है और उसकी हर लहर हमे निमत्रण ही नही दे रही, बल्कि हमारा आह्वान कर रही ! हम निमत्रण की उपेक्षा कर सकते थे, किन्तु आह्वान की उपक्षा तो पौरुष का अपमान होगा। हम उसमे धसेगे, उसे पार करेगे। यह शरीर ही नाव बनेगा, भुजाये ही पतवार होगी। नाव पर हम मन-चाहा सामान लाद सकते थे, अब एक सेर ज्यादा बोझ-भी हमे लहरो के नीचे ला देगा। कभी साधनहीनता बुरी होती है, कभी भली। कभी सम्पन्नता सुख-शान्ति का कारण होती है, कभी जीवन का काल। हम साधन-हीन, सम्पत्तिहीन हो रहे है, होते जायँगे, किन्तु हमने जो शपथ ली हे, उसे देखते हुए, इस स्थिति पर सन्तोष ही करना अच्छा ! किन्तु, मै मानता हूँ, इस सन्तोष की स्थिति मे मस्तिष्क को ले आना आसान नही। पुराने सुख हृदय मे काँटे बनकर गडेगे, पुरानी मौज दिल को बेचैन बनायगी। ये ही परीक्षा के दिन होगे—मेरे लिए, तुम्हारे लिए, घरवालो के लिए। मै उत्तीण हो सकता हूँ, तुम जरूर उत्तीण होगी, किन्तु, ये भोलेभाले लोग ! अत, अब एक ही करना है, जहाँ तक बन पडे, साधना की धूनी रमाई जाय और इन्हे सुख से रखने को कोशिश की जाय। मुझे उम्मीद है, तुम मेरे इस असाध्य साधन मे सहायक बनोगी।"

वह सहायक बनती, बनने की उसने कोशिशे की है—किन्तु न-जाने क्यो, ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते है, वियोग की कल्पना भी उसे

बेतरह अखरने लगी है। आप घर रहिए, मैं सब सह लूगी, कर लूगी, —एक दिन उसने कहा भी उनसे। वे सुनकर मुस्कुरा पडे—"रानी, तब तुम फिर मुझ से घर बसाना चाहती हो। मुझे मेरे कतव्य-पथ से मत हटाओ मेरी रानी ! स्थानभ्रप्ट व्यक्ति कही का नही रहता है—न घर का, न घाट का ! मनुप्यता को श्वान-वृत्ति मे पटक देना, रानी, कम-से-कम मेरी अद्धागिनी के लिए शोभनीय नही !"

उसने देखा, "मेरी अर्द्धांगिनी" कहते हुए उनकी आँखे अभिमान से चमक पडी थी और उस चमक ने उसकी कमजोरी को, कुछ देर के लिए ही सही, न-जाने कहा भगा दिया था !

तरह-तरह के अन्दोलन चलते रहे, सबमे उनका सिर्फ हिस्सा ही नही, हाथ होता। और, परिणामस्वरूप बार-बार जेल-यात्राये करनी पडती। आज जब वह हाथ की उँगलियो पर उनकी जेल-यात्राये गिनना चाहती है, गिन नही पाती।

इधर नोनी लगी दीवारे और घुन लगे खम्भे एक-एक कर गिरने का उपक्रम कर रहे थे। जो कसर थी, भूकम्प ने पूरी कर दी। घर गिर गये, खेती बर्बाद हो गई, बाढ और बीमारी ने सब कुछ चौपट कर छोडा !

जहाँ पहले इमारत थी, वहाँ ऊँचा-सा ढूह बना है। उस ढूह पर कुछ छोटी-छोटी झोपडियाँ है—बाँस की दीवार, फूस का छाजन। छोटा-सा घर-आँगन। उस छोटे-से आँगन मे एक बडा-सा परिवार। ऐसा परिवार जिसे भूत ललचाता है, वर्तमान समझाता है, और भविष्य ? उसकी चर्चा ही व्यर्थ।

सक्षेप मे जो रानी थी, वह भिखारिन हो गई।

एक बार की बात उसे याद है। वे एक वष के लिए जेल गये थे। यह एक वर्ष उसने कैसे बिताया था ? चाचाजी के बाद, 'उनकी' गैरहाजिरी मे, वही घर की मालकिन हुई। देवर नाबालिग , घर की स्त्रियो की जैसे मत मारी गई। घर-बाहर उसे ही देखना पडता। उस साल फसल बिल्कुल खराब गई। कर्ज वालो के तकाजे इतने थे कि नये कर्ज की चर्चा ही फिजूल थी। गहने बिक चुके थे। वह क्या करे ? सिफ एक साडी पर उसने एक साल बिता दिया था !

एक साडी पर एक साल ?

घर की औरतो और बच्चो के तन ढँकने के बाद उसके लिए सिफ एक साडी ही तो बच गई थी।

जब वे लौटे, एक दिन कोई प्रसग आया, उसकी ज़बान से यह चर्चा निकल पडी। सुनकर बहुत ही विषण्ण हुए। उसे अफसोस हुआ, कहाँ से उसने कह दिया। उसने देखा, कई दिनो तक रह-रह कर उनका चेहरा उदास हो जाता। बाते करते होते, हँसते होते, हँसाते होते, बच्चो को खेलाते होते, उनसे खेलते होते—अचानक, जैसे उनके चेहरे पर स्याही दौड जाती। हँसता हुआ फूल मुरझा उठता ! उसने कई बार पूछा, ऐसा क्यो ? जब वह पूछती, वे मुस्कुराने की चेष्टा तो ज़रूर करते, किन्तु, यह कृत्रिम हँसी उनके चेहरे की स्याही को और भी सघन कर देती।

लेकिन, क्या इसने भी उन्हे उनके माग से विचलित किया !

याद है, कई बार कुछ बडे नेता उसके घर पर आये। उनसे बार-बार आग्रह किया—असेम्बली के लिए खडे होइए, डिस्ट्रिक्ट-बोड मे चलिए, चेयरमैनी कबूल कीजिए, किन्तु, उन्होने किस उपेक्षा और घृणा से उनकी 'देन' को ठुकरा दिया ! सुनती हो रानी, सत्य-युग मे तपोभ्रष्ट करने को राक्षस या अप्सराये आती थी। कलियुग की सब बाते विचित्र है न ? इस ज़माने मे हमारे बुजुग ही हमे दलदल मे घसीटना चाहते है ! क्या तमाशा है, कुत्ते लोहे की जजीर को अपनी जीभ से चाटते-चाटते अपनी जीभ से ही निकले खून मे स्वाद अनुभव कर जोरो से जीभ चलाये जा रहे है ! दुनिया मे आत्मवचना से बढकर कोई बडा अभिशाप नही है, रानी !

"और इस युग मे ज़्यादा तो ऐसे ही लोगो की सख्या है न ?" —उसके मुँह से निकला ! शायद उसमे थोडी कमज़ोरी आ गई थी !

"इसीलिए तो, जो थोडे-से लोग इन्हे बुरा समझते है, उन्हे ज्यादा-से-ज्यादा आत्मत्याग दिखाना चाहिए। जहाँ तक और सीख काम नही करते, वहाँ उदाहरण ही एकमात्र उपाय बच जाते है रानी ! जब सब चिराग गुल हो रहे हो, तो, जिनके पास बचे-खुचे तेल-बाती है, उन्हे कजूसी नही करनी चाहिए। प्रकाश होने दो, प्रकाश ! रानी—मुहूर्त्तं ज्वलित श्रेय नच धूमायित चिरम् !"

उसने देखा था, उनकी दोनो आँखे यह कहते-कहते दो जीवित मशाल बन रही थी—निर्धूम, उज्ज्व, प्रोज्ज्वल !

किन्तु उन उज्ज्वल आँखो मे सिफ ज्वाला ही नही है—वहाँ करुणा की निझरिणी अनवरत अठखेलियाँ करती है, यह भी वह जानती है। शायद करुणा की अधिकता ही ज्वाला मे परिणत हो गई है। तरल पानी ज्यादा शीत पाकर कठोर बफ बन जाता है—ऐसी सख्त कि उसपर इस्पात की धार भी भुथरी हो जाय। किन्तु, इसका मतलब यह कदापि नही कि उसकी तरलता खत्म हो गई। बम, सिफ, थोडी गरमी चाहिए, फिर पानी-पानी है—तरल, कोमल, शीतल, सुखद !

उसने उनके जीवन को देखा है परखा है, और हमेशा यही पाया है। इस परिवार—एक-एक प्राणी—के लिए उन्हे कितनी चिन्ता रहती है। और ये बच्चे !—जिस समय वे इन बच्चो मे होते, कौन कह सकता है कि यही वह व्यक्ति है, जो कतव्य की पुकार पर इन बच्चो की परवाह किये विना बडे-से-बडा सकट लेने को तैयार होता है ! जब तक बच्चे हॅसते, उनके बीच वे यो हँसते कि यह पार पाना मुश्किल कि किसकी हँसी ज्यादा मासूम है—बच्चो की या उनकी ! किन्तु, ज्यो ही इन बच्चो की तबीयत जरा भी अलील हुई, कहाँ गई हँसी ?—यो सेवा उपचार मे व्यस्त रहते कि शक होता, वह बच्चो की माँ है, या वे ?

यही नही, अपने शरीर पर फटा कुर्त्ता वे फख्र से रखते—पेबन्द से उन्हे जैसे प्रेम हो गया हो। किन्तु, जब कभी बच्चो के कपडे फटे देखते, जैसे उनकी छाती फट जाती ! और, यदि कभी गाँव के किसी यज्ञ-उत्सव पर, या किसी पव-त्यौहार पर बच्चे नये कपडे के लिए जिद करते, तब तो वे कट-से जाते ! बच्चो को हँस कर बहलाते, किन्तु, उनके हृदय मे कौन-सा हाहाकार मच जाता, क्या वह नही परखती ?

माता के हृदय के लिए जरूरी नही कि छाती पर दूध के दो घडे ही रखे हो !

किन्तु, वह कहाँ बहकी जा रही है ? वह अपनी तस्वीर भूली जा रही है, उसके बदले वह उनकी-ही-उनकी तस्वीर देख रही है !

उसकी तस्वीर—उनकी तस्वीर ! अब वह जिन्दगी के जिस छोर पर पहुँची है, क्या वहाँ कही भी दो तस्वीरे नजर आती है ? वह अपने को अब कहाँ पा रही है ? चेष्टा करके भी वह अपने

को अगर पा सकती ? अब तो वह चारो ओर उन्हे-ही-उन्हे पा रही है। अगर उसका अस्तित्व बचा रहता, तो क्या वह उन सकटो को झेल सकती, नही-नही, उन सकटो से खेल सकती, जो जिन्दगी की इस ढलती बेला मे एक-पर-एक उसपर गिरते रहे है ! अब तो वह उस जगह पहुँच गई हे, जहाँ दद दवा बन जाता है, निदान उपचार मे परिणत हो जाता है !

यह उन्ही की महिमा है, उन्ही का प्रताप है !

किन्तु, इस एकात्मता ने जहाँ ऐसा वरदान दिया है, वहाँ इसका एक दुखद पहलू भी है।

अब उसने हर दुख को उनकी नज़रो से देखना शुरू किया है। इसलिए, अपना दुख भूलकर भी, वह दुखो की दुनिया से अपने को विलग नही कर पाती। यह छोटा-सा उदाहरण। आज वह इतना दुखित क्यो है ? क्या सिफ अपने दुख से ? नही, बार-बार उसका ध्यान जाता है उनकी ओर, जो इस आधी रात की निस्तब्धता मे भी, उस एकान्त कोठरी मे जगे हुए बैठे हागे ! बैठे, सोचते—न जाने, इस घटना को रानी ने कसे लिया हो ? न मालूम, बच्चो ने क्या महसूस किया हो ?

वह छोटी-सी साडी वाली बात ! उन्होने न-जाने हृदय के किस कोने मे उसे बद करके रख छोडा था और इस बार जब गिरफ्तारी की चर्चा सुनी, सबसे पहला काम यह किया कि बाजार गये और साडियो का एक बडल ही खरीद कर घर मे रख दिया। आपने यह क्या किया ?—उसके पूछने पर उन्होने सिफ मुस्कुराते हुए इतना कहा—एक वर्ष के लिए ये साडियाँ शायद काफी होगी !

× × ×

"भौजी, आनेवाले स्टेशन पर उतरना है, सामान दुरुस्त कर लिया जाय"—उसके देवर ने कहा। और भी मुसाफिर अपने सामान ठीक कर रहे थे। इसी स्टेशन पर उतरना है—इस बात ने उसे काफी सन्तोष दिया, क्योकि वह अब तस्वीरो की उस दुनिया मे पहुँच चुकी थी, जहाँ बाहरी आकार नही होते, टेढी-मेढी लकीरो के भीतर अस्पष्ट, धुँधली भावनाये होती हैं—आँसुओ मे पली, उच्छ्-वासो में खेली, जो देखनेवालो के लिए खेलवाड होती है किन्तु सम-झनेवालो के लिए मौत ! जिनकी व्याख्या की नही जा सकती, जिन पर टीका हो नही सकती

ग. एतद्ध

देखिए, वह स्टेशन से एक घोडागाडी देहात की ओर चली जा रही है।

वे ही सब-के-सब। बच्ची के हाथ में झुनझुना है, वह बजा रही है, किलक रही हे। बच्चा बिस्कुट कुतर-कुतर कर खा रहा हे। बडा लडका रास्ते की चीजो की ओर बच्चे का ध्यान बार-बार आकृष्ट करता हे। नौजवान समझता ह, बच्चो का गार्जियन वही हे, क्रमश सबकी ओर ध्यान देता, सबकी ख्वाहिशे पूरी करता और सबका जी बहलाता, वह खुद भी इन्ही मे बहला हुआ है।

किन्तु, वह स्त्री ? उसके शरीर को घोडागाडी ढोये ले जा रही है, घर की ओर , किन्तु, उसका मन कहा हे ? हृदय कहाँ है ? उसकी आँखो से पूछिए—उन आँखो से जिनकी पलके सूजी हुई हे और जिनकी पुतलियाँ इस तरह अचचल हो रही ह, जैसे उनमे जान ही नही हो। रास्ते के ये पेड-पौधे, बाहर के ये खेत-खलिहान, ऊपर की यह गाडी की छत, बगल के ये बच्चे—क्या उसकी आँखो मे इनमे से किसी की भी प्रतिच्छाया है ?

जो उसकी आँखो मे, हृदय मे, मन मे, नस-नस मे रमे हुए है, वे इस समय कहाँ है ?

भेट न हुई, न हुई। उन्हे देखे कोई ज्यादा दिन नही हुए। यही पाँच-छ महीने तो हुए उन्हे इस बार जेल आये। भरी जवानी मे इससे दुगने, तिगुने, चौगुने दिनो तक उन्हे नही देखकर भी वह धैय रख सकी, किन्तु आज उसे क्या हुआ जा रहा है ? लोग कहते है, जवानी ढलने पर प्रेम का ज्वार भी भाटे मे पहुँच जाता है। तो फिर, उसके हृदय में यह ज्वार-ही-ज्वार क्यो हाहाकार कर रहा है ? समुद्र का ज्वार भी अपनी मर्यादा का ज्ञान रखता है। लेकिन, यहाँ यह क्या हो रहा है ?

सामने बच्चे है, एक तो काफी सयाना हे। क्या वह इन बातो को नही समझता होगा ? फिर, वह मन-ही-मन क्या कहता होगा ? उसका यह देवर—वह देख नही रही, वह उसकी इस खिन्नता से कितना उद्विग्न है ? वह भी क्या सोचता होगा—भौजी को यह क्या हो गया है ? और रास्ते के ये चलने वाले पथिक—जो औरत

को देखते ही घूरने लगते है, क्या कहते होगे ? नही-नही—यो, आम-रास्ते पर अपनी मर्यादा को लुटाना मुनासिब नही।

किन्तु, वह करे तो क्या करे ? तक से अपने दिमाग को तो वह कुछ स्थिर कर पाती है, किन्तु, यह कम्बख्त दिल—रह-रह कर जैसे वहाँ एक बिजली चमक जाती है, वह काँप उठती हे, उसके होठ हिल जाते है, उसकी आँखे बरसने लगती है। यह उसका क्या उपचार करे ?

आँसू आँसू, आसू ! ज्वार, ज्वार, ज्वार ? भँसा ले जाओ, तुम जहाँ चाहो ! बेभरम तो कर ही डाला, अब रहम की जरूरत क्या ?

शीतल छाया। घोडे पसीने-पसीने। सत्तू की दूकान। गाडीवान घोडे को आराम दे रहा है, सत्तू पिला रहा है। गद्दा डालकर गाडी के यात्री उसपर बैठे है।

नोजवान उस देहाती पान की दूकान पर चला गया हे। लडका भी उसके साथ है। बच्ची सो गई है। छोटे बच्चे से वह स्त्री दिल बहला रही हे। इतने मे वह चिल्ला उठा—पडुक, पडुक !

पडुक, पडुक। वह उसकी ओर दौडा। स्त्री ने देखा—दो पडुक, वैसेही, जैसे बचपन मे उसने देखा था। धूसर पख, काले बुदे, गले मे नीली-सी रेखा, चमकीली गोल आँखे, सुन्दर लम्बी चोच—दोनो पडुक अगल-बगल चुग रहे ! बच्चे के पैर की धमक से चौकन्ने हुए, उडे और डाल पर जा बैठे। जब वे उडे, उनके चारो पख इस तरह हवा मे हिलकोरे दे रहे थे, मानो, वे एक ही कल के चार पुज हो।

ये पडुक—और इनका प्रेम। एक साथ जन्मे, एक साथ बढे, और एक साथ ही चल देगे, या तो साथ-साथ या एक दूसरे के वियोग मे बिसूरते !

और मनुष्य !—

अभिशापित प्राणी ! बचपन मे वियोग, जवानी मे वियोग, बुढापे मे वियोग। जीवन मे वियोग, मृत्यु मे वियोग। भोग के लिए तुमने क्या-क्या नही किया ओ मानव ? किन्तु मिला वियोग, वियोग ! सुख की खाज मे हमेशा दुख पाया तुमने।

भुजाओ से तुम्हे मन्तोष नही हुआ, पख बनाये। उडे तो, किन्तु, गिरे ऐसे कि भुजाये भी न रह गई।

कन्दरा या खोढर से तसल्ली कहाँ, प्रकृति पर विजय करना चाहते थे, प्रकृति के गुलाम बने ! जमीन पर स्वग बसाना चाहा, उसे नरक बना डाला ! बडे-बडे महल बनाये । बनाये, लेकिन, वे ही महल तुम्हारे कैदखाने हो रहे ह। तडपा करो उनमे—कुछ कैदी कहलाते हुए, कुछ अपने को स्वतत्र मानते हुए !

तडप, तडप ! चीख, चीख ! जहाँ देखो, तडप, चीख !

और, पडुक स्वच्छन्द विचर रहे है, मस्त ह। पखो के पर, ककड के भोजन, प्रेमी-प्रेमिका का अहर्निश सग।

यो ही वह सोचे जा रही थी कि उसने देखा, उसका छोटा बच्चा पडुक के पीछे दौडा जा रहा है। वे इस डाली से उस डाली पर, इस टीले से उस टीले पर बैठ रहे है और वह उनके पीछे बेतहासा भागा जा रहा है !

वह खडी होकर उसे पुकारना चाहती थी। कि—

कि उसके पैर लडखडा गये, समूचा शरीर झनझना उठा, उसने पाया, उसे गश आ रहा है, वह गिरने-गिरने को है, झट बैठने का उपक्रम करने लगी।

किन्तु क्या बैठ सकी ? गद्दे पर लुढक-सी गई। उसका देवर अलग से देख रहा था, वह दौडा, बडा लडका दौडा। दोनो नजदीक आये—भौजी, क्या हुआ ? मैया, क्या हाल ?

उसने आँखे खोली—"कुछ नही—जरा पानी "

काका और भाई को दौडते देख, छोटा बच्चा भी पहुँच चुका था। पसीने से तर उस बच्चे को गोद से सटाते हुए, उसने फिर आँखे बन्द कर ली !

—

उन हाथो मे

जिनकी

हथेलियो मे दिमाग

और

अगुलियो में आखें

हो

और

जिनकी कलाइयो में

किसी प्रकार

की

जजीर

न

हो।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

पुस्तक ★ आन्दोलन

यह पुस्तक है और आन्दोलन भी।

पुस्तक, जिसमें मेरी कुछ नई कृतियाँ सग्रहीत है। मुख्यत शब्दचित्र जिनके लिए मुझे अनायास प्रसिद्धि प्राप्त हो गई है।

ये शब्दचित्र, पिछले शब्दचित्रो से भिन्न है—छोटे, चलते, जीवत! मैंने कहा—हैंड कैमरा के स्नैपशॉट, आलोचक ने उस दिन डाँटा—हाथीदाँत पर की तस्वीरें!

इतनी हिम्मत नहीं कि आमीन कहूँ। आप ही देखें, दोनो में कौन है ये?

और, कुछ अन्य फुटकर चीजें, जिनका वर्गीकरण मैं स्वय नहीं कर पाता। रचनाकार का यह काम भी नहीं, आलोचक इसे लेकर मगजपच्ची करे।

यह हुई पुस्तक।

और आन्दोलन—जो हमें भौतिकता की अधगुफा से उठाकर सास्कृतिक धरातल की ओर ले जाय।

जो सघर्ष के बीच भी हमें सौन्दर्य देखने की दृष्टि दे।

पैर कीचड को ठेलते बढ़ रहे हो, किन्तु आँखें इन्द्रधनुष पर जमी हो।

क्या कहा—पलायनवाद!

अरे, कहीं भागनेवाला भी इतनी दूर देख सकता है, इस तरह देख सकता है?

अपने पैर मैं देख रहा हूँ—जरा तुम अपने भी देखो?

कहीं वे ही तो पीछे नहीं भाग रहे है!

मेरे नन्हे साथियो, कला के क्षेत्र को वाद-विवादों का अखाडा न बनाओ, अपने भीतर की गन्दगी से उसे गन्दा न करो!

सत्य ढूँढो, शिव ढूँढो, सुन्दर ढूँढो।

सुन्दर—यहीं कला अन्य क्षेत्रो से पृथक् होती है!

जो सौन्दय देख सके, परख सके, तुम्हे ऐसे नेत्र मिलें, शीघ्र मिले।

इसी कामना में—

श्रावण, १९५० श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

पुनश्च—

इस नये सस्करण में पाँच चीजें और जोड दी गई है, जो सर्वथा इसी के योग्य थीं। यह सस्करण अब पहले से अधिक, अपने नाम को सार्थक करता है।

श्रावण, १९५३ श्री रा० बे०

गेहूँ बनाम गुलाब

गहू हम खाते है, गुलाब सूँघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से हमारा मानस तृप्त होता है।

गेहूँ बडा या गुलाब ? हम क्या चाहते है—पुष्ट शरीर या तृप्त मानस ? या पुष्ट शरीर पर तृप्त मानस !

जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर। क्षुधा, क्षुधा, पिपासा, पिपासा। क्या खाये, क्या पीये ? माँ के स्तनो को निचोडा, वृक्षो को झकझोरा, कीट-पतग, पशु-पक्षी—कुछ न छूट पाये उससे !

गेहूँ—उसकी भूख का काफला आज गेहूँ पर टूट पडा है। गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ !

मैदान जोते जा रहे है, बाग उजाडे जा रहे है—गेहूँ के लिए !

बेचारा गुलाब—भरी जवानी मे कही सिसकियाँ ले रहा है! शरीर की आवश्यकता ने मानसिक वृत्तियो को कही कोने मे डाल रखा है, दबा रखा है।

× × ×

किन्तु, चाहे कच्चा चरे, या पकाकर खाये—गेहूँ तक पशु और मानव मे क्या अन्तर ? मानव को मानव बनाया गुलाब ने ! मानव, मानव तब बना, जब उसने शरीर की आवश्यकताओ पर मानसिक वृत्तियो को तरजीह दी !

यही नही, जब उसके पेट मे भूख खाँव-खाँव कर रही थी, तब भी उसकी आँखे गुलाब पर टँगी थी, टँकी थी।

उसका प्रथम सगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की मे कूट-पीस रही थी। पशुओ को मारकर, खाकर ही वह तृप्त नही हुआ , उसकी खाल का बनाया ढोल और उनकी सीग की बनाई तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव मे पतवार का पख लगाकर जल पर उडा जा रहा था, तब उसके छप–छप मे उसने ताल पाये, तराने छोडे ! बास से उसने लाठी ही नही बनाई, वशी भी बजाई !

रात का काला-घुप्प पर्दा दूर हुआ, तब वह उच्छ्वसित हुआ सिर्फ इसलिए नही कि अब पेट-पूजा की समिधा जुटाने मे उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनन्द-विभोर हुआ ऊषा की लालिमा से, उगते सूरज की शनै–शनै प्रस्फुटित होनेवाली सुनहली किरणो से, पृथ्वी पर चमचम करते लक्ष-लक्ष ओस-कणो से ! आसमान मे जब बादल उमडे, तब उनमे अपनी कृषि का आरोप करके ही वह प्रसन्न नही हुआ , उनके सौन्दर्य्य-बोध ने उसके मन-मोर को नाच उठने के लिए लाचार किया– इन्द्रधनुष ने उसके हृदय को भी इन्द्रधनुषी रगो मे रँग दिया !

मानव शरीर मे पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सब से ऊपर ! पशुओ की तरह उसका पेट और मानस समानान्तर रेखा मे नही ह ! जिस दिन वह सीधे तनकर खडा हुआ, मानस ने उसके पेट पर विजय की घोषणा की !

गेहूँ की आवश्यकता उसे है, किन्तु, उसकी चेष्टा रही है गेहूँ पर विजय प्राप्त करने की ! प्राचीन काल के उपवास, व्रत, तपस्या, आदि उसी चेष्टा के भिन्न-भिन्न रूप रहे है !

× × ×

गेहूँ और गुलाब

जब तक मानव के जीवन मे गेहूँ और गुलाब का सतुलन रहा, वह सुखी रहा, सानन्द रहा !

वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था। उसके श्रम के साथ सगीत बँधा हुआ था और सगीत के साथ श्रम।

उसका साँवला दिन मे गाये चराता था, रात मे रास रचाता था।

पृथ्वी पर चलता हुआ, वह आकाश को नही भूला था और जब आकाश पर उसकी नजरे गडी थी, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर है !

किन्तु, धीरे-धीरे यह सतुलन टूटा !

अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोडनेवाले, थकानेवाले, उबाने वाल, नारकीय यत्रणाये देनेवाले श्रम का—उस श्रम का, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शान्त न कर सके।

और, गुलाब बन गया प्रतीक विलासिता का—भ्रष्टाचार का, गन्दगी और गलीज़ का ! वह विलासिता—जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी !

अब उसके साँवले ने हाथ मे शख और चक्र लिये। नतीजा—महाभारत और यदुवशियो का सर्वनाश !

वह परम्परा चली आ रही है ! आज चारो ओर महाभारत है, गृहयुद्ध है—सवनाश है, महानाश है !

गेहूँ सिर धुन रहा है खेतो मे, गुलाब रो रहा है बगीचो मे—दोनो अपने-अपने पालन-कर्त्ताओ के भाग्य पर, दुर्भाग्य पर—!

× × ×

चलो, पीछे मुडो। गहूँ और गुलाब मे हम फिर एक बार सतुलन स्थापित करे !

किन्तु मानव क्या पीछे मुडा है, मुड सकता है ?

यह महायात्री आगे बढता रहा है, आगे बढ़ता रहेगा !

और क्या नवीन सतुलन चिर-स्थायी हो सकेगा ? क्या इतिहास फिर दुहरकर नही रहेगा ?

नही, मानव को पीछे मोडने की चेष्टा न करो।

अब गुलाब और गेहूँ मे फिर सतुलन लाने की चेष्टा मे सिर खपाने की आवश्यकता नही!

अब गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करे!

गेहूँ पर गुलाब की विजय—चिर-विजय! अब नये मानव की यह नई आकाक्षा हो!

क्या यह सम्भव है?

बिल्कुल, सोलह आने सम्भव है!

विज्ञान ने बता दिया है—यह गेहूँ क्या है? और उसने यह भी जता दिया है कि मानव मे यह चिर-बुभुक्षा क्यो है।

गेहूँ का गेहूँत्व क्या है, हम जान गये है। यह गेहूँत्व उसमे आता कहाँ से है, हम से यह भी छिपा नही है!

पृथ्वी और आकाश के कुछ तत्व एक विशेष प्रक्रिया से पौदो की बालियो मे सग्रहीत होकर गेहूँ बन जाते है! उन्ही तत्वो की कमी, हमारे शरीर मे, भूख नाम पाती है!

क्यो पृथ्वी की जुताई, कुडाई, गुडाई! क्यो आकाश की दुहाई हम पृथ्वी और आकाश से उन तत्वो को सीधे क्यो नही ग्रहण करे?

यह तो अनहोनी बात—उटोपिया, उटोपिया!

हाँ, यह अनहोनी बात, उटोपिया तब तक बनी रहेगी, जब तक विज्ञान सहार-काड के लिए ही आकाश-पाताल एक करता रहेगा। ज्यो ही उसने जीवन की समस्याओ पर ध्यान दिया, यह हस्तामलकवत् सिद्ध होकर रहेगी!

और, विज्ञान को इस ओर आना है, नही तो मानव का क्या, सारे ब्रह्माण्ड का सहार निश्चित है!

विज्ञान धीरे-धीरे इस ओर कदम बढ़ा भी रहा है!

कम से कम इतना तो वह तुरत कर ही देगा कि गेहूँ इतना पैदा हो कि जीवन की अन्य परमावश्यक वस्तुएँ—हवा, पानी की तरह—इफरात हो जायँ! बीज, खाद, सिचाई, जुताई के ऐसे तरीके

निकलते ही जा रहे है, जो गेहूँ की समस्या को हल कर दे !

प्रचुरता—शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाले साधनो की प्रचुरता– की ओर आज का मानव प्रधावित हो रहा है !

× × ×

प्रचुरता ?—एक प्रश्न चिह्न !

क्या प्रचुरता मानव को सुख और शान्ति दे सकती है ?

'हमारा सोने का हिन्दोस्तान'—यह गीत गाइए , किन्तु यह न भूलिए कि यहाँ एक सोने की नगरी थी, जिसमे राक्षसता वास करती थी !

राक्षसता—जो रक्त पीती थी, अभक्ष्य खाती थी, जिसके अकाय शरीर थे, दस सिर थे, जो छ महीने सोती थी, जिसे दूसरे की बहू-बेटियो को उडा ले जाने मे तनिक भी झिझक नहीं थी।

गेहूँ बडा प्रबल है—वह बहुत दिनो तक हमें शरीर का गुलाम बनाकर रखना चाहेगा ! पेट की क्षुधा शान्त कीजिए, तो वह वासनाओ की क्षुधा जाग्रत कर आप को बहुत दिनो तक तबाह करना चाहेगा।

तो, प्रचुरता में भी राक्षसता न आवे, इसके लिए क्या उपाय ?

अपनी वृत्तियो को वश मे करने के लिए आज का मनोविज्ञान दो उपाय बताता है—इन्द्रियो के सयमन का और वृत्तियो के उन्नयन का !

सयमन का उपदेश हमारे ऋषि-मुनी देते आये है। किन्तु, इसके बुरे नतीजे भी हमारे सामने हैं—बडे-बडे तपस्वियो की लम्बी-लम्बी तपस्याएँ एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर स्खलित हो गई !

आज भी देखिए। गाँधीजी के तीस वर्ष के उपदेशो और आदेशो पर चलनेवाले हम तपस्वी किस तरह दिन-दिन नीचे गिरते जा रहे है !

इसलिए उपाय एकमात्र है—वृत्तियो के उन्नयन का !

कामनाओ को स्थूल वासनाओ के क्षेत्र से ऊपर उठाकर सूक्ष्म भावनाओ की ओर प्रवृत्त कीजिए।

शरीर पर मानस की पूण प्रभुता स्थापित हो—गेहूँ पर गुलाब की।

गेहूँ के बाद गुलाब—बीच मे कोई दूसरा टिकाव नही, ठहराव नही।

× × ×

गेहूँ की दुनिया खत्म होने जा रही है—वह स्थूल दुनिया, जो आर्थिक और राजनीतिक रूप मे हम सब पर छाई हुई है।

जो आर्थिक रूप मे रक्त पीती रही है, राजनीतिक रूप में रक्त की धारा बहाती रही है।

अब वह दुनिया आनेवाली है जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेगे।

गुलाब की दुनिया—मानस का ससार—सास्कृतिक जगत्।

अहा, कैसा वह शुभ दिन होगा जब हम स्थूल शारीरिक आवश्यकताओ की जजीर तोडकर सूक्ष्म मानस-जगत् का नया लोक बसायेंगे।

जब गेहूँ से हमारा पिड छूट जायगा और हम गुलाब की दुनिया मे स्वच्छन्द विहार करेंगे।

गुलाब की दुनिया—रगो की दुनिया, सुगधो की दुनिया।

भौंरे नाच रहे, गूंज रहे, फुलसुँघनी फुदक रही, चहक रही।

नृत्य, गीत—आनन्द, उछाह।

कही गन्दगी नही, कही कुरूपता नही। आँगन मे गुलाब, खेतो में गुलाब। गालो पर गुलाब खिल रहे, आँखो से गुलाब झाँक रहा।

जब सारा मानव-जीवन रगमय, सुगन्धमय, नृत्यमय, गीतमय बन जायगा।

वह दिन कब आयगा?

वह आ रहा है—क्या आप देख नही रहे ? कसी आँखे है आपकी ! शायद उनपर गेहूँ का मोटा पर्दा पडा हुआ है। पर्दे को हटाइए और देखिए वह अलौकिक, स्वर्गिक दृश्य इसी लोक मे, अपनी इस मिट्टी की पृथ्वी पर ही !

"शौके दीदार अगर है, तो नज़र पैदा कर !"

जहाज जा रहा है

खडखड-खडखड, धमधम-धमधम— गगा मे यह जहाज चला जा रहा है।

सामने कुछ बच्चे, किनारे पर खडे, उत्सुकता से एक-एक यात्री को पहचानने की कोशिश मे है। उस बँगले मे, कुछ बाबू इजीचेयर पर बैठे, सिगार का धुआँ उडा रहे है। घाट पर स्नानार्थियो की भीड है और गगा मे यह जहाज चला जा रहा है।

कब से यह पीपल का पेड किनारे पर खडा है? उसकी जडो को गगा माई कब से धोती आई है? उसके पत्तो को मेघ ने अभी-अभी धो डाला है और अब हवा उन्हे दुलरा रही है। उसके नीचे मिट्टी के देवता है जिन पर पडे फूल, अच्छत और सिन्दूर यहाँ से ही दिखाई पडते है। हनुमान जी की लम्बी ध्वजा, सघन पत्तो में, न जाने कहाँ छिप गई है। एक बूढा ब्राह्मण थरथर काँपता, होठ बुदबुदाता, पीपल की जड पर पानी दे रहा है और यह जहाज गगा मे चला जा रहा है।

पानी मे हिलकोरे है, गिर्दाब है, फेन ह, तिनके ह, और यह जहाज मस्ती मे चला जा रहा है।

वह दो मछुए नाव पर मछली मार रहे है– एक की कमर मे लाल लगोट और सिर मे उजला अँगोछ लिपटा, दूसरे की कमर मे उजला लगोट, लेकिन सिर पर लाल अँगोछ । जाल को पानी से बाहरकर झाड रहे है दोनो। छोटी-बडी मछलियाँ जाल के बीच मे सिमटती जा रही ह। किन्तु, यह क्या? एक बडी मछली जाल से उछली, हवा मे तैरती-सी पानी मे छप-सी जा गिरी और यह जहाज अपनी ही गति मे हडहड करता बढता जा रहा है।

सामने वह ऊँचा गोलघर का मुँडेरा है ओर दूसरी ओर बनवार चक के लम्बे-लम्बे ताड ह। एक ओर अट्टालिकाओ की चमकती पाँते, दूसरी ओर ऊँघते-से झोपडे! एक ओर पुख्ता ईटो की बनी शानदार सीढियाँ, दूसरी ओर कटे खेत, उजडे गाव, गिरे-अधगिरे घर! ऊपर धुआँ बादल बनाता चल रहा है ओर नीचे यह जहाज जा रहा है।

जहाज के पेट मे कोलाहल है, पीठ पर कोलाहल है। निचले हिस्से मे थड क्लास के यात्री खचाखच भरे ह, ऊपर डेक पर कुछ सुफेदपोश बाबू चहलकदमी कर रहे है। यह जहाज नही जानता कि वह हमारे समाज का कितना सही प्रतिनिधित्व करता है,– वह तो बढा चला जा रहा है।

यह क्या जल रही है? चिता, चिता, चिता? हाँ, तीन चितायें एक पक्ति मे! लोग इतना मरते है? किन्तु, शायद आप जीवितो की गिनती भूल गये है! तो भी मरण कितना निठुर, जीवन कितना मधुर! और, जीवन-मरण दोनो से उदासीन वीतराग-सा यह जहाज चला जा रहा हे!

उफ, यह लाश भॅसी जा रही हे। स्त्री की है। बडे-बडे बाल पानी पर लहरा रहे है। पेट के बल पडी है, पीठ ओर कमर के नीचे के कुछ भाग रह रहकर ऊपर हो रहे है। सुफेद-सुफेद चमडा! एक कौआ उस पर बैठने के लिए हवा मे पर तोल रहा है। वह लपका, वह बैठा, वह चोच चलाई– वीभत्स!! ओर वह देखिए, पानी भरने को काँख मे कलसी लिये, तुरत आई वह युवती किस भय-त्रस्त दृष्टि से यह देख रही है! अच्छा है, जहाज तेजी से आगे बढा जा रहा हे।

पुरवा हवा उठी— नजदीक के पडाव से नावो की एक लम्बी पॉत पाल उडाती रवाना हुई। माँझी डोर पकडे, पाल की दिशा स्थिर कर रहे हैं, तरगो को कुचलती, चीरती ये नावे जैसे फुर्र-फुर उडी जा रही है, और उनकी क्षिप्र गति से हतप्रभ हमारा यह विशाल जहाज मन्थर गति से भँसा जा रहा है।

यह जहाज कहाँ जा रहा है? हम कहाँ जा रहे हैं? यह गगा कहाँ जा रही है? ये नावे कहाँ जा रही है? वह लाश कहाँ गई? जगत्याम् जगत् है यह, सब मे गति है, सब को चलना है, बढना है, जाना है। हमारा जहाज भी जा रहा है, जा रहा है।

चरवाहा

और, वह कडे की आगी में कोई चीज़ भून रहा है।

सामने तीन बकरियाँ, जिनमे से एक के मोटे थन से एक पठेरू लटक रही, थोडी दूर पर एक गाय चर रही और एक बछवा गर्दन को पेट मे घुसेडे सो रहा, दाहिनी ओर एक बुढिया घास छील रही, और, वह कडे की आगी मे कोई चीज़ भून रहा है।

पूरबा हवा आग की धधक को रह रह कर बढा देती है, वह लकडी से कडे पर रखी चीज़ को उलट पुलट देता है, आग की दहक से चेहरा झुलस रहा है उसका, लेकिन उस पर उल्लास-ही-उल्लास नाच उठता है रह-रह। वह बडे प्रेम से कडे की आगी में कोई चीज़ भून रहा है जो।

दूर पर कई खेतो मे हल चलाये जा रहे हैं और ढोरो का एक बडा झुंड, ऊपरली परती मे चर रहा है, नदी कछार के झौए के बन मे,

हिलोर है, हहाम है। अभी एक बटेर फुर से उड गई है हवा को तेज पखो की आरी से चीरती-सी, गाँव की धुँधली छाया की पृष्ठभूमि मे दो ताड के पेड गर्वोन्नत मस्तक उठाये झूम रहे ह, और वह बडे जतन से कडे की आगी मे कोई चीज भून रहा है।

सूखे हुए नाले म एकाकी बगुला उदास खडा है। कटे हुए गेहूँ के खेत मे शून्यता ही शून्यता है, और, वह बडे आनन्द से कडे की आगी मे कोई चीज़ भून रहा है।

यही दस साल का होगा वह। प्रकृति ने कैसा क्रूर मज़ाक किया है उसके चेहरे से— न रग न रूप, काला भूत! निकला हुआ पेट मानो उसकी शाश्वत बुभूक्षा का डका पीट रहा है! सूखी टागो को फैलाये, मोटे होठो से लार टपकाता, भद्दी उँगलियो से वह कडे की आगी पर कोई चीज भून रहा है।

अभी सडक से बस गुज़री है—खचाखच भरी हुई! एक भारी भरकम सेठ-दम्पति, कम उम्र रिक्शेवाले का कचूमर निकालते, वह चले जा रहे हैं। बैलगाडी पर ऊँघते गाडीवान के मुँह मे बिरहा की कडी टूट-टूट कर रह जाती है। सडक पर इतने लोग क्यो चलते है और सबके पैर इतनी तेज़ी मे क्या उठा करते है? क्या शहर मे लड्डू बँटते है? बँटा करे—वह तो कडे की आगी पर कोई चीज़ भूनने मे ही मगन है?

चीज़ शायद भुन गई। लार पतली होकर चू-चू पडती है। कडे से निकली चीज को वह तलहथी पर लेता है—तलहथी जल रही है, किन्तु, इस नायाब चीज़ को फेंके कैसे? चट मुँह मे रख लेता है। किन्तु, इतनी गर्मी जीभ को भी बर्दास्त नही! दो-एक बार मुँह खोल कर, हवा लेने की कोशिश करता है, किन्तु कडे की आगी मे भुनी हुई चीज़ की आग कम नही हो रही! क्या थूक दे? नही, नही—यह भूल उससे नही होगी! वह निगलने कोशिश कर रहा है!

काली पेशानी पर पसीना-पसीना है, साँस फूल रही है, कठ झुलस रहा है, नाक मे सोधी गन्ध है, कान मे साँय-साँय आवाज़! जीभ का पानी कहाँ सूख गया कमबख्त? वह निगले तो कैसे—उगले तो कैसे? आँखो मे अब पानी-पानी है—यह पानी जीभ पर क्यो नही आता?

अभी-अभी एक चील सर के ऊपर मँडराकर चली गई है और दो कौवे उसके सामने कॉव-कॉव करते, अपनी हिस्सेदारी की याद उसे दिला रहे ह, और वह कडे की आगी मे भुनी हुई उस नायाब चीज़ को जैसे-तैसे निगलकर कैसी तृप्ति की साँस ले रहा हे।

फुलसुँघनी

अरे रे, यह कौन गेंदे का बाग उजाड रही है !

गेंदा– क्या इसमे सिर्फ गोलाई है जो इसका नाम 'गेंद" के वजन पर 'गेंदा' रख दिया गया ? इससे तो इसका अँग्रेजी नाम अच्छा– 'मेरी गोल्ड' ! आनन्द भी, सोना भी।

किन्तु, कौन है यह– जो मेरे सोने को धूल मे मिलाये जा रही है ?

गेंदे का यह छोटा-सा झाड, बिल्कुल फूलो से लदा। कही पत्तियाँ भी आप नही पावेगे। सोने की शतश गेंदे आप से आप उछल रही है, लुढक रही है, नाच रही है— हवा के एक छोटे-से झोंके के इशारे पर !

अरे, यह कौन उसका सर्वनाश कर रही है ?

कही से फुलसुँघनी का एक जोडा आ पहुँचा। फुलसुँघनी के जोडे को कभी देखा है आपने ?

एक इच से भी छोटी, वज़न मे शायद एक बडे पतगे के बराबर— यह छोटी-सी काली-काली चिडिया अपने मे कितनी उमग रखती है! पन्न-पन्न करती, हर सेकेड पर अपनी गति बदलती, छोटी चोच से सुरीली चे-चे करती, ज्यो ही फूल देखा कि टूट पडी उस पर! अपनी चोच से पखुडियो की जड पकडकर एक झटका देती है, उनका रस पी लेती है, फिर गिरा देती है। देखिए न, आपके देखते-देखते एक पूरे फूल की पखुडियाँ नोच डाली इस जोडे ने।

गेदे के झाड के नीचे पीली-पीली, सुनहली-सुनहली पखुडियो का अम्बार-सा लगता जाता है।

× × ×

अब शायद दोनो के पेट भर गये। दोनो उडी— एक हल्की सी फुर्र! विलायती मटर को सहारा देने के लिये खडी की गई कमाची पर जा बैठी दोनो। सट-सटकर! दो-एक बार चोच से पाँखे खुजलाई। भोर के सूरज की किरणो मे इनकी गहरी काली पाँखे किस तरह चमक रही है—इन्द्रधनुषी हो रही है!

एक उडी— एक हल्की-सी चे-चे के साथ! दूसरे ने अनुमान किया— सुबुक फुर के स्वर मे।

चे-चे! फुलसँघनी के जोडे हवा को तरगित करते उडे जा जा रहे ह— फुर फुर!

मेरे गेदे के बाग को सर्वनाश मे मिलाकर, फुलसुँघनी के जोडे, वह देखिए, उडे जा रहे है!

तितलियाँ

समूचा पार्क मुखरित हो गया !

दो तितलियाँ आईं और सारा पार्क रंगीन, रसमय, उच्छ्वसित और मुखरित हो उठा।

तितलियाँ दूब पर दौड़ी, फूलों को चूमा, बेंच पर बैठीं, कुछ गुनगुनाईं, फुसफुसाईं, इधर-उधर नजरें दौड़ाईं—

सारी आँखें उनकी तरफ !

छाती फूल उठी, साँस जोर से आने लगी, ओ हो, सारी आँखें मेरी ओर ! दोनों ने अलग-अलग यही सोचा !

लीली, जरा यह तो देखो !

शबनम, जरा सुनो तो !

एक के अधर दूसरे के गाल के नजदीक ! कान-कान में कुछ कहा गया—

क्या कहा गया ?

धत्त

एक तितली भागी जा रही, दूसरी तितली पीछा कर रही ।

दूब कुचल गई, फूल शरमा गये, बेंच खाली पडी है—

किन्तु, पार्क अब भी उच्छ्वसित है, मुखरित है ।

नथुनिया

'यह क्या खा रहा है रे ?'

सिर के मुँडे हुए छोटे-छोटे बालो के रग से चेहरे का रग प्रतियोगिता करता हुआ। बालो ने चारो ओर से जिसपर मुदाखलत बेजा कर रखी है, वह छोटा-सा ललाट, चिपटा-सा। ललाट की कालिमा मे पतली भौओ की रेखा खोई-खोई-सी। छोटी-छोटी आँखे—जिनका पीला रग राजेन्द्र बाबू की आँखो की याद दिलाता है। आँखो के चारो कोरको पर पीली-पीली घिनौनी कीचड। गाल की हड्डियाँ उभडी। नाक का नुकीला अग्रभाग पतले अधरो को ढँकता-सा। इस नाक मे प्रसूतिगृह मे ही, बूढी दादी ने पीतल की एक नथुनी डाल दी थी— कही उसके इस पितृहीन एकलौते पोते को डायन-जोगन की नजर न लग जाय।

'यह क्या खा रहा है रे ?'

सुनकर मेरी ओर ताका— दस गर्मी, जाडा, बरसात की झुलस, हडकम्प और झकोरे का मारा उसका चेहरा खिलता-सा नजर आया।

बड़े फख्र से हाथ के टुकड़े को मुँह मे डालता हुआ वह भारी आवाज़ मे बोला—

'मक्के की रोटी है, बाबू !'
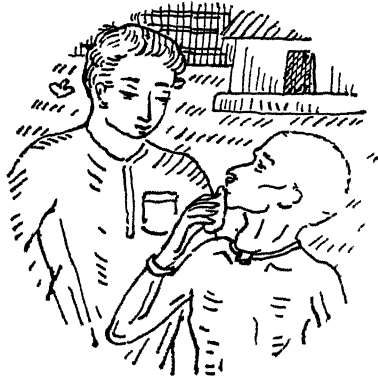
नींव की ईंट

वह जो चमकीली, सुन्दर, सुघड इमारत है, वह किस पर टिकी है? इसके कगूरो को आप देखा करते हैं, क्या कभी आपने इसकी नीव की ओर भी ध्यान दिया है?

दुनिया चकमक देखती है, ऊपर का आवरण देखती है, आवरण के नीचे जो ठोस सत्य है, उस पर कितने लोगो का ध्यान जाता है?

ठोस 'सत्य' सदा 'शिवम्' होता ही है, किन्तु वह हमेशा ही 'सुन्दरम्' भी हो, यह आवश्यक नही।

सत्य कठोर होता है, कठोरता और भद्दापन साथ-साथ जन्मा करते हैं, जीआ करते है।

हम कठोरता से भागते है, भद्देपन से मुख मोडते है—इसीलिए सत्य से भी भागते ह।

नही तो, हम इमारत के गीत, नीव के गीत से प्रारम्भ करते।

वह ईंट धन्य है, जो कट-छँटकर कगूरे पर चढ़ती है और बर-

बस लोक-लोचनो को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

किन्तु, धन्य है वह ईट, जो जमीन के सात हाथ नीचे जाकर गड गई और इमारत की पतली ईट बनी !

क्योकि इसी पहली ईट पर उसकी मजबूती और पुख्तेपन पर सारी इमारत की अस्ति-नास्ति निभर करती है।

उस ईट को हिला दीजिए, कगूरा बेतहाशा ज़मीन पर आ रहेगा।

× × ×

कँगूरे के गीत गानेवाले हम, आइए, अब नीव के गीत गाये !

वह ईट जो जमीन मे इसलिए गड गई कि दुनिया को इमारत मिले, कगूरा मिले !

वह ईट, जो सब ईटो से ज्यादा पक्की थी, जो ऊपर लगी होती, तो कगूरे की शोभा सौगुनी कर देती !

किन्तु, जिसने देखा, इमारत की पायदारी उसकी नीव पर मुनहसिर होती है, इसलिए उसने अपने को नीव मे अर्पित किया।

वह ईट, जिसने अपने को सात हाथ जमीन के अन्दर इसलिए गाड दिया कि इमारत ज़मीन के सौ हाथ ऊपर तक जा सके।

वह ईट, जिसने अपने लिए अन्धकूप इसलिए कबूल किया कि ऊपर के उसके साथियो को स्वच्छ हवा मिलती रहे, सुनहली रोशनी मिलती रहे।

वह ईट, जिसने अपना अस्तित्व इसलिए विलीन कर दिया कि ससार एक सुन्दर सृष्टि देखे।

× × ×

सुन्दर सृष्टि ! सुन्दर सृष्टि, हमेशा ही वलिदान खोजती है, वलिदान ईट का हो या व्यक्ति का !

सुन्दर इमारत बने, इसलिए कुछ पक्की-पक्की लाल ईटो को चुपचाप नीव में जाना है।

सुन्दर समाज बने, इसलिए कुछ तपे-तपाये लोगो को मौन-मूक शहादत का लाल सेहरा पहनना है।

शहादत और मौन-मूक ! जिस शहादत को शुहरत मिली, जिस बलिदान को प्रसिद्धि प्राप्त हुई, वह इमारत का कगूरा है—मन्दिर का कलश है !

हाँ, शहादत और मौन मूक ! समाज की आधारशिला यही होती है।

ईसा की शहादत ने ईसाई-धर्म को अमर बना दिया, आप कह लीजिए ! किन्तु, मेरी समझ से, ईसाई-धर्म को अमर बनाया उन लोगो ने, जो उस धर्म के प्रचार मे अपने को अनाम उत्सर्ग कर दिया !

उनमे से कितने ज़िन्दा जलाये गये, कितने शूली पर चढाये गये, कितने रनबन की खाक छानते जगली जानवरो के शिकार हुए, कितने उससे भी भयानक जन्तु भूख प्यास के शिकार हुए।

उनके नाम शायद ही कही लिखे गये हो—उनकी चर्चा शायद ही कही होती हो।

किन्तु, ईसाई-धर्म उन्ही के पुण्य-प्रताप से फल-फूल रहा है !

वे नीव की ईंट थे, गिरिजा घर के कलश उन्ही की शहादत से चमकते हैं !

आज हमारा देश आजाद हुआ सिर्फ उनके बलिदानो के कारण नही, जिन्होने इतिहास मे स्थान पा लिया है !

देश का शायद ही कोई ऐसा कोना हो, जहाँ कुछ ऐसे दधीचि नही हुए हो, जिनकी हड्डियो के दान ने ही विदेशी वृत्रासुर का नाश किया !

हम जिसे देख नही सके, वह सत्य नही है, यह है मूढ धारणा ! ढूँढने से ही सत्य मिलता है ! हमारा काम है, धर्म है, ऐसी नीव की ईंटो की ओर ध्यान देना !

× × ×

सदियो के बाद नये समाज की सृष्टि की ओर हमने पहला कदम बढाया है !

इस नये समाज के निर्माण के लिए भी हमे नीव की ईंट चाहिए।

अफसोस, कगूरा बनने के लिए चारो ओर होडाहोडी मची है, नीव की ईंट बनने की कामना लुप्त हो रही है !

सात लाख गाँवो का नव निर्माण! हजारो शहरो और कारखानो का नव निर्माण! कोई शासक इसे सम्भव कर नही सकता! जरूरत है ऐसे नौजवानो की, जो इस काम मे अपने को चुपचाप खपा दे!

जो एक नई प्रेरणा से अनुप्राणित हो, एक नई चेतना से अभिभूत, जो शाबासियो से दूर हो, दलबन्दियो से अलग।

जिनमे कगूरा बनने की कामना न हो, कलश कहलाने की जिनमें वासना न हो। सभी कामनाओ से दूर—सभी वासनाओ से दूर।

उदय के लिए आतुर हमारा समाज चिल्ला रहा है—हमारी नीव की ईटे किधर है?

देश के नौजवानो को यह चुनौती है!
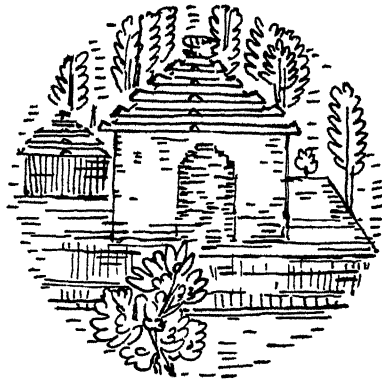
गेंदा

उस दिन फूलो की मजलिस जुटी थी। नाना रग, नाना ढग के सुवासित वस्त्राभूषणो मे सजे पुष्पकुमार और कुसुम-कुमारियाँ एकत्र हुई थी।

एक गम्भीर सवाल आ गया था।

हेमन्त आ रहा था—वही हेमन्त, जब हिमालय अपनी हिम-सेना को हर शाम कुबेर के कदली बन पर चढाई करने को रवाना करेगा। किन्तु इस सेना को इन्द्र ने शाप दे रखा है—रात भर ये जहाँ तक बढे, किन्तु भोर होते ही इनका खात्मा हो जायगा। अत एक-पर-एक सेना रवाना तो होगी, किन्तु सुदूर केदली-बन तक पहुँच नही पायगी। रास्ते मे ही सूर्य के आगमन की धमक मे ही वह तितर-बितर हो जायगी, धराशायी हो जायगी और जहाँ-जहाँ गिरेगी, वहाँ-वहाँ कयामत बरपा करेगी।

और, इसके बाद ही शिशिर का प्रारम्भ होगा—वही शिशिर, जिसमे पछवा हवा इस जोर से बहेगी कि वनदेवी की श्यामल साडी के

तार-तार उड जायँगे, फिर रगीनियो की क्या चर्चा ? जगत निरानन्द, निस्पन्द और नीरस हो जायगा।

सवाल था, इस निष्ठुर हेमन्त मे, इस दारुण शिशिर मे क्या पृथ्वी पुष्प-शून्य रहेगी ? क्या ऐसा होना पुष्प-कुल के लिए शोभनीय होगा ? पुष्पकुल—जिसकी रचना करके विधाता ने भी अपने को धन्य माना था। इस कुल को उसने क्या-क्या न दिये—यह रूप, यह रग, यह गध ! सृष्टि मे बहार उसी दिन आई, जीवन मे यौवन उसी दिन आया।

पुष्पराज ने कहा— "कुमारियो, कुमारो, आपलोग किसलिए एकत्र हुए है, आप को ज्ञात तो हो चुका होगा। अब मै जानना चाहता हूँ, हममे से कौन वह बडभागी हे, जो इस गाढे अवसर पर पुष्पकुल की मर्यादा रखेगा ?"

सन्नाटा— तनिक कुलबुलाहट नही, जरा हिल-डुल तक नही।

जो पुष्पकुल के रत्न-रूप थे, उनकी ओर लोग एकटक देखने लगे।

यह ह कमल— पुष्पकुल के सवश्रेष्ठ पुत्र, जिनकी कीर्त्ति-कथा गातेगाते कवि-कुल की वाणी नही थकती ! यह है गुलाब— कमल के छोटे भाई, किन्तु उनसे भी ज्यादा जन-प्रिय, बहु प्रशसित ! यह है चम्पा रानी, जिनका रग देख-देख ससार की कामिनियाँ अपनी हीनता अनुभव करती है।

यह है जूही देवी—जिनकी सादगी पर दुनिया मरती है ! बेला, चमेली, गुलदाउदी, गुलसब्बो— कोन कौन न है ? लोगो की आखे हिम्मत से इनकी ओर लगी थी। उमीद थी, ये लोग आगे बढ कर अपने साहस, सबको चकित कर देगे।

किन्तु, यह क्या ? कमलदेव एक चुल्लू पानी की तलाश मे है, गुलाबजी अपने को काटो मे छिपाने की कोशिश कर रहे ह, चम्पारानी के मुँह का रग उडता जा रहा हे, जूही देवी शरम से सिहर-सी उठी ह। जब बडो की यह हालत, तो छोटो की कौन बात ?

सन्नाटा— अब यह श्मशान का सन्नाटा था ?

पुष्पराज ने कहा— "शर्म की बात हे। डूब मरने की बात है। उस कुल को पृथ्वी मे रहने का कोई हक नही, जो इस प्रकार नपुसकता

दिखलाये। जिस वंश के लोग केवल बगीचे खोज, रंगमहल खोजे या हरे जंगल का नग्न शृंगार खोजे, वह वंश दुनिया में टिक नहीं सकता। पुष्प-कुमारो, कुसुम-कुमारियो, आज आपने वह काम किया है, जिसके लिए आपका नाम इतिहास में सदा कायले के हरूफो में लिखा जायगा।"

सब सुन कर गड़े जा रहे थे— शर्म से, आत्मग्लानि से। उसी समय एक तरफ से आवाज आई— "इस तरह मत बोलिए पुष्पराज, पुष्पकुल में केवल नाजनीन छोकरियाँ और नाजुकबदन अलबेले ही नहीं रहते।"

सब लोगों ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा — एक दुबला-पतला नौजवान, जिसके चेहरे पर पीलापन छाया हुआ है, उठकर खड़ा है— गर्व से उसकी छाती उभड़ आई है।

उसने कहना जारी रखा—

"मैं तैयार हूँ, हेमन्त से मुकाबला करने को, शिशिर की चुनौती स्वीकार करने को।

"मैं जानता हूँ, कमलदेव ऐसी न तो मुझे देवोपम पवित्रता मिली है और न गुलाबजी ऐसी सर्वप्रियता, चम्पारानी का रंग और जूही देवी की मुग्धकर सादगी भी मुझे प्राप्त नहीं, न और भाई-बहनों की तरह मुझमें मनोमुग्धकर रूपरंग या मादक-मोहक गन्ध है— किन्तु एक बात का दावा मैं कर सकता हूँ, वह है बलिदान करने की भावना। और, यदि उसकी कीमत है, तो भले ही इस मुकाबिले में मैं शहीद भी हो जाऊँ, मेरा नाम अमर रहेगा। और कुछ नहीं, तो कम-से-कम कोई यह तो नहीं कहेगा कि पुष्पकुल में एक भी ऐसा नहीं निकला, जो अपने को बलि चढ़ा देने की जुरत भी करता।"

उसके जर्द चेहरे पर अभिमान की लाली थी।

समूची मजलिस में जय-ध्वनि होने लगी।

पुष्पराज ने कहा— "बेटा आओ, मैं तुम्हें गले से लगा लूँ। तुम हमारे कुल का अभिमान हो। और यह क्या कहते हो कि तुम्हारा नाश होगा? अरे, कहीं बलिदानी आत्मा का नाश होता है? निश्चय जानो, जब तक यह पृथ्वी है, तुम अजर-अमर रहोगे, कोई तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता।"

वह कौन था ?

आपने हेमन्त और शिशिर मे अपने आसपास देखा है ? —आपके बगीचे मे ही नही, बारी मे, आरी पर, दरवाजे पर, पिछवाडे मे, आँगन मे, सहन मे, जहाँ-जहा भी जड जमाने के लिए थोडी मिट्टी मिल गई है, कुछ फूल खिल रहे है ! चाहे बरफ गिरे या पाला, चाहे पछुवा हवा बहे या उत्तरा—वे चटक रहे है, चमक रहे है। हम उन्हे गेंदा कहते है, वह अमर फूल है।

वह अमरता, जो कष्ट-सहन, त्याग और बलिदान से ही मिलती है !

हरसिंगार

मेरे आँगन के एक कोने मे एक छोटी-सी विटपी है—ऊँचाई मे मुझ से कुछ ही बडी।

शरद आते ही वह कलियो से लद जाती है। सन्ध्या हुई कि एक उन्मादनी सुरभि से मेरा आँगन गमगमा उठता है।

जब निशीथ मे अपनी पिछली खिडकियाँ खोलकर म शरच्चन्द्र की छटा, बिछावन पर लेटे ही लेटे देखा करता—

[चाँदनी रात मे टहलना कितना असमधुर विचार! चादनी का सदेश जागरण नही, स्वप्न है, चेतना नही, तन्द्रा है। लेट जाओ, सो जाओ, चन्द्रमा को देखते-देखते। फिर चन्द्रपुरी का वह स्वप्न देखो—चन्द्र धनुष पर वाण चढाये मृग का पीछा कर रहा है, रोहणी मत्र-मुग्ध-सी उसके पीछे-पीछे चली जा रही है और दोनो के पीछे किसी अशरीरी का कुसुम-धनुष है!]

—तब, आँगन से जब-तब, आनेवाले हौले टप-टप शब्द मे मेरे रोये खडे हो जाते है।

फिर जागते हुए, सोते-से और सोतेहुए जागते-से—निद्रा और जागृति की आँख-मिचौनी मे—जब मुझे पिछले पहर की शीतल शरद-समीर गुदगुदा कर जगा देती है और मै चाँदनी की रजतिमा मे स्वर्णिमा का सम्मिश्रण पाता हूँ, तब मेरे कानो मे अनवरत वर्षा के-से रिमझम शब्द सुनाई पडने लगते है।

मै जानता हूँ, वह क्या बरस रहा है?

अपने सौरभ मे आप ही व्याकुल, मेरे आँगन की यह छोटी विटपी, अपने हृदय के सारे बोझीले भार को, सूर्योदय के पहले ही हलका कर देना चाहती है, जिसमे लोक-लोचन उसके इस अछूते ससार को नज़र न लगा दे।

× × ×

समूचे थाल मे उजली-उजली खीले बिखरी है, जिसकी जडो मे लालिमा चमक रही है।

(लाली जिसकी जड मे हो, वह उजलापन! रक्तदान से ओत-प्रोत उज्वल बलिदान)

जब दुनिया अपनी सारी लाली बाजार मे बेचने को उतावली है, यह उसे छिपा रखने की चेष्टा करती है!

× × ×

गाव भर की बच्चियो की भीड आज मेरे आँगन मे लगी हुई है। आज मेरे आँगन मे फूलो की हाट सज रही है।

अजीब खरीद फरोख्त! सौदागरन आज लुटाने पर तुली है, भोली खरीदारन आँचल भरने पर। भाव-साव का नाम नही।

जब-तब पत्तो और टहनियो पर रही-सही उलझी बची-खुची अपनी दो-चार पखरियो को इनपर गिरा कर यह विटपी जैसे सिहर-सी उठती है।

(क्या इन बच्चियो के भावी जीवन की याद कर, जब कि यह भी रात भर के आदर और उपहार की चीज समझी जायँगी और दिन-भर उपेक्षा और अवहेला की शिकार! जिनकी बलिदान की उज्ज्व-लता, हृदय-दान की लालिमा के साथ रहने पर भी निष्ठुर पुरुष-समाज से स्वीकृति या उपहार न पा सकेगी!)

जिस समय कि दूसरे पुष्प अपने हृदय खोलने की तैयारी में होते हैं, उससे पहले ही जो अपने को लुटा देती है, जब तक कि किसी लोलुप भौंरे का चपल स्पर्श इसे चंचल न कर, तभी जो अपने को बलिवेदी पर चढा देती है, अपने क्षणभंगुर जीवन को माली की डाली की चीज न बना कर जो शिशुओं के अंचल की निधि बना देती है— ऐसी इस विटपी को देख कर मैं सिहर उठता हूँ।

मेरी आँखों से भी हरसिंगार के फूल, जब तब, झड पडते हैं। कौन बतावे, इनकी जड में लाली है कि नहीं? ये सूखी सहानुभूति से निकलते हैं या हार्दिक समवेदना से?
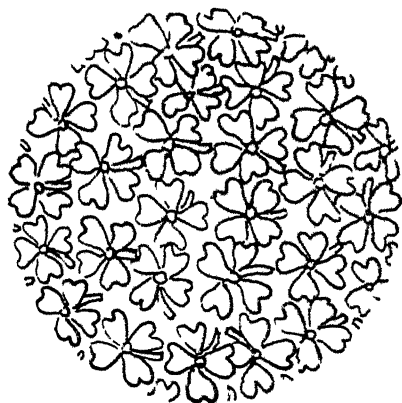
गुलाब

फूलो का राजा ?– गुलाब ! अब तो यह बात दुनिया भर ने मजूर कर ली है।

राजा– रग से, रूप से, गध से।

हल्का-हल्का नेत्ररजक रग– गोल-गोल, उभरा-भरा आकार,– मीठी-मीठी, एक ही झाके मे दिमाग को मुअत्तर करनेवाली गध । गुलाब की छाया भी छू सके– ऐसा कौन है फूल ?

किन्तु, क्या गुलाब केवल अपने इन्ही गुणो से राजा है। रूप-रग गुण-गध क्या येही वे चीजे है, जो आदमी को राजा बना देती है ?

म एक दिन भोर-भोर उठा। चला पार्क की ओर । सोचा, मैं आज गुलाब ही से पूछूँगा, किन्तु यह तो कलजुग है—-फूल तो सतजुग में बाते करते थे—मस्तिष्क ने यह तर्क किया। किन्तु हृदय ने पैरो को घसीटे पार्क मे पहुँचाया।

अभी पार्क मे कोई आया न था। बागबा अपनी झोपडी मे खुर्राटे

ले रहा था—भोर की मादक वासती हवा मानो उसे थपकियां दे रही थी। शहर के अल्हड टहलनेवाले—और टहलनवालियाँ भी,—अपने-अपने आराम-गाहो मे शायद अबतक इसी बागजो के अध्याय को दुहरा रहे थे।

ओस-विन्दु जिसके हर दल पर क्रीडा कर रहे थे, ऐसे एक ताजे खिले गुलाब के फूल के निकट म जा बैठा। बैठने मे पहले श्रद्धा- भक्ति-युक्त तीन बार उसकी प्रदक्षिणा कर ली। प्रणाम किया—उसके चरणो की रज उठाकर मस्तक पर चढाई, ओस का एक कण आखो मे लगाया। अकस्मात् पाता हूँ, गुलाब बोल रहा है—

"मै समझ गया। तुम्हारा सवाल सही है, दुरुस्त है।

अगर रूप की बात लो, तो दुनिया मे कमल से बढकर कौन खूबसूरत है। अगर रग देखना चाहो, गुलदाउदी को लो। रजनीगधा की कौन बात—भोली जूही अपनी गध म मुझे बार—बार पराजित कर सकती है।

किन्तु, तो भी राजा मै हूँ। फूलो का राजा गुलाव है। क्यो?

मेरे फूल को ही मत देखो—जैसा कि तुम्हारी मानव—जाति देखा करती है। देखो उसके नीचे। अनगिनत नुकीले, चुभीले काँटो को।

बहुत दिन गुजरे, तुम्हारे एक आदमी के सिर पर किसीने काँटो का ताज रख दिया—आज तक तुम उसकी गाथा कथा कहते—सुनते चले आते हो। वह तुम्हारा शहीद—शिरोमणि हो गया।

किन्तु, मेरी ओर देखो, मै तो खुद काँटो का ताज हूँ— अनगनित काँटो के ऊपर खिला, हँसता, विहँसता।

उनके सिर पर काँटे थे—मै काँटो के सिर पर हूँ। सिर पर काँटा रखना बडा करतब है या काँटो के सिर पर रहना? तुम्ही सोचो। और, रहना ऐसा कि न होठो की हँसी मे कमी आये, न मुँह की लाली मे। उस हालत मे भी अपने गुण-गध का उन्मुक्त हाथो वितरण करना।

और, जरा उससे भी नीच उतरो—देखो, मेरी जन्म-कहानी!

मरूभूमि के हाहाकार में, पशु—पक्षी, वृक्ष-तृण जहाँ होश-हवास खो देते हैं, वहाँ भी अपना अस्तित्व ही नहीं, अपनी जन्मजात कोमलता, अपनी नेत्ररजकता और उन्मुक्त दानपरता को बचाये रख सके, वह राजा के पद पर क्यो न बैठे?

पुरुष और परमेश्वर

पुरुष और परमेश्वर मे महत्ता किसकी – यह विवाद आज का नही, आदि युग से चला आ रहा है! एक पक्ष ने कहा–मै ही सब कुछ हूँ, और ससार मेरा है। दूसरे ने कहा–यदि वह कही हो भी, तो वह मै ही हूँ। और तीसरे न आत्मापण किया—जो कुछ हो, तुम्ही हो! तुम्हारी शरण हूँ, चाहे जो उपयोग करो।

भक्त ने कहा—भगवान ने अपने रूप मे मनुष्य का निर्माण किया।
दर्शन ने कहा—मनुष्य ने अपने रूप मे भगवान की रचना की।
जब मनुष्य ने सपनाना सीखा, ईश्वर का प्रारम्भ तभी से हुआ।
ज्यो-ज्यो सपनो मे वृद्धि हुई, भगवान की महत्ता मे भी वृद्धि होती गई।

सपने धुँधले पड रहे है, भगवान भी धुँधला पडता जा रहा है।
सपनो मे परिवर्त्तन,– भगवान मे परिवत्तन!

अतीतकाल के मानव को एक भगवान से सन्तोष नही था– वह अनेक भगवान खोजता रहा।

उसने अनेक भगवान खोजे—उसे अनेक भगवान मिले।
पृथ्वी की नन्ही दूब से लेकर आकाश के इन्द्रधनुष तक मे भगवान-भगवान ही दिखे।

भगवान के पीछे वह इतना पागल हुआ कि अद्धचेतन अवस्था मे उसने अपने को भी भगवान ही मान लिया।

उसके भगवान बने उसके वे विश्वास, जिनके बिना वह जी नही सकता था।

उसके भगवान बने उसके वे भय, जिनसे बढकर स्थूल सत्य उसे और कुछ नही मालूम होता था।

भगवान को आदमी ने बनाया, यह कहना उतना ही गलत है, जितना यह सुनना कि भगवान ने आदमी को बनाया।

आदमी हमेशा भगवान की खोज मे रहा हे, और हमेशा उसकी खोज में रहेगा।

भगवान एक मपना हे।
भगवान एक आकॉक्षा है, जिससे मानव जीवन ओतप्रोत बना है।

जीवन एक सपना है, जिससे हम-तुम ओतप्रोत है।

अपने सपने का ही नाम हमने आत्मा दे रखा है।

इसीलिए आत्मा हमेशा भगवान का सपना देखती रहती हे।

जैसा आत्मा का सपना, उसी रूप का उसका भगवान।

× × ×

ध्यानावस्थित होकर, एकान्त मे, मानव खडा था अपने ससार को भूला हुआ। अपना ससार—वह आप भी उसे समझ नही सकता था। विस्मय मे, भय मे वह चिल्ला उठा—

"भगवन्! मेरी सहायता करो। तुम्हारे बिना मेरा सहायक कौन है? मुझे ज्ञान दो—क्योकि तुम्ही ज्ञान के आगार हो! प्रकाश दो दो—क्योकि तुम्ही तो प्रकाश-पुज हो।

मानव चिल्लाता रहा, भगवान चुप रहा।

मानव ने खेती प्रारम्भ की। बडे जतन से, श्रम से उसने खेत

जोतें, किन्तु वर्षा हो नही रही थी, वह चिल्ला उठा—

"भगवान्, मेरी सहायता करो। अपने बादलों को मेरे खेत मे बरसने की आज्ञा दो।"

उत्तर मे सूखी झंझा बहती रही।

मानव ने युद्ध-भूमि के चक्र-व्यूह मे अपने को प्रतिद्वन्द्वी मानव के सामने पाया। भय से वह चिल्ला उठा—

"भगवान, भगवान, मेरी सहायता करो। इस नर-पिशाच के सम्मुख मेरी रक्षा करो, मुझे विजयी बनाओ। रघुवर, तुमको मेरी लाज!"

युद्ध-भूमि मे रुड-मुड बिखरे थे—वीरो की लोथ पर चील-कौवे भोज मना रहे थे!

आत्मा के स्वप्न देखनेवालो को परमात्मा इन्ही रूपो मे प्राप्त होते रहे हैं।

यदि कभी वर्षा हो गई, विजय मिली— तो फिर स्वप्न को सत्य क्यो नही मान लिया जाय? "भगवान्, तुम महान हो!" "भगवान् मेरे रक्षक है, फिर डर किसके?" "राखनहार भये भुज चार तो का होई हैं दो भुजा के बिगारे?"

प्राथना! यज्ञ!—यज्ञ! प्रार्थना!

भगवान मे मानव इतना भूला कि वह मानव को ही भूल गया। पुराने पैगम्बर ने चिल्लाकर कहा—

"खुदा ने कहा—उस आदमी पर अभिशाप, जो आदमी पर विश्वास करता है और जिसका हृदय भगवान से अलग रहता है।"

आदमी पर अविश्वास, भगवान में विश्वास। किन्तु, जब आदमी पर विश्वास नही, तो भगवान पर कैसे विश्वास हो? क्योकि भगवान और आदमी आखिर एक ही सिक्के के दो रूप है न!

मानव-कल्पना का ही रहस्यवादी प्रतीक है भगवान की कल्पना।

विशुद्ध भगवान का अर्थ है, विशुद्ध मानव।

स्वप्न-भगवान का अर्थ है, स्वप्न-मानव।

सव सत्ताधारी भगवान वह निरकुश राजा हे, जो प्रजा का उत्पी-डन या शोषण करता है।

सर्वज्ञ भगवान वह पुरोहित हे, जो जनता के अज्ञान पर अपना व्यापार चलाता है।

राजनीति मे भगवान का काम षडयन्त्र करना है, सम्पत्ति मे भगवान का काम अधिकाधिक को दरिद्र बनाना है।

मानव ने भगवान को अपने से महान कभी नही बनाया।

× × ×

मानव ने महान और सुन्दर भगवान बनाये है– इससे मानव की महान और सुन्दर शक्तियो का पता चलता है।

जब मानव आँधी, अन्धकार या प्रकाश की अभ्यथना या उपा-सना करता था, वह अपने प्रति ज्यादा ईमानदार था, वह अधिक सरल था, उसके ज्ञान पर पत नही पर्डा थी।

जब उसने इन मे देवत्व या ईश्वरत्व की कल्पना की, वह भूल-भुलैया मे फँसा।

जब तक मानव-मस्तिष्क कल्पना के फेर मे है, हर पदाथ उसके सामने काल्पनिक रूप पकडकर आया करता हे। मानव-चक्षु से पर्दा हटने दीजिये, वह सब कुछ स्पष्ट देखने लगेगा। मानव-मन जब स्वा-भाविकता को स्वभावत ग्रहण करने मे सक्षम हो जायगा, सभी काल्प-निक देव आप-से-आप काफूर हो जायँगे।

मानव-विचार मे असीम बल है। आदमी जैसा सोचता हे, ससार को उसी के अनुरूप ढलना होता है। वह ससार को अपने निकट बुलाता है, उस पर अपना मत्र पढता है, ससार उसके सामने कर-बद्ध प्रार्थी होना है। अपने विचार-बल से मानव ससार की सृष्टि करता है।

जब तक मानव स्वय मानव के सहार मे लीन है, वह ऐसे भग-वान की सृष्टि करेगा ही, जो ससार का सहारकर्त्ता है। कर्त्ता और भर्त्ता के रूप मे भी वह भगवान बनाता है, कर्त्ता, वह जो नब्बे अभागे और दस भाग्यवान की सृष्टि करे, भत्ता, जो गरीबो का पालन करे, जिसमे वे धनियो के पैर दबावे।

समाज के विचार ही भगवान के विचार है। समाज की आत्मा ही भगवान की आत्मा हे– जनता का दृष्टिकोण ही
कोण हुआ करता है।

भगवान्-निर्माता के रूप में मानव न अपनी अपरम्पार प्राकृतिक शक्ति का परिचय दिया है।

अब वह मानव निर्माता के रूप मे अपने कौशल का परिचय दे।

अब मानव, मानव की उपासना करे, मानव की वन्दना करे। भगवान की स्तुतियाँ बहुत हुई, हमारी कविता और गीत अब मानव की अलिखित यशोगाथा को छन्दोबद्ध करे। मानव की ही खोज मे मानव की साधना दौड़े– उछ्वसित, चचल, क्रियाशील मानव मस्तिष्क अपने ही लिए अपने को पुष्पित और फलित करे।

शोधक, अन्वेषक, कवि और दार्शनिक मानव ने राह चलते कितने देव और ईश्वर बनाये। अब वह अपने लक्ष्य के निकट आ पहुँचा है, वह मानव का निर्माण करे।

मानव, जिसकी शक्तियो के समक्ष छप्पन कोटि देव और देवादि-देव भगवान भी नत मस्तक हो।

× × ×

हम फिर सपने देखे। सपना देखना कोई लज्जा की बात नही।

आज की दुनिया मे बहुत से सपने देखने को है– नये सुनहले सपने।

हमें एक नवीन सौन्दय का सपना देखना है– नये दिन और उसके नूतन कत्तव्यो के, उसके नये प्रयत्नो और नये साहसो के सौन्दय्य का सपना देखना है।

हमे लज्जित नही होना है। लज्जित नही होना ही, नये मानव के लिए, एक नई कला है। लज्जित नही होना ही, उस नये सगीत का शिलान्यास देना है, जो मानव-हृदय के स्वाभाविक उच्छ्वासो का प्रतीक होगा।

मानव की शक्ति के तीन सपने है–

काम करने का सपना,

रात का सपना,

छलना का सपना,

इन सपनो मे एक ही अमर सपना है– काम करने का सपना। सृज-

नात्मक शक्ति का यही सच्चा सपना है। इस सपने का ही नाम जीवन है।

चाहिए ऐसा सरल स्वभाव मानव,
जिसमे सरल साहस हो,
मानव, जिसमे सरल धुन हो,
मानव, जिसमे मानवोचित अनुभूति हो,
मानव, जो सीधा देखे,
मानव, जो सीधा सोचे,
सरल मानव, जो सीधा काम करे!

चाहिए जीवित मानव– जो हमे मृत्यु से बचावे! परमात्मा की ओर हमने बहुत देखा, अब अपने पुरुषार्थ की ओर देखे।
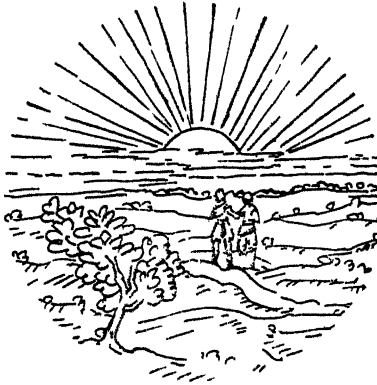
ये मनोरम दृश्य

मनुष्य प्रकृति की गोद मे जन्म लेता, पलता, बढता और अन्त में, उसीके शान्त अचल के नीचे, शाश्वत निन्द्रा मे सदा के लिए सो जाता है। प्रकृति के साथ उसका इतना निकटतम सम्बन्ध होता है कि वह उसकी करोडो खूबियो को महसूस भी नही कर पाता। नही तो, उसके पैर के नीचे उगनेवाली दूब की हरी फुनगिया से लेकर उसके सिर के ऊपर लटकने वाले नीले अम्बर के चकमक रत्नो तक मे ऐसी सौन्दर्य-राशि भरी पडी है कि वह सारी जिन्दगी उन्हे देखने मे ही गुजार दे और तब भी बोले– "आह! इतना देखना रह ही गया!"

लेकिन, इस निकटता से पैदा होनेवाली अवमानना के बावजूद, सहस्र-सहस्र कर्मकोलाहलो मे रहते हुए भी, मनुष्य का कभी-कभी ऐसे मनोरम प्राकृतिक दृश्यों से सामना हो जाता है, जो उसके दिमाग में स्थायी छाप छोड जाते हैं, जो न भुलाये भूले, न बिसराये बिसरें। साधारण समयो मे वे भूल भी जायँ, लेकिन जब कभी वह एकान्त में होता है, ऐसी दृश्यावली उसकी आँखो मे झलमल कर उठती

है और वह वाह्य जगत् को सवदा विस्मृत कर समझने लगता है, आज भी जैसे उन्ही दृश्यो को देख रहा हो ओर देख-देखकर मुग्ध होता हो। कुछ ऐसे ही दृश्यो को, आज मै, यहाँ जेल के इस एकान्त कोने मे, कलम-बन्द करने की कोशिश कर रहा हूँ।

चपला की चमक

ऐसे दृश्यो मे, जो सब से ताजा है, फलत जिसका प्रभाव सब से अधिक हे, पहले उसी का उल्लेख। चपला की चमक, बिजली की कौध पर बहुत-सी कविताएँ पढी थी, बहुत-से प्रेमगीत सुने थे — उधर बिजली चमकी, इधर प्रेयसी का दिल तडपा ! महाकवि कालिदास की यक्ष-प्रिया भी उसकी तडप से मूर्च्छित हो चुकी है, तो साधारण नायिकाओ का क्या कहना ! घने-काले बादलो मे बिजली की क्षण-क्षण छुपने ओर प्रकट होनेवाली उजली-पतली रेखा की छटा ने कुछ भावुक सिनेमावालो को भी काफी आकृष्ट किया है, मैने प्राय भारतीय रजत-पटो मे उसके सौन्दर्य्यानुकरण की चेष्टा देखी है। कितनी ही बार मै भी बिजली की कौध देखता, कितनी देर तक, मन्त्र-मुग्ध-सा रह गया हूँ। किन्तु, अभी हाल ही मे मैने जो बिजली का सौन्दर्य्य देखा, वह उन सभी दृश्यो मे अपूव था, अद्भुत था और था अनुपम।

लहेरियासराय की बात है। शाम हो चली थी ! मै कलाकार उपेन्द्र महारथी के वास-स्थान की ओर जा रहा था। ज्यो ही पुस्तक-भडार से आगे, उत्तर की ओर जानेवाली सडक पर मुडा, सामने के आसमान ने हमारी आँखो को बरबस अपनी ओर खीच लिया। पैर सडक पर, भीड-भाड और कोलाहल से भरी सडक पर पड रहे थे ओर आखे ऊपर आसमान पर अडी थी। उफ, कैसी दृश्यावली ! उत्तर दिशा के समूचे आकाश पर, पश्चिम कोने से पूरब कोने तक, गहरे-घने बादल छाये हुए है। उन बादलो की काली पृष्ठभूमि पर बिजली, मानो एक परी की चपल गति से नृत्य कर रही हो। अभी यहा, पश्चिम कोने पर उसके घाँघरे की जरदार किनारी चमकी, पलक गिरते वह ठीक-ठीक मेरी नाक की सीध मे आकर, विभ्रमकारी गति से नाच उठी, फिर एक छलाग लेती वह पूरब कोने पर पहुँच गई, जहाँ उसकी एक मुस्कान से नीला आसमान उजला उजला हो रहा। वहाँ से फिर मुड पडी— नाचती, हँसती। कभी ऊपर उछल गई, कभी नीचे

सिमट गई। कभी ठिठक गई, कभी उठा पड़ी। यहाँ-वहाँ, इधर-उधर इसका पीछा करने में आँखें भी समर्थ नहीं।

बादलों के बीच यह बिजली की चमक है, या स्वर्ग में सहस्र परियों का नृत्य एक साथ ही हो रहा है। क्योंकि अब तो पल-पल उसकी गति इतनी चपल होती जाती है कि एक परी की कल्पना की नहीं जा सकती! पूरब कोने से पश्चिम कोने तक की इस शत सहस्र मील की लम्बी रंग-भूमि के कोने-कोने को जो विहँसित चमत्कृत कर रही है, वह एक परी हो नहीं सकती। विहँसित, चमत्कृत और मुखरित भी! हाँ, सुन रहा हूँ, रह-रहकर मंजीर का शिंजन और किसी चतुर वादक के मृदंग का गम्भीर रव भी! किन्तु स्वर्ग कहाँ है? परियाँ झूठ है या सच— कौन बतावे? क्या बूढ़े हिमालय को ही आज युगों के बाद कुछ रास-रंग का शौक चर्राया है और उसने ही अपने स्वर्ण-मृगों को इन बादलों के वन में कुलाँचे लेने को छोड़ दिया है? वह उनकी पूँछे चमकी, उनके पैर चमके, उनके सींग चमके, उनके नथुने चमके! बादलों के वन में, इन स्वर्ण-मृगों की कुलाँचों के कारण ही तो, ये शब्द हो रहे हैं। कभी अकेली मृगी दौड़ी— मधुर-मधुर शब्द हुआ। कभी पूरा मृग-झुंड दौड़ा— अजीब गड़गड़ाहट हुई।

आँखों में अपूर्व दृश्यावली, कानों में अभूतपूर्व ध्वनि-प्रतिध्वनि, मस्तिष्क में चित्र-विचित्र कल्पना की लहरी। मेरे पैर थम चले। मैं कुछ आगे, उस नालेवाले पुल के निकट खड़ा था। क्या होश में था? क्या बेहोश था?

एक परिचित आये, बोले "क्या देख रहे हैं?"

जवाब क्या देता, ऊपर की ओर इशारा किया।

उन्होंने भी कहा— "अहा, कैसा अच्छा दृश्य!" और आगे बढ़े।

होश ने कहा— सार्वजनिक स्थान पर यों खड़ा रहना ठीक नहीं। किन्तु, पैर में तो पत्थर बँधे थे। आँखें ऊपर उलझी थीं। क्या करना? शिष्टता ने डाँटा— यह भलेमानसपन नहीं। बढ़ना पड़ा। मन में हजारों चपला की चमक लिये, महारथी का कला-कुंज में आया। फिर जो आँखें ऊपर की, वैसे ही दृश्य! किन्तु, उनका दायरा कुछ और बढ़ गया है। पूरा आधा आसमान बादलों से ढँका है। घने काले बादलों का रंग फैल जाने से कुछ धूमिल हो चला है। उनमें बिजली चमक रही है, किन्तु अब वह परियों का नृत्य नहीं मालूम होती। मालूम होता है,

शिव के गणो ने परियो को खदेड दिया है और वे हाथ मे मशाल लेकर ताडव का अभ्यास कर रहे ह। या स्वण-मृग भाग चले, भूरे ऐरावतो को पहाडी दस्यु खदेडे जा रहे है। कहा का मृदग-रव, परी-पद-शिजन, या मृगी-पद-ध्वनि। अब अजीब धमा-चौकडी हे, उठा-पटक है, चीख है, चिल्लाहट हे ! हड-हड-हड-धड-धड-धड ! अरे अब तो आधी आई ! म बरामदे से भीतर गया। बेत की कुर्सी पर धम से जा गिरा। आँखे मुदी थी और कल्पवा मे वही—चपला की चमक, परियो का नृत्य, स्वण-मृगो की उछल ।

बादलो से ऊपर

बिजली की चर्चा ने बादल की याद दिला दी, फलत ऊपर का यह शीषक। किन्तु, इस शीषक से आप इस भ्रम मे न पडे कि कदाचित् मै वायुयान पर चढ कर बादलो के ऊपर उडा था ! नही, जब यह घटना हुई, म पखो की दुनिया मे नही था, ठोस पथ्वी पर मेरे पैर थे– हाँ, कुछ ऐसी ऊँचाई पर था, जब बादल मेरे नीचे थे।

मै उन दिनो, 'कमवीर' के सम्पादन-विभाग मे, खडवा था। खडवा से शायद ४०–५० मील की दूरी पर (माफ कीजिए, दूरी मुझे ठीक ठीक याद नही रहती) असीरगढ का किला है। मुगल इतिहास मे इस किले की काफी चर्चा है। इसे कुछ अँगरेज इतिहास लेखको ने दक्षिण-पथ की कुजी (Key to Deccan) भी कहा है। जनश्रुति है, यही औरगजेब ने शाहजहाँ को कैद किया था, इसीसे इसका नाम असीरगढ—कैदी का किला—पडा। दादा (प० माखनलाल चतुर्वेदी) की राय हुई, मै असीरगढ जरूर देख लू। एक दिन, टैक्सी से हम लोग असीरगढ के लिए रवाना हुए। अलमस्तो की एक पूरी टोली हमारे साथ थी !

सतपुडा की वह तलेटी – नीची-ऊँची जमीन—कही एक एकड की अच्छी चौरस—सपाट—जमीन दिखला दीजिए, तो आपकी बाजी। मोटर चढती-उतरती, मुडती-झुकती शरीर को मीठी-मीठी हिलडुल और दिल को मधुर-मधुर धडकन देती बढी चली जा रही। छोटी-छोटी पहाडी नालिया, छोटे छोटे पहाडी टीले, जहाँ-तहाँ छोटी-छोटी दिहाती बस्तियाँ—लम्बे-बेढगे सीगोवाली भैसे, आधे कसे हुए सीनेवाली ग्रामबधूटियाँ, मै उत्सुकता से देखता, बढ रहा। मेरी आँखे ये देख रही

और कान सुन रहे—वीरभैया के चुटकले, कुमारजी के गाने, प्रभात की कविताएँ। और, कल्पना रह-रह कर पटक देती बिहार के हरे-भरे चौरस खेतो में, जहा पहाड कहानियो में हैं, जहाँ दस-बीस हजार की आबादीवाली देहाती बस्तियाँ हैं, जहाँ की भैस के सुन्दर, छोटे सीग मेढ़ो के सीगो का मुकाबिला करते हैं, जहाँ की ग्राम-वधूटियाँ

'यह असीरगढ !' वीरभैया ने कहा। मोटर एक पडाव पर रुकी। गढ के 'किलेदार' के रूप में जो एक माली काम करता है, उसे बुलाया गया। उसे पथ-प्रदर्शक बनाकर हमलोग 'गढ' को 'फतह' करने चले !

जो कभी दक्षिणापथ की कुजी कहलाता था, उसी गढ के फाटक के ताले को माली के हाथ की छोटी-सी कुजी ने किस आसानी से खोल दिया ! गढ की बाहरी दीवार तक ढह रही है, तो भीतर के महलो की क्या बात ! कहाँ है मुगलो का वह ऐश्वर्य ! सामने अंग्रेजो का जो कब्रिस्तान है, उसकी कब्रो पर के लेख मुगलो के पतन के दिनो की याद दिलाते हैं और बगल में जो यह जुमा मस्जिद की सिर्फ एक मीनार बच रही है, वह मानो उनके नाम का फातिहा पढ रही है !

"मीनार पर चढकर देखो, तो यह गढ क्या है, कुछ समझ मे आवे।"—माली ने कहा। और यही मीनार का चढना था, जिसने आज इस लेख में असीरगढ की स्मृति को ताजा बनाया है।

जिस समय हम मीनार पर चढने का उपक्रम कर रहे थे, क्षितिज पर, जो बादल का एक बडा टुकडा ऊपर उठ रहा था, इसकी ओर हममे से कम लोगो ने ध्यान दिया था। किन्तु, ज्योही मीनार के अन्दर बनी सीढियो को पारकर आखिरी खिडकी पर पहुँचे, मेरे कौतूहल की सीमा नही रह गई। खिडकी से जहाँ तक नजर जाती थी, बादल ही बादल उमड रहे थे। वीरभैया ने कहा —वर्षा आकर रहेगी। निर्णय हुआ, इसी खिडकी पर पर बादल काट लिया जाय, नीचे जाकर भीगने से क्या फायदा ?

माली के कहे मुताबिक खिडकी से असीरगढ का गौरव हम कहाँ तक देखते, बादलो के गौरव ने हमारी आँखो को यो ढँक लिया कि सिवा उसके कुछ सूझता तक नही। जहाँ देखो, बादल, बादल और वे

बादल समूचे पहाड को ढँके जा रहे– व्यूहवद्ध होकर ! बादल का एक दल इस तरफ से बढ रहा, दूसरा उस तरफ से, तीसरा तीसरी ओर से, चौथा चौथी तरफ से– उजले-उजले बादलो के दल के दल। और, यह सब हमारे नीचे ? हा, हम बादल के ऊपर है और नीचे बादलो के दल के दल पुराने असीरगढ पर छापा मार रहे है।

हम बादल के ऊपर है– मेरे ऐसे चोरस मैदान के रहनेवाले आदमी के लिए कितनी विस्मयकारी यह बात थी, कल्पना कीजिए। मै विस्मय-बोध कर कहा था, उस विस्मय मे रोमाच था, आनन्द था ! मै बादल के ऊपर, और नीचे बादलो के दल-के-दल उजले, सफेद गोले की तरह, जिस तरह हमारे यहाँ माघ की भोर मे कभी कभी धुध लगती है, उसी की तरह बढता, फैलता, सब चीजो को ढाप रहा है।

थोडी देर मे असीरगढ का पता नही था। बादल, बादल, बादल–– चारो ओर धुध का समुद्र। हाँ समुद्र, जिसमे लहरे भी थी। लहरे– इधर से उधर आती, टकराती। टकराई और बरस पडी ! अब असीरगढ पर वर्षा हो रही थी– झमाझम वर्षा !

और, ओ मानव-सन्तानो, तुम इस मीनार पर चढे क्या अछूते बच जाओगे, जब कि असीरगढ पानी-पानी हो रहा है ? मालूम हुआ, धुँध का एक टुकडा उठा और हँसता इठलाता हमारी खिडकी से निकल गया ! खिडकी मे निकला, एक छन को हमारी आखे मुँद सी गई । जब हमने आँखे खोली जादू-सा मालूम पडा ! हमारे बालो, भौहो, और मूँछो पर पानी की बूदे चमक रही है, हमारे कपडे गीले हो चले है और नीचे, नीचे, सद्यस्नाता सुन्दरी की तरह, बूढे असीरगढ की सोई हुई सुन्दरता जाग पडी है, हँस रही है, मुस्करा रही है। अरे यह कैसा जादू– यह कौन जादूगर !

कुछ देर तक, अपलक इस सौन्दय राशि को देखते रहे, फिर मीनार से उतरे। घास, पेड, लताएँ सब धुल पुँछ गई थी। गर्द नही, गुबार नही। गढ की टूटी फूटी दीवारो पर उगी हुई काई भी मखमल सी चमक रही थी। पहाडी के चारो ओर छोटे छोटे असख्य नाले– झरने की तरह– झर-झर झर रहे थे। छोटे-छोटे पतले नाले– कोई मृग छौने-से उछलते, कोई साँप की तरह सरकते, पत्थर के ढोको से टकराते, शब्द करते, कलकल करते नीचे की ओर भागे जा रहे थे– ऊधमी बच्चो की तरह। प्रभाग से रहा नही गया,

कुछ पक्तियाँ उनके मुख मे निकल ही पडी। कुमारजी का कठ भी फूट चला। वीरभैया ने कहा– कहिए बेनीपुरीजी, कैसी रही ? मेरे मुँह से सिफ यही निकला– अद्भुत्, अपूव !

अष्ठमी का चन्द्रमा

चन्द्रमा की शोभा दो ही दिन– या तो द्वितीया को, जब 'ईद का चाँद' बनकर वह करोडो मुसलमानो मे इबादत और बन्दगी पाता और उनकी टोपियो मे चमकता है। या पूर्णिमा को, जब शरद पूनो कहलाकर वह भारत के करोडो हिन्दुओ की श्रद्धाजलि के उजले फूल पाता है। भाद्र कृष्ण अष्टमी, जन्माष्टमी का चन्द्रमा देखने को नही, सिफ समय बताने की चीज है। बचपन से ही देखता हूँ, जब व्रत के कारण पेट मे हरिन उछलता, बार-बार उचक-उचककर आसमान देखता और ज्योही उसका आभास मिला, ठाकुरबाडी का घटा गनगना उठा और हम प्रसाद पर टूट पडे। कौन देखने जाय, उस चाँद के सौन्दय्य को !

किन्तु, उस दिन उसी अष्टमी के चाँद मे जो सौन्दय्य देखा, क्या वह भूलने का है ?

१९३० की घटना है। हम राजबन्दी की तरह, हजारीबाग के सेंट्रल जेल मे, सरकार के मेहमान थे। दिन भर काफी स्वतन्त्रता, किन्तु, ज्यो ही शाम हुई, अपने अपने सेलो मे बन्द कर दिये जाते। जब जन्माष्टमी आई, बडी मुश्किल से जेल के अधिकारियो ने व्रत के लेहाज से, आधी रात तक खुले रहने की इजाजत दी।

उस दिन व्रत का पूरा आयोजन था। हिन्दू-धम-ध्वजी बाबू जगतनारायण लाल थे ही और थे कृष्ण के अनन्य भक्त श्री मान हीराजी। कृष्ण की मूर्त्ति रखी गई, उसे झुलाया गया, उसके सामने नाचा और गाया गया। मने उसी दिन इन दो महानुभावो का नाच देखा। आँख मूँदे, हाथ फैलाये, गद्गद् कठ से कुछ गाये जा रहे, मानो किसी दूसरी दुनिया मे पहुँचे है, और उसी गान के ताल पर अजीब ढग से कमर हिलाते और पैर पटकते नाच रहे थे। मेरे जैसे नास्तिक हँस रहे थे।

जब इनके नाच-गान से मन ऊबा, सोचा, चलो, जेल की सैर हो। इस वार्ड से उस वार्ड। क्यो न अपने बीमार दोस्त से भी अस्पताल में जाकर इस व्रत के दिन मिल लिया जाय ? हमारी टोली वहाँ

पहुँची। वहाँ गपशप हो रही थी कि कृष्ण-जन्म-सूचक घंटे गनगना उठे और स्तुति के स्तोत्र हमारे कानो मे झकार कर उठे।

बडे हुए तो क्या? बचपन के सस्कार तो मिटे नही। प्रसाद के लोभ से हम लोग वहाँ से भागे!

किन्तु, अस्पताल से निकलते ही जो दृश्य देखा, उसने पैर मे मानो भारी जजीर डाल दी।

हज़ारीबाग जेल एक पहाडी टेकडी पर बनाया गया है, यो तो यह समूचा जिला ही पहाडी है। इस टेकडी पर से अनेकानेक दीवारो के बावजूद, आप कितनी ही पहाडियो की झाँकी निश्चय पा सकते है। अस्पताल से बाहर हम जहाँ खडे थे, वहाँ से सामने पूरब एक पहाडी का धूसर सिर हम देख सकते है। जब हम उसके उस सिर को देखेगे, तो उसके नीचे जेल के वार्डों की जो लगातार दीवारे है, वे मालूम पडती ह, मानो वहा तक पहुँचने के लिए सीढियाँ लगी हुई हो। कहाँ ये दीवारे कहाँ वह पहाडी। लेकिन, वे सब मानो सिमिट कर एकत्र हो जाती ह। रात मे तो और भी।

अस्पताल से निकल कर जब हम उस निश्चित स्थान पर पहुँचे, पूरब की ओर देखते ही स्तब्ध रह गये। देखा, अष्टमी का चन्द्रमा निकल कर उस पहाडी के सिर पर यो दीख रहा है, जैसे किसी ने उसे आसमान से उतार कर, बहुत ही सलीके से वहाँ अभी-अभी रख दिया हो। हाँ, हूबहू ऐसा ही लगता था। मै चिल्ला उठा, देखो, देखो। दोस्तो का भी ध्यान गया। उस धूसर पहाडी पर, इस नीरव निशीथ मे वह अष्टमी का चन्द्रमा कैसा था?– शिव के सिर पर चन्द्रमा की बात हमने किताबो मे पढी थी, यहाँ हम प्रत्यक्ष देख रहे थे। वह धूसर पहाडी सचमुच चन्द्रशेखर शकर-सी प्रतीत होती थी।

किन्तु, यह दृश्य कितना क्षणिक था। थोडी ही देर मे पहाडी और चन्द्रमा के बीच थोडी-सी फाँक हो गई। वह फाँक बढती गई। मालूम होता, रूठ कर चन्द्रमा भागा जा रहा है और उसे पाने को पहाडी स्वय ऊपर उठ रही है, किन्तु, अपनी स्थूलता से वह लाचार हो रही है। यह चार अगुल ऊपर, यह एक बित्ता ऊपर, यह एक हाथ ऊपर। इच्छा हुई, यह जो दीवारो की सीढियाँ लगी है, उन पर चढ कर दौडूँ और यो हाथ मे आया हुआ चाँद, जो बेहाथ हुआ जा रहा है, उसे हस्तगत कर लूँ! किन्तु, सामने ही जो सिर से ऊपर की

पहली दीवार है, क्या उसका लाँघना भी सम्भव है?

चन्द्रमा ऊपर बढता गया। उसी समय सामने का जो पीपल का पेड है, उस पर की एक अभूतपूर्व चमक ने अपनी ओर ध्यान खींचा। ज्यो ज्यो चन्द्रमा ऊपर उठ रहा था, उसकी ज्योत्स्ना पीपल के चिकने ढुरढुर पत्तो पर पड कर मानो फिसली पडती थी। बारबार वह उस पर पैर रखती, फिसलती, खिलखिला उठती, हाँ, पत्तो की मधुर मर्मर ध्वनि उसकी खिलखिलाहट ही तो थी! पीपल के पेड का जो हिस्सा चन्द्रमा की ओर था, वहाँ तो यह क्रीडा-कुतूहल हो रहा था, बाकी हिस्सा वैसा ही स्तब्ध, अन्यमनस्क, उदास। उस उदासी की पृष्ठिभूमि मे यह चकमक, झलमल, मर्मर और भी प्राणोन्मादक लग रहा था। आँखो को इस तरह खींच लिया था इस दृश्य ने कि चाँद की सुध भी भूल गई होती, किन्तु, एक-ब-एक अँधेरा होता देख, आसमान की ओर नज़र दौडाई। अब वहाँ एक अजीब समाँ था। हस-कुमार शैवाल-जाल मे फँसा है! बादल का न जाने कहाँ से एक काला टुकडा आकर उसे ढाँपने पर तुला है। हस के बच्चे की वह बारबार उस शैवाल-जाल को छिन्नभिन्न करने की चेष्टा कर रहा है। कभी बादल उसे ढँक लेता है, कभी वह उसे चरका दे कर निकल भागता है। फिर बादल दौडता है, उसे ढँक लेता है। तब वह आकाश-सागर मे गोते लेकर फिर उससे अलग, दूर जा निकलता है—सद्यस्नात सुन्दर, ताजा चेहरे को चमकाते हुए। बहुत देर तक यह बादल और चन्द्रमा की आँखमिचौनी होती रही। आखिर वायु के एक जबदस्त झोके ने चन्द्रमा की मदद की। वह बादल का टुकडा न जाने कहाँ भगा दिया गया! चाँद ठहाका मार-मार कर हँसता रहा!

अब चन्द्रमा पहाडी से ऊँचे, काफी ऊँचे पर चढ चुका है। उसे हमारी कल्पना के हाथ छू नहीं सकते। उसकी रोशनी मे यह जेल अपनी सम्पूर्ण जडता के साथ खडा है। मेरे सभी साथी मुझ पागल को छोडकर प्रसाद पाने को जा चुके है। कानो मे अब भी घटे का रव और स्तोत्र की ध्वनि आ रही है। किन्तु, देवता का यह अर्चन-पूजन भी इस स्थान की दानवता और पैशाचिकता को कम नहीं कर सकता। कहाँ यह स्वच्छन्द चन्द्रमा, वह निर्बन्ध आकाश और कहाँ यहाँ की ये काली काली दीवार, उनके अन्दर तडपती, कराहती हुई मानव-आत्माएँ!!

किन्तु, इस सुन्दर दृश्य के समय, यह असुन्दर भावना क्यो?

मन तू चाँद की तरह ही स्वच्छन्द, निबन्ध विचर, तुझे कोई बाँध नही सकता।

नमस्ते अष्टमी का चन्द्रमा !

शरद की पूर्णिमा

शरद पूनो !—और रासलीला की याद आई ! हमारे ग्रन्थो मे कृष्ण की कल्पना भी कैसी दिलचस्प है। कभी उमे माखन चुराते पाइए, कभी दानव–सहार करते, कभी वृन्दावन मे रासलीला रचाते, कभी कुरू-क्षेत्र मे गीता सुनाते !

शरद पूनो और रामलीला दोनो मे अटूट सम्बन्ध है। जब-बर-सात खत्म हो चली हो, आकाश–मडल मे न बादल का कोई टुकडा हो, न वायुमडल मे धूल का एक भी कण, जब पत्ते धुलेपुछे हो, धरती धोई-बुहारी, जब खेत की आरियो पर काँस फूले हो और सरो–वरो मे कुमुद, जब फुलवारियो मे रजनीगन्धा फूली हो और आगन मे हरसिगार की कलियाँ हँस रही हो—ऐसी मनभावनी ऋतु की सुन्दर, शीतल, सुखप्रद रात मे जब पूर्णिमा का चन्द्रमा आधी रात को सर पर चढकर अट्टहास कर उठे, तब ऐसा कौन हृदय होगा, जो गा नही उठे, नाच न उठे। पुरुष का हर स्वर तब वशी की ध्वनि होगा, नारी का हर पद–चालन नृत्य का एक–एक ताल होगा ! और कही पृष्ठभूमि मे यमुना जैसी श्यामली नदी हो, कदम्ब की हरी छाया हो, वृन्दावन का शान्त वातावरण हो ! फिर क्या कहना ?

अपनी कल्पना की दुनिया मे, कितनी ही शरद पूनो को मै वृन्दावन पहुँचा हूँ, कृष्ण से बाते की ह, गोपियो से चुहले हुई है और उनकी रासलीला का सुख लूटा है। किन्तु, प्रत्यक्षत जिस शरद की पूर्णिमा ने मेरे जीवन मे सब से अधिक गहरी छाप डाल रखी है, आज उसी की तस्वीर उतारने की चेष्टा कर रहा हूँ।

१९३४ की बात हे। बम्बई काँग्रस हो रही थी। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति चुने गये थे। हमारे लिए गौरव की बात थी। मै बहुत ही कम काँग्रेम मे शामिल हुआ हूँ, किन्तु इस बार लोभ सम्वरण नही कर सका।

बम्बई पहुँचकर अतिथि-निवास मे डेरा डाला। स्वागत-समिति के भोजनालय मे एक दिन भोजन कर रहा था कि राष्ट्रपति निरीक्षण

को पहुचे। म उन्हे देखते ही खडा हुआ। वह वहा तक आये। सब ने विस्मय के साथ देखा, राष्ट्रपति किससे घुल घुलकर बात कर रहे है। भोजन के बाद मुझे आज्ञा की, देखो मेरे भाषण का हिन्दी अनुवाद देख जाओ कही 'बिहारी हिन्दी' की शिकायत न हो जाय ! यह अन्तिम फिकरा उन्होने हँसते हँसते कहा ।

अनुवाद बुरा था। मुझे शुरू से नया अनुवाद करना पडा। जल्दी का काम था, मैने अपना सहायक श्री प्रभाकर माचवे को चुना, जो उन दिनो एक विद्यार्थी थ, एक सुशील, परिश्रमी और प्रतिभाशील विद्यार्थी। वह अँगरेजी की कापी पढते जाते, मै अनुवाद करता जाता। कल काग्रेस है। आज ही रात मे इसे पूरा कर लेना है। बडी रात तक, दीन-दुनिया भूले, कलम घिसघिस करता रहा। लेकिन जब जम्हाई पर जम्हाई आने लगी और शरीर ऐठने लगा, सोचा, जरा टहल लिया जाय।

हम दोनो राजेन्द्र बाबू के शाही कैम्प मे बाहर निकले। बिजली की चकाचौध से अलग हुए, तो मालूम हुआ, ओहो, आज तो शरद पूनो है। पूरा चाँद सर पर चला आया था। उसी समय समुद्र का मधुर-मधुर गर्जन सुनाई पडा। माचवे ने कहा, समुद्र किनारे चलिए।

समुद्र किनारे पहुँचा और देखकर निहाल हो गया। समुद्र किनारे जो बाँध बँधा है, उस पर हम बैठे थे। सामने जहाँ तक नजर जाती, समुद्र ही समुद्र। उसमे ज्वार आया है। बडी बडी तरगे उठती, एक दूसरे से टकराती, फेन उडाती, गर्जन करती, आगे बढती, और बाँध पर सर पटककर फिर लौट जाती। ऊपर जो पूर्ण चन्द्र आधी रात तय करके सिर पर खडा मुस्कुरा रहा है, उसकी मुस्कुराहट उन तरगो पर अठखेलियाँ कर रही है। कभी-कभी मालूम होता, किसी अदृश्य छोर को पकडकर शत-सहस्र ज्योत्स्ना-कुमारियाँ चन्द्रमडल से एक-एक कर उतर रही है और आकुल-व्याकुल समुद्र की इन तरग मालाओ के कम्पित अधरो को चूम चूमकर अट्टहास कर उठती है। इन चुम्बनो की मादकता मे मतवाली बनी तरगे आप अपने मे नही है, समुद्र को नाचे छोडकर ऊपर उडना चाहती है, किन्तु उड नही पाती, फलत बार-बार मूर्च्छित होकर, हाहा खाकर गिर-गिर पडती और फिर ज्योंही होश मे आती, वे ही निष्फल चेष्टाएँ ! स्वभावत ही ज्योत्स्ना-कुमारियो को इसमे मजा मिल रहा है, वे भी इस तडपने का तमाशा देखने को बार-बार चुम्बनो की वर्षा-सी किये जा रही है !

समुद्र ! अगाध समुद्र, अथाह समुद्र– यह कैसा छिछलापन तुम मे आज देख रहा हूँ। कहाँ है वह तुम्हारी मर्यादा, जिसके लिए तुम मशहूर हो ? तुम्हारी यह व्याकुलता, यह आस्फालन, यह हाहाकार, यह सर पीटना–तुम्हे बेपद किये दे रहा हे ! अरे, सोचो, अरे सम्हलो ! और ओ पूणचन्द्र ! जरा तुम्ही अपनी लाज समेटो। किसी भलेमानस को यो बेपानी करने से क्या फायदा ? वह प्रेम प्रेम नही, जिसमे प्रियतम या प्रियतमा की मर्यादा की रक्षा ही भुला दी जाय ! बेइज्जती, बेप-दगी का नाम प्रेम नही। किन्तु, नही, तुम नही मानोगे। आज तो तुम हँसने मे मस्त हो। इस हँसी की मस्ती मे होश की बात कौन सुन ? अच्छा तो हँसो, हँसो, हँसो—खूब हँसो, खूब हँसो, इतना हँसो कि तुम खुद बेहोश हो जाओ।

और, क्या यह सच नही है कि आज ससार मे हँमी की अजस्र वर्षा हो रही है। कहाँ की चीख, कहाँ की तडप ! यह सामने जो समुद्र है, वह भी हँस रहा है, अट्टहास कर रहा है। समुद्र के उस पार—क्षितिज के उस छोर पर—एक छोटा-सा जो झिलमिल तारा है, उसकी हँसी देखिए, अपनी हँसी मे वह घुला-मिला जा रहा है। इस तरफ स्वागत-समिति ने जा अतिथियो का आवास—एक नया नगर बसा रखा है, उस पर भी हँसी का ही राज्य है। दूर-दूर से आये–थके प्रतिनिधि सो चुके है, दिन भर का कोलाहल- कलरव शान्त हो चुका है। इस नई नगरी की निस्तब्धता पर चाद की हँसी एक नीहारिका-सी, कुहेलिका-सी, प्रहेलिका-सी छा रही है। नीचे खारे पानी का समुद्र लहरा रहा है, ऊपर तरल चादी का समुद्र लहर-पर-लहर ले रहा है। और उस लहर पर वह झडा-चौक का तिरगा फर-फर कर रहा है।

पढा है, पागल चाँद को देखा करते है। तो क्या चाँद का ज्यादा देखना पागलपन की निशानी नही ? आज भी याद आता है, मै उस पूणचन्द्र को इस तरह एकटक देख रहा था—मानो मेरी दो आखे चक्रवाक के जोडे हो ! कब तक इस पागलपन की स्थिति मे रहा, कह नही सकता। अकस्मात पाया, बाँध पर से अपने दोनो पैर जो मने नीचे, समुद्र की ओर लटका रखे थे, उन पर ठढी-ठढी थपकियाँ पड रही है। ऐ, यह क्या ? यह समुद्र का पानी इतना ऊँचा चढ आया है ! और समुद्र—समुद्र तो अब फेन की राशि बना हुआ है। तरग-तरग, फेन-फेन ! और फेन के हर बुल्ले मे चाँद का एक-एक टुकडा-सा चम-चम कर रहा है। अजीब कोलाहल, अजीब हलचल ! पानी के छीटे उड-उड कर

मेरे चेहरे पर, सिर पर पड़ रहे। ढलती रात की ठंढी हवा चलने लगी थी, जिसमें समुद्र के नमकीनपन की एक अजीब सुगंध थी। वह सुगंध मन-प्राण को पागल बनाये डालती थी। जो तरंगें वहाँ समुद्र में थीं, अब उनसे भी ऊँची हृदय में उठ रही थी—हृदय में, नस-नस में, शिरा-शिरा में। वहाँ भी तरंग थीं, फेन थे और उन फेनों के बुल्ले में चाँद के एक-एक टुकड़े-से चमचम कर रहे थे। मैं भावावेग में एक बार फिर निमग्न हो रहा!

"बेनीपुरीजी, वह दो बज रहे! अभी बहुत काम बाकी है।"—प्रभाकर ने कहा। "हाँ, ठीक तो।"—कह कर मैं उठ खड़ा हुआ और चल पड़ा। चलते-चलते मुड़कर एक बार फेनिल समुद्र की ओर नजर की, फिर पश्चिमी क्षितिज की तरफ बढ़ते हुए पूर्णचन्द्र की ओर।

अमा-निशीथ

क्या अमावस्या की अर्द्धरात्रि में भी सौन्दर्य है ?

शरद-पूनो की याद ने भादो की जिस अमा-निशीथ की याद हरी कर दी है, उसका उत्तर है—हाँ! लेकिन, मैं यह मानता हूँ, उस सौन्दर्य के अनुभव के लिए एक खास ढंग की मानसिक स्थिति ही नहीं दृष्टि-विन्दु भी चाहिए। या, तो कोई भी यह दावे के साथ नहीं कह सकता कि सौन्दर्य सिर्फ चन्दन की धवलता में है आबनूस की कालिमा में नहीं। कृष्ण और कालिन्दी तो सौन्दर्य के दो महान उदाहरण हैं ही।

मैं उन दिनों 'युवक' निकाल रहा था। पटना कॉलेज के सामने मुख्य सड़क पर, एक खपड़ैल मकान ले रखा था, जो 'युवक-आश्रम' के नाम से मशहूर था। बरसात की ऊमस मशहूर है। उस खपड़ैल के नीचे, बहुत रात बीतने पर भी, हम करवट-पर-करवट बदल रहे थे। पटना के मच्छड़ों का धावा अलग था। नींद बेचारी हमें छोड़ कहीं कोने में ऊँघ रही थी।

जब किसी तरह वह बार-बार बुलाने पर भी नजदीक नहीं फटकी, मैंने तय किया, गंगा के किनारे जाकर टहल आया जाय! इस आधी रात को अन्धेरे में गंगा के किनारे! किन्तु, जिन्होंने अपनी नाव आप जला दी हो, उन्हें तरंगों से क्या भय ?

जब म धीरे से, जिसमे साथियो की निद्रा भग न हो, उठने का उपक्रम कर रहा था, महापडित राहुल साकृत्यायन भी, जो प्राय ही मेरी कुटिया को सुशोभित किया करते थे, और मेरी बगल मे सोये थे, उठ बैटे, और हम दोनो गगा के किनारे जा पहुँचे !

चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार ! आसमान मे घनघोर बादल छाये हुए। एक तिनका भी कही नही हिल रहा। आसमान मे एक तारा भी नही दिखायी देता। हाँ, किनारे पर जो पुराना पीपल का पेड है, उसकी फुनगियो पर जुगनू भुक-भुक कर रहे। उनका वह भुक-भुक प्रकाश अन्धकार को ओर भी भीषण बनाता।

सामने गगा हे—भादो की गगा। पटना से लेकर, उधर सब्बलपुर की बस्ती तक, लगभग दो मील फैली हुई गगा। गगा पर भी अन्धकार की ऐसी चादर बिछी हुई थी कि अगर उसका कल-कल शब्द नही होता, हम कल्पना भी नही कर पाते कि सामने नदी है।

उस पीपल पेड के नीचे, एक किनारे बैठकर, हम अमा-निशीथ का सम्पूण सौन्दय्य देख रहे ह।

हाँ, सम्पूण सौन्दय्य। अजन-वण कालिमा। आसमान से जैसे कालिमा बरस रही है। कभी-कभी मुश्किल से जो साँय-साँय कर निकल भागती है, वह हवा भी मानो कालिमा बो जाती है। कालिमा के वे बीज गगा की आद्रता पाकर अकुर लेते, पौधे बनते, फिर अपनी डाल-पात आसमान मे फैलाकर अखड कालिमा मे लीन हो जाते ह।

और वह देखिए, गगा की उन अदृश्य लहरियो पर कौन नाच रही है? ऊपर अन्धकार का चँदोवा तना हे, नीचे अन्धकार का फश बिछा है। अगल-बगल अन्धकार के राजकुमार बैठे तमाशा देख रहे हैं। और, वह नाच रही हे, आप नही देखते? वह अमा-सुन्दरी नाच रही है! उसके हाव-भाव देखिए, तोड-मरोड देखिए, लटक-चटक देखिए—वह उसने गदन तिरछी की, यह उसकी कमर लचकी। ओहो, दशको की यह व्याकुलता! कैसी अपार हर्ष-ध्वनि!

यह हष-ध्वनि है?— नही, आवत्त का गजन है। गगा मे कही भँवर पड रहा है, कही लहरे टकराकर यह शोर कर रही है।

इस पार यह किनारा, यह पीपल का पेड, जिसके सर पर जुगनुओ का भुक-भुक। उस पार वह सब्बलपुर गाव, जहाँ एक दीपक का टिम-

टिम तक नही। हॉ, उसके पीछ सोनपुर स्टेशन में जलनेवाली बिजली बत्तिया की, ऊपर उठकर फली हुई प्रकाश-रेखा क्षीण, अस्पष्ट। बीच मे गगा मैया का विस्तार, जिस पर अमा न अपनी काली मखमली चादर बिछा रखी है।

ए, यह शब्द कैसा? कोई माँझी गा रहा है क्या? उसी समय जैसे सोये मे उठकर, झिगुरा के एक दल न पीछे मे शहनाई टेरी। फिर मेढकी को ही क्यो जुकाम हो! उसका टर-टर भी शुरू हो गया।

इधर किनारे पर ये तरह-तरह के बाजे और गाने और बीच मे वह अनवरत नृत्य, मै निर्निमेष जिसे देख रहा! निर्निमेष— या बिलकुल ऑखे बन्द किये।

उसी समय राहुल बाबा ने कहा— देखो, वह जहाज आ रहा है, कैसा सुन्दर!

दीघाघाट मे एक व्यापारी जहाज कलकत्ता की ओर, जा रहा था। उस पर जलनवाली बत्तिया की रोशनी उसकी गति से उत्पन्न शत-सहस्र तरगो पर खेल रही थी! उसके सामने का जोरदार सच-लाइट, अन्धकार के हृदय को दो टुकडो मे बाँटता, बढता आ रहा था! बेचारा अन्धकार चीख रहा था। अमा-सुन्दरी के फश के तार-तार उड चले थ। कहाँ गया वह नृत्य, कहाँ गये वे अपरूप दशक? उस चतुर्दिक-व्यापी अन्धकार मे जहाज का झलमल, निस्सन्देह हाँ, मुग्ध कर था! लेकिन मेरा हृदय, न जाने क्यो, उस अन्धकार और रोशनी के क्रीडा-कौतुक को पसन्द नही कर सका। मुझ ऐसा लगा, मानो यह रग मे भग हुआ, तमाल के वन मे किसी अरसिक न अचानक आग लगा दी!

राहुलजी कोई ऐतिहासिक कहानी कह रहे थे, जब पटना से इसी तरह जहाज चलते होगे और लका पहुँच कर धर्म का सन्देश देते होगे ! किन्तु, मेरे कान कह रहे थे, कृपा कर चुप रहिए, एक बार फिर उस मलाह को गाने दीजिए, झिगुर की झकार सुनाने दीजिए , और, मेरी ऑखे कहती थी, दूर हो, यह दानव-काय जहाज! एक बार फिर कालिमा फैले, अजन बरसे और अमा-सुन्दरी नृत्य करे!

सरसो के समुद्र में

बस, एक दृश्य और। बात को अधिक बढाना ठीक नही, और मधुरेण समापयेत्।

वमन्त कश्मीर का। मेरी बदनसीबी समझिए, मैंने वहाँ का वसन्त वैभव नही देखा। हाँ, किताबो मे पढा है, मित्रो से सुना है, बहुरगी तस्वीरे देखती हू। उल झील मे कमलो का वह वन, जिन पर शिकारे तैर रहे। बफ से लदी चोटियो पर प्रात सूय की वे स्वर्ण-रश्मियाँ। लेकिन, मुझे सब से विशेष रुचिकर लगता है, घरो के ऊपर आप-से-आप उग आये पौधो का वह रग-विरगा ससार, जिसे मानव-हाथ छू नही पाते, मानव-पद अपवित्र नही कर सकते।

खैर, जाने दीजिए उन बातो को। मै इस भरे वसन्त मे आपको एक छोटी-सी गँवई मे ले जाना चाहता हूँ।

जन्मभूमि प्यारी होती है– वेनीपुर भी मुझे प्यारा है। वहा क्या है– कह नही सकता, किन्तु, उसकी मिट्टी मे कोई आकषण जरूर हे, जो मेरे ऐसे वहशी को बार-बार अपनी ओर खीचता है, खीच लेता है। लेकिन, मेरा दावा है, वेनीपुर मे और कुछ न हो, चन्द दिन ऐसे ह कि जिनके बल पर वह आपको भी बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है।

वे दिन हैं– जब सरसो फूली हुई होती हे। एक-दो खेतो मे छिट-फुट सरसो को फूला हुआ देखकर ही हम फूले नही समाते, किन्तु, वहाँ तो सरसो का समुद्र लहराया करता है।

बागमती की कृपा से इधर नाले, पोखर, चौर भरकर जो पूरी की-पूरी सपाट – चौरस बन गई है, उम जमीन पर आप माघ मे पहुँचिए। ज्यो ही बेदौल से आप बाहर होगे, आप समझिए, सरसो के समुद्र के कूल पर पहुँच गये। जरा, पूरब की ओर नजर कीजिए, पीला, पीला, पीला– जहाँ तक आपकी नजर पहुँच सकती है, पीला ही पीला! क्या पीत समुद्र का एक टुकडा, किसी जादूगर ने यहा ला पटका है? किन्तु, कहाँ पीत मागर, जहाँ का पानी खारा, मुर्दा, यहाँ तो जीवन तरगे ले रहा है, सुगन्ध सपक्ष उड रही है। ऊपर, ऊँचे, वह सूपा-बेनी अपने हरे परो को आसमान की नीलिमा मे खोने की चेप्टा करती हुई, सीटी-पर-सीटी बजा रही है। नीचे फुदगुद्दियाँ फुदक रही, बगेरियाँ चहक रही और बीच मे तितलियो की चमचम और भौरो की भनभन आपके प्राण-मन को व्याकुल बना रही। कहाँ वह पीत सागर– कहाँ यह सरसो का समद्र – कोई तुलना नही, कोई उपमा नही।

आइए, इस समुद्र में धँसिए। डूबने का डर नहीं, जान को खतरा नहीं। इसमें गोते लगाइए, प्राण को जुड़ाइए। बीच की पगडंडी से आप बढ़े चलिए! सरसों की पंखुडियाँ कभी आपके विशाल वक्ष पर गिर-गिर पड़ती हैं, कभी उचक उचक कर आपकी रसीली अधरों को चूमने की कोशिश करती हैं। आप कितने अरसिक हैं! प्रेम का प्रतिदान देना आपने जाना नहीं? लीजिए, जिसका आपने अपमान किया, वही अब आपके सिर पर है। आपको पास आईना होता, तो आप देखते, आपके सिर के मुलायम बाल इस समय सरसों की पतली-पतली पंखुडियों का घोसला बन चुके हैं!

कहीं इस पीली-पीली दुनिया से आपका मन ऊब न जाय, इसलिए बीच-बीच में, भोजन में चटनी की तरह, यह देखिए, यह क्या है? यह, यह मटर का बाजार है—हरी चादर पर कारचोबी का काम! यह केराव का खेत—वही शोभा, लेकिन बगनी की बहार! यह गेहूँ-गेहूँ—शुभ्र हरीतिमा, लम्बी बालियों में किसका मन न उलझे! जमीन से सटी, सिमटी ताक रही हैं चने की क्यारियाँ—सौन्दर्य है, सलोनापन भी, आप आकृष्ट क्या न होंगे? लेकिन, वे कौन आँख तरेड़ रही हैं—गुस्से में काँप रही हैं? उनकी नीली-नीली आँख मानो फटी पड़ती है। छोटी, पतली तीसी-कुमारिकायें—इतना नाज-नखरा ठीक नहीं। जरा लोक-लाज भी देखो। तुम्हारी इस शोखी पर वह एकाकी अरहर शरमायी जा रही है—पीली-पीली हुई जा रही है।

सौन्दर्य और संगीत का आन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ही। पूर्वी हवा की सनन्न्, पक्षियों का कलरव, भौंरों की भनभन तो थी ही, मानव-मन भी अपने को जब्त न कर सका। उसके कंठ फूट चले। किसी एक ने होली की एक कड़ी गा दी, बस, समूचे सरेह में संगीत की ध्वनि-प्रतिध्वनि जग उठी। संगीत भी संक्रामक है—वह बूढ़े बाबा का पोपला मुँह भी ताना-रीरी का शौक पूरा करने लगा।

बीच में यह किसकी चूड़ियाँ खनक उठीं? किसका झूमका झमझमा उठा? किसके कड़े-छड़े एक अजीब स्वर-लहरी की सृष्टि कर उठे? वह कौन है? आपने उसे कभी शहरों में देखा है? अपने काले बालों में अपने गोरे चेहरे को छिपाती, अपने वासन्ती वस्त्रों में अपने चम्पई अंगों को चुराती वह आपको देखते ही जंगली हिरन की तरह चौंकी, भागी और इस सरसों के समुद्र

मे गोते लेकर छिप गई ? छिप गई—अब आप सिर्फ ऊपर की तरगो को गिनते रहिए ?

विद्यापति का—'दक्षिन पवन बहु धीरे'—उनकी पुस्तक या उनके प्रशसको के कठो तक ही रह गया , लेकिन, 'री पुरवैया धीरे बहो'—लोकगीत बनकर जो करोडो कठो को आप्यायित किया करता है क्यो ? इस सरसो के समुद्र मे ही इसका उत्तर पाइयेगा ? पुरवैया बही नही कि इस शान्त-पीन समुद्र मे तरग-पर-तरग उठने लगी। पहले एक सिहरन-सी, फिर, होते-होते, ढेहू तक। बडे-बडे ढेहू—एक-पर-एक। सरसो की पतली सुकुमार पखुडिया पुरवैया के झोके पर उड रही। हवा मे पराग के कण। इस पराग और पखुडियो के चलते हवा भी एक अजीब पीलेपन मे डूबी। इनके स्पश से लहर से, झकोर से मन भी क्यो न पीले रग मे, वासन्ती मादकत मे, रँग जाय ?
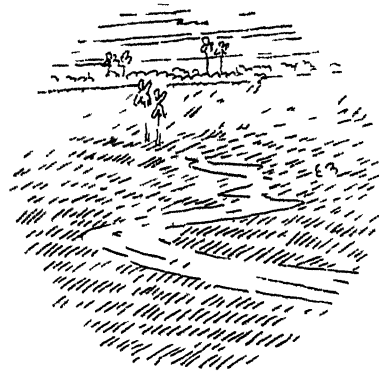
मीरा नाची रे

मीरा नाची रे, पग घुंघरू बाँध ।

अट्टालिका का घेरा, वंश-मर्यादा का घेरा, लौकिक पतिव्रत का घेरा, पारलौकिक स्वर्ग-नरक का घेरा। किन्तु, सब को तोड कर, लाँघ कर मीरा नाची रे, पग घुंघरू बाँध ।

चारो ओर से छि छि की बौछार, चारो ओर से धिक्कार और फिटकार। बाहरवाले कहते हैं निलज्जे। घरवाले कहते हैं—कुलटे। तो भी मीरा नाची रे, पग घुंघरू बाँध ।

पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे, पग घुंघरू बाँध ।

यह है मणिधर सर्प की माला, यह है हलाहल विष का प्याला। किन्तु, मीरा नाची रे

घर छोडा, द्वार छोडा, कुटुम्ब छोडा, परिवार छोडा, जीवन-धन पति छोडा, किन्तु, पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे ।

सदियो के थपेडो ने उस अट्टालिका को धुस्स मे मिला दिया, उस वश की मर्यादा भी अछूती नही रही, उस राणा का नाम भी लोगो को याद नही, किन्तु, आज भी मीरा नाची रे!

मीरा नाची रे! घर-घर मे, दर-दर मे, शरीर-शरीर मे, हृदय-हृदय मे—मीरा नाची रे, पग घुँघरू बाँध?

रग-विरगे चलचित्रो मे, इथरिक ध्वनियो मे—जहाँ मनुष्य के कान और आँख की गति है, सब जगह—मीरा नाची रे?

कठ मीरा के गीत गाते है, कान मीरा के गीत सुनते हैं, आँखे मीरा के चित्र देखती है। यत्र, तत्र, सवत्र—मीरा नाची रे, पग घुँघरू बाँध?

मीरा की जय, नृत्य की जय!

पग की जय, घुँघरू की जय!!

उस विद्रोहिणी मीरा की जय, जिसने अपने हृदय की पुकार पर बौछारो और धिक्कारो की उपेक्षा की।

उस नृत्य की जय, उस पग की उस घुँघरू की जय, जिसका ताल, जिसकी झकार सदियो के बाद भी हमारी अनभूतियो मे जिवित और जागृत है?

गाइये—

पग घुँघरू बाध मीरा नाचो रे? मीरा नाची रे, पग घुँघरू बाँध!

× × ×

हमारे कॉलेज की लडकी, पाट तो बहुत अच्छा करती है, किन्तु स्टेज पर ?

उस लडकी का नृत्य, क्या कहना? किन्तु, उसके माँ-बाप

आपका नाम?

रेडियो स्टेशन मे मेरा नाम तो है रेखा, लेकिन घर मे

यह छिपाव? यह दुराव?

गाने का शौक है, किन्तु, कही पतिदेव?

मा-बाप, पतिदेव!

और हम मे ऐसे मा-बाप भी है, जिन्हे आप सुशिक्षित-शिरोमणि भी कह सकते है! ऐसे पतिदेव है, जो अपने क्षेत्र मे क्रान्तिकारी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं!

किन्तु वे अपनी पुत्री को स्टेज पर उतरने नहीं देंगे, वे अपनी पत्नी को नाचते देख कर शायद विष खा लेंगे !

गाती हो तो ठीक ! पिताजी हाईकोर्ट से लौटे तो उन्हें एक भजन सुना देना ! पतिदेव कालेज से आये, तो एक प्रेम-गीत गा देना !

डार्लिंग !—'हे री, मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय !'

बेटी—'मेरे तो गिरधर, गोपाल, दूसरो न कोई !'

हाँ, इस पिताजी को 'मीरा' का शौक है, इस पतिदेव को 'मीरा' का शौक है।

क्यों न हो, मीरा सब पर छा रही है, सब जगह छा रही है न ?

किन्तु, मीरा के ये प्रेमी अपने घर की मीरा के साथ क्या कर रहे हैं, क्या वे कभी सोचते हैं ?

किन्तु, मीरा के अभिभावक यही करते आये हैं, यही करते रहेंगे। युग बदलते हैं, पिता और पति नहीं बदलते !

किन्तु सवाल है, मीरा क्या कर रही है ?

× × ×

बोलो, ओ देश की असंख्य मीराओ ! तुम क्या कर रही हो ?

देश में सांस्कृतिक नवजीवन लाना है। देश का नव पुनरु-त्थान करना है।

राजनीति बिना नारी के सध भी जाय, किन्तु, संस्कृति में नारी का सहयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

सृष्टि-साधना का फूल है नारी, मानव-साधना का फूल है संस्कृति।

फूल से फूल की शोभा है !

अपने गाँवों में, नगरों में हमें संस्कृति का जो समावेश करना है, क्या वह बिना नारी के सहयोग के सम्भव है ?

अपने उजड़े गाँवों, नीरस नगरों को हमें सौन्दर्य और संगीत से ओत-प्रोत कर देना है, नृत्य और वाद्य से मुखरित और गुंजरित कर देना है।

हमे ऊसर मे फूल खिलाना है, ध्वस पर कचन-मन्दिर स्थापित करना है।

अधेरे घर मे अखड ज्योति जलानी है।

क्या, यह सब बिना नारी के सम्भव है ?

किन्तु नारियो को तो अट्टालिकाओ ने घेर रखा है। अभि-भावको ने दबोच रखा है। फिर क्या हमारे ये स्वप्न स्वप्न ही रह जायँगे ?

हॉ, स्वप्न, स्वप्न रहेगे, यदि हमारी मीराओ ने मीरा का अनुकरण नही किया।

वश-मर्यादा, पतिव्रतधम—सबकी कीमत है, बडी कीमत है! इनकी रक्षा होनी चाहिए। किन्तु समाज की पुकार, कला की पुकार, मीरा की पुकार, उससे भी अधिक कीमत रखती है!

सिसौदिया के सूर्य्य को आखे तडेरने दो, राणा के क्रोध को आग बरसाने दो।

तुम अपने सगीत और नृत्य से राजभवन को भर दो, राज-धानी को भर दो! फिर चित्तौड से वृन्दावन और वृन्दावन से द्वारका तक के डगर-डगर को भर दो।

तुम्हारे घुँघरू की झकार इनके धिक्कार और प्रहार को प्रशसा और प्रणति मे परिणत करके रहेगी!

कल की मीरा अमर हुई, आज की मीराएँ भी अमर रहेगी!

कल की मीरा की जय! आज की मीराओ की जय!

गाओ, नाचो—पग घुँघरू बॉध, मीरा नाची रे, मीरा नाची रे!

डोमखाना

बाप रे, मरे रे!

एक हल्ला। सारा महल्ला सडक पर निकल आया। सामने हरखुआ पडा है। सिर से खून की धारा चल रही है। चेहरा, बदन, कपडे—सब खून से तर है!

बार रे, मरे रे!

यह क्या हुआ? यह किसने किया? जमादार ने मारा होगा! जमादर है या कसाई? और, उसने समझ क्या रखा है? पुराना जमाना लद गया। रिक्सा लाओ, थाने ले चले। बदमाश को सबक सिखायेंगे?

हाँ, हाँ, आप बहुत ठीक कह रहे हैं! ओ रिक्सा! रिक्सा! कई लोग पडाव की ओर दौडे जा रहे हैं।

बाप रे, मरे रे!

इसकी डोमिन कहाँ है—सुहगिया? ओ सुहगिया! सुह-

गिया को बुलाओ भाई। कहो, कहो—थोडा पानी लेती लावे। जमादार! साला कसाई! बच्चू को जेल न भिजवाया, तो मेरा नाम नत्थू नही! सुहगिया, ओ सुहगिया!

पानी? —इसे पानी नही, जहर दूगी। आधी-सी सुहगिया आई! हाथ मे 'दाव', जिससे खून चू रहा—दशको को चीरती हरखुआ के नजदीक पहुँची।

बाप रे, मरे रे!

तूने इसे मारा है?—एक सज्जन उसके दाव की ओर देखते हुए बोलते है!

अभी तो सिर पर मारा है—अबकी इसकी गर्दन काट लूँगी। निगोडा दिन भर बैठा रहता है और मेरे बटुए से पैसा चुराकर ताडी पीता है, उल्टे मुझी पर दाव चलाने आया था! उठ रे, उठ!

सुहगिया ने हरखुआ का हाथ पकडा। खीचा। वह लड-खडता उठा। उसे घसीटती हुई वह डोमखाने की ओर चली। दशक एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे!

तब तक एक नौजवान देशभक्त रिक्सा लेकर पँहुच चुके थे। जैसे एक बहुत महत्त्वपूण काम कर रहे हो, वह तमक कर बोले—कहाँ गया वह?

'वहाँ, उस तरफ!' डोमखाने की ओर उँगली उठी—और, सब ठट्ठा मार कर हँस पडे।

कंजड़ों की दुनिया

एक तरफ मडी हुई नाली, दो तरफ ऐसा मैदान, जिसे शहर मे आने वाले गँवारो ने गन्दा-गन्दा कर रखा है, एक ओर ऊबड-खाबड सडक जो दिन भर धूल उगलती है।

और, बीच म कजडा की एक दुनिया—तीन परिवारो के तीन छोटे-छोटे 'घर' नाम की चीजे, जिनमे दीवाल की जगह हवा और छज्जे की जगह टाट के फटे-चिटे सौ-सौ टुकडे।

माँ भी है—प्रेयसी भी। बहन है और सरहज भी। गोदी के बच्चे है, बूढे बाबा भी और तीन घरो में चार नौजवान भी। लडकियाँ तन्दुरुस्त शरीर की, हँसें, तो गालो मे गड्ढे पड जायँ। युवतियाँ—कसे हुए अग, आँखो में सुरमा और रगीनी भी। बच्चो की किलकारियाँ, नौजवानो की तान और बूढो की तानारीरी। स्त्रियो के कोमल कठ की काकली और जब-तब गाली-गलौज के ककश स्वर भी।

टाटो के उस छज्जे के बाहर एक छोटा-सा आँगन बना लिया गया है। वह कभी गोबर से लिप-पुत भी जाता है। आप भोर मे वहाँ पहुँचे, तो देखेंगे मर्द अलसाये पडे हैं, स्त्रियाँ एक अजीब किस्म के औजार पर लगातार रस्सी बाँट रही हैं। दोपहर के

बाद—यानी तीसरे पहर, चूल्हे जल रहे, आटा गूँधा जाता, रोटियां सिक रही और गरमागरम बँट रही। और, शाम के बाद यहाँ रोशनी नही कि आप कुछ देख सके। हाँ, एक अजीब कलरव—नही, कोलाहल। इन्होने बेतरह ढाला है—कोई एक अनाडी आदमी भी कह देगा।

ये कजड—यह खानाबदोश जाति! न जाने कब इसे बस्तियो से बहशत हुई—घर से घृणा। आज यहाँ, कल वहाँ। और, जमाने के थपेडो ने इसकी सारी बहशत भुला डाली, मजबूर किया बसने को—किन्तु कहाँ, किस जगह ?

एक तरफ सडी हुई नाली, दो तरफ ऐसा मैदान, जिसे शहर मे आने वाले गँवारो ने गन्दा-गन्दा कर रखा है, एक ओर उबड-खाबड सडक जो दिन भर धूल उगलती रहती है।

किन्तु इनके बीच भी बस्तियो से दूर की साफ हवा युगो से पिये हुए उनके शरीरो ने अपने सौष्ठव को कायम रखा है, उनका वह जगली मस्तानापन, फक्कडपन कायम है। गर्मी—पटना की गर्मी मे जब भूमि तवा सी जलती है, जाडे मे जब पछवा हवा उनके इन स्वच्छन्द घरो मे चारो ओर से धावा बोलती है, बरसात मे जब उनके घरो मे पानी बहता, कीचड होता, तब भी, वे इस जगल मे मगल मनाते होते है।

इस छोटी-सी दुनिया मे मातृत्व पलता है, वात्सल्य उमडता है, आँखमिचौनी होती है, रास रचता है, प्रेम-कलह मचता है और प्राय ही कोई कन्हैया—

"बैठ्यो पलोटत राधिका पायन।"

चक्के पर

हड़हड़ करती मोटर गडक के किश्तीनुमा पुल को पार कर रही थी। एक बच्चा, गडक के किनारे बैठा, आम चूस रहा था। हड़हड़ सुनकर उसका ध्यान पुल पर गया और उसने देखा उसके ड्राइवर काका मोटर लिये आ रहे है।

ड्राइवर काका—एक सेकेंड मे ही ड्राइवर काका के अनेक स्नेह-चित्र उसकी आँखो के सामने नाच उठे—चुमकार रहे हैं, लेमनचूस दे रहे है, कन्धे पर ले रहे हैं

एक हाथ में गुठली और एक हाथ मे छिलका लिये, मुह के आम के रस को कठ के नीचे उतारते और होठ और गाल पर पीला रस चहबोचे वह ऊपर दौडा और चिल्लाया—का-का

ड्राइवर काका की गाडी पुल पार कर अब ऊपर चढने पर थी। काका के पैर एक्सलेटर पर जमे थे और हाथ स्टीयरिग ह्वील पर नाच रहे थे। मोटर जोर से आवाज करती हुई सर-से ऊपर दौडी।

बच्चा अब पुल पर था, वह चिल्ला उठा—का-का का-का।

किन्तु, वह बेचारा क्या जानता था कि जब आदमी चक्के पर होता है, गति मे होता है, ऊपर चढने और आगे बढने की होडाहोडी में होता है, तब इधर-उधर मुँडकर देखना भी अपराध हो जाता है।

ड्राइवर काका के कान ने कुछ क्षण पहले एक क्षीण स्वर का अनुभव किया था, किन्तु, वह स्वर मूर्त्त नही हो पाया था कि अब तो वह मोटर की अति क्षिप्र गति मे लीन हो चुका था।

मोटर मर-सर सर-सर भागी जा रही थी—अगल-बगल के अनेक स्वरो को योही कुचलती, दबाती, दबोचती।
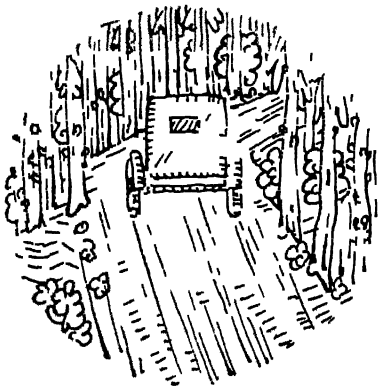
गोशाला

उस दिन रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी।

आज स्कूल नही जाना होगा, गुरुजी की उस हरी-हरी खजूर की छडी से ही छुट्टी नही मिली, कभी आँगन मे जाकर नाचूँगा, नहाऊँगा, कभी पानी के बुल्लो से खेलूगा, खुश होऊँगा, और उसके बाद, गरमागरम खिचडी खाकर काकी की गोद मे सोऊँगा!

किन्तु उस वर्षा मे भी देखा, मेरे गाँव के रामफल काका कीचड ठेलते, सिर पर छाता ओढे, लेकिन ज्यादातर भीगते, बढे जा रहे हैं—मेरे पडोसी अक्कल के दरवाजे की ओर!

रामफल काका—मेरे गाँव के सबसे धनी, किन्तु कजूस!

अक्कल—एक गरीब मजदूर, किन्तु हरफनमौला!

"अक्कल, जरा चलो, भानस घर के खपडे उखड जाने से समूचा घर पानी-पानी हो रहा है, खाना-पीना बन्द है, चलो, जरा खपडो को दुरुस्त कर दो—बाल-बच्चे भूखो छटपट कर रहे है।"

"'मेरी तबीयत ठीक नही—माफ कीजिये, तबीयत अच्छी होती, तो हुकुम सिर-आँखो पर।"

अक्कल रामफल काका का काम प्राय ही करता, किन्तु उसे सबसे ज्यादा तो इस बात की चिढ थी कि कजूसी के मारे अच्छे दिनो मे तो ये घर दुरुस्त नही कराते और इस आफ्त मे जान लेने आये है, जैसे गरीब की देह देह ही नही ! और उसे सर्दी लग गई थी, वह रह-रह कर खासता था, यह बात तो हम पडोसी जानते ही थे।

किन्तु रामफल काका के शाम-दाम, दड-भेद के सामने उसे झुकना ही पडा। फटी काली कमली ओढे अक्कल को मने राम-फल काका के पीछे-पीछे जाते देखा !

× × ×

अक्कल। पाँच हाथ का लम्बा जवान। रग—वही भारत के आदिनिवासियो का। विदेशी आर्यों के रक्त-मिश्रण का प्रभाव रग पर न पडकर आकार पर ही पडा था। हट्टा-कट्टा !

जिस खेत की कोडनी मे अक्कल पहुँचा, उसके खर-पात अक्कल के नाम पर रोयें। उसकी कुदाल क्या थी—परशुराम और बलराम के कुठार और हल की खिचडी थी ! ऐसा 'महीन' जोतने वाला हलवाहा कहाँ मिलेगा ? घर बनाने-छाने मे तो उस्ताद। गाँव मे जितने अच्छे मकान है, चाहे उनकी दीवाल बनाने मे या छप्पर छाने मे अक्कल का कुशल हाथ जरूर है। रामफल काका का वह शानदार बॅगला अक्कल की वास्तुविद्या के अपार ज्ञान का एक उत्कृष्ट नमूना है। अपने इन गुणो के चलते अक्कल मजदूर होकर भी काफी खुशामदे पाता रहा—पैसे भी।

उसके दो बेटे और एक बेटी थी। बेटो का लालन-पालन उसने औकात से ज्यादा अच्छे ढग पर किया और बेटी को तो वह इस शान से रखता कि गाँव की 'बबुइयाँ' भी मन-ही मन चिढती।

अक्कल की उदारता की चर्चा भी होती। गाँव मे कभी साधु-सत आते, तो उनकी सेवा अक्कल जरूर करता ! वह काम

करने मे राक्षस था। उसकी आमदनी साधारण मजदूरो से ज्यादा तो थी ही, एक गाय भी पाल रखी थी और दो-तीन बकरियाँ भी। इनसे भी काफी पैसे आते!

× × ×

मै अब शहरी जीव हूँ। कभी-कभी मन बहलाने को अपने गाँव मे चला जाता हूँ।

एक दिन, अपने दरवाजे पर बैठा, मै एक विलायती मैगजीन पढ रहा था। एक छोटी-सी रूप कथा थी। मै सोचता, उफ, ये विदेशी कलाकार कैसी जीवन्त तस्वीरे खीचते है! कलम है या रगीन कूची!

'सलाम बबुआ'।'

आँखे न उठी—मै कुछ पढने मे गर्क था, कुछ गर्क होने का स्वाँग भर रहा था—कुछ उपेक्षा भी थी। दिन भर इन देहातियो के मारे परेशान जो रहता हूँ।

फिर वही आवाज—मैने आँखे उठाई। एक लकुटिया और दो सूखे पैरो के सहारे, तीन टाँग के जानवर-सा झुका एक आदमी दीख पडा। चेहरे पर गौर किया—काले चेहरे को सफेद-सफेद बालो के ठूठ और भयानक बना रहे। गरदन लगातार हिल रही!

'मै हूँ बबुआ, अक्कल!'

मै चौक पडा! क्या वही अक्कल आज ऐसा हो गया?

बेचारा अक्कल अब भीख माँगता है। जिसने गाँव भर को घर दिया, वही बे-घर-बार का है। एक बच्चा जाता रहा, दूसरा, शादी होते ही अपनी ससुराल चल दिया। बेटी तो पराये की होती ही है! उसकी प्यारी पत्नी बुधनी भी चल बसी है! कोई काम-धाम उससे बन पडता नही। इतनी कमाई तो कभी हुई नही कि इतना सग्रह कर पाता कि इन बुरे दिनो को सुख चैन से काटता। सिवा भीख के दूसरा चारा क्या?

और, भीख भी क्या सदा मिलती ही है? भूख-प्यास का मारा अक्कल यह हड्डी का ढाँचा बन रहा है!

"बबुआ, मै आप से भीख माँगने नही आया, एक नालिश करने

यो ही साइकिल सरसराता, सोचता चला जा रहा था कि रास्ते मे एक झुकी हुई आदमी की सूरत-सी दीख पडी। यह अक्कल ! कहाँ चल अक्कल ?

"गॉव मे अब गुजर नही होती बबुआ ! जा रहा हू, कही माग-मूँग कर खाऊँगा और राम-नाम लेते "

अक्कल की आँखो मे बड-बडे बिल्लौरी दाने गिर रहे थे ! वे धँसी आँखे मानो चिर-सचित मुक्ताओं को उगल रही थी !

अक्कल अपने गॉव को सदा के लिए छोड कर जा रहा है। कहाँ ? जहाँ कही भी उसे पेट के खड्ड के भरने के लिए एक मुट्ठी अन्न और इस शरीर के पसारने के लिए तीन हाथ जमीन मिल जाय।

मनुष्य ने बूढे पशुओ के लिए गोशालाये बनवाई, किन्तु बूढे मनुष्यो के लिए ? रामफल चाचा को बूढी गाया से इतनी मुहब्बत और उस बूढे आदमी के लिए, जिनके ?

रोपनी

हमारा देश कृषि-प्रधान है। खेती पर ही यहाँ की श्री-सम्पन्नता निभर करती है। खेती में अच्छी फसल आई, हमारे देश मे सुख आया, आनन्द-उत्साह आया। खेती मारी गई, चारो ओर मुदनी ही मुदनी— सूखे चेहरे, झिपकती आँखे, डगमगाते कदम। कृषि मे वृद्धि, देश मे उन्नति। हमारे राष्ट्र-रथ की धुरी है कृषि, कृषि।

कृषि की प्रत्येक क्रिया हमारे यहाँ त्योहार है जुताई, कोडाई, पटाई, रोपनी, निकौनी, कटनी सब के साथ हमारे हृदय की भावनाएँ गुथी है। हाथ-पैर काम करते है जरूर, लेकिन इन क्रियाओ के अवसरो पर सिर्फ हाथ-पैर चला कर ही हमे सन्तोष नही। ऐसे मौको पर हम गाये बिना रह नही सकते खेतो मे, खलिहानो मे, आरो पर, डँरेडो पर हम अपना हृदय निकाल कर रख देते है!

इन क्रियाआ मे रोपनी का महत्त्व बिहार मे सब से अधिक है। धान की खेनी हमारे यहाँ सब से बडी खेती है। और धान की खेती की सबसे बडी महत्त्वपूर्ण क्रिया है रोपनी!

और, रोपनी के लिए समय भी कितना सुहावन! आषाढ़-सावन के दिन। आसमान मे काले-काले बादल उमड रहे हैं। चारो ओर हरियाली ही हरियाली है। तालाबो मे मेंढक बोल रहे ह। काली फिजा मे उजले-उजले बगले उड रह हैं। जब तब रिमझिम वर्षा हो जाती है। पृथ्वी से सुगन्ध-सी निकल रही है। मालूम होता है, सारे समार पर इन्द्रजाल छाया हुआ है!

आइये, सिहेसर चाचा के दरवाजे पर का जरा दृश्य देखे

सिहेसर– ओ, कुनकुन, कुनकुन! कहाँ गया कुनकुनमा! बैल को दाना दिया कि नही! मगर! मगर–अब तक मगर कहाँ सोया है? सरजू, तुम देखते क्यो नही सरजू, आज नासी में रोपनी है, और तुम लोग निश्चिन्त पडे हो!

सरजू– नही चाचाजी! मै तो अभी खेतो को देख कर आ रहा हूँ! नासी मे काफी पानी नही रह गया है! किन्तु आज गोबराहा मे अच्छी रोपनी होगी, चाचाजी! कुनकुनमा–ओ कुनकुनमा ।

कुनकुन जी, मालिक! बैलो को दाना खिला रहा हूँ मालिक! एक घडी रात थी, तब से ही बैलो को खिलाने मे लगा हूँ मालिक! कुट्टी काटी, नाँद भरे– देखिये, बैल तो अब अफर रहे है! लेकिन मगर का कही पता नही है–छोटे मालिक!

मगर– (खाँसता हुआ) मगर का पता नही है— चार दिन का छोकडा और तू चुगली करने चला है। दरवाजे पर रहता है, तो मालिक का मुँहलगा बना है! बडे मालिक, मै खेतो को देखने गया था। मालिक, आज न नासी मे रोपनी हो, न गोबराहा में आज नन्हकार मे खूब पानी है बडे मालिक ।

और बात रह गई मगर की ही। क्योकि मगर सिर्फ हलवाहा ही तो नही है। वह तीन पुश्तो से इस घर का अन्नदाता है । ज्यो ही जवान हुआ, उसने हल पकडा और आज लगातार चालीस वर्षों से वह जोतता आ रहा है। वह सारे खेतो के रग-रेशे से परिचित है।

मगर हल लिये जा रहा है नन्हकार मे, आगे-आगे बैलो के जोडे को कुनकुनमा हहकारे जा रहा है । सरजू भैया भी साथ है—बिना गृहस्थ को कही खेती होती है? उधर सिहेसर चाचा औरतो के एक झुड को लेकर बीया उपारने को बीहन के खेत की ओर चले। सुनिए, जाती हुई वे गा रही हैं—

कहँमा लगइहौ म जूही-चमेली,
कहँमा लगइहौं अनार हे
नारियर के गछिया ।

दुअरे लगइहौ म जूही-चमेली,
अँगने लगइहौ अनार हे
नारियर के गछिया ।

कै फूल फूले जूही-चमेली,
कै फूल फूले अनार हे,
नारियर के गछिया ।

दस फूल फूले जूही-चमेली,
दुई फूल फूले अनार हे,
नारियर के गछिया ॥

केहि सखि चिखलन जूही-चमेली,
केहि सखि चिखलन अनार हे,
नारियर के गछिया ।

देवरा छयला चीखे जूही-चमेली,
सइयाँ रगीला अनार रे,
नारियर के गछिया ॥

उधर बीहन के खेत मे झूमर हो रहा है, तो इधर हलवाहो ने रोपनी के खेत मे बिरहा की टेर लगाई ।

एक ने कहा—

आम के गाछ कोइलिया कुहके,
बनमा मे कुकए मोर ।
मोरा अँगना मे कुहकए सोना के चिडइया,
सुन हुलसे जिया मोर ।

दूसरे ने कहा—

तलवा झुरइले कमल कुम्हलइले,
हम रोवे बिरह बियोग
रोवत बाडी सरवन केरी माता,
के काँवर ढोइहे मोर

तीसरे ने कहा—

बने-बने गइया चरौले कन्हैया,
घरे-घरे जाइले पिरीत ।
अनका गारिया के मान मारि अएले,
आखिरो त जात अहीर ।

सिहेसर चाचाजी के आँगन मे भी आज कम कोलाहल नही है । इतने जन-मजदूरे, इतनी जनी-मजदूरिन—इन सब के लिए कलेवा का प्रबन्ध करना ही है । आज पहली रोपनी है । आज कुछ अच्छी चीज़े खिलानी चाहिए लोगो के मुँह मीठे करने पडेगे, तभी भगवान हमारा मुँह मीठा करेगे । दल्ही पूरी बने और खडे दूध की तस्मई । जाँत चलने लगी । आसमान मे बादल का स्वर, आगन मे जाँत के स्वर मे कोकिल-कठी का स्वर—

बेरि-बेरि तोहे बरजू हे बाबा,
आरे पच्छिम धिया जनि लाऊ ।
पच्छिम के लोग निरमोहिया ए बाबा,
ऊलटि पलटि दुख देई ।
रतिया पिसावे जौ-गेहुआँ ए बाबा,
दिनमा कतावे झीना सूत ।
मुतले सेजियवा उठावे ए बाबा,
अरे अँगना घरे सब छूँछ ।
जेठ-बइसाख केरि तलफी भुभुरिया,
धनिया जइहें कुम्हलाई ।
अँगने मे कुइयाँ खना द ए बाबू,
रेसम के डोरिया लगाई ।

इधर आँगन में पूरी-तस्मई बन गई । बीहन के खेत में काफी बीए उखाड लिये गये । रोपनी के खेत की जुताई पूरी हो गई । गृहस्थ-मजदूर सब-के-सब घर लौटे । मालिक के घर में ही खाना-पीना हुआ । खाना-पीना क्या कहिए, पूरी कचरकूट ।

कुनकुन—मगर काका, कहिए, कितनी पूरियाँ उडी !

मगर—अरे, क्या बकबक करता है, अभी-अभी तो सोरही पूरी हुई है ! बस, आधी सोरही और !

कुनकुन—और खीर की तो कठौत ही खाली कर दी आपने काका जी ! उफ, बूढे हुए लेकिन गौत कम नही हुई ।

मगर—अरे, तुम्हारी तरह कलजुगहा जवान है देख यह हाथ की फट्टी—हा, हाँ ।

सिहेसर—मगर, कुनकुनमा को बोलने दो, तुम खाये चलो। तुम्हारा पेट भरेगा तभी हमारा खेत भरेगा म'गर !

मरजू—और इस बाटी मे सुहगिया के लिए भी पूरी-खीर लेते जाना मगर ।

खाने-पीने के बाद थोडी देर तक सुस्ता लिया गया । फिर रोपनी के खेत मे यह पूरा मजमा पहुँचा । स्त्रियो की उमग का क्या कहना ? पाँत बना कर वे खेत मे रोपनी कर रही है । रोपते-रोपते बीच मे एक-दूसरे की देह पर कीचड के छीटे डाल देती है, पानी उलीच देती है। बूढे मगर की तो सबने मिल कर बडी दुगत बना दी है । कीचड से वह बेचारा भूत बना हुआ है और रह-रह कर गालियाँ बोलने से भी बाज नही आता। किन्तु इन रोपनी करनेवाली औरतो को इन गालियो की क्या परवाह ? वे खिलखिला कर हँसती है और मानो मगर को चिढाने के लिए ही गाती है—

नइहरवा मे ठढी बयार,
ससुरवा मै ना जइहो ।
ससुरा मे मिले ला जउआ की रोटी
मडुआ की रोटी,
नइहरा मे पूरी हजार।
ससुरवा मै ना जइहो ! नइहरवा०
ससुरा मे मिले ला साग सतुइया,
नइहरा मे धाने के भात,

ससुरवा ना जइहो । नइहरवा०

ससुरा में मिलेला फटही लुगरिया

काली कमरिया,

नइहरा में सोलहो सिंगार

ससुरवा ना जइहो । नइहरवा०

ससुरा में मिलेला लात और मूका,

नइहरा में मीठी-मीठी बात

ससुरवा में ना जइहो । नइहरवा०

बीच-बीच में पुरुषों का समूह चाँचर और बारहमासा गाता रहा । सन्ध्या हुई, रोपनी करके सब-के-सब हँसते-गाते घर पहुँचे ।

रोपनी में किसानों के सामूहिक जीवन का बहुत अच्छा दिग्दर्शन होता है । प्राय कई किसान मिल-जुलकर रोपनी करते है। जिसकी ताक रही, सबने उसकी मदद की । नही तो फिर सबकी ताक बिगड जाय ।

हमारे देश की पढी-लिखी स्त्रियाँ मिट्टी से घृणा करने लगी है । रोपनी तो कीचड और मिट्टी मे सनी हुई क्रिया है न । किन्तु, एक जमाना आयेगा, जब हमें मिट्टी से घृणा करने की यह आदत छुडानी पडेगी । उस दिन रोपनी और रंगीन बन जायगी। नये गीत होंगे, नये कंठ होंगे, नये स्वर होंगे । हर खेत की मेड पर तब गाता हुआ इन्द्रधनुष हम पावगे, वह दिन निकट आवे ।
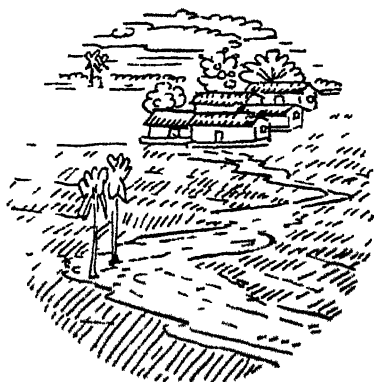
घासवाली

दिन भर घास छीलती और शाम को निकट के [illegible] ले जाकर बेचती—यही उसका पेशा था ।

पेशा मे आनन्द क्या, उल्लास क्या ? वह तो नित्य करने , की चीज ठहरा ।

किन्तु उस दिन उसने उसमे आनन्द भी पाया, उल्लास भी अनुभव किया ।

बहुत देर तक घास न बिकने के कारण चौराहे पर खडी थी वह । बिपता यह थी कि कल ही होली है। त्योहार कैसे मनाया जायगा ?

झुटपुटे का वक्त आया—यह अकेली घर कैसे, कब तक पहुँचेगी ? उदासी का यह दूसरा कारण हुआ।

इतने मे ही एक इक्केवान पहुँचा । हँसमुख, नौजवान। मुस्कराते हुए बोला—'कितना लेगी रे ?'

'सिर्फ दो आने !'—मुस्कुराता हुआ बोला और मुँहमाँगा दाम दे, घास ले, वह चलता बना ।

चौराहे की बिजली के प्रकाश मे दो जोडे आँखे चमक उठी।

लौटते समय, जीवन मे पहली बार, उसने काठ की धेलेवाली कघी खरीदी और खरीदा एक पैसे का नारियल का तेल।

होली के सौदे भी हुए ।

× × ×

वह नित्य आती, घास लिये प्रतीक्षा करती और मुँहअँधेरा होने पर जब वह नौजवान इक्केवान पहुँचता, घास दे, जो पैसे वह देता, लेकर चल देती ।

भाव-माव कुछ नहीं—फाव में दो-एक चुहल हो जाती ।

अब उसके सिर के नारियल के तेल से तीखी गंध निकलती, क्योंकि उसमें कपूर भी डलता था। बालों में एक सुलझाव दीखता ! और, आँखों में ?

× × ×

उस दिन वह हरी चूनर पहनकर आई थी ।

सन्ध्या को इक्केवान आया—उसने घास ली, पैसे दिये। पैसे देते समय ढिठाई से उसके गाल में एक हुदक्का मार दिया ।

समूचा शरीर झनझना उठा उसका ।

और, बेहोशी में ही उसने अपने को इक्के पर चढ़ा पाया । इक्का भागा जा रहा था—उसपर वह बैठी उड़ती-सी अनुभव कर रही थी !

वह कहाँ जा रही थी ?

× × ×

वह प्रति दिन आती ।

अब घास कम आती—पैसे अधिक मिलते ।

उसके सिर से चमेली की सुबास निकलती ।

× × ×

दस वर्ष बाद !

शाम का वक्त ! चौराहे पर एक अधेड़ स्त्री बैठी है । वह हरे चने के दाने बेचती है । दिन भर चने के छिलके छिलती और बेचती रहती है ।

उसके निकट एक बच्चा है, पाँच वर्ष के लगभग का ।

जब वह जिद करता है, चने के पैसे से एकाध धेले की गुलाबछड़ी खरीद देती है ।

उस दिन एक अपूर्व खरीदार आया ।

कोट-पैंट पहने, एक पैसे का चना माग रहा था। जब तौलकर देने को उसने सिर ऊपर किया, तो बिजली के प्रकाश मे उसका चेहरा देखकर वह चिल्ला पडा—'सुकिया'।

'मोहन!'—वह बोली।—'कहा रहते हो मोहन?'

'कलकत्ते म मिस्त्री हूँ।'

'और इक्का '

शायद और कुछ बात होती, किन्तु इतने ही मे एक पूर्णवयस्क हट्टा-कट्टा पुरुष आ पहुँचा। 'क्यो, चने अबतक नही बिके?' उसने पूछा।

'यह रामू के बाबूजी ह, मोहन।' उस स्त्री ने इस लहजे मे कहा जिसका अर्थ था, यही मेरे पतिदेव है।

'राम, राम भाई साहब!' मोहन बोला, चने लिये, पैसे फेंके और चल पडा।

उधर मोहन, इधर सुकिया मन-ही-मन उस सन्ध्या की याद कर रहे थे जब दोनो इसी जगह से इक्के पर चले थे उड़ते, फर-फुर! और शुक्रतारा को देखकर रात कितनी बीती, इसका अनुमान किया था उन्होने।

गरीबो का प्रेम ऐसा ही होता है—तालाब मे एक ढेला गिरा, कुछ तरगे उठी फिर पानी शान्त!

समुद्र के ज्वार-भाटे तो महलो मे उठते ह!

पनिहारिन

दुनिया को पानी पिलाती हूँ, किन्तु, स्वय प्यास से मरती हूँ ।

जब मै सिर पर गागर लेकर चलती हूँ, लोग कहते है—रस छलकने लगता है । किन्तु, मेरा रिक्त हृदय जो हाहाकार मचाये रहता है, यदि कोई उसे देख पाता, यदि कोई उसे सुन पाता !

न जाने, पहले-पहल, कब यह घडा सिर पर पडा—न जाने कब उतरेगा !

हाँ, धुँधली-सी याद तो है ।

माँ का आँचल पकड, पहली बार, कूएँ की ओर चली और जिद-पर-जिद की, तो उसने छोटी-सी ठिलिया मेरे लिए भी मोल ले दी ।

सचमुच, उस दिन मेरे उस छोटे-से घडे से रस छलका था ।

मेरी लाल चूनर भीग गई थी !

किन्तु, आज ?

और, आगामी कल तो अभी आने को है, जब कि बुढापा मेरी कमर तोड देगा , किन्तु, मुझे सिर पर घडा ढोना ही पडेगा।

क्योकि इस घडे ने मेरे सिर से ही नही, मेरे पेट से अटूट नाता जोड रखा है। सिर पर जिस दिन गागर न हो, उस दिन इस पापी खड्ड मे इट-पत्थर कहाँ से पडेगे ?

× × ×

मेरे सिर पर पानी का घडा है, मेरी छाती पर अमृत के कलश हैं।

मेरा थका-माँदा 'मालिक' तालाब या नदी का गँदला जल कही चुल्लू से भरकर पीता होगा—मै दिन-रात सिर पर पानी से भरा पीतल का सुन्दर घडा ढोती हूँ।

इन अमृत-कलशो पर किसकी आँखे गडी है ? वह उस दिन क्यो घूर-घूरकर देख रहा था इस ओर ?

मेरा प्यासा मालिक, किसी पासिन के मटके पर दीवाना होगा, मेरे अमृत-कलश को ये क्यो लूटना चाहते ह ?

आह ! सचमुच य अमृत-कलश है। जिनसे मेरे जीवन भर की सचित जीवन-सुधा, उजला रस बनकर,—सुफेद-सुफेद, प्राणदा जीवनमयी रसधार बन कर निकल पडी !

उस दिन मेरी सूनी गोद मे 'गोपाल' किलके थे।

किन्तु, यह 'गो' तो इस गोपाल के लिए नही है !

जो मेरा पानी पीता रहा है, उसका बच्चा ही मेरे अमृत कलश का सुधा-रस पीयेगा !

मेरे गोपाल तडपते है, किन्तु, मै क्या करूँ ? इस अमृत कलश का सम्बन्ध भी तो मेरी उदर-दरी से है, जिसे भरने के लिए रोज एक मुट्ठी अन्न चाहिए !

× × ×

मेरे सिर पर गागर है, आँखो मे काजल है, पीले वस्त्र पहन कर उस दिन घर से निकली।

वह छैला गुनगुना पडा—'सिर पर घडा लिये पनिहारिन !

न जाने, क्यो मेरे घडे से रस छलकने लगा। मेरी उदासीन आँखो में न जाने कहाँ से तिरछी चितवन आ गई ?

इस पीली साड़ी के रंग ने मेरे हृदय को गुलाबी बना दिया।

काजल तेरा बुरा हो! मेरा समूचा जीवन काजलमय हो गया।

जिनके पेट के लिए एक मुट्ठी अन्न की व्यवस्था नहीं, उनके हृदय में प्रेम का यह पारावार क्यों लहराया गया?

बूढ़े विधाता! तेरा सत्यनाश हो!

× × ×

युग-युग से मैं गागर ढो रही हूँ युग-युग तक मैं गागर ढोने के लिए बाध्य की जाऊँगी!

दुनिया में कुछ लोग बिना हाथ-पैर हिलाये, बैठे बिठाये पानी पीते रहें, इसके लिए आवश्यक यह है कि कुछ लोग सदा गागर ढोते रहें!

माघ की भोर है—पछवा हवा पुरानी कुर्त्ती को छेद कर छाती की हड्डी तक हिला रही है, अंग-अंग सिकुड़ जा रहे हैं, किन्तु मुझे गागर ढोनी पड़ेगी, क्योंकि किसी को सुबह-सुबह कूएँ का गरमागरम पानी चाहिए।

जेठ की दुपहरिया—ऊपर से आग की वर्षा, तवे-सी जलती भूमि! किन्तु, मुझे गाँव से दूर की उस अमराई के कूएँ का ठंडा जल ढोकर उसे पिलाना ही पड़ेगा।

बरसात का अंजन-वर्ण निशीथ हो या शरद् की रजत रात्रि—मेरे सिर पर गागर होगी, गागर, गागर! कहीं गीत हो या रुदन, कहीं ब्याह हो या श्राद्ध, कहीं ईद हो या मुहर्रम—मेरे सिर पर गागर होगी, गागर।

× × ×

भगवान, मुझसे अब यह गागर ढोई नहीं जाती—मेरी रक्षा करो।

या तो मेरे सिर से यह गागर उतारो—

या तो मेरे सिर से यह गागर उतारो—

हाँ, या तो मेरे सिर से यह गागर उतारो, या अपनी इस विराट गागर—विश्व को फोड़ दो!

अन्त सार-शून्य तुम्हारी इस गागर को बहुत देखा, बहुत परखा!

यह रहने लायक, रखने लायक नही है—नही है।

इसे फोड दो।

हा, या तो मेरे सिर से यह गागर उतारो या अपनी इस विराट गागर को फोड दो।

नही फोडोगे?—तो यह एक दिन फूटेगी ही!

याद रखो—छोटी कंकडी की चोट से बडी-बडी गागरे फूट चुकी है।

बचपन

बा–बा बा-बा बा–आ–आ

यह ललनजी बोल रहे हैं। सिर पर घुँघराले बालो के लट लटक रहे है। दोनो हाथ ऊपर उठा रहे हैं, जैसे इशारे से बुला रहे हो। उठ सकते नही, बढने को हुमच रहे है।

बा–आ बा–बा–बा बा–आ बा–बा

ललनजी की बोली सुनकर महेन्द्रजी उनकी ओर बढे। दो बार चूमने की कोशिश की—किन्तु, मुँह से चुमकारी के शब्द तक निकाल नही पाते। फिर उनसे लिपट गये, गोद में लेने की कोशिश की। महेन्द्रजी के छोटे-छोटे हाथो में हमारा गुल्ला-थुल्ला ललन अँट नही पाता। किन्तु, महेन्द्रजी गोद में लेंगे ही। छाती से चिपकाया—इतने जोर से कि ललनजी रोने लगे।

– आँ–आँ बा-बो-बा मा मा

प्रभा रानी दौडी—ओहो, मेरे बबुआ को मार दिया महेन्द्र ने! महेन्द्र ने—लाल चाचा ने! महेन्द्रजी से छीनकर प्रभा ने ललनजी को गोद म ले लिया—"ओहो, लाल चाचा ने मारा है। मारा है मेरे बबुआ को! चुप, चुप रहिये—मै महेन्द्रजी को मारती हूँ।" प्रभा ने महेन्द्रजी को मारने का स्वाँग किया। ललन चुप—किन्तु, महेन्द्रजी न अपने को अपमानित बोध किया—वह फूटकर रो उठे!

और, यह जित्तिनजी दौडे—अपनी साहबी पोशाक मे! अभी-अभी कन्वेंट से पढकर आये है। टाई तक नही खोली है। प्रभा से छीनकर ललन को अपनी गोद मे लिया। उनकी रगीन रेशमी टाई को पकडकर ललनजी खेलने लगे।—"किसने मारा था तुम्हे—इस प्रभा ने? पीटे प्रभा को?"

अपने भतीजे को यो अचानक गोद से छीने जाने के कारण प्रभा-रानी गुस्से मे थी। अब यह तुहमत! उनकी आँखो से झरझर आसू झरने लगे!

इधर ललनजी मँझले चाचा की टाई पकडे हुए कह रहे है—

बा—बा बा—आ—बा बा—बा—आ

बाबा खाट पर सिर झुकाये स्केच लिख रहे है! बच्चो के कोलाहल मे क्या कुछ लिखा जा सकता है? हाँ, शब्द-चित्रकार है न? इन चार अनमोल चित्रो को गौर से देख रहे है।

अब प्रभा की आँखे सूख चुकी है, महेन्द्रजी चहक रहे है, ललनजी किलकारियाँ दे रहे है और जित्तिनजी अपने थैले से कन्वेंट मे बनाये अपने हाथ के करतबो को दिखला रहे है—

"बोलो प्रभा, यह क्या है?"

"यह है गधा!"

"पगली, गधा नही, यह काबुली घोडा है!"

"भैयाजी, मुझे इस घोडे पर चढा दो।"— महेन्द्रजी बोल रहे है और जैसे घोडे पर छलाँग मारने को अपने बदन को तोल रहे है।

"यह देखो, यह क्या है?"

प्रभा की जबान तेज है, फिर वह बोल उठी "खरहा!"

"खरहा? महेन्द्र, तुम बताओ, यह क्या है?"

अपने आगे के दूध धाये दांतों को चमकाते महेन्द्रजी कहते है—"चूहा!"

"हाँ, विलायती चूहा?"

जित्तिनजी को अपने ज्ञान का गर्व था महेन्द्रजी को अपनी जानकारी पर नाज हो आया। प्रभा बेचारी जमे अकेली पड गई। उसने अनुभव किया, उसके भाई उसकी अवमानना करने पर तुले है। इतने में ललन ने विलायती चूहे का एक कान पकड कर खीच लिया।

जित्तिनजी का साहब गुस्से में आ गया। उन्होंने ललन के हाथ से अपना विलायती चूहा छीनना चाहा। छीना-झपटी में चूहे का कान ललन के हाथों में रह गया। आग में घी पड गया। जित्तिन अब अपना गुस्सा उतार रहे हैं।

आँगन में कोलाहल है। 'बाबा', 'मैया', दैया,' 'मैया' हो रहा है? चेहरो के तरह तरह के भाव हैं।

और, कुछ देर के बाद फिर चारों बच्चे एक साथ खेल रहे हैं—नौ महीने, चार वर्ष, सात वर्ष, दस वर्ष—सब मिल कर एक हो रहे हैं। कुछ वर्ष, कुछ महीने।

बाबा का स्केच पूरा हो रहा है, वह अन्तिम पंक्ति लिख रहे हैं—

"चचलता चितवन वही, गति मति वही सुभाव,
अरी लरिकई बावरी, एक बार फिरि आव

किसको लिख रहे हैं

"यह किसको लिख रहे हैं आप ?"

छोटी लूची ने अपरिचित कहानी-लेखक से पूछा जो उसके बाप के बरामदे मे बैठे, असह्य प्रतीक्षा से ऊबकर, तुरत दिमाग में आये हुए कहानी के प्लाट को अपने लेटर पेपर पर ही कलमबन्द कर रहे थे।

कहानी-लेखक की पेशानी पर शिकने उठ आईं वह मन-ही-मत झल्लाया—कहाँ से यह बच्ची आकर मेरे कल्पना-चित्र पर स्याही पोत रही है!

किन्तु, लूची माननेवाली नही। उसने कागज पर हाथ रख दिये और अधिकार के स्वर मे बाली—"आप यह लिख रहें है किसको!"

कहानी-लेखक ने लूची के चेहरे को देखा—कैसी मासूम ? क्या कला-देवी का चेहरा भी कुछ ऐसा ही होगा ?

मजाक में उसने कह दिया—"तुम्हारी चाची को!"

उसके छोटे चाचाजी ने तुरत शादी की थी—लूची ने सोचा, उससे बढकर लिखने की पात्र और कौन हो सकती है?

"नई चाची को?

"उहूँ, पुरानी चाची को?"

"लाल चाची को? विमला भैया की चाची को? सुन्दरपुर वाली को?"

लूची ने प्रश्नो की झडी लगा दी। पुरानी चाचियाँ तो कई है न?

कहानी-लेखक को लुफ्त आ रहा था? लूची की आँखो की उत्सुकता और उत्कठा के अध्ययन मे लीन वह उहूँ, उहूँ करता जाता था? लाल फ्राक और काले बालो के बीच गेहुएँ चेहरे पर चमकती दो मासूम आँखो मे, वह कला-देवी को, अब प्रत्यक्ष देख रहा था।

तब तक लूची के बाबूजी आ पहुँचे। ओहो आप? कब से इन्तजार कर रहे है आप? देर के लिए माफी   और लूची तू

"लूची मुझसे कुछ पूछ   ?"

कहानी-लेखक आगे कुछ नही कह पाया, क्योकि लूची के हाथ उसका मुँह बन्द कर चुके थे!

"क्या पूछ रही थी?"

फिर मुँह बन्द किया गया—लूची के छोटे हाथो में कितना आग्रह था, कितनी गर्मी थी?

"अरे, चाचाजी को यो तग किया जाता है!"

"चाचाजी? क्या ये भी चाचाजी ही होते है?"—लूची की आँखे बलमली उठी! क्योकि उसने रहस्य का पता जो पा लिया था! "समझी, समझी!"—कहती हुई वह खडी हुई और नाच उठी! उसके बाबूजी भौंचक थे—"क्यो नाच रही है पगली?"

"चाची को दिखला दोगे चाचाजी!"—पगली लूची के दोनो हाथ कहानी-लेखक की गरदन में थे! और कहानी-लेखक की आँखो के सामने आज सचमुच एक चाची खडी हो गई! अब तक वह अवि-

वाक्ति था, उसने समझ रखा था, उसकी भारती ही उसकी सहचरी है, किन्तु आज लूची के प्रश्न ने उसे बताया, लिखने के लिए भी किसी की आवश्यकता है– किसको लिख रहे हैं आप ?

एक महीने के अन्दर-अन्दर लूची अपने इस नये चाचा की नई चाची के नजदीक बैठी मिठाई खा रही थी ।

छब्बीस साल बाद

छब्बीस साल बाद उस दिन उसे फिर देखा था।

पहले देखा था, जब वह जवानी की देहली पर खड़ी थी। उस दिन देखा, वह बुढ़ापे के दरवाज़े को पार कर चुकी है।

छोटा-सा ललाट, चाँद के टुकड़े-सा! ऊपर सजल श्यामल मेघ-से बालों के लट; नीचे काम के कमान-सी पतली, लचीली, नुकीली भौंहें। आँखों में ख़ुमार; गालों पर गुलाब। सुन्दर पतली नाक—जब वह पतले अधरों को खोल, दानेदार दाँतों को ज़रा-सा चमकाकर बोलती, मालूम होता, नाक उसमें सुरीलापन भर रही! स्वस्थ अर्द्ध-स्फुटित यौवन! कैसी मोहक थी वह, उसकी काया, उसकी बातें, उसकी चाल!

शरीर में जवानी; हृदय में बचपन। भोलेपन में वह कुछ कह जाती, जिसका मानी भी नहीं समझती। "मुझे भी अपने साथ ले चलिए न?" "क्या मैं बहुत खूबसूरत हूँ?" "देखिए तो इस पत्र में उसने क्या लिखा है?"

पत्र पढकर मैंने कहा—"इसका अर्थ समझा? तुम्हे कैसे मिला यह पत्र?" और मै गुस्से मे था।

"मैं उस दिन फुलवारी से लौट रही थी, रास्ते मे पडा पाया! मैं अब रोज उस रास्ते जाऊँगी, बेचारा तडपता जो है?" सचमुच उसके चेहरे पर दया के भाव थे!

उसकी भी शादी हुई, मेरी भी। उसने एक दिन पूछा—"आपकी पत्नी कैसी है?" "तुम्हारी-सी तो नही, उस लडकी ऐसी-वह!" 'नही नही, आप झूठ कह रहे है–भगवान जोडा मिलाना नही जानता!"

इस अन्तिम वाक्य का अर्थ समझ मै दुखित हुआ। उसके पति उसके योग्य नही मिले थे। सिर्फ धन देखकर शादी कर दी गई थी उसकी! लेकिन, उसे क्या हक था, कि मेरी पत्नी के बारे मे भी वह कुछ वैसी ही भावना रखे!

किन्तु क्या सचमुच उसे कोई हक नही था?

नही, नही उसकी चर्चा फिजूल! हमारे समाज मे ऐसा ही होता आया है। मन लगा 'क' से, शादी हुई 'ख' से। किसी तरह समन्वय हुआ, तो खैर, नही तो ट्रेजडी!

और २६ वर्ष के बाद वह साकार ट्रेजडी-सी मेरे सामने खडी थी!

ललाट पर शिकन, गाल पर सिकुडन। बालो मे वृद्धता ठठा-ठठाकर हँस रही। कमान टूट चुका था, खुमार उतर गया था। शरीर एक गुमसुम रूई के गट्ठर-सा! नाक कह रही थी, बडी मुश्किल से मैंने नाक रखी है इसकी। अधरो पर न लाली, दातो मे न चमक! अल्हडपन की चिता पर सजीदगी खडी थी!

पति को शरीर दिया, दिल न दे सकी। कैसे देती–वह पहले ही किसी को दिल दे चुका था, जो उसके सामने बन्दरी थी। किन्तु, बन्दर का तो बन्दरी ही भावे? तो भी किस सयम से उसने जवानी काट दी है, यह उसके चेहरे की सौम्यता कह रही थी!

बहुत दिना तक हिस्टिरिया मे परेशान रही! एक सन्तान हुई, वह भी न रही। तब से गोद न भरी। अब उसी पति की दूसरी शादी कराकर, उसके बच्चे को गोदी मे खिलाती माँ का ममत्व निछावर कर रही है।

"यही मेरा बेटा है, उस घर मे" उस घर मे—मेरा बेटा! किन्तु उसकी आवाज मे कोई अस्वाभाविकता नही थी। एक जगह पहुँच-कर अस्वाभाविकता भी स्वाभाविकता-सी बन जाती है न ?

और दूसरे ही क्षण प्रश्न—"आपके तीन बेटे है न? और एक बेटी। बेटी कितनी बडी है?" और जब तक मै जवाब मे कुछ कहू, बोली—"अपनी 'रानी' से मुलाकात नही करा दीजिएगा ?"

और फिर उलहना—

"मर्द भी क्या होते है? कभी चिट्ठी भी नही भेजते—अपना फोटो भी तो भेज दिये होते? और पढना-लिखना तो छूट ही गया है अपनी कुछ किताबे जरूर भेज दीजिएगा। याद है! आपने कहा था—पढना-लिखना नही छोडना।"

मुझे उस समय क्या-क्या नही याद आ रहा था। हम दोना का साथ-साथ उठना-बैठना, जब मै सख्त बीमार पडा, उसका रात-रात भर जागना, जब मै घर जाने को तैयार होना, उसका उदास विषण्ण चेहरा लेकर खडा हो जाना, उसकी माँ का कहना—लेते जाओ इसे भी! मै तिलक-दहेज से भी बच जाऊँगी। फिर उसका विषादमय विवाह—जब दुल्हे को देखा, माँ रो उठी, माँ की गर्दन पकड यह चिल्ला उठी। किन्तु, पिताजी की इज्जत का प्रश्न! शादी होकर रही!

शादी के कुछ दिनो के बाद जब उसे देखा, वह बिल्कुल बदल चुकी थी। मै उसकी ममव्यथा समझता था। उसे समझाया-बुझाया। नारी-धर्म बतलाया। वह कुछ आश्वस्त हुई।

किन्तु, क्या ट्रेजडी को सुखान्त मे परिणत किया जा सकता है? छब्बीस साल बाद वह साकार खडी थी!

बस, पाँच-छ मिनट की यह मुलाकात। मै कार्यों मे व्यस्त, वह प्रतिष्ठा की जजीर मे बँधी। मै तब से फिर एक पत्र नही भेज सका

हूँ, न फोटो, न पुस्तक। सोचता हूँ; भुलता हूँ; एक बार पुस्तक लेकर उसके घर के निकट से लौट आया। सोचा, जो घाव भर चुका, उसे कहीं फिर मैं कुरेद न दूँ ?

यह मानव क्या है? उसके हृदय में क्या-क्या छिपे हैं? जो-जो भावनायें, कामनायें, वेदनायें हमारे हृदयों में गड़ी पड़ी हैं, यदि वे कभी बोल उठतीं! उफ़, सारा संसार रुदन से ओतप्रोत हो जाता, आँसुओं की बाढ़ में बह जाता, विलीन हो जाता !
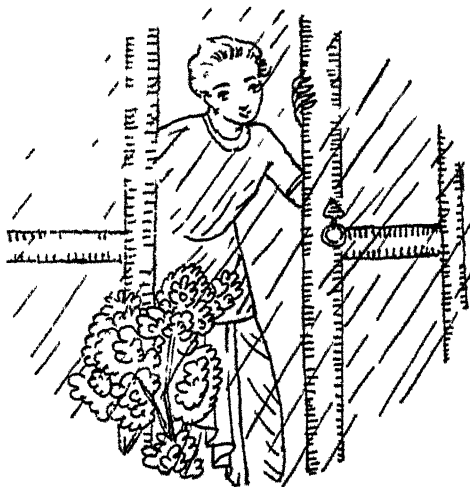
पहली वर्षा

दुपहरिया मे मै सोया था—पटना की गर्म हवा के झोका से बचने के लिए घर के सारे किवाड बन्द करके। अचानक नीद टूटी—देखता हूँ, घर का बिजली-पखा बन्द है और बाहर शोर मच रहा है—जैसे आँधी हो। दरवाजा खोला—ओहो, खूब वर्षा हो रही है।—यो कहिए कि आँधी और वर्षा दोना।

बडी-बडी बूदे। पेडो की डाले पेगे ले रही है। कच्चे आम टूट-टूटकर गिर रहे है।

इस साल की यह पहली वर्षा है। पहली वर्षा के साथ क्या आँधो का होना अनिवाय है? और जिनकी डटले पुप्ट है, वे वर्षा से रसीले बन जायँ, उसके पहले क्या कुछ कमजोर डटलवाले आमो का गिर पडना लाजिमी है?

वर्षा समाप्त हुई—झोको के साथ जो आई थी, वह झाको मे ही गई। आस्मान में छिटपुट बादल के भूरे टुकडे उड रहे है। जमीन से सोधी गन्ध निकल रही है। और ये आम के पेड—तुरत-तुरत नहाकर

खडी दुल्हन-की तरह लग रहे है! शाम की सुनहली किरणो इनके पत्तो पर कैसी चमचम कर रही है!

वर्षा के बाद पेडो की शोभा देखते मै कभी नही अघाता। पढा था, कवि सत्यनारायण को बी०ए० की परीक्षा देनी थी। परीक्षा के समय के कुछ पहले वषा हो गई। बेचारे के मन मे, पेडो की धुली-धुलाई पत्तियो को देखते ही, कविता उमड आई। उधर परीक्षा के पर्चे बँट रहे थे, इधर आप कविता की पक्तियो-पर-पक्तियाँ लिखते चले जा रहे थे!

सचमुच वर्षा के बाद पेडो की शोभा अनुपम हो उठती है। धूल के कण-कण धुल जाते है। गर्मी के बाद शीतलता पाते ही उनका हरा रग निखर पडता हे। पत्तियाँ हँसती-सी मालूम पडती है। यदि उनपर सूर्य्य की किरणे तब पडने लगे, जब तक कुछ बूदे उन पर इधर-उधर लिपटी है, तो फिर क्या कहना? आर यदि वे किरणे सन्ध्या की हुई? अहा! गिरा अनयन नयन बिनु बानी?

पटना का मेरा यह घर भी क्या अनोखा है। मामने आम के, कितने घने पेड है। केले भी है। कुछ और पेड भी है। शहर मे रह-कर भी शहर से दूर! नगर मे रहकर भी प्रकृति की गोद मे। इन आमो को देखकर ही एक मित्र ने कहा था—अम्बपाली के लेखक के उपयुक्त ही यह स्थान हे।

आज प्रथम वर्पा की इस पहली सन्ध्या को आम की हर डाली अम्बपाली बन गई है! वह गुनगुना रही है, मुस्कुरा रही है, अँगडाइयाँ ले रही है, उगलियो से इशारे कर रही है और लगता है, कही वह एकाएक नाच न उठे— छमछम!

लागल करेजवा में चोट

"लागल करेजवा मे चोट!"

रेडियो में यह गीत हो रहा है! बचपन स ही यह गीत सुन रहा हूँ—गाँव के छोकरो के मुँह से, शहर के छैला के मुँह से, गवैया से, उस्तादो से, ग्राममोफोन पर, रेडियो मे! ककश स्वर मे, कोकिल-कठ से। लेकिन हमेशा यह अच्छा ही लगा।

नूतन नूतन पदे पदे—काव्य की यह परिभाषा है! क्या इस छोटे-से गीत मे काव्यत्व भरा है?

यह किस कवि की अमर रचना है? पहले-पहल यह किस सौभाग्यशाली के कठ से निस्सृत हुआ?

ग्रामीण बोली के ये सीधे-सादे साढ़े तीन शब्द—विभक्ति को आधा शब्द मान लिया जाय तो! किन्तु किस तरह इनका सगठन हुआ कि ये सगीत बन गये और ज्योंही, जितनी बार उच्चरित होते है, कलेजे मे घर कर लेते है!

लागल करेजवा मे चोट !—किसके कलेजे मे कोई चोट कभी नही लगी। ये साढे तीन शब्द जीवन के परम सत्य को सीधे-सादे ढग से कह गये है, इसीलिए इनमे यह मोहकता है, मनोरजकता है, हृदय को आकृष्ट करने की ऐसी क्षमता है !

जीवन के परम सत्य को सीधे-सादे ढग से कह जाना—क्या यही कला की सबसे बडी सार्थकता नही है ?

हम इनके कृतज्ञ हैं।

इस ग्रथावली के प्रकाशन की योजना के मूल मे यह आशा रही कि हर भाग के प्रकाशन के पूव हमे कम-से-कम सौ ऐसे सज्जन मिल जायँगे जो सो-सौ रुपये देकर पूरी ग्रथावली के स्थायी ग्राहक बन जायँगे। इस भाग के प्रकाशन के पूव इन सज्जनो ने स्थायी ग्राहक बनकर हमारे लिए पथ प्रशस्त किया अत हम इनके कृतज्ञ है—

सारन

१ प्रिन्सपल मनोरजन प्रसाद सिह, छपरा

२ श्री बनारस सिह, एडवोकेट, छपरा

३ श्री साधु चरण पाडेय, एडवोकेट, छपरा

४ श्री विशेश्वर दयाल जी, एडवोकेट, छपरा

मुजफ्फरपुर

१ श्री महेश्वर प्रसाद नारायण सिह, हाजीपुर

२ महथ श्याम सुन्दर दास, शीतलपट्टी

३ मत्री, एम० आर० एस० विद्यालय मनियारी

४ महथ रामकिशोर दास, छपरा

५ श्री पशुपति नाथ महथा, मुजफ्फरपुर

६ श्री बैजनाथ प्रसाद वर्मा, कमरौली

७ प्रिन्सपल, रामदयालु सिह कालेज, मुजफ्फरपुर

८ मत्री, जगन्नाथ केन्द्रीय पुस्तकालय, सीतामढी

९ श्री दिग्विजय नारायण सिह, एम० पी०

१० बाबू सरयू शरण सिह, वकील, सीतामढी

११ श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिह, एम० पी०

१२ प्रिन्सपल, लगट सिह कालेज, मुजफ्फरपुर

१३ श्री सूयदेव ठाकुर, बिशुनपुर

१४ मत्री, राधाकृष्ण गोयनका कालेज, सीतामढी

१५ मत्री सनातन धर्म पुस्तकालय, सीतामढी

१६ सीतामढी हा० ई० स्कूल, सीतामढी

१७ मत्री, प्रकाश पुस्तकालय, बाजपट्टी

१८ श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, बोचहाँ कोठी

१९ महथ मदनमोहन दास, रसूलपुर जिलानी

२० श्री दामोदर झा एम० एल० ए०, सीतामढी

पटना

१ श्री जगदीश चन्द्र माथुर, शिक्षा-सचिव

२ महथ श्याम नारायण दास, एम० एल० ए०

३ श्री भोला शास्त्री, मन्त्री स्वायत्त शासन

४ प्रबन्धक, श्री बिहारी जी मिल्स

५ प्रबन्धक, श्री माधव जी मिल्स

६ श्री रजिस्ट्रार, बिहार यूनिवर्सिटी

७ श्री राजवशी सिंह, बिहार को-आपरेटिव फेडरेशन

कलकत्ता

१ श्री सीताराम सेक्सरिया

२ श्री मारवाडी बालिका विद्यालय

३ श्री रामेश्वर जी नोपानी

४ श्री रामेश्वर जी टाँटिया

५ श्री बद्री प्रसाद बायवाला

६ श्री रामचन्द्र जी सिंघी

७ श्री गोविन्द प्रसाद कनोडिया

८ श्री केवल चन्द्र जी बागडी

९ श्री विश्वनाथ मोर

१० श्री राम कुमार भुआलका

११ श्री रघुनाथ प्रसाद खेतान

१२ श्री श्याम सुन्दर जयपुरिया

१३ श्री राधेश्याम साबू

१४ श्री भँवरमल सिंघी

१५ श्री श्याम सुन्दर कनोडिया

नई दिल्ली

१ सेठ गोविन्ददास जी, एम०पी०

२ श्री सत्यनारायण सिंह जी, ससदीय मन्त्री

३ श्री जगजीवन राम जी, यातायात मन्त्री

४ श्रीमती राजमाता कमलेन्दुमती शाह, एम० पी०

५ श्री बनारसी प्रसाद झुनझुनवाला, एम० पी०

६ श्री जी० एल० बंशल, एम० पी०

७ श्री चन्द्रशेखरेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

८ श्री राधेश्याम मुरारका, एम० पी०

९ श्री जयदयाल जी, डालमिया सिमेंट लि०

मानभूम

१ मन्त्री, गुजराती समाज, झरिया

२ श्री डुंगरसी सुन्दरसी ठक्कर, झरिया

३ श्री भगवान लालजी चचनी, धनबाद

४ श्री महीपत लालजी बोरा, धनबाद

५ ठाकुर परमहंस सिंह जी, झरिया

६ श्री आर० पी० सिन्हा, भगतडीह

७ श्री रामदास जी वर्मा, बस्ताकोला

८ श्री मेघजी जी० चावडा, जीनागढा

९ श्री अमर सिंह गोआमल, टीसरा

१० श्री बिहार कोल कम्पनी, सिजुआ

११ श्री खासजयरामपुर कोइलियरी, झरिया

१२ श्री राजेन्द्र कोल कन्सन, झरिया
१३ श्री ब्रह्मदेव सिंह जी, झरिया
१४ श्री शिवनाथ सिंह जी, झरिया
१५ श्री अर्जुन अग्रवाला, झरिया
१६ श्री दामोदर प्रसाद गुप्त, झरिया
१७ श्री मदनजी अग्रवाल, धनसार
१८ मत्री, बन्धु समाज, खामजिनागढ
१९ कुसुन्डा नयाडीह कोइलियरी, कुसुन्डा
२० श्री पुरुषोत्तम चौहान, एम० एल० ए०
२१ श्री अर्जुन राठौर, झरिया
२२ मत्री, वर्कर्स क्लब, लोदना
२३ मत्री, वर्कर्स क्लब बागडीघी
२४ पडित भागवत त्रिपाठी, झरिया
२५ श्री जयबिसुन भगवानजी, झरिया
२६ श्री सूर्य प्रसाद सिह, झरिया
२७ श्री व्रजमोहन अग्रवाल, चेअरमैन डि० बो०
२८ श्री मदन वात्सायन, सिन्दरी

हजारीबाग

१ श्री रामविलास सिंह जी, बरमो
२ सी० एच० लिमिटेड, झुमरीतिलैया
३ छठूराम होरिलराम हा० ई० स्कूल, झुमरीतिलैया
४ मत्री, श्री कृष्ण पुस्तकालय, झुमरीतिलैया
५ श्री चाँदमल जी राजगडिया, गिरीडीह
६ श्री रामगोपाल जी राजगडिया, गिरीडीह
७ श्री औतार सिंह जी, गिरीडीह
८ श्री हरिकान्त मिश्र, झुमरीतिलैया
९ श्री उमाचरण लाल तरवे, गिरीडीह
१० श्री रामदयाद सिंह, गिरीडीह

गया

१ श्री शत्रुहन शरण सिंह, चेयरमैन डि० बो०
२ श्री सत्यनारायण सरावगी
३ श्री बैद्यनाथ खेतान, एम० ए० बी० एल०
४ श्री गोपाल प्रसाद अग्रवाल
५ श्री रामवल्लभा शरण
६ श्री आनन्दमोहन भदानी
७ श्री कुमार प्रताप सिंह

राजस्थान

१ श्री शारदा सदन, मुकुन्दगढ

बम्बई

१ श्री ज्ञानचन्द्र जी जैन

शिमला

१ मत्री, द्वारकादास पुस्तकालय

चम्पारण

१ श्री विपिन बिहारी वर्मा, एम० पी०
२ श्री ज्वाला प्रसाद सिंह, वाइस-चेअरमैन, डि० बो०

३ श्री श्रीनारायण सिंह, वकील
४ श्री गणेश प्रसाद साहु, एम० एल० ए०
५ श्री फजुलर रहमान, एम० एल० ए०

दरभंगा

१ कुमार कल्याणलाल, एम० एल० सी०
२ श्री रामेश्वर प्रसाद सिन्हा, वकील
३ श्री कर्पूरी ठाकुर, एम० एल० ए०

राँची

१ प्रिन्सपल, डिग्री कालेज, राँची
२ मंत्री, विकास विद्यालय, राँची

पूर्णियाँ

१ कुमार गंगानन्द सिंह, श्रीनगर

मुंगेर

१ श्री रामनारायण चौधरी, एम० एल० ए०

भागलपुर

१ श्री विश्वनाथ जी झोलिया
२ श्री रामप्रसाद मह्गका
३ श्री सत्येन्द्र नारायण अग्रवाल, एम० एल० ए०

विशेष

इनके अतिरिक्त श्री गाला-रामजी सेक्सरिया से दो, श्री-बद्री प्रसाद बायवाला से तीन और श्री शत्रुहन शरण सिंह से तीन—इस तरह कुल आठ स्थायी ग्राहकों के अग्रिम रुपए और मिल गये हैं। किन्तु समय पर उनके नाम नहीं मिलने के कारण हम उन्हें इस सूची में नहीं दे सके।

हम इनके भी कृतज्ञ हैं!

सर्वश्री सेठ गोविन्ददास, राम-धारी सिंह 'दिनकर', मातागाम सेक्सरिया, प्रभुदयाल डाबड़ीवाला, हरिनारायण सिंह, शिवनाथ सिंह, बी० पी० सिंह, भँवरमल सिंघी, मथुरा प्रसाद मिश्र, डा० रामाशीष ठाकुर और सबसे अधिक श्री मुद्रिका सिंह के हम विशेष कृतज्ञ हैं—क्यों कि इन्हीं महानुभावों और मित्रों की कृपा रही कि हमें इतने लोगों का सहयोग सुलभ हो सका।